भारत में वित्तीय प्रशासन

Financial Administration in India

प्रश्न पत्र–VIII

Paper-VIII

Option-i

एम.ए. लोक प्रशासन (उत्तरार्द्ध)

M.A. Public Administration (Final)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय

रोहतक-124 001

Copyright © 2004, Maharshi Dayanand University, ROHTAK
All Rights Reserved. No part of this publication may be reproduced or stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means; electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the written permission of the copyright holder.

Maharshi Dayanand University
ROHTAK – 124 001

Developed & Produced by EXCEL BOOKS PVT. LTD., A-45 Naraina, Phase 1, New Delhi-110028

विषय-सूची

अध्याय	**1.**	वित्तीय प्रशासन का विकास	5
अध्याय	**2.**	वित्त प्रशासन : अर्थ प्रकृति एवं कार्यक्षेत्र	11
अध्याय	**3.**	आर्थिक नीतियां : मौद्रिक, वित्तीय एवं आयात निर्यात	24
अध्याय	**4.**	घाटे की वित्त व्यवस्था	51
अध्याय	**5.**	बजट प्रक्रिया	58
अध्याय	**6.**	निष्पादन बजट	80
अध्याय	**7.**	शून्य आधारित बजट	91
अध्याय	**8.**	बजट एक आर्थिक व प्रशासनिक यन्त्र के रूप में	99
अध्याय	**9.**	भारत में वित्त संघवाद	105
अध्याय	**10.**	सार्वजनिक वित्त पर वित्त मंत्रालय का नियन्त्रण	116
अध्याय	**11.**	वित्तीय शक्तियों का प्रत्यायोजन	139
अध्याय	**12.**	वित्त आयोग : गठन, कार्य और भूमिका	146
अध्याय	**13.**	योजना आयोग की भूमिका तथा कार्य	161
अध्याय	**14.**	सार्वजनिक वित्त पर संसदीय नियन्त्रण	168
अध्याय	**15.**	अनुमान समिति, सार्वजनिक लेखा समिति एवं सार्वजनिक उद्यम समिति	177
अध्याय	**16.**	लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक	193
अध्याय	**17.**	भारत में लेखा प्रणाली एवं लेखा परीक्षा प्रणाली	201
अध्याय	**18.**	कर प्रशासन	221
अध्याय	**19.**	वित्तीय मूल्यांकन	244
अध्याय	**20.**	वित्त प्रबन्ध में सुधार एवं उभरती हुई प्रव त्तियां	272

M.A. Public Administration (Final)

Financial Administration

Paper-VIII

Option-i

M. Marks : 100
Time : 3 Hrs.

Note: The question paper shall contain ten question in all by including two questions from each unit. Every candidate shall attempt five questions in all, selecting one question from each unit. All questions carry equal marks.

UNIT–I

Financial Administration: Evolution, Meaning, Nature, Scope, Objective, Agencies and Significance: Financial Administration under capatalist, Socialist and Mixed Economy: Economic Policies: Monetary, Fiscal, Exim: Concept of Deficit Financing.

UNIT–II

Budget-Meaning and Essentials of Budget; Types of Budgeting-Line-item, performance and Zero Based: Budgetary Process-Formulation, Enactment and Execution of Budget; Budget as an Instrument of Administration and Economic Development.

UNIT–III

Fiscal Federalism in India, Finance Ministry's control over Public Finance, Delegation of Financial Powers, Role of Finance Commission and Planning Commission.

UNIT–IV

Parliamentary control over Public Finance, PAC, EC, Committee on Public undertakings, CAG; Accounting and Auditing system in India; Separation of Audit and Account; Modified Accounting system in India; Social and performance Audit.

UNIT–V

Taxation, Administration; Features, Direct and Indirect Taxes, Co-operation Tax, Taxation Reforms Tax Administration, Financial Appraisal-Economic and Social; problems and prospects of financial administraion; Reforms in Financial Management; Emerging trends in Financial Management.

अध्याय - 1

वित्तीय प्रशासन का विकास

(Financial Administration : Evolution)

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य
(Historical Background)

एक प्रचलन के रूप में, वित्तीय प्रशासन भारत के लिए कोई नई बात नहीं है। रामायण में संतुलित बजट तैयार करने के बारे में उल्लेख मिलता है। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी तक वित्तीय प्रशासन विकास की उन्नत अवस्था में पहुँच गया था। कौटिल्य का अर्थशास्त्र वित्तीय प्रशासन पर एक शोध-प्रबंधन था। इसके अंतर्गत लोक वित्त तथा वित्तीय प्रशासन के अनेकों स्वस्थ सिद्धांत मौजूद थे। मौर्यकाल में प्रशासन द्वारा अपने राजकोषीय कार्य इन्हीं सिद्धांतों के अनुरूप संपादित किए जाते थे। भू-राजस्व, राजस्व का प्रमुख स्त्रोत था। सोना, पशुओं आदि जैसी वस्तुओं पर भी कर लगाए जाते थे। लोक निर्माण कार्यों से प्राप्त आय गैर-कर राजस्व का प्रमुख स्त्रोत था। जनता से उधार लेने तथा घाटे की अर्थव्यवस्था जैसी चीजों के बारे में कोई जानता तक नहीं था। उस समय एक भली-भांति संगठित वित्तीय संरचना मौजूद थी जिसके तहत महासंग्रहकार, महा-खजांची तथा महालेखाकार के कार्यालय शामिल थे। राजकोषीय निर्णय राजसी सनक तथा ठाटबाट से प्रभावित रहते थे और वित्तीय जवाबदेही की कोई स्वस्थ प्रणाली मौजूद नहीं थी। गुप्त काल में करीब करीब इससे मिलती जुलती वित्तीय प्रशासन की प्रणाली कायम रही। मुगलकाल में एक व्यापक एवं सुव्यवस्थित वित्तीय प्रणाली देखी गई। भू-राजस्व का राजस्व के प्रमुख स्त्रोत के रूप में होना जारी रहा। इसे सर्वेक्षण तथा बंदोबस्त के नाम से जानी जाने वाली एक व्यवस्थित प्रक्रिया के पश्चात् ही आरोपित किया जाता था। भारत में राजस्व प्रशासन की बुनियादी संरचना का निर्माण शेरशाह सूरी द्वारा किया गया।

अकबर के दरवार में कार्यरत एक कुलीन व्यक्ति, राजा टोडरमल ने इसे सुव्यवस्थित किया तथा एक नियम पुस्तक के रूप में राजस्व प्रशासन के सिद्धांतो का प्रवर्तन किया, जिसे आगे चलकार अंग्रेजों द्वारा अपना लिया गया। उन्होंने भूमि के मसलों में बिचौलियों के संबंध कायम किए। जजिया, आयकर, संपत्ति कर इत्यादि अन्य प्रत्यक्ष करों का अंश थे। अप्रत्यक्ष करों में सीमा शुल्क, बिक्री कर, चुंगी तथा उत्पादक शुल्क शामिल थे। सार्वजनिक कोषों के संग्रह, देखभाल तथा संवितरण के लिए सरकारी तथा गैर-सरकार खजानों का एक तंत्र मौजूद था।

यद्यपि, उपरोक्त विरासत ने भारत के राजकोषीय इतिहास पर अपने पद चिन्हों की अमिट छाप

छोड़ी है, फिर भी आधुनिक, वित्तीय प्रणाली की शुरूआत ब्रिटिश-शासन के दौरान हुई। इस काल में वित्तीय प्रशासन विकास के अनेक विशिष्ट चरणों से होकर गुजरा। भारत के वित्तीय प्रशासन के इतिहास को मोटे तौर पर निम्नलिखित चार विशिष्ट चरणों में विभाजित किया जा सकता है :

काल I (1765-1858) संरचना का निर्माण तथा उसका सुद ढ़ीकरण

काल II (1859-1918) प्रणालियों तथा प्रक्रियाओं का विकास

काल III (1919-1947) जनतंत्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण

काल IV (1948 से आज तक) विकासात्मक रूझान

काल-I संरचना का निर्माण तथा उसका सुद ढ़ीकरण
(Creation of Structure and its Consolidation)

1765 में दीवानी अधिकारों का अधिग्रहण ब्रिटिश भारत के वित्तीय प्रशासन की स्थापना का प्रतीक है। सभी शक्तियाँ ईस्ट इंडिया कम्पनी को सौंप दी गई और इन्हें कम्पनी द्वारा नियंत्रक बोर्ड के जरिए लागू किया जाता था। भारत से प्राप्त राजस्व को ईस्ट इण्डिया कम्पनी की वाणिज्यिक कमाई माना जाता था। ब्रिटिश सरकार, विभिन्न विनियोजन अधिनियमों में यथा उपबंधित, अप्रत्यक्ष तरीकों के जरिए ही कम्पनी प्रशासन पर प्रभाव डाल सकती थी। सार्वजनकि वित्त का अधीक्षण एवं नियंत्रण, गवर्नर के नेत त्व में प्रत्येक प्रेसीडैन्सी में, अलग से सौंपा गया था। नियंत्रक बोर्ड से खासतौर पर अनुमति प्राप्त किए बिना भारत का गर्वनर जनरल इन कोषों का इस्तेमाल नहीं कर सकता था। हालांकि युद्ध के दौरान वह इन कोषों का उपयोग कर सकता था। 1833 में, कम्पनी प्रशासन में भारी अव्यवस्था के चलते, ब्रिटिश संसद ने कार्यवाही शुरू की। 1833 के भारत सरकार अधिनियम के तहत, ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत पर स्वयं शासन करने का अधिकार खो दिया। इसके पास रखी संपत्ति को सम्राट के लिए ट्रस्ट के रूप में छोड़ा गया। अधिनियम ने अधीक्षण नियंत्रणकारी सत्ता भारत के गवर्नर जनरल को सौंप दी। गवर्नरों को भी अपनी सत्ता से हाथ धोना पड़ा क्योंकि गवर्नर जनरल से मंजूरी प्राप्त किए बिना वे न तो किसी नए पद की स्थापना कर सकते थे न ही कोई अनुदान, वेतन, भत्ता अथवा उत्पादन ही दे सकते थे। भारत सरकार के वित्त सचिव को प्राक्कलन तैयार करने, उपायों तथा साधनों का प्रावधान, ऋणों पर बातचीत तथा लेखे का पर्यवेक्षण आदि जैसे वित्तीय कार्यों के संचालन एवं समन्वय का दायित्व सौंपा गया। उसे नऐ व्यय संबंधी तमाम प्रस्तावों की समीक्षा करनी होती थी। बंगाल का महालेखाकार भारत कास महालेखाकार बन गया तथा उस वित्त सचिव के समक्ष वित्तीय विवरणियों तथा लेखे प्रस्तुत करने का दायित्व सौंपा गया। लेखापरीक्षा के लिए कोई प्राधिकारी नियुक्त नहीं था क्योंकि वह प्रान्तों के पास बनी रही।

वित्त तथा लेखे के एक संयोग के जरिए वित्त सचिव के हाथ मजबूत करने की द ष्टि से इसे 1857 में भारत का महालेखाकार बना दिया गया। यह व्यवस्था अधिक दिनों तक नहीं चल पायी। 1857 में लार्ड कैनिग द्वारा शुरू किए गए सुधारों के तहत वित्त-सचिव को केवल वित्त का कार्यभार सौंपा गया। भारत के महालेखाकार को जिसने वित्त सचिव के लेखा संबंधी कार्यभार ग्रहण किया था, लेखापरीक्षा का दायित्व सौंपा गया।

वित्तीय प्रशासन के सुद ढ़ीकरण की प्रक्रिया 1858 के अधिनियम ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी की औपचारिक सत्ता समाप्त कर दी । ब्रिटिश सरकार ने भारतीय वित्त व्यवस्था का पर्यवेक्षण एवं

नियंत्रण अपने हाथों में ले लिया। अधिनियम के तहत भारत के लिए एक सेक्रेटरी ऑफ स्टेट्स का प्रावधान किया गया उसकी मदद के लिए काउंसिल ऑफ इण्डिया का गठन किया गया। ब्रिटिश मंत्रिमंडल में मिनिस्टर ऑफ स्टेट्स हुआ करता था जो भारतीय वित्तीय एवं प्रशासनिक मामलों के लिए उत्तरदायी होता था। उसकी पूर्वस्वीक ति के बिना भारतीय वित्त में से किसी तरह का विनियोजन नहीं किया जा सकता था। गवर्नर जनरल को सौंपे हुए वित्तीय प्राधिकार प्राप्त थे। भारत का सैक्रेटेरी ऑफ स्टेट्स बजट की स्वीक ति आचार संहिताओं तथा कार्यकारी आदेशों में यथा-अभिव्यक्त नियमों तथा कायदों की एक प्रणाली के जरिए व्यय का नियंत्रण आदि जैसे उपायों द्वारा भारतीय वित्त का नियंत्रण करता था। उसके अधीनस्थ एक वित्तीय समिति तथा वित्त सचिव रहता था जो एक सलाहकार के बतौर वित्त-विभाग के भारतीय कार्यालय का प्रमुख होता था। कांउसिल ऑफ इण्डिया, जिससे चौकीदार जैसी भूमिका की अपेक्षा की गई थी, अपनी भूमिका निभाने में असफल रही क्योंकि उसके पास एक "निरंकुश" सैक्रेटरी ऑफ स्टेट्स को नियंत्रित करने का कोई साधन मौजूद न था। समय के अभाव रूचि के अभाव, तथा भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास आदि जैसे अनेक कारणों से भारत के सैक्रेटेरी ऑफ स्टेट के उपर संसदीय नियंत्रण भी काफी कमजोर था। सैक्रेटेरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया वस्तुतः सत्ता का प्रमुख केन्द्र बन गया। किन्तु स्थानीय परिस्थिति से अनभिज्ञता प्रभावी संचार व्यवस्था के अभाव, भौगोलिक कारकों (दूरियों) इत्यादि जैसी सीमाओं के चलते वह प्रभावी नियंत्रण कायम करने की स्थिति में नहीं था। उसके पास भारत के गवर्नर जनरल को महत्वपूर्ण वित्तीय प्राधिकार सौंपने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं था, गवर्नर जनरल ही भारतीय वित्तीय गतिविधियों का असली कर्ताधर्ता बन गया। भारत में उसे नियंत्रित करने वाली कोई सत्ता मौजूद न थी क्योंकि लेजिस्लेटिव कांउसिल को वित्तीय मामलों की परीक्षा करने का कोई अधिकार नहीं था। प्रान्तों की केन्द्र पर अत्यधिक निर्भरता का युग, जो 1833 में शुरू हुआ था 1858 के भारत सरकार अधिनियम के तहत भी जारी रहा। भारत के गवर्नर जनरल की तुलना में महालेखाकार की निम्नतर हैसियत ज्यों की त्यों बरकरार रही।

वित्त विभाग की अध्यक्षता तथा निर्देशन वित्त-सदस्य को करना होता था। भारतीय वित्त के संदर्भ में वह अनेक कर्तव्यों का निर्वाह करता था। वह वार्षिक वित्तीय विवरण तैयार करता था, वित्त-व्यवस्था को स्वस्थ रखना, सुनिश्चित करने के लिए आय-व्यय की प्रगति पर निगरानी रखता था, धन संबंधी व्यवस्था का पर्यवेक्षण प्रशासन करता था तथा प्रान्तीय वित्त विभागों का पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण करता था। वित्त-सचिव के नेत त्व में वित्त-विभाग को यह सुनिश्चित करना होता था कि भारत के लिए सैक्रेटरी ऑफ स्टेट्स द्वारा लागू प्रतिबंधों पर अमल किया जा रहा है तथा नियम-कायदों का पालन हो रहा है। इसके पास दोहरी शक्ति थी। अर्थात् बजटपूर्व छानबीन तथा व्यय की मंजूरी।

काल-II प्रणालियों एवं प्रक्रियाओं का विकास
(Development of Systems and Procedures)

गवर्नर जनरल को महसूस हुआ कि वित्तीय समस्याओं का अकेले सामना करना असंभव है। 1859 में, उसके अनुरोध पर, कार्यकारिणी परिषद् में उसकी मदद के लिए वित्त सदस्य का पद स्थापित किया गया। जैम्स विल्सन पहला वित्त सदस्य था। उस समय तक बजट निर्माण की प्रणाली नहीं थी क्योंकि कानून में इसका कोई प्रावधान नहीं था। हालांकि कानून उससे यह मांग नहीं करता था फिर भी विल्सन ने 18-2-1860 को विधान परिषद में पहला बजट प्रस्तुत किया यद्यपि

उसके बजट पर परिषद ने बहस नहीं की, किन्तु उसकी प्रस्तुति ने वित्तीय मुद्दे पर खासी दिलचस्पी पैदा की। इसने एक उदाहरण प्रस्तुत कर दिया जिससे जब भी कोई वित्तीय मकसद सामने आता तो परिषद में बजट पेश होता और उस पर विस्त त चर्चा होती। 1861-62 से वार्षिक बजट प्रणाली की स्थापना हुई। 1892 के परिषद अधिनियम ने गवर्नर जनरल ऑफ इण्डिया इन कांउसिल को विधान परिषद में बजट पर बहस को अधिक त करते हुए नियम बनाने के लिए अधिक त किया जिनके तहत बजट प्रस्तावों को उलट देने का अधिकार नहीं दिया गया था। लेकिन सदस्यों को कोई प्रस्ताव पेश करने की स्वतंत्रता नहीं थी। सार्वजनिक कोष पर लोकप्रिय नियंत्रण कायम करने के लिए सदन के भीतर तथा बाहर लगातार आन्दोलन जारी रहा। 1895 तथा 1896 के अपने वार्षिक अधिवेशनों में कांग्रेस द्वारा संपूर्ण बजट व्यवस्था की मांग करते हुए प्रस्ताव पारित किए गए। 1909 के अधिनियम के तहत वार्षिक बजट पर विस्त त बहस तथा साथ ही बजट अनुमानों पर प्रस्ताव पारित करने के उपबन्ध किए गए हालांकि 1909 का अधिनियम बजटीय विकास की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम था किन्तु इससे सीमित लाभ ही मिल सके क्योंकि ये प्रस्ताव सरकार के लिए बाध्यकारी नहीं थे। 1910 के अधिनियम ने बजट की विधानमंडलों द्वारा स्वीक ति की आधुनिक प्रणाली की शुरूआत की। विधानमंडलों को मंजूरी देने अथवा मंजूरी देने से इंकार करने अथवा उल्लेखित धनराशि में कटौती करने के लिए अधिक त किया गया। किन्तु इस प्रणाली में दो खामियां थीं। पहली यह कि सरकार लोकप्रिय जनमत को ठुकरा सकती थी और दूसरी यह कि बजट के आधे से भी अधिक मामलों पर मतदान नहीं कराया जा सकता था। 1935 के अधिनियम ने भी इस प्रणाली में कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं किया।

1860 में महालेखाकार को भारत का महालेखाकार बना दिया गया और वह लेखा सार्वजनिक विभागों के कार्यों का पर्यवेक्षण आदि जैसे अनेक कर्तव्यों का निर्वाह करने के लिए उत्तरदायी था। 1919 के अधिनियम ने उसे संवैधानिक हैसियत प्रदान की। उसे सरकार से स्वतंत्र रखा गया ताकि वह चौकसी करने की अपनी भूमिका प्रभावी ढंग से निभाने में सक्षम हो सके।

काल-III जनतंत्रीकरण एवं विकेन्द्रीकरण
(Democratisation and Decentralisation)

1909 तक केन्द्रीय विधानमंडल शक्तिशाली नौकरशाही तले दबा हुआ था। 1909 के मिण्टो-मार्ले सुधारों ने केन्द्रीय विधानमण्डल में निर्वाचित तत्वों के सीमित प्रवेश का इरादा बनाया। किन्तु 1919 के अधिनियम के तहत, प्रान्तीय विधानमंडलों में गैर सरकारी सदस्यों का बहुमत हो गया तथा केन्द्रीय विधानमंडल का विस्तार किया गया और उसे अधिक लोकप्रिय प्रतिनिधित्वपूर्ण बनाया गया। इस अधिनियम ने प्रांतीय सरकारों में अधिकतम लोकप्रिय प्रतिनिधित्व का प्रावधान किया। इसने प्रान्तीय सरकारों में दोहरी शासन व्यवस्था की परिकल्पना भी की जिसके तहत प्रान्तीय स्वायत्ता की प्रक्रिया 1937 में पूरी हुई जबकि 1935 के भारत सरकार अधिनियम के तहत लोकप्रिय सरकारों का गठन हुआ। केन्द्र में दोहरी शासन प्रणाली 1935 के अधिनियमों के तहत शुरू की गई जिसके अनुसार वायसराय की कार्यकारी परिषद् के लोकप्रिय ढंग से निर्वाचित सदस्यों के मातहत 20 प्रतिशत व्यय रखे जाने का प्रावधान किया गया। लेकिन गवर्नर जनरल द्वारा उपभोग की जा रही विशेष शक्तियों ने लोकप्रिय भागीदारी को धक्का पहुँचाया।

1833 से पहले कोई केन्द्र सरकार नहीं थी। 1833 से ही प्रान्तों के केन्द्र पर निर्भरता के युग की शुरूआत हुई। यह निर्भरता इतनी अधिक थी कि कोई गवर्नर 10 रूपये प्रतिमाह से अधिक वेतन वाले किसी भी स्थाई पद का निर्धारण नहीं कर सकता था। यह व्यवस्था 1858 के अधिनियम

के तहत भी जारी रही। बुनियादी आधार-वाक्य यह था कि साम्राज्य को समग्र रूप से लिया जाना चाहिए न कि प थक राज्यों के संकलन के रूप में। हालांकि प्रादेशिक सत्ता में 1857, 1877, 1882, 1897, 1904 और 1911 में किए गए विभिन्न विरोधों एवं समझौतों के जरिए व द्धि हुई थी किन्तु यह बुनियादी आधार-वाक्य 1919 का अधिनियम एक मील का पत्थर था। इसने केन्द्र तथा प्रान्तों के बीच शक्तियों तथा दायित्वों का सांविधिक वितरण किया। अंतरित विषयों पर प्रान्तों द्वारा अपने बजट प्रस्तुत करने की अनिवार्यता अब नहीं थी। किन्तु इस अधिनियम ने गवर्नर जनरल को गवर्नरों का पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण करने की महत्वपूर्ण शक्तियों की परिकल्पना की। उदाहरण के तौर पर वह संदेशों की शक्ल में गवर्नरों को निर्देश भेज सकता था। समग्र-संघवाद के मूल लक्षणों तथा संरचनाओं का आरंभ 1935 में किया गया जो आज तक विद्यमान है।

काल-IV विकासात्मक रुझान
(Development Orientation)

स्वतंत्रता ने वित्तीय प्रशासन की राजनैतिक प ष्ठभूमि में मौलिक परिवर्तन ला दिया। कार्यपालिका द्वारा विधायिका के प्रति जवाबदेही के सिद्धांत को औपचारिक मान्यता प्रदान की गई। बजटीय तथा अन्य प्रणालियों एवं प्रक्रियाओं को इस सिद्धान्त का पालन तथा क्रियान्वयन करने के अनुरूप ढाला गया। विधानमंडलीय समितियां सार्वजनिक कोषों के स्वरूप, विवरण, वैंधानिक तथा निरंतरता में सक्रिया रूचि लेने लगी। नियंत्रण एवं महालेखापरीक्षक एक संवैधानिक प्राधिकारी बन गया जिस पर विंधानमंडलीय समितियों को सहायता देने की भी जिम्मेदारी थी। वित्तीय प्रशासन ने धीरे-धीरे अपना केन्द्र स्थायित्व से हटाकर कल्याण, विकास तथा समता पर केन्द्रित किया। 1974 में नियोजन तथा बजट-प्रक्रिया को मिलाकर निष्पादन बजट प्रणाली शुरू की गई, जिसने वित्तीय प्रक्रिया को परिणाम-उन्मुखी बना दिया। वित्तीय नियंत्रण की प्रणाली को मूलतः पुनर्गठित किया गया ताकि इसे योजना के क्रियान्वयन का एक औजार बनाया जा सके। परिणामस्वरूप 1955, 1958, 1962, 1968 तथा 1975 की योजनाओं जैसी अनेक प्रतिनिधित्व की योजनाओं के जरिए व्यय करने वाले विभागों को महत्वपूर्ण शक्तियां सौंपी गई वित्तीय नियंत्रण का दायित्व भी द ढ़ता के साथ करने वाले विभागों पर निश्चित किया गया। इसे दो साधनों से प्राप्त किया जाता था पहली एकीकृत वित्तीय सलाह की योजना एवं दुसरी लेखा परीक्षा परिणामस्वरूप कर-संरचना को तर्कसंगत बनाने के लिए अनेक कदम उठाये गए। काल्डोर के कर-प्रस्ताव, वांचू समिति रिपोर्ट, झा समिति रिपोर्ट आदि इन कदमों के उदाहरण है। घाटे की अर्थव्यवस्था एक नियमित लक्षण बन गई क्योंकि सरकार को विकास की गति में तेजी लाने के लिए दबाव का सामना करना पड़ रहा था।

बैंकिग प्रणाली का राष्ट्रीयकरण, राष्ट्रीय कोषों के विकासात्मक गतिविधियों की ओर प्रवाह का एक औजार माना गया था। विकास एवं समता के ध्येयों को आगे बढ़ाने में सार्वजनिक क्षेत्र ने उल्लेखनीय महत्व प्राप्त कर लिया। कुछ अवांछित परिणाम भी सामने आए। तेजी से बढ़ती मुद्रास्फीति, भुगतान संतुलन का सिकुड़ना, सार्वजनिक क्षेत्रों से नकारात्मक परिणामों में व द्धि सार्वजनिक बचतों में कमी तथा स्त्रोत आधार का सिकुड़ना इत्यादि का वित्तीय प्रशासन पर अंततः इस तरह बुरा प्रभाव हुआ कि सरकार को इन प्रव तियों को सुधारने के लिए कदम उठाने पड़े।

निष्कर्ष के रूप में, काल-I के दौरान मूलतः वित्तीय संगठन के निर्माण पर बल दिया गया जिसका उद्देश्य सैक्रेटरी ऑफ स्टेट्स तथा गर्वनर जनरल के रूप में नियंत्रण तथा निर्देशन

के केन्द्र का निर्माण करना था। काल-II को एक स्वस्थ बजट प्रणाली की उत्पत्ति तथा उसके प्रयोग के प्रयास के लक्षणों से पहचाना जा सकता है। काल-III में स्वतंत्रता आन्दोलन की प्रतिक्रियाएं देखने को मिलीं और अनेक परिणाम के रूप में धीरे-धीरे लोकप्रिय तत्वों को शामिल करने के प्रयास हुए। इससे सत्ता का विकेन्द्रीकरण तथा संघीय संरचना का निर्णाण भी देखा गया। अंतिम चरण जनता तथा उसकी भलाई एवं विकास की तरफ झुकाव के लक्षण से पहचाना जा सकता है।

सारांश

आरंभिक चरणों में "न्यूनतम सार्वजनिक व्यय सरकार का मुख्य उद्देश्य रहता था। धीरे-धीरे वित्तीय प्रशासन की कार्यमूलक भूमिका में परिवर्तन आया इसे स्त्रोतों के एकत्रीकरण तथा उनके उत्पादक विनियोजन की द ष्टि से देखा जाने लगा। यद्यपि, वित्तीय प्रशासन से किसी निर्दिष्ट समय की लोकनीतियों में स्पष्ट किए गए आम उद्देश्यों को पूरा करने में सहायता करने की अपेक्षा की जाती है फिर भी कुछ ऐसे मूलभूत उद्देश्य होते हैं जिन्हें लेकर वित्तीय-प्रशासक चलते हैं जैसा कि विकसित तथा विकासशील देशों के अनुभव से स्पष्ट है। सांस्क तिक विशिष्टता के कारण, वित्तीय प्रशासन के सार्वभौमिक सिद्धान्त तय कर पाना संभव नहीं है। हालांकि, अन्योन्य-राष्ट्रीय तथा अन्योन्य-सांस्क तिक प ष्ठभूमियों के हमारे अनुभव के आधार पर, मोटे तौर पर दिशा-निर्देशों के रूप में हम कुछ सिद्धान्त निश्चित कर सकते हैं। इनके अन्तर्गत, लोक-नीति तथा राजनैतिक दिशा व नियंत्रण की सर्वोच्चता, संगठन तथा प्रबंधन की एकता, उद्देश्यों, कार्यों तथा स्त्रोतों के बीच अनुरूपता, स्थायित्व, सरलता, संतुलन तथा लचीलापन, इत्यादि शामिल हैं भारत में वित्तीय प्रशासन ई.पू. चौथी सदी तक एक विकसित अवस्था तक पहुंच गया था। भारत के राजकोषीय इतिहास में इतना कुछ है कि हम उस पर सहज ही गर्व कर सकते हैं वित्तीय प्रशासन की आधुनिक प्रणाली को स्थापित करने की शुरूआत ब्रिटिश काल के दौरान हुई। 1765 से 1858 के बीच में वित्तीय प्रशासन की एक स्वस्थ संरचना निर्मित करने के अनेक उपाय किए। 1919 तक हमारे पास खासी विकसित वित्त-व्यवस्था तथा प्रक्रियाएं विकसित हो गई थीं। देश के वित्तीय इतिहास में जनतंत्रीकरण तथा विकासात्मक रूझान मील का पत्थर बन गए। भुगतान संतुलन की प्रतिकूल स्थिति तथा तेजी से बढ़ती मुद्रा-स्फीति के चलते सरकार को 1919 में अत्यंत मूलभूत कदम उठाने पड़े। इनके अंतर्गत, राजकोषीय घाटे पर नियंत्रण नौकरशाही नियंत्रण में कटौती, स्त्रोत जुटाने के जटिल विकल्प, सार्वजनिक क्षेत्र पर जोर में कमी तथा परिचायक नियोजन आदि शामिल है। इस बात की संभावना तथा आशा है कि बाजार-अर्थव्यवस्था की दिशा में चलने तथा विश्व-अर्थव्यवस्था के साथ एकता स्थापित करने से शायद आर्थिक सम द्धि के एक युग का सूत्रपात हो सकता है। हालांकि गंभीर आशंकाएं भी मौजूद है। मूल्यों को पीछे लाने में सरकार की अक्षमता ऐसी ही चिन्ता का विषय है। अनुकूल परिणाम सामने आना शुरू होने के लिए दो से तीन वर्ष तक इन्तजार करना होगा।

अध्याय - 2

वित्त प्रशासन : अर्थ प्रकृति एवं कार्यक्षेत्र

(Financial Administration : Meaning, Nature and Scope)

कोई भी सरकार धन के बिना किसी भी कार्य को सम्पन्न नहीं कर सकती। वित्त सरकार के जीवन-रक्त (Life-blood) के सद श होता है। वास्तव में बात यह है कि वित्त प्रशासन को प थक नहीं किया जा सकता। बिना वित्त के कोई भी सरकार कार्य नहीं कर सकती ठीक उसी प्रकार जैसे कि बिना पैट्रोल के मोटरकार नहीं चल सकती। वित्त प्रशासकीय मशीनरी का ईंधन है। प्रशासकीय क्रिया की सीमा का निर्धारण उपलब्ध वित्तीय साधनों के द्वारा ही किया जाता है। जितना अधिक वित्त उपलब्ध होता है उतनी ही अधिक प्रशासकीय क्रियायें सम्पन्न की जाती हैं। वित्त प्रशासन इतना सार्वलौकिक रूप में व्याप्त हो गया है जिस प्रकार कि वातावरण (Atmosphere) में ऑक्सीजन वायु। जब सरकार अपनी योजना के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का निर्धारण करती है उस समय उसके लिये योजना की लागत तथा आय के स्त्रोतों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है।

एक संगठित राज्य की तुलना उस बड़े कारखाने से की जा सकती है जिसमें विभिन्न प्रकार की मशीनें अनेक प्रक्रियाओं (Processes) में कार्यरत रहती हैं। प्रत्येक कारखाने का अपना एक इन्जन-घर होता है जिसमें कि प्रधान चालक, वाष्प अथवा बिजली का इन्जन रखा होता है जो अन्य सब मशीनों को शक्ति प्रदान करता है। इसी प्रकार राज्य में भी एक इन्जन-घर (Engine-house) होता है। यह इन्जन-घर वित्त-विभाग (Finance Department) या राजकोष (Treasury) होता है और उसमें मुख्य चालक, वित्तीय इन्जन रखा होता है जो सरकार के सब प्रशासकीय यन्त्रों को चालू रखता है और जिस प्रकार वाष्प-इन्जन कोयले को शक्ति (Power) में बदल देता है। उसी प्रकार यह वित्तीय इन्जन राजस्व को लोक सेवाओं में परिवर्तित कर देता है। सरकार की क्रियाओं में चूंकि दिन प्रतिदिन व द्धि हो रही है और सरकार उन पर भारी धनराशियाँ व्यय करती है अतः वर्तमान समय में सरकार की अकुशल तथा अपव्ययी वित्तीय कार्यवाहियों को सहन नहीं किया जा सकता। अतः वित्तीय प्रशासन कुशल तथा प्रवीण होना चाहिये और उसे इस प्रकार कार्य करना चाहिए कि जिससे धन का जरा भी अपव्यय न हो।

अर्थ

(Meaning)

'वित्तीय प्रशासन' शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया जाता है। इसमें वे सब प्रक्रियायें सम्मिलित

की जाती हैं जो कि निम्न कार्यों को सम्पन्न करने में उत्पन्न होती हैः "सरकारी धन के संग्रह, बजट-निर्माण, विनियोजन तथा व्यय करने में, आय तथा व्यय, और प्राप्तियों एवं संवितरणों का लेखा-परीक्षण (Audit) करने में परिसम्पत्तियों (Assets) तथा देयताओं (Liabilities) और सरकार के वित्तीय सौदों का हिसाब-किताब रखने में और आमदनियों व खर्चों, प्राप्तियों व संवितरणों तथा निधियों (Funds) व विनियोजनों (Appropriations) की दशा के संबंध में प्रतिवेदन-लेखक (Reporting) में।"

वित्त के बिना सरकार अपने उद्देश्य में पूर्णतः सफल नहीं हो सकती। प्रशासन के लिये वित्त की इतनी अधिक महत्ता होने के कारण वित्त के प्रशासन का अध्ययन भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गया है। जो सरकार वित्तीय प्रशासन की एक सन्तोषजनक व्यवस्था का निर्माण कर लेती है वह अपने कार्यों का प्रबन्ध कुशलता के साथ करने की दिशा में काफी आगे बढ़ जाती है। इस प्रकार "वित्तीय प्रशासन, जोकि एक सी व्यवस्था तथा रीतियों का निर्माण करता है जिनके द्वारा लोक सेवाओं के संचालन के लिये धन प्राप्त किया जाता है, व्यय किया जाता है और उसका लेखा रखा जाता है, आधुनिक सरकार का हृदय माना जाता है।"

वित्तीय प्रशासन एक ऐसी गतिशील प्रक्रिया (Process) है जो कि निम्नलिखित संक्रियाओं (Operations) की एक सतत श्रंखला का निर्माण करती है -

(1) आय तथा व्यय की आवश्यकताओं के अनुमान लगाना-अर्थात् 'बजट का बनाना' (Preparation of the Budget)।

(2) इन अनुदानों के लिए व्यवस्थापिका (Legislature) की अनुमति प्राप्त करना- अर्थात् 'बजट की विधायी अनुमति' (Legislative Approval of the Budget)।

(3) आय तथा व्यय की क्रियाओं को कार्यान्वित करना- अथवा 'बजट को कार्यान्वित करना' (Execution of the Budget)।

(4) वित्तीय व्यवस्थाओं का राजकोषीय प्रबंन्धन (Treasury Management of the Finance)।

(5) इन संक्रियाओं की विधायी उत्तरदायिता (Legislative Accountability) अर्थात् समुचित रूप से हिसाब-किताब रखना और उस हिसाब-किताब का परीक्षण करना।

वित्तीय प्रशासन के ऊपर बताई गई प्रक्रियायें सम्मिलित हैं। ये वित्तीय क्रियायें निम्नलिखित अभिकरणों (Agencies) द्वारा सम्पन्न की जाती हैं-

(1) व्यवस्थापिका अथवा विधान-मण्डल (The Legislature),

(2) सरकार की कार्यपालिका शाखा (The Executive),

(3) राजकोष अथवा वित्त विभाग (Treasury and Finance Department),

(4) लेखा-परीक्षण विभाग (Audit Department),

वित्तीय प्रशासन का संचालन तथा नियन्त्रण इन्हीं अभिकरणों द्वारा किया जाता है।

वित्तीय प्रशासन की प्रकृति

वित्त प्रशासन की प्रक ति को लेकर दो भिन्न द ष्टिकोण हैः

i) परंपरागत द ष्टिकोण (Traditional View),

ii) आधुनिक द ष्टिकोण (Modern View),

i) परंपरागत द ष्टिकोण
(Traditioal View)

इस द ष्टिकोण को मानने वालों का विचार है कि वित्तीय प्रशासन उत्पत्ति, विनियोजन तथा वित्तीय संसाधनों की खोज से सम्पादित क्रियाओं का योग है जो लोक संगठनों को जीवित रखने तथा उनके विकास के लिए आवश्यक होता है। वे इस बात पर बल देते हैं कि किसी भी लोक प्रशासन में एक प्रशासनिक ढांचा होता है, जो धन की आवाजाही को व्यवस्थित करने के साथ-साथ इसे नियंत्रित और व्यवस्थित भी करता है। इस व्यवस्था के कारण इन कोषों का सही और उत्पादक उपयोग हो पाता है। व्यवस्थाओं के परिप्रेक्ष्य में इस द ष्टिकोण पर नजर डालने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह सहभागिता व्यवस्था का ही एक रूप है। लोक वित्तीय संगठनों को कुशल ढंग से चलाने के लिए वित्तीय सहायता देना वित्तीय प्रशासन का उत्तरदायित्व है। इसका कार्य है लोक संगठनों में समस्त वित्तीय क्रियाओं को नियोजित करना, कार्यक्रम बनाना, संगठन एवं निर्देश देना ताकि लोकनीति का उचित अनुपालन हो सके। इस व्यवस्था के भागीदारों को वित्तीय प्रबंधक समझा जाता है तथा वे वित्तीय प्रक ति के प्रबंन्धात्मक कार्यों को सम्पादित करते हैं। यह द ष्टिकोण लोक वित्त के विशेषज्ञ सेलिगमैन के द ष्टिकोण को दर्शाता है। सार्वजनिक वित्त के शुद्ध सिद्धांत की केन्द्रीय धारणा यह है कि सार्वजनिक वित्त को सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय एवं सार्वजनिक ऋण की समस्याओं को वस्तुनिष्ठ ढंग से सम्पादित करना एवं सत्तारूढ़ राजनैतिक दलों के द ष्टिकोण के संबंध में बताना चाहिए। वित्तीय प्रशासन के विशेषज्ञ जो इस द ष्टिकोण को मानते हैं वे मूल्य की तटस्थता में विश्वास रखते है। उदाहरण के लिए जेज गैस्टन कहते हैं कि वित्तीय प्रशासन सरकारी संगठनों का वह भाग है जो लोक निधि का संग्रह, सुरक्षा तथा आबंटन को दर्शाता है तो उसके विचार में यही द ष्टिकोण द ष्टिगोचर प्रतीत होता है।

ii) आधुनिक द ष्टिकोण
(Modern View)

आधुनिक द ष्टिकोण वित्तीय प्रशासन को सार्वजनिक निधि बढ़ाने तथा व्यय करने के साधन के बजाय लोक संगठनों की सम्पूर्ण प्रबन्धकीय प्रक्रिया का एक आवश्यक अंग मानता है। इसके अन्तर्गत लोक प्रशासन में सम्मिलित समस्त व्यक्तियों की समस्त क्रियाएं आती हैं। इसका कारण है कि लगभग प्रत्येक लोक अधिकारी निर्णय लेता है जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम वित्तीय पहलू से भी सम्बद्ध होता है। यह परम्परागत सिद्धांत के मूल्य तटस्थता के द ष्टिकोण को नकारता है। यह इसमें सार्वजनिक वित्त के तीन महत्वपूर्ण सिद्धांतों को शामिल करता है जैसे-सामाजिक आर्थिक सिद्धांत, जिसके अग्रदूत वैगनर, एजर्थ तथा पिगोड हैं। केनेसियन परिप्रेक्ष्य के प्राकार्यात्मक सिद्धांत तथा आधुनिक वित्त विशेषज्ञों के कार्यात्मक द ष्टिकोण। इनके द ष्टिकोण के अनुसार वित्त प्रशासन की निम्नलिखित भूमिकाएं हैं।

(क) **समानता लाने वाली भूमिका** – इस भूमिका के अन्तर्गत वित्त प्रशासन धन संबंधी असमानताओं को दूर करने का प्रयास करता है। राजकोषीय नीतियों के द्वारा आय को सम्पन्न से निर्धन को हस्तांतरित करने का प्रयास करता है।

(ख) **प्रकार्यत्मक भूमिका** – सामान्य परिस्थितियों में अर्थव्यवस्था स्वयं कार्य नहीं कर सकती है। इस भूमिका के अन्तर्गत वित्त प्रशासन कराधान सार्वजनिक व्यय तथा सार्वजनिक ऋण के द्वारा अर्थव्यवस्था के उचित कार्यान्वयन का प्रयास करता है।

(ग) **कार्यात्मक भूमिका** — इस भूमिका के अन्तर्गत वित्त प्रशासन उन नीतियों का अध्ययन करता है जो निवेश के तीव्र प्रवाह को आसान तथा तीव्रता से बढ़ने तथा राष्ट्रीय आय के विस्तार को बढ़ाने के लिए सही आबंटन करता है।

(घ) **स्थायित्व संबंधी भूमिका** – इस भूमिका के अन्तर्गत वित्त प्रशासन का उद्देश्य है राजकोषीय तथा वित्त नितियों द्वारा मूल्य स्तर एवं मुद्रास्फीति की प्रव त्ति में स्थायित्व को बनाए रखा जाए।

(ङ) **सहभागी भूमिका** – इस द ष्टिकोण के अनुसार वित्त प्रशासन समुदाय के सामाजिक कल्याण को बढ़ाने के उद्देश्य से राज्य को लोक तथा निजी उत्पादनकर्त्ता के रूप में लाने के लिए नीतियों का निर्धारण तथा क्रियान्वयन करता है। यह राज्य में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भागीदारी द्वारा आर्थिक विकास को बढ़ाने का प्रयास भी करता है।

इस प्रकार वित्त प्रशासन साध्य तथा साधन के मामले में विकल्प का ढांचा प्रदान करता है जो राज्य की प्रकृति, चरित्र तथा इसके वैचारिक मूल्यों के आधार को दर्शाता है। उदाहरण के लिए समाजवादी देशों में वित्त प्रशासन लोकतांत्रिक देशों से भिन्न होते हैं। इस प्रकार वित्त प्रशासन की आत्मा भिन्न सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में भिन्न होगी क्योंकि यह सामाजिक आर्थिक तथा राजनैतिक शक्तियों के सचालन के विशेष साधनों पर निर्भर करता है।

वित्तीय प्रशासन का कार्यक्षेत्र
(Scope of Financial Administration)

वित्त प्रशासन उन क्रियाओं से निर्मित है जिनका उद्देश्य सरकारी गतिविधियों को धन उपलब्ध करना तथा इस धन का वैध तथा कुशल उपयोग सुनिश्चित बनाना है। व्हाइट के अनुसार "राजस्व व्यवस्था में इसके मुख्य उप-खण्डों के रूप में, बजट का बनाना तथा इसके पश्चात् विनियोंग की औपचारिक क्रिया, व्यय का कार्यकारिणी द्वारा पर्यवेक्षण (बजट कार्यान्वयन), लेखा विधि तथा प्रतिवेदन प्रणाली पर नियन्त्रण, कोष की व्यवस्था, राजस्व एकत्रित करना तथा अंकेक्षण सम्मिलित है।" प्रशासन के प्रमुख वित्तीय क्षेत्रों की अभिव्यक्ति निम्न रूपों में की जा सकती है :

1. **बजट बनाना** (Budgeting) – यह वित्त प्रशासन का एक मुख्य यन्त्र है। बजट प्रणाली एक साधन है जिसके माध्यम से वित्त प्रशासन को मोटे तौर पर अभिव्यक्ति प्रदान की जाती है। इसलिए एक अच्छे वित्त प्रशासन की प्रणाली की विशेषताओं के संबंध में जो कुछ कहा गया है वह समूचे रूप से बजट प्रणाली पर भी लागू होता है। वास्तव में किसी देश की अर्थ-व्यवस्था उसकी सरकार की बजटीय क्रियाओं से बहुत अधिक प्रभावित होती है। सरकारी बजट बनाना इन मुख्य प्रक्रियाओं में से एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोक साधनों का नियेजन किया जाता है तथा उन पर नियन्त्रण किया जाता है। यह बजट के माध्यम से ही है कि सरकारी कार्यक्रमों को नागरिकों की सेवाओं में बढ़ते क्रम से प्रस्तुत किया जाता है जिससे उनका भौतिक तथा नैतिक स्तर उच्च होता है। सरकार अपना कार्य बजट की सहायता से तथा बजट द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर रह कर

ही करती है। बजट, सरकार के विशेष उपकरणों में शीर्ष स्थान रखता है जोकि राष्ट्र के मामलों के निर्देशन तथा नियन्त्रण के लिए प्रयुक्त किए जाते हैं।

बजट राजस्व उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया तथा वित्तीय एवम् राजस्व पर नियन्त्रण करने की क्रिया की शैली दोनों है। यह देश के वित्त प्रशासन का उत्तरदायित्व है कि बजट का संतुलन इस प्रकार प्रभावपूर्ण ढंग से करे कि आय तथा व्यय दोनों ही समान हों। बजट प्रणाली का वास्तविक महत्त्व इस बात में है कि किसी सरकार के वित्तीय मामलों को सुव्यस्थित विधि से प्रशासित किया जाए। इस प्रकार के मामलों का संचालन अनवरत क्रियाओं की श्रंखला में आबद्ध है जिसकी अनेक कड़ियाँ हैं। राजस्व तथा व्यय की आवश्यकताओं का अनुमान, राजस्व तथा विनियोग ऐक्ट, लेखा, अंकेक्षण तथा प्रतिवेदन कुछ निश्चित अवधि के लिए, जोकि प्रायः एक वर्ष होती है, सरकार को ठीक प्रकार से चलाने के लिए जो व्यय की आवश्यकता है। पहले उसका अनुमान लगाया जाता है तथा इसके साथ ही इस व्यय को करने के लिए धन प्राप्त करने की व्यवस्था की जाती है।

2. **बजट अधिनियम तथा कार्यान्वयन (Budget Enactment and Execution) –** बजट की तैयारी के बाद अर्थात् वार्षिक राजस्व तथा व्यय के विषय में अनुमान लगाने के उपरान्त इसे कानूनी स्वीकृति प्राप्त करनी होती है। सर्वप्रथम बजट कार्याकारिणी द्वारा स्वीकार किया जाता है जो इसे विधानसभा के समक्ष प्रस्तुत करती है ताकि इसे कानूनी दस्तावेज बनाया जा सके। कार्यकारी सरकार का प्रतिनिधित्व करता कोई व्यक्ति प्रायः वित्त मंत्री विधानमण्डल के सम्मुख बजट प्रस्तुत करता है। बजट के तैयार करने तथा इसके प्रस्तुत करने में कार्यकारिणी का केन्द्रीभूत दायित्व विधानमण्डल द्वारा बजट को अधिकृत करने में सुगमता प्रदान करता है तथा इस कार्य के पुनर्वलोकन तथा नीति संबंधी मनन पर ध्यान केन्द्रित करने के योग्य बनाता है। कार्यकारी सरकार द्वारा तैयार एवम् प्रस्तुत किए गए बजट का विधानसभा द्वारा पुनर्निरीक्षण एक मुख्य अवसर प्रदान करता है बल्कि यह एक अति महत्वपूर्ण अवसर होता है जबकि प्रशासनिक कृत्यों की विशेषता तथा गुणवत्ता का परीक्षण किया जा सकता है। इस प्रकार का परीक्षण एक संसदात्मक लोकतन्त्र में निहित होता है तथा प्रत्येक विधानसभा का एक रखवाले का दायित्व होता है।

बजट का कार्यान्वयन कार्यकारी सरकार का दायित्व है तथा इस प्रकार कार्यकारी सरकार में शक्तियों का विभाजन बजट के कार्यान्वयन की कार्य प्रणाली को निर्धारित करता है। बजट का कुशलतापूर्ण कार्यान्वयन इसलिए शक्तिशाली केन्द्रीय निर्देश तथा नियन्त्रण की पूर्ण कल्पना करता है। "यदि ऐसा नहीं किया जाता तो बजट बहुत सीमा तक उपने उद्देश्य की प्राप्ति में असफल होगा जोकि सरकारी वित्त में दोनों छोरों को मिलाने से संतुलन प्राप्त करना है।" बजट के कार्यान्वयन में सम्मिलित पद निम्नलिखित हैं-

(i) निधि को उचित रीति से एकत्रित करना (ii) एकत्रित निधि का उचित रक्षण तथा (iii) निधि का उचित बंटवारा। यह कार्यकारिणी का उत्तरदायित्व है कि वह राजस्व/कर तथा बिना कर आय एकत्रित करने के लिए समुचित तन्त्र तथा कार्य प्रणाली के नियमों का निर्माण करे। संचित किए गए धन की सम्भाल खजानों (राजकोषों) का उत्तरायित्व है। अनेक देशों में एक अथवा दूसरे रूप में राजकोषों का जाल-सा बिछा हुआ है। संघीय, प्रादेशिक अथवा स्थानीय सरकार से संबंधित लेन-देन, धन की प्राप्ति तथा वितरण राजकोषों अथवा उनकी शाखाओं में प्रतिदिन होता रहता है। राजकोषों तथा बैंको के मध्य बड़ी

निकटता का समन्वय होता रहता है। कोष के वितरण के लिए प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर अनेक अधिकारियों को प्राधिकार सौंपे जाने चाहिएँ जो राजकोषों से धन निकलवा सकें और जिन्हें निन्दनीय अवहेलना के लिए जब कोई हानि हो जाए तो दोषी ठहराया जा सके। यह राजकोषीय प्रबंध का दायित्व है कि वह इस बात को निश्चित बनाए कि अदायगी अधिकृत व्यक्ति को की जा रही है तथा कोष का पूर्ण लेखा रखे।

3. **कर-प्रशासन (Tax Administration)** — एक समय ऐसा था जब कराधान को एक बुराई समझा जाता था, अब यह एक सामाजिक आवश्यकता है। राज्य की प्रकृति तथा गतिविधियों में परिवर्तन के कारण तथा कल्याणकारी राज्य की अवधारणा के उत्पन्न हो जाने के कारण, लोगों को सेवाएँ उपलब्ध करवाने के लिए उनकी सदा बढ़ रही मांगों की पूर्ति के लिए तथा आधुनिक राष्ट्र राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु कराधान अपरिहार्य हो गया है। तथापि केवल कर लगाना ही यथेष्ट नहीं है, वास्तविक बोझ तो इसके एकत्र करने पर पड़ता है। प्रत्येक समाज में कर चोरी तथा कर न देने की समस्या उत्पन्न हो सकती है। इसके अतिरिक्त अन्य समस्याएँ भी उत्पन्न हो सकती है; जैसा कि कर नियमों में जटिलता; लोगों के सहयोग में कमी; आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक समस्याएं, कर अधिकारियों का द ष्टिकोण; कराधान प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता इत्यादि। इसके लिए प्रशिक्षित, दक्ष तथा ईमानदार पदाधिकारियों के एक विशाल कर प्रशासन तन्त्र की आवश्यकता है। इसके साथ ही बहुत से देशों में परीक्षण अथवा सतर्कता के लिए प थक् संगठन हैं। कर-प्रशासन उस तन्त्र के एक भाग के रूप में कार्य करता है जोकि राजस्व नीति तथा वार्षिक बजटों के कार्यान्वयन की दिशा में कार्य करता है।

4. **लोक लेखों का प्रतिपादन (Maintaining Public Account)** — वित्तीय प्रशासन का एक महत्वपूर्ण पक्ष सरकारी लेखों को जारी रखना है। विभिन्न प्रकार के संगठन ऐसे हैं जो सरकारी वित्तीय क्रियाओं को जारी रखने में रूचि रखते हैं यानि कि करदाता, विधानसभा तथा निदेशक अधिकारी। करदाता सरकार को उत्तरदायी ठहराने के रुचि रखता हैं। विधानमण्डल की आंशिक रुचि उत्तरदायित्व लागू करने में होती है तथा आंशिक रुचि भविष्य की नीति निर्माण के लिए सूचना एकत्रित करने में होती है। निर्देशक अधिकारी अधीक्षण तथा नियन्त्रण की आवश्यकता से प्रभावित होते है। इन सब तथ्यों को द ष्टि में रखते हुए सरकार को लेखों की तैयार करनी होती है तथा उनका प्रतिपादन करना होता है। सरकारी लेखों के मुख्य प्रकार हैं- नियन्त्रण लेखे (Control Accounts), मर्यादा लेखे (Propriety Accounts), सम्पूरक विस्त त लेखे (Supplementary Detailed Accounts)।

नियन्त्रण लेखे मुख्य रूप से इसलिए रखे जाते हैं कि आन्तरिक प्रशासन को सुविधा रहे। जिस अधिकारी को कर एकत्रित करने, अभिरक्षा तथा वितरण का भार सौंपा गया उसकी ओर से पूर्ण निष्ठा होनी आवश्यक है तथा कर लगाते समय, एकत्र करते समय अथवा कोष को व्यय करते समय सम्पूर्ण नियमों तथा उपबंधों का कठोरता से पालन करना चाहिए। इसके लिए नियन्त्रण लेखों की आवश्यकता है। नियन्त्रण लेखे विधानमण्डल अथवा जनता के लिए लाभदायक नहीं होते जोकि सरकारी लेखा विधि में रुचि लेने वाले पक्ष होते हैं। इस आशय के लिए मर्यादा लेखे (Propriety Accounts) तैयार किए जाते हैं। इस प्रकार के लेखे में केवल जमा लेखा (Credit Account) तथा नामे लेखा (Debit Account) तथा वाउचर (Voucher) का ही प्रतिपादन नहीं होता किन्तु यह दर्शाने के लिए कि जो व्यय किया गया है वह विधानमण्डल की इच्छानुसार हुआ है तथा इससे संबंद्ध अधिकारी का कोई प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष अपना निहित स्वार्थ न था।

इसके अतिरिक्त विस्त त लेखा, सरकार के देयादेय; आय तथा व्यय अनेक द ष्टिकोण के लिहाज से तैयार किया जाना चाहिए। लेखा विधि (Accounting) सरकारी एजेन्सियों की एक रोजमर्रा क्रिया है किन्तु है यह अति महत्त्वपूर्ण है, जैसा कि संयुक्त राष्ट्र के प्रतिवेदन के अनुसार सरकारी लेखे बजट बनाने तथा अपनाने की प्रक्रिया को सरल बनाने में सहायक होने चाहिए। उन्हें प्रोग्राम के नियोजन, प्रशासन तथा नियन्त्रण के लाभप्रद उपकरण होना चाहिए तथा साथ ही सरकार के आर्थिक कार्यक्रम के निर्माण करने तथा मूल्यांकन करने के लिए आवश्यक सूचना को व्यक्त करना चाहिए।

5. **अंकेक्षण (Audit)** – किसी भी वित्तीय प्रशासन का यह एक अभिन्न अंग है। लोक वित्त के संसदीय नियन्त्रण का यह एक अपरिहार्य भाग है। यह लेखों के स्वतन्त्र परीक्षण से संबंधित है अथवा वित्तीय स्थिति के विवरण की सत्यता तथा किसी संगठन में सम्पूर्ण वित्तीय लेन-देन की जांच से संबंधित है। चार्ल्स वर्थ के अनुसार, "अंकेक्षण का अर्थ वह प्रक्रिया है, जिससे यह जानकारी प्राप्त की जाती है" कि प्रशासन ने धन का उपयोग वैधानिक निर्देशों के अनुसार किया है जिसके द्वारा धन विनियोजित किया गया था।" अंकेक्षण के महत्त्व को निम्नलिखित शब्दों में भी विस्तार से कहा गया है- अंकेक्षण, न्यायपालिका, कार्यपालिका तथा विधानपलिका के समान लोकतन्त्र का एक महत्त्वपूर्ण घटक है। इसका मूलभूत प्रयोजन इस बात को सुनिश्चित बनाना है कि सरकारी कोष का व्यय करते समय, प्रत्येक प्रकार की वित्तीय परम्परा का पालन किया गया है कि नियम तथा उपबन्ध, जोकि व्यय से संबंधित है उनका ध्यान रखा गया है, कि व्यय उसी मद पर किया गया है जिसके लिए संसद् ने इसका विनियोजन किया था। अंकेक्षण कार्यकारिणी तथा संसद के मध्य एक महत्पूर्ण कड़ी उपलब्ध करता है तथा उस सीमा तक क्रियाओं की व्याख्या करता है जहां तक कि पूर्वोक्त की निम्न पर वित्तीय वहन शक्ति होती है।" अंकेक्षण की चार स्थितियाँ है -

   (i) **विनियोजित अंकेक्षण (Appropriation Audit)** – सरकार लेखों से संबंधित यह प्राथमिक तथा परम्परागत अंकेक्षण का कार्य है। इसका उद्देश्य इस बात की जानकारी प्राप्त करना है कि जो धन सरकार द्वारा व्यय किया गया है क्या वह उन्हीं सीमाओं के भीतर किया गया है जो संसद् ने अनुदान तथा विनियोग करते समय निर्धारित की थी।

   (ii) **नियामक अंकेक्षण (Regulatory Audit)** – यह इस बात से संबंधित है कि सम्पूर्ण नियमों तथा अधिनियमों का पालन किया गया है अथवा नहीं।

   (iii) **मर्यादा अंकेक्षण (Propriety Audit)** – इसे उच्चतर अंकेक्षण भी कहा जाता है। यह हाल ही की उपज है। यह व्यय की औपचारिकता से आगे इसकी "बुद्धिमत्ता" (Wisdom), निष्ठा (Faithfulness) तथा आर्थिकता (Economy)" का ध्यान रखता है जोकि अंकेक्षण के वास्तविक उद्देश्यों से अधिक नहीं तो उसके समकक्ष तो अवश्य है।

   (iv) **कुशल अंकेक्षण (Efficiency Audit)** – यह अन्य प्रकार के संवीक्षण से परे अंकेक्षण का विस्तार है जोकि अंकेक्षण में लगी एजेंसी अथवा प्राधिकरण की कुशलता की परीक्षा करता है। इस प्रकार का अंकेक्षण हाल ही की उपज है तथा इसके महत्त्व तथा निहितार्थों पर अभी वाद-विवाद, विश्लेषण तथा इसको परिभाषित किया जा रहा है।

अंकेक्षण भी एक प्रतिदिन की क्रिया हैं; जहाँ तक नियामक तथा मर्यादित अंकेक्षण का संबंध है, यह प्रतिदिन की वित्तीय कार्रवाई तथा लेखों की तैयारी के साथ घटित होता है। इसलिए प्रत्येक राज्य में अंकेक्षण का एक समानान्तर तन्त्र स्थापित किया जाता है। यह केवल स्वतत्र अंकेक्षण की संस्था द्वारा ही संभव बनाया जा सकता है कि लोक व्यय पर संसद् का प्रभावी नियन्त्रण हो सके तथा इस बात को सुनिश्चित बनाया जा सके कि शेष का उचित व्यय किया गया है जिसमें मितव्ययिता तथा कुशलता का उचित ध्यान भी रखा गया है।

उपर्युक्त विचार-विमर्श किए गए वित्तीय प्रशासन के क्षेत्रों के अतिरिक्त एक अन्य महत्वपूर्ण तथा विषय क्षेत्र है संघ- राज्यीय वित्तीय संबंध एक संघ में संघीय सरकार को ऐसे कार्य सौंपे जाते हैं जोकि सम्पूर्ण देश से संबंधित होते हैं। प्रायः समस्त संघो में सुरक्षा, विदेशी मामले, संचार, रेल विभाग आदि केन्द्रीय विषय होते हैं। वे समस्त कार्य, जो राज्य को प्रभावित करते हैं तथा वे कार्य जिनमें बड़े स्तर पर अन्तः राज्यीय समन्वय की आवश्यकता है, वे संघीय सरकार के पास होते हैं। प्रादेशिक अथवा राज्य सरकार को वही मामले सौंपे जाते हैं जोकि स्थानीय अथवा मूलभूत विशेषता के होते हैं इसके साथ ही संघ सरकार तथा राज्यों मे मध्य साधनों के विभाजन की व्यवस्था भी होनी चाहिए तथापि यह एक सरल कार्य नहीं है। राज्यों के कार्य कम होते हैं तथा कमोवेश स्थानीय प्रकृति के होते हैं किन्तु राज्यों की संघ सरकार पर अधिक से अधिक साधनों के निर्धारण की माग बढ़ती ही रहती है। इस प्रकार किसी देश के वित्तीय प्रशासन में वित्तीय साधनों का विभान तथा केन्द्र एवम् राज्यों में समन्वय एक जटिल क्षेत्र होता है।

वित्तीय प्रशासन के उद्देश्य एवं महत्त्व

वित्तीय प्रशासन की सफलता सरकार की राजस्व नीति को इसकी सही भावना तथा निर्धारित अवधि एवम् साधनो में पूर्ण करने में निहित है। इसे इन सीमाओं के अन्दर रह कर, किसी प्रकार की हानि से बचा कर, दायित्व निश्चित कर लक्ष्यों को प्राप्त करना होता है। वित्तीय प्रशासन के इन कार्यों का विस्त त वर्णन निम्नानुसार किया जा सकता है -

(1) वित्तीय प्रशासन का प्रथम व मूलभूत कार्य राजस्व नीति को कार्यान्वित करना होता है। अन्य नीतियों की भांति राजस्व नीति का निर्धारण भी राजनीतिक कार्यपालिका द्वारा किया जाता है किन्तु साथ ही यह कार्यकारिणी का ही दायित्व है कि वह अपनी स्थिति तथा कार्यपालिका की विशिष्टता के कारण नीति निर्धारण में सहायता करे। जहाँ तक कार्यान्वयन का संबंध हैं, यह प्रशासन का मूलभूत कर्तव्य है तथापि कुछ लेखकों के अनुसार, राजस्व नीति का कार्य क्षेत्र वित्तीय प्रशासन के अधिकार क्षेत्र से बाहर है तथा इसमें एक प्रकार के प्रश्न जुड़े है जोकि अर्थशस्त्रियों की व त्ति से संबंधित हैं।

(2) वित्तीय प्रशासन का एक और आधारभूत कार्य वित्तीय नियंत्रण से संबंधित है। इस मामलें में वित्तीय प्रशासन वित्तीय रखवाले का कार्य निभाता है। यह इस बात को सुनिश्चित बनाता है कि उन वित्तीय साधनों का सही उपयोग हो जो कि समस्त प्रशासनिक अभिकरणों को निर्धारित किए गए हैं।

(3) वित्तीय प्रशासन में जिम्मेदारी को बड़ा महत्त्व प्राप्त है क्योंकि प्रथम तो वह, जिसके पास वित्त का नियन्त्रण होता है, उसी का बोलबाला होता है तथा दूसरे लोकतन्त्र की यह आवश्यकता है कि उसके अफसर न केवल इमानदारी से कार्य करें अपितु ऐसा दिखाई दे कि उन्होंने इमानदारी से अपना दायित्व पूर्ण किया है। प्राचीन भारत के विख्यात राजनेता

कौटिल्य का कथन ह, "जैसा कि यदि किसी की जिह्वा की नोक पर मधु पड़ा हो तो यह असम्भव है कि वह उसका स्वाद न ले वैसे ही सरकारी कर्मचारियों के लिए यह असम्भव है कि जो धन उनके हाथों से होकर जाता है उसका आनन्द वे न भोंगें।" लोकतन्त्र में सब प्रकार के यान्त्रिक तथा मानवीय साधनों का उपयोग करना होता है ताकि इसे अपने कर्मचारियों की इस अतिसंवेदनशीलता से लोक सम्पत्ति (धन) की रक्षा की जा सके।

(4) वित्तीय जिम्मेवारी न केवल संविधि के तथा अन्य कार्यकारिणी तथा विभागीय नियमों तथा कार्यप्रणाली के अनुरूप होनी चाहिए अपितु अन्य सामान्य "बुद्धिमत्ता, स्वामीभक्ति तथा आर्थिकता" के सिद्धांतों के अनुरूप भी होनी चाहिए। अतः लोक प्रशासन में जिम्मेदारी केवल पारस्परिक उपकरणों जैसे बन्धक (bonding), हिसाब-किताब (Book keeping), लेखा विधि, लेखा विधि (accounting) तथा प्रतिवेदन (reporting) से ही नहीं लाई जा सकती। यह "परिरक्षा तथा प्रबंधनकर्त्ता से आगे जाता है तथा व्यवस्था के सक्रिय नीति निर्धारण गुणों की सहायता प्राप्त करना है।" इसलिए इसकी प्रभाविकता इस बात में नहीं है कि कुछ बाह्य तथा आन्तरिक नियन्त्रणों का विकास किया जाए अपितु एक एकीकृत तन्त्र का आविष्कार किया जाए जोकि सामान्य तन्त्र के सहयोग से कार्य की योजना को इस प्रकार तैयार करे ताकि वित्त का इस प्रकार नियन्त्रण किया जा सके कि निर्धारित समय की सीमा के अन्तर्गत कम धन तथा शक्ति का व्यय किए बिना योजना के लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके। इस प्रकार वित्तीय प्रशासन के मूल में एक सुद ढ़ वित्तीय व्यवस्था कार्यरत होती है। एक कल्याणकारी राज्य में यह केवल एक प्रशासन के नियन्त्रण के उपकरण के रूप में ही कार्य नहीं करता अपितु आर्थिक तथा सामाजिक गतिविधि के सशक्त केन्द्रों को धन के बहाव में नियन्त्रण का कार्य करता है। यह कार्यशील अभिकरणों की गतिविधियों में समन्वय करने तथा लोक गतिविधियों में प्राथमिकताओं के निर्धारण में भी साधन का कार्य करता है। राज्य को संतुलन में रखने के लिए सुगठित वित्तीय प्रणाली की आवश्यकता ही नहीं है अपितु देश के आर्थिक तथा सामाजिक विकास के लिए इसको गति, दिशा तथा ढांचे के निर्धारण की आवश्यकता भी है।

वित्तीय प्रशासन से संबंधित राजस्व व्यवस्था का एक अन्य कार्य भी है जोकि एक सक्रिय प्रक्रिया है जिसमें क्रियाओं की अनवरत कड़िंया जुड़ी हुई हैं जिनको कि इस प्रकार निर्दिष्ट किया जा सकता है।

(क) राजस्व तथा व्यय की आवश्यकताओं के अनुमानों के लिए तकनीकी रूप से कहे जाने वाले बजट की तैयारी' की आवश्यकता है।

(ख) इन अनुमानों के लिए वैधानिक स्वीकृति प्राप्त करना जिन्हें तकनीकी रूप से "बजट का वैधानीकरण" कहा जाता है।

(ग) राजस्व तथा 'व्यय क्रियाओं' का कार्यान्वयन जिसे 'बजट का कार्यान्वयन' कहा जाता है।

(घ) इन प्रक्रियाओं की वैधानिक जिम्मेवारी जिसे अंकेक्षण कहा जाता है।

व्हाइट के अनुसार, "राजस्व व्यवस्था में इसके मुख्य उप-खण्डों के रूप में, बजट का बनाना तथा इसके पश्चात् विनियोग की औपचारिक क्रिया, व्यय का कार्यकारिणी द्वारा पर्यवेक्षण (बजट कार्यान्वयन), लेखा विधि तथा प्रतिवेदन प्रणाली पर नियन्त्रण, कोष की व्यवस्था, राजस्व एकत्रित करना तथा अंकेक्षण, सम्मिलित है।"

एक युक्तियुक्त वित्तीय प्रशासन की प्रणाली से तात्पर्य है संस्था की एकता। सरकार की विभिन्न एजेन्सियों में जितनी अधिक एकता होगी, तथा कर्मचारियों के पदसोपान के दायित्व में जितना अधिक केन्द्रीकरण होगा, प्रशासन उतना ही कुशल होगा। इस केन्द्रीकरण का यह अर्थ नहीं है कि सब कुछ शीर्ष के कुछ लोगों द्वारा किया जाता है; विवरण अधीनस्थ अधिकारियों के विवेक पर छोड़ दिया जाना चाहिए। किन्तु इसका यह अर्थ अवश्य है कि विभिन्न अभिकरणों के कार्यों में समन्वय किया जाए तथा सरकार की किसी भी वित्तीय योजना में इसका सही मूल्यांकन किया जाना चाहिए। संसदात्मक लोकतन्त्र के ढांचे में, वित्तीय प्रशासन की प्रणाली की व्यवस्था तथा क्रियान्वयन इस भांति किया जाए कि विधान सभा की इच्छा की पूर्ति की प्राप्ति की जा सके जैसा कि विनियोग एक्ट तथा वित्तीय एक्ट के माध्यम से उस द्वारा व्यक्त की गई है। कार्यकारी सरकार को उन उद्देश्यों के लिए राजस्व एकत्रित करना चाहिए, धन ऋण रूप में प्राप्त करना चाहिए तथा व्यय करना चाहिए जिन्हें विधान सभा ने विशेष रूप से अभिव्यक्त किया है। कार्यकारी सरकार द्वारा इन वित्तीय कार्यों पर नियन्त्रण करने के लिए विधान सभा इन गतिविधियों का मूल्यांकन एक सांविधिक अंकेक्षण संस्था द्वारा करवाती है जोकि कार्यकारी सरकार के नियन्त्रण में नहीं होती।

आधुनिक युगों में वित्तीय प्रशासन की महत्ता के कारण
(Reasons for the Significance of Financial Administration in Modern Age)

डॉ॰ ह्वाइट के अनुसार, "प्रत्येक प्रशासनिक कृत्य अपनी वित्तीय विविक्षायें भी लिए होता है, या तो खजाने पर बोझ डालता है अथवा इसमें योगदान देता है। धन के व्यय के बिना कुछ भी उपलब्ध नहीं किया जा सकता, कम से कम उस कर्मचारी का वेतन अथवा उस पदाधिकारी को पारश्रमिक देना होता है जो कार्य करता हैं। उपलब्ध वित्तीय साधन समूचे रूप से अथवा इसके आंशिक भागों में प्रशासनिक गतिविधियों पर एक सीमा लगा देते हैं। इसलिए, वित्तीय प्रबन्ध प्रशासकों का प्रथम तथा अपरिहार्य दायित्व है।" आजकल वित्तीय प्रशासन बड़ा महत्त्वपूर्ण हो गया है क्योंकि इसका कारण मात्र है कि हमारी सरकार से मांगों की कोई सीमा नहीं है किन्तु उपलब्ध राशि की सीमा होती है। शान्ति काल में प्राथमिकताओं का निर्धारण करना जिन पर व्यय किया जा सके तथा धन की प्राप्ति, दोनों ही कदाचित कठिन कार्य हैं, विशेष कर उस समय जबकि घरेलू युद्ध जैसा कि निर्धनता के विरुद्ध चलाया जा रहा हो। शीघ्रता से आवश्यक परियोजनाओं का संचय होना, लोगों की बढ़ रही आशाओं के कारण पड़ रहा दबाव, व हद् योजनाओं तथा तत्काल परिणामों की इच्छा, इन सब का दबाव प्रशासन पर पड़ रहा होता है।

आधुनिक काल में वित्तीय प्रशासन ने और अधिक महत्ता प्राप्त कर ली है। इसके मुख्य कारणों की व्याख्या निम्नलिखित अनुच्छेद् में दी जा रही है :

प्रथम, एक कल्याणकारी राज की अवधारणा ने राज्य की सदा बढ़ रही गतिविधियों का श्रीगणेश कर दिया है। इसके परिणामस्वरूप लोक व्यय में असाधारण रूप से व द्धि हुई है तथा निष्कर्ष यह निकला कि राजस्व की भी आवश्यकता बढ़ गई प्राकृतिक रूप से इसके कारण राज्य की वित्तीय प्रबंध में जटिल प्रणाली आरम्भ हुई। इसलिए लोक प्रशासन के इस भाग को उन विशेषज्ञों द्वारा संचालित किया जाना चाहिए जोकि राज्यीय वित्त से संबंधित प्रशासकीय जटिलताओं, विवरणों के अम्बादों और पेचीदगियों से पार पा सकने में सक्षम हों।

दूसरे, भारत जैसे लोकतन्त्रीय ढांचे में, जिसमें राज्य के निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा राज्य के कार्यों

को चलाना होता है, वित्तीय प्रशासन का इस प्रकार अनुकूलन किया जाना चाहिए कि वह लोकतन्त्रीय संस्थाओं की आवश्यकताओं के अनुरूप हो सके। इसलिए इस प्रकार की लोकतन्त्रीय संस्थाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वित्तीय प्रशासन की कार्य प्रणाली सरल तथा सुव्यवस्थित होनी चाहिए ताकि यह सुगमतापूर्वक साधारण बुद्धि के नागरिक की समझ में आ सके तथा बोधगम्य हो। कम से कम इतना तो हो कि विषय का जहाँ तक संबंध है उसकी रूप रेखा समझ में आ जाए। एक वित्तीय प्रणाली को किस प्रकार से प्रतिपादित किया जा सके कि एक ओर तो कार्यक्षमता तथा इष्टसिद्धि को बनाया रखा जा सके तथा दूसरी ओर विभिन्न लोक तान्त्रिक संस्थाओं पर लोक नियन्त्रण को बनाए रखा जा सके। कार्य का समन्वय किस प्रकार से किया जाए कि कार्य को सामान्य रूप से बोधगम्य बनाया जा सके तथा इसकी आवश्यक तकनीकियों की बलि भी न दी जाए ताकि राज्य के राजस्व का अत्यन्त कुशलतापूर्वक तथा पूर्ण उपयोग किया जा सके। हाल ही मे यह लोक प्रशासन की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समस्या बन गई है।

तीसरे, प्रबंध कौशल में विस्मयकारी प्रगति के प्रभाव ने प्राकृतिक रूप से वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र तक अपना विस्तार कर लिया है। "विज्ञान व्यवस्था तथा सरलता को जन्म देता है, इसलिए वित्त में भी अधिक सरल तथा यौक्तिक कार्य प्रणाली की खोज जारी है। यह भी शंका उत्पन्न होती है कि लोग, जो कि उत्तरोतर बड़ी तीव्र गति से यंत्रों की ओर आकर्षित हो रहे हैं, इस प्रकार की वस्तु की इच्छा करते हैं जो स्वमेव कार्य करें। कोई भी सामाजिक विज्ञापन, यान्त्रिक विज्ञान के सटीकपन को प्राप्त नहीं कर सकता, किन्तु हम फिर भी एक ऐसे प्रशासन के लिए प्रयत्न कर सकते हैं जो कि अधिक सरल, अभिज्ञ तथा कुशल हो।" लोग जितना अधिक राज्य की जटिल क्रियाओं के तन्त्र को समझने का प्रयत्न करेंगे, राज्य के प्रशासन में उनकी उतनी ही अधिक रुचि उत्पन्न होगी तथा लोकतान्त्रिक संस्थाओं के विकास के लिए यह उतनी ही लाभदायक होगी।

इस प्रकार यह सरकारी गतिविधि की प्रकृति तथा कार्य क्षेत्र में परिवर्तन, विज्ञान तथा तकनॉलजी का प्रभाव, प्रशासन की विधियों तथा तकनीकों में प्रगति, बढ़ रहा लोकतन्त्रिक नियन्त्रण, बढ़ रही आशाएं तथा साधनों की कल्पना, ये कुछ मुख्य कारण है जिनसे वित्तीय प्रशासन ने आधुनिक समय में इतने महत्त्व को प्राप्त कर लिया है। ये महत्वपूर्ण समितियाँ ग्रेट ब्रिटेन, भारत तथा अधिकांश राष्ट्रमण्डलीय देशों में पाई जाती हैं, संयुक्त राज्य अमेरिका में नहीं।

उपर्युक्त सभी साधनों अथवा उपकरणों द्वारा सार्वजनिक धन के व्यय पर आवश्यक नियन्त्रण रखा जाता है। वित्तीय नियन्त्रण का अन्तिम उद्देश्य शासन को जागरूकता, ईमानदारी और मितव्ययिता के साथ संचालित करना होता है ताकि सरकार को जो जन धन कर दाताओं से प्राप्त हुआ है, उसका दुरूपयोग न हो सके।

वित्तीय प्रशासन के अभिकरण
(Agencies of Financial Administration)

वित्तीय प्रशासन का गठन देश-विशेष के अनुरूप न्यूनाधिक भिन्न हो सकता है तथापि लोकतान्त्रिक राज्यों में सामान्यतः निम्नलिखित साधनों अथवा अभिकरणों द्वारा वित्त संबंधी क्रियाएँ संपन्न की जाती हैं :

(1) **विधान-मण्डल अथवा व्यवस्थापिका** (The Legislature)

(2) **कार्यपालिका** (The Executive)

(3) **वित्त विभाग** (The Finance Department) **या राजकोष** (The Treasury)

(4) **लेखा परीक्षा अथवा जांच विभाग** (The Audit Department)

(5) **संसदीय समितियाँ** (Parliamentary Committees)

1. व्यवस्थापिका

(The Legislature)

प्रजातन्त्र राज्यों में राजस्व पर व्यवस्थापिका का अधिकार होता है। व्यवस्थापिका ही आय-व्यय की मदों को निर्धारित करती है। संसद की सत्ता इस सिद्धान्त पर आधारित है कि बिना प्रतिनिधित्व के कोई कर न लगाया जाए। वार्षिक बजट के माध्यम से सार्वजनिक धन का सरकारी क्रियाओं पर खर्च के लिए विनियोजन कर, करों की अनुमति देना करों की वर्तमान दरों में व द्धि करना, वास्तविक ऋण की व्यवस्था करना, आदि कार्य व्यवस्थापिका के ही हैं। अधिकांश लोकतन्त्रात्मक देशों में इन कार्यों का सम्पादन प्रायः निम्न सदन करता है जो कि एक निर्वाचित सदन होता है। उच्च सदन की वित्तीय शक्तियाँ विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न हैं। भारत की संसदीय पद्धति ब्रिटिश प्रणाली पर आधारित है। ब्रिटिश लोकसभा की भांति भारतीय लोकसभा भी वित्तीय संस्वीकृति तभी देती है जब धन के लिए माँगें उसके समक्ष बजट के रूप में प्रस्तुत की जाएं। लोकसभा की स्वीकृति के बना बजट पारित नहीं हो सकता है। राज्यसभा यदि बजट को पारित नहीं करे तो भी सरकार को त्यागपत्र नहीं देना पड़ता है। कार्यपालिका अनुदानों की मांगों और करारोपण के प्रस्तावों को संसद के सम्मुख प्रस्तुत करती है और संसद इस पर अपनी स्वीकृति प्रदान करती है। संसद को इनमें व द्धि करने का अधिकार नही होता, वह केवल कटौती कर सकती है।

2. कार्यपालिका

(The Executive)

वित्तीय प्रशासन का एक दूसरा मुख्य अभिकरण कार्यपालिका है जिसके द्वारा वित्तीय नीति का निर्धारण और वित्तीय मांगों का व्यवस्थापिका के सम्मुख प्रस्तुतीकरण होता है। बजट-निर्माण का संपूर्ण उत्तरदायित्व कार्यपालिका का होता है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद् 112 के अनुसार, "राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों के सम्मुख वित्तीय वर्ष के लिए सरकार की अनुमानित प्राप्तियों और व्यय का एक विवरण प्रस्तुत करता है।" राष्ट्रपति की पूर्वानुमति के बिना केन्द्रीय वित्तमंत्री संसद में बजट प्रस्तुत नहीं कर सकता है।

3. वित्त विभाग

(The Finance Department)

वित्तीय मामलों की देख-रेख करने वाला केन्द्रीय विभाग एक या एक से अधिक हो सकता है। यह विभाग विभिन्न प्रशासकीय मंत्रालयों के साथ विचार-विमर्श करके वार्षिक वित्त-विवरण तैयार करता है। बजट पर संसदीय अनुमति प्राप्त हो जाने पर वित्त मंत्रालय ही सरकार के संपूर्ण व्यय को नियन्त्रित करता है और यह देखता है कि प्रशासकीय मन्त्रालयों द्वारा सार्वजनिक व्यय में मितव्ययिता बरती जाए। वस्तुतः वित्तीय प्रशासन के सम्पूर्ण उत्तरदायित्व का निर्वाह वित्त मंत्रालय द्वारा किया जाता है। ग्रेट ब्रिटेन में यह दायित्व राजकोष पर और भारत तथा अधिकांश राष्ट्रमण्डलीय देशों के वित्त-मंत्रालय पर है। संयुक्त राज्य

अमेरिका में वित्तीय व्यवस्था का संचालन करने के लिए ऐसी कोई एकीकृत व्यवस्था नहीं है। वहाँ अनेक प थक विभाग और अभिकरण वित्तीय प्रशासन के विभिन्न पहलुओं का संचालन करते हैं।

4. लेखा-परीक्षा विभाग
(The Audit Department)

यह विभाग देखता है कि व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृत धन का व्यय व्यवस्थापिका के आदेशानुसार ही हुआ है या नहीं। लेखा परीक्षा विभाग कार्यपालिका के अधीन न होकर एक स्वतन्त्र निकाय होता है। धन व्यय हो चुकने के उपरान्त लेखा परीक्षा द्वारा संपूर्ण व्यय पर 'अन्वेषी प्रकाश' डाला जाता है अर्थात् उसकी बारीकी से जांच की जाती है ताकि व्यय की वैधता और औचित्य का निश्चय हो जाए। भारत में 1973 से ही लेखा परीक्षा की स्वतन्त्रता सामान्य रूप से मान्यता प्राप्त कर चुकी है अैर वर्तमान संविधान के अनुच्छेद् 148 से 151 लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक के कार्यों एवं स्थिति पर प्रकाश डालते हैं और उसे केवल संसद के समक्ष उत्तरदायी ठहराते हैं इस विभाग का वित्त-प्रशासन में भारी महत्त्व है।

5. संसदीय समितियां
(Parliamentary Committees)

संसद की दो महत्त्वपूर्ण समितियाँ- अनुमान समिति (Estimates Committee) तथा सार्वजनिक लेखा समिति (Public Accounts Committee) देश के वित्तीय संगठन पर प्रभावशाली नियन्त्रण रखती हैं अनुमान समिति सरकार के विभागों के व्यय में मितव्ययता लाने के सुझाव देती है। सार्वजनिक लेखा समिति नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन को ध्यान में रखते हुए विनियोजन लेखा की जांच करती है और उनमें पाई जाने वाली वित्तीय अनियमितताओं की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करती है।

अध्याय - 3

आर्थिक नीतियां : मौद्रिक, वित्तीय एवं आयात निर्यात नीति

(Economic Policies : Monetary, Fiscal and Exim Policy

मौद्रिक नीति
(Monetary Policy)

मौद्रिक नीति का संबध अर्थव्यवस्था में मुद्रा, साख और ब्याज दर के नियमन हेतु प्रयुक्त किये जाने वाले प्रावधानों से है। मुद्रा एवं साख की मात्रा तथा ब्याज दर के स्तर अर्थव्यवस्था में कीमत, आय और उत्पादन स्तर को प्रभावित करते हैं। इनके संदर्भ में वांछित लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक होते है। मौद्रिक नीति की रूपरेखा निर्धारित करने और उसे क्रियान्वित करने का दायित्व केन्द्रीय बैंक का होता है बैंक दर, नकद आरक्षित अनुपात, वैधानिक तरलता अनुपात, खुले बाजार की क्रियायें, चयनात्मक साख नियंत्रण आदि मौद्रिक नीति के उपकरण हैं। इसके द्वारा केन्द्रीय बैंक मौद्रिक नियंत्रण करता है। मौद्रिक नियंत्रण व्यापारिक बैंकों के मौद्रिक अवशेष को प्रभावित करता है। व्यापारिक बैंकों के अवशेष अर्थव्यवस्था में मुद्रा और साख की मात्रा के प्रमुख निर्धारक तत्व होते हैं तथा मुद्रा और साख की मात्रा अर्थव्यवस्था में उत्पादन, आय और कीमत स्तर को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार मौद्रिक नीति के उपकरणों द्वारा केन्द्रीय बैंक अर्थव्यवस्था में उत्पादन, आय और कीमत स्तर को प्रभावित कर सकता है। संकल्पनात्मक आधार पर मौद्रिक नीति का उद्देश्यों को प्राप्त करना है। इस अर्थ में मौद्रिक नीति अर्थव्यवस्था की सामान्य आर्थिक नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हैं। और उसकी अनुषंगी होती है।

भारतीय मौद्रिक नीति के अन्तर्गत भारतीय रिजर्व बैंक की मुद्रा, साख एवं ब्याज दर संबंधी गतिविधियाँ सम्मिलित की जाती हैं भारत की सामान्य आर्थिक नीति का उद्देश्य संव द्धि की उच्च दर और पूर्ण रोजगार का स्तर प्राप्त करना तथा कीमत स्थायित्व बनाये रखना है। इसके अनुरूप भारतीय मौद्रक नीति के दो प्रमुख उद्देश्य हैंः प्रथम, पर्याप्त मुद्रा पूर्ति करके तथा साख सुविधायें बढ़ाकर आर्थिक विकास को प्रोत्साहित करना और द्वितीय, अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी दशाओं को रोकने के लिए साख स्तर को नियंत्रित करना। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए भारतीय रिजर्व बैंक अपनी मौद्रिक नीति की संकल्पना के अन्तर्गत 'नियंत्रित मुद्रा विस्तार' की नीति अपना रहा है। इसकी क्रिया विधि में स्फीतिकारी दशाओं में मुद्रा पूर्ति को अत्याधिक

बढ़ने से रोकना और उत्पादन व द्धि को प्रोत्साहित करने के लिए साख प्रवाह को नियमित करना सम्मिलित रहा हैं।

भारतीय रिजर्व बैंक की 1935 में स्थापना के बाद से 1951 तक भारतीय मौद्रिक नीति लगभग निश्चेष्ट रही है। यह प्रव त्ति अन्य विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में भी रही है। वस्तुतः इस अवधि तक आर्थिक विकास के एक प्रमुख उपकरण के रूप में मौद्रिक नीति की उपादेयता सीमित मानी जाती रही है रिजर्व बैंक ने देश की आवश्यकताओं के अनुरूप नियोजन काल में मौद्रिक संसाधनों को समायोजित करने का प्रयास किया। 1951 से विकास योजनाओं के लिए अधिक मौद्रिक संसाधनों की आवश्यकता अनुभव की गयी। विनियोग की बढ़ती हुई माँग की पूर्ति के लिए रिजर्व बैंक ने मुद्रा व साख के विस्तार की नीति को अपनाया। इससे मौद्रिक साधनों और वास्तविक आय में असंतुलन हो गया। वास्तविक उत्पादन की तुलना में मौद्रिक संसाधनों का दबाव बढ़ता गया। विनियोग व द्धि ने अतिरिक्त क्रय शक्ति स जित किया। इससे लगातार कीमत व द्धि हुई और कीमत व द्धि की सम्भावना बनी रही। इस प्रव त्ति के प्रतिरोधक कार्यवाही के रूप में रिजर्व बैंक ने साख प्रवाह को नियंत्रित करने का प्रयास किया और मौद्रिक उपायों से जनता के पास अतिरिक्त क्रयशक्ति को कम करने का प्रयास किया। इस प्रकार भारतीय मौद्रिक नीति का उद्देश्य आर्थिक विकास के साथ-साथ स्थिरता लाना रहा है जिसे 'नियंत्रित मुद्रा और साख विस्तार की नीति' कहा जाता है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के आरम्भ में भारतीय अर्थव्यवस्था में स्फीतिक दबाव अधिक था। स्फीतिक दबाव के नियंत्रण हेतु योजना आरम्भ के समय ही नवम्बर, 1955 में बैंक दर 3 प्रतिशत से बढ़ाकर 3.5 प्रतिशत कर दिया गया। प्रथम योजना में मौद्रिक संसाधनों में अपेक्षाकृत कम व द्धि होने के कारण कीमत सुचकांक में 2.7 प्रतिशत प्रतिवर्ष की कमी हुई। प्रथम योजना काल में मौद्रिक संसाधनों (M3) में 3.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष व द्धि हुई, जबकि 1970-71 की स्थिर कीमतों पर राष्ट्रीय आय आय में 3.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष व द्धि हुई। इसी प्रकार प्रथम योजना में साख नियंत्रण की गुणात्मक अथवा चयनात्मक विधियों का भी प्रयोग नहीं किया गया। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रथम योजना की मौद्रिक नीति परम्परागत ढाँचे पर चलती रही। प्रथम योजना के अन्तिम वर्ष में कीमतें बढ़ने लगी थी। अतः द्वितीय योजना में स्फीतिकारी प्रव त्ति का भय प्रारम्भ से ही हो गया था। इसलिए भी कि द्वितीय योजना का आकार बड़ा था। यह अधिक महत्त्वाकांक्षी योजना थी और इसमें घाटे की वित्त व्यवस्था पर विशेष बल दिया गया था। भारी एवं मूल उद्योगों पर विनियोग अधिक होना था जिनकी परिपक्वता अवधि अधिक होती है। इसलिए द्वितीय योजना में 'नियंत्रित मुद्रा विस्तार' की नीति अपनायी गयी। 1956-57 में जब थोक कीमत सूचकांक 14 प्रतिशत बढ़ गये तो बैंक दर बढ़ाकर मई, 1957 में 4 प्रतिशत कर दिया गया। 1956 में रिजर्व बैंक को अधिकार दिया गया कि वह माँग देयताओं का आरक्षित अनुपात 5 प्रतिशत और 20 प्रतिशत के बीच तथा समय देयताओं का 2 प्रतिशत और 8 प्रतिशत के बीच कर सकती है। द्वितीय योजना में मौद्रिक साधनों में 8.2 प्रतिशत प्रतिवर्ष और स्थिर कीमतों पर राष्ट्रीय आय में 4.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष व द्धि हुई, जबकि कीमत स्तर की व द्धि 6.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि योजनाकाल में प्रथम दशक में मौद्रिक साधन और वास्तविक उत्पादन में लगभग समान व द्धि हुई।

तीसरी पंचवर्षीय योजना तीव्र स्फीतिकारी दशाओं और निराशाजनक वातावरण में आरम्भ हुई तथा परिस्थितियाँ प्रतिकूल बनी रहीं। 1962 में चीनी और 1965 में पाकिस्तानी आक्रमण के कारण सुरक्षा मद पर अत्याधिक सार्वजनिक व्यय किया गया, जिससे उस समय राजकीय व्यय बढ

गया। 1965-66 के सुखे ने अर्थव्यवस्था पर अत्याधिक अतिकूल दबाव डाला। इस कारण तीसरी योजना में साख सीमित रखने की नीति अपनायी गयी। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु तीसरी योजना में बैंक दर को तीन बार बढ़ाया गया। बैंक दर जनवरी, 1963 में बढ़ाकर 4.5 प्रतिशत, सितम्बर, 1954 में 5 प्रतिशत तथा फरवरी, 1966 में 6 प्रतिशत कर दी गयी। साख नियंत्रण की द ष्टि से रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया अधिनियम (संशोधित), 1962 के अनुसार नकद कोष में न्यूनतम मात्रा के प्रति भी परिवर्तन किया गया। उक्त अधिनियम के प्रभाविता तक प्रत्येक बैंक अपनी माँग देयता का 5 प्रतिशत और समय देयता का 2 प्रतिशत कोष रखता था। इस संशोधित अधिनियम नियम के अनुसार प्रत्येक बैंक को अपने समस्त देयता का 3 प्रतिशत भाग नकद कोष की न्यूनतम मात्रा के रूप में रखने को यह कहा गया और रिजर्व बैंक को अधिनियम के अनुसार प्रत्येक बैंक को अपने समस्त देयता का कर दिया गया कि वह इसे 15 प्रतिशत तक बढ़ा सकता है। इस अधिनियम के अनुसार प्रत्येक बैंक को अपने समस्त देयता का नियम ने तरलता की आवश्यकता को भी 20 प्रतिशत से बढ़ाकर 25 प्रतिशत कर दिया। मौद्रिक नीति के इन प्राविधानों के अनुसार प्रत्येक बैंक को अपने समस्त देयता का 3 प्रतिशत भाग नकद कोष की न्यूनतम पत्र के रूप में रखने को यह कहा गया और रिजर्व बैंक को और रिजर्व बैंक को अधिकार दिया दिया गया कि वह इसे 15 प्रतिशत तक बढ़ा सकता है। इस अधिनियम ने तरलता की अवश्यकता को भी 20 से बढ़ाकर 25 प्रतिशत कर दिया। मौद्रिक नीति के इन प्राविधानों के बाद भी योजनाकाल मे थोक कीमत सूचकांक में 5.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष की व द्धि हुई इस अविध मे मौद्रिक साधन (M3) में 9.1 प्रतिशत प्रतिवर्ष और राष्ट्रीय आय में केवल 2.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की व द्धि हुई। 1966-67 के सुखे ने अर्थव्यवस्था को पुनः संकट में ला दिया।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की अवधि मे भी मौद्रिक नीति का स्वरूप 'नियंत्रित मुद्रा विस्तार' का ही रहा है। चतुर्थ योजना में आर्थिक स्थिरता के साथ आर्थिक विकास का लक्ष्य रखा गया 1969 से 1970-1971 में उत्पादन स्तर मे महत्त्वपूर्ण व द्धि के कारण स्फीतिक दबाव शिथिल हुआ था। परन्तु इसके बाद स्फीतिक दबाव बढ़ने लगा था। चतुर्थ योजना के मौद्रिक नीति के प्रावधानों में जनवरी, 1971 में बैंक दर 5 प्रतिशत से बढ़ाकर 6 प्रतिशत और मई, 1973 में 7 प्रतिशत कर दिया गया। मई, 1973 में नकद कोष अनुपात (CRR) 3 प्रतिशत से बढ़ाकर 5 प्रतिशत और सितम्बर 1973 में 7 प्रतिशत कर दिया गया। इस अवधि में वैधानिक तरलता अनुपात (SIR) को भी प्रगतिशील बनाया गया। नवम्बर, 1972 तक इसे बढ़ाकर 30 प्रतिशत और दिसम्बर, 1973 तक 32 प्रतिशत कर दिया गया। इसी प्रकार न्यूनतम शुद्ध तरलता अनुपात अप्रैल, 1970 के 30 प्रतिशत से बढ़ाकर मार्च, 1973 तक 37 प्रतिशत और सितम्बर, 1973 में 40 प्रतिशत कर दिया गया है। कम आवश्यक कार्यों के लिए साख नियंत्रित करने और आवश्यक प्रयोजनों के लिए साख की व्यवस्था हेतु चतुर्थ योजना में गुणात्मक साख नियंत्रण की विधियाँ भी अपनायी गयी। चतुर्थ योजना में राष्ट्रीय आय में 3.4 प्रतिशत प्रतिवर्ष की व द्धि हुई, जबकि मौद्रिक संसाधन में 16.2 प्रतिशत और सामान्य थोक कीमत सूचकांक में 9.0 प्रतिशत प्रतिवर्ष व द्धि हुई।

पाँचवीं योजना का आरम्भ भी पिछली योजनाओं की भांति स्फीतिक दबाव के साथ हुआ। अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी परिस्थिति देखते हुए पाँचवीं योजना में रिजर्व बैंक ने साख स जन पर प्रतिबन्ध जारी रखने और मुद्रा विस्तार को नियंत्रित करने की दिशा में पुनः जोर दिया। माध्यम से माँग पर नियंत्रण, बचतों को प्रोत्साहन, उत्पादन व द्धि के प्रयास किये गये और तस्करी तथा संग्रह की प्रव त्ति पर रोक लगाने का प्रयास किया गया। मौद्रिक नीति के परिप्रेक्ष्य में योजनाकाल में राजकीय व्यय में कमी, महंगाई भत्ता को अवरुद्ध करना, लाभांश भुगतान

पर रोक, आयकर भुगतान करने वालों पर अनिवार्य जमा योजना लागू करना आदि सम्मिलित थे जुलाई, 1974 में बैंक 7 प्रतिशत से बढ़ाकर 9 प्रतिशत कर दिया गया। नकद कोष अनुपात जो दिसम्बर, 1974 में घटाकर 4 प्रतिशत किया गया था, सितम्बर और नवम्बर, 1967 में क्रमशः 6 प्रतिशत कर दिया गया। 14 जनवरी, 1977 को बैंकों से यह कहा गया कि वे अपनी समय और माँग देयताओं की शुद्ध व द्धि का 10 प्रतिशत अतिरिक्त भाग रिजर्व बैंक के पास रखें। परन्तु योजना काल में मौद्रिक साधनों में अत्यन्त तीव व द्धि हुई। 1974-75 से 1978-79 की अवधि में मौद्रिक साधन में 17.9 प्रतिशत प्रतिवर्ष व द्धि हुई जो उच्चतम सीमा तक मानी जा सकती है। इस अवधि में राष्ट्रीय आय में 5.3 प्रतिशत प्रतिशत प्रतिवर्ष और थोक कीमत सूचकां में 6.3 प्रतिशत व द्धि हुई।

1979-80 का सूखा अर्थव्यवस्था में कीमत स्थिरता लाने में अत्यन्त बाधक रहा है। इसलिए छठीं योजना में वस्तुओं और सेवाओं की समग्र माँग तथा समग्र पूर्ति के मध्य संतुलन बनाये रखने का प्रयास किया गया। 11जुलाई, 1981 को बैंक दर में 1 प्रतिशत की व द्धि कर इसे 9 प्रतिशत कर दिया गया । योजना काल में रिजर्व बैंक ने नकद कोष अनुपात दो किस्तों में 6 प्रतिशत से बढ़ाकर 9 प्रतिशत कर दिया गया । योजना काल में रिजर्व बैंक ने नकद कोष अनुपात दो किस्तों में 6 प्रतिशत से बढ़ाकर 9 प्रतिशत कर दिया गया इसी प्रकार वैधानिक तरलता अनुपात में भी परिवर्तन किया गया। परन्तु छठीं योजनाकाल में मौद्रिक साधनों में पाँचवी योजना की भाँति अत्यन्त तीव्र व द्धि हुई। इस योजना अवधि में मुद्रा पूर्ति में 16.9 प्रतिशत की वार्षिक व द्धि हुई। अप्रैल, 1980 में कुल मुद्रा पूर्ति 55358 करोड़ रुपये थी जो जून, 1985 में बढ़कर 100550 करोड़ रुपये हो गयी। इस कारण कीमतों में भी लगातार व द्धि होती रही। कठोर साख नीति अपनाने के बाद भी छठीं योजना में योक कीमत सूचकांक में 9.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष में व द्धि। इस अवधि में राष्ट्रीय आय में 5.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष की औसत दर से व द्धि हुई, जबकि 1979-80 में 55 प्रतिशत की कमी आयी थी। निम्नलिखित तालिका में योजना काल में मुद्रा पूर्ति, कीमत और राष्ट्रीय आय की व द्धि दरें प्रदर्शित की गयी हैं। तालिका से यह भी स्पष्ट है कि 1951-52 में सम्पूर्ण योजना की अवधि में शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद व द्धि की तुलना में मुद्रा पूर्ति में अधिक तीव्र दर से व द्धि हुई है। इस कारण अर्थ व्यवस्था में स्फीतिकारी प्रव त्तियों को प्रश्रय मिला।

तालिका - 3.1
मुद्रा और राष्ट्रीय उत्पाद में वार्षिक व द्धि

(प्रतिशत में)

अवधि	साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद 1980-81 की कीमतों पर	मुद्रा पूति
प्रथम योजना	3.6	3.4
द्वितीय योजना	3.9	8.2
त तीय योजना	2.3	9.1
चतुर्थ योजना	3.3	16.5
पाँचवीं योजना	4.9	17.0
वार्षिक योजना	–6.0	17.3

छठी योजना	5.4	16.9
सातवीं योजना	5.8	16.0
1990-92	2.5	14.9
आठवीं योजना	6.8	18.5

Source : Economic Survey 1997-98

भारत की आर्थिक, औद्योगिक और मौद्रिक नीति को अधिक उदार बनाया गया है। निजी क्षेत्र को आर्थिक विकास में अधिक योगदान कर सकने और अधिक उपयोगी बना सकने के अवसर दिये हैं। इसी क्रम में राष्ट्र की मौद्रिक व्यवस्था को अधिक समयोपयोगी बनाने के भी प्रयास किये गये हैं। भारतीय मुद्रा प्रणाली पर चक्रवर्ती समिति और मौद्रिक बाजारों पर कार्यकारी दल (वाघुल कार्यकारी दल) के सुझावों का ध्यान में रखकर रिजर्व बैंक ने मौद्रिक नीति के संबंध में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं।

व्यापारिक बैंकों की समस्त तरलता में अधिक तीव्र गति से व द्धि हुई। इसलिए तरलता के एक अंश को प्रगतिशील बनाने का प्रयास किया गया जिसके लिए नकद आरक्षित अनुपात, जो अप्रैल, 1984 से 9 प्रतिशत कर दिया गया था, को 28 फरवरी, 1987 से 9.5 प्रतिशत कर दिया गया। मुद्रा पूर्ति के अतिरिक्त व द्धि को नियंत्रित करने के लिए 24 अक्टूबर, 1987 से नकद आरक्षित अनुपात को पुनः बढ़ाया गया और इसे 10 प्रतिशत कर दिया गया। इसी द ष्टि से वैधानिक तरलता कोष अनुपात में भी परिवर्तन किया गया। 1985-86 में वैधानिक तरलता कोष अनुपात 36 प्रतिशत से बढ़ाकर 37 कर दिया गया। पुनः 25 अप्रैल, 1987 से वैधानिक तरलता कोष अनुपात बढ़ाकर 37.5 प्रतिशत कर दिया गया। तरलता को नियंत्रित करने की द ष्टि से ही जनवरी, 1988 से वैधानिक तरलता कोष अनुपात 38 प्रतिशत कर दिया है। व्यापारिक बैंकों की समस्त तरलता देखते हुए रिजर्व बैंक ने 30 जुलाई, 1988 से नकद आरक्षित अनुपात बढ़ाकर 11 प्रतिशत कर दिया है।

रिजर्व बैंक ने हाल के वर्षों में बैंको में जमा राशियों पर दी जाने वाली और उधार दी गयी राशि पर ली जाने वाली ब्याज दरों में अत्यन्त गैर-परम्परागत परिवर्तन किया है। अप्रैल, 1987 से 5 वर्ष या इससे अधिक समय अवधि की बैंक जमाओं पर ब्याज दर में कमी कर दी गयी दूसरी ओर मध्यकालीन और अल्पकालीन जमाओं पर ब्याज दर बढ़ायी गयी ताकि अल्पकालीन और मध्य कालीन बचतों को प्रोत्साहन मिले।

सावधि जमाओं पर दी जाने वाली ब्याज दर में परिवर्तन द्वारा रिजर्व बैंक ने बैंक जमा, पोस्ट आफिस जमा, राष्ट्रीय बचत पत्र और सार्वजनिक क्षेत्र के बांड पर दी जाने वाली ब्याज दरों के मध्य समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है। जमा राशि पर दी जाने वाली ब्याज दर की भाँति दिये गये ऋणों पर ली जाने वाली ब्याज दर में भी परिवर्तन किया गया है। एक अप्रैल, 1987 से दिये गये ऋणों पर ब्याज दर 17.5 प्रतिशत से घटाकर 16.5 प्रतिशत कर दिया गया है। निर्यात वस्तुओं के लिए दिए गए ऋणों को भी सार्थक बनाने के लिए ब्याज दर में परिवर्तन किया गया है। यह आशा की गयी है कि ब्याज दर के इन परिवर्तनों से विभिन्न प्रयोगों में विनियोजन की लागत घटेगी और उत्पादन क्रियाओं का प्रसार होगा तथा उनकी लाभदायकता बढेगी। जमा राशि पर ब्याज दर में परिवर्तन से, कम अवधि की जमाओं पर ब्याज दर बढ़ने से, व्यापारिक बैंक अधिक जमा आकर्षित कर सकेंगे।

मौद्रिक नीति को अधिक सकारात्मक बनाने के लिए और उसे आर्थिक सुधारों (Economic Reforms)

के अनुरूप बनाने के लिए 11 अक्टूबर, 1993 को नई मौद्रिक नीति घोषित की गयी। नई मौद्रिक नीति के अनुसार वैधानिक तरलता अनुपात में 2.5 प्रतिशत की कमी की गयी और इसे 37.25 प्रतिशत से घटाकर 34.75 प्रतिशत कर दिया गया वैधानिक तरलता में कमी के पूर्व बैंकों को अपनी जमा पूंजी का 37.25 प्रतिशत भाग (इसके पूर्व यह 38.5 प्रतिशत भाग था) रिजर्व बैंक के पास जमा रखना पड़ता था। नई मौद्रिक नीति के अनुसार वैधानिक तरलता अनुपात में 2.5 प्रतिशत कमी करने से बैंकों की व्यावसायिक पूँजी में व द्धि हो गई। यह अनुमान किया गया है कि वैधानिक तरलता अनुपात की इस कमी से बैंकों की व्यावसायिक पूँजी में 4150 करोड़ रुपये की व द्धि हुई है। इससे यह भी आशा की जा सकती है कि घाटे में चल रहे बैंक अपनी स्थिति में सुधार ला सकते हैं। नई मौद्रिक और ऋण नीति में दूसरा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन प्राथमिक क्षेत्रों के संदर्भ मे किया गया है। प्राथमिक क्षेत्र को दिये जाने वाले कर्ज की नीति में परिवर्तन किया गया है। इस नीति के पूर्व प्राथमिक क्षेत्र को मिलने वाले ऋण का 15 प्रतिशत भाग कृषि क्षेत्र के लिए था। इसमें प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकार के ऋण सम्मिलित थे। नई नीति के अनुसार यह प्रावधान किया गया है कि कृषि क्षेत्र को मिलने वाला परोक्ष ऋण बढ़ाया जाना चाहिऐ और तदनुसार कुल कृषि ऋण नियंत्रणों की समाप्ति घोषित की गयी।

राजकोषीय नीति
(Fiscal Policy)

राजकोषीय नीति का आशय सार्वजनिक आय तथा सार्वजनिक व्यय के स्तर एवं उनकी संरचना में परिवर्तन से है जिनका प्रयोग सरकार अर्थव्यवस्था की आर्थिक नीतियों के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए करती है। हाल के दशकों में समस्त सरकारों के कार्य क्षेत्र में व द्धि हुई है। इसलिए राजकोषीय नीति का महत्त्व भी बढ़ा है। अब विकसित अर्थव्यवस्थाओं में जहाँ राजकोषीय नीति संव द्धि दर को स्थिर बनाने का माध्यम है, वहीं विकासशील अर्थव्यवस्थाओं मे इसका दायित्व पूँजी निर्माण की दर भी बढ़ाना है बुद्धिमान राजकीय क्रियायें अपेक्षाकृत अधिक सार्वजनिक व्यय की अपेक्षा करती है। जिन्हें पूरा करने के लिए सरकार करारोपणक अतिरिक्त सार्वजनिक ऋण और हीनार्थ प्रबंधन का भी प्रयोग करती है। परिणामतः सार्वजनकि ऋण और हीनार्थ प्रबन्धन से संबंधित नीतियों का भी समावेश राजकोषीय नीति में होता है। यह कहा जा सकता है कि राजकोषीय नीति तथा इनसे संबंद्ध अन्य घटकों से है जिनकी सहायता से सरकार आर्थिक विकास हेतु सामान्य आर्थिक नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करती है। दूसरे शब्दों में राजकोषीय नीति का संबंध कार्यकलापों से है। सरल रूप में, राजकोषीय नीति का आशय सरकार की बजट संबंधी कार्यकलापों और उसकी प्रव त्तियों से है।

विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में अब आर्थिक विकास के प्रति मौद्रिक नीति की तुलना में राजकोषीय नीति को अधिक प्रभावी अस्त्र के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में बचत प्रव त्ति कम और उपभोग प्रव त्ति अधिक होती है। बचतों का अत्यन्त प्रमुख भाग संचय, स्वर्ण क्रय, आभूषण क्रय, अनुत्पादक परिसम्पत्तियों के क्रय और विलासी उपभोग पर व्यय हो जाता है। मानसिक संतुष्टि और कभी-कभी पूर्वोपाय की भावना के पोषण के अतिरिक्त यह पूर्णतः अनुत्पादक प्रकृति का होता है। राजकोषीय नीति इन अपव्ययों में प्रयुक्त होने वाली बचतों का उत्पादक आयाम प्रदान करती है और अल्पसंख्यक सम्पन्न लोगों को अपनी आय अत्यन्त विलासी और विशिष्ट उपभोग व्ययों में प्रयुक्त करने से रोकती है। जे॰ एम॰ केन्स ने आर्थिक

मंदी और बेरोजगारी के निदान हेतु असंतुलित बजट का सुझाव दिया और सार्वजनिक व्यय बढ़ाने को प्रोत्साहित किया है। परन्तु केन्द्रीय विश्लेषण में समग्र रूप से उपभोग बढ़ाने पर जोर दिया गया है जब कि विकासशील अर्थव्यवस्थाओं की समस्या बचत प्रव ति बढ़ाने और उपभोग प्रव ति घटाने की है ताकि आर्थिक विकास के लिए संसाधन एकत्र किये जा सकें। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में राजकोषीय नीति के समक्ष महत्त्पूर्ण कार्य यह है कि आर्थिक विकास के वित्त प्रबंधन हेतु अधिक बचतें बलपूर्वक प्राप्त करे तथा अधिक प्रभावी निजी तथा सार्वजनिक निवेश के लिए अनुकूल स्थितियाँ उत्पन्न करें। विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के संदर्भ में राजकोषीय नीति का उद्देश्य विनियोग की दर बढ़ाना, अतिरिक्त रोजगार के अवसर स जित करना, स्फीतिकारी और अवस्फीतिक प्रव त्तियों को रोकना एवं आर्थिक विषमताओं को कम करना है। यह सामाजिक द ष्टि से उपयोगी विनियोग संरचना को भी प्रोत्साहित करती है।

भारत की राजकोषीय नीति
(Fiscal Policy of India)

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में राजकोषीय प्रणाली को आर्थिक विकास की गति बढ़ाने के लिए एक सहायक तत्व के रूप में स्वीकृत किया गया हैं इसलिए भारत में योजना आरम्भ विशेषकर द्वितीय पंचवर्षीय योजना से राजकोषीय नीति का मुख्य झुकाव सार्वजनिक विनियोग के लिए संसाधनों को गतिशील बनाना रहा है। यह राजकोषीय नीति जिन प्रमुख तर्कों पर आधारित है उन्हें संक्षिप्त रूप से निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया जा सकता है। यदि सार्वजनिक क्षेत्र का प्रयास आर्थिक विकास की पूर्वपेक्षा है और सामाजिक कल्याण की व द्धि के लिए सार्वजनिक व्यय आवश्यक है तो बजट और विनियोग में व द्धि किया जाना आवश्यक है। आर्थिक विकास की गति बनाये रखने के लिए एक आवश्यक दर पर सार्वजनिक व्यय बढ़ना भी चाहिए। करारोपण सामान्य रूप से सार्वजनिक व्यय के लिए संसाधन एकत्र करने में सहायक होगा। सह सार्वजनिक विनियोग के लिए बचत व द्धि में सहायक होगा। करो के विविधीकरण और कर की ऊँची दर से संसाधन प्राप्त होगा जिससे विनियोग की दर बढ़ेगी जो आर्थिक विकास की दर बढ़ायेगा। सार्वजनिक विनियोग बढ़ने से आय बढ़ेगी। इससे कर व द्धि की नवीन संभावना पुनः उत्पन्न होगी। इसलिए कर आय की वार्षिक अतिरिक्त मात्रा की व द्धि को विकास वित्त एकत्र करने का एक न्यायसंगत सिद्धान्त माना गया। यह भी सोचा गया कि अतिरिक्त करारोपण का भार अतिरिक्त आय पर होता । इसलिए आर्थिक प्रोत्साहन भी हतोत्साहित न होगा। करारोपण से न केवल सार्वजनिक विनियोग बढ़ेगा और निजी उपभोग व्यय में कमी आयेगी बल्कि आर्थिक शक्ति का संकेन्द्रण और ध्रुवीकरण भी कम होगा क्योंकि इसका प्रगामी भार समाज के अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न लोगों पर होगा। अतिरिक्त करारोपण से निजी उपभोग और विनियोग पर यदि कोई हानिकारक प्रभाव होता है तो इसका यह हानिकारक प्रभाव समुचित रियायत और अनुदान द्वारा निरस्त किया जा सकता है। राजकोषीय नीति के प्रति उक्त संकल्पनात्मक द ष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में यह कहा जा सकता है कि भारत में राजकोषीय नीति का मुख्य उद्देश्य सार्वजनिक विनियोग के लिए अतिरिक्त करारोपण द्वारा संसाधन एकत्र करना एवं आर्थिक विषमता को घटाना रहा है।

राजकोषीय नीति के प्रति अंगीकृत उपरोक्त अवधारणात्मक आधार के परिप्रेक्ष्य में भारत की राजकोषीय नीति का विश्लेषण सार्वजनिक आय विशेष रूप से कर आय, सार्वजनिक व्यय एवं इनके अन्तर के वित्त पूर्ति तथा राजकोषीय नीति का आर्थिक विकास पर प्रभाव आदि तत्वों के संदर्भ में किया जाना आवश्यक है। अतः सार्वजनिक आय, व्यय और अन्तर-वित्त की व्यवस्था

राजकोषीय नीति के अंग हैं और आर्थिक विकास में सुधार राजकोषीय नीति का अपेक्षित परिणाम है। इन संघटकों और परिणाम के संदर्भ में भारत की योजना कालीन राजकोषीय नीति की प्रव त्तियों का यहाँ विश्लेषण किया गया है। इससे यह भी आंकलन किया जा सकता है कि राजकोषीय नीति अपने लक्ष्य-प्राप्ति में किस सीमा तक सफल रही है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय और बजटीय अंतर का वित्त राजकोषीय नीति के उपकरण हैं। यहां इनका संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

सार्वजनिक आय
(Public Revenue)

सार्वजनिक आय से आशय सरकार की प्राप्तियों से है। सार्वजनिक आय अर्थव्यवस्था की राजकोषीय नीति का प्रमुख अवयव है। आर्थिक विकास के क्रम में विभिन्न सरकारों की प्राप्तियों में व द्धि हुयी है। भारत में केन्द्र सरकार की आय में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उल्लेखनीय व द्धि हुयी है। सरकार ने आय के नवीन स्त्रोंतों को स जित कर और परम्परागत स्त्रोतों का सम्यक उपयोग कर आर्थिक विकास के क्रम में सार्वजनिक आय में व द्धि किया है। भारत में केन्द्र सरकार की 1950-51 में कुल आय 782 करोड़ रुपये थी जो क्रमशः व द्धिमान प्रव त्ति से 1999-2000 में लगभग 283883 करोड़ रुपये हो गयी। इस प्रकार उक्त अवधि में केन्द्रीय सरकार की कुल आय में 116 गुना व द्धि हुई। केन्द्र सरकार के आय प्राप्ति के स्त्रोतों को राजस्व प्राप्तियाँ और पूँजीगत प्राप्तियाँ नामक मदों में विभक्त किया जाता है। निम्नलिखित तालिका 3.2 में राजस्व और पूँजी प्राप्तियों सहित कुल सार्वजनिक आय की कतिपय वर्षों की स्थिति प्रदर्शित की गयी है।

तालिका - 3.2
केन्द्र सरकार की आय

वर्ष	राजस्व प्राप्तियां प्रतिशत में	पूँजी प्राप्तियां प्रतिशत में	योग (करोड़ रु. में)
1980-81	63.1	36.9	19680
1990-91	53.2	36.8	86925
1997-98	61.9	38.1	216336
1998-99	59.9	40.9	255047
1999-2000	64.4	35.6	283882

Source : Economic Survey 1999-2000.

राजस्व प्राप्तियाँ
(Revenue Receipt)

राजस्व प्राप्तियाँ केन्द्र सरकार की वह आय है जिससे सरकार की परिसम्पत्तियों में कोई ह्रास नहीं होता है। करारोपण, सार्वजनिक उद्यम, राजकीय परिसम्पतियाँ आदि से प्राप्त होने वाली आय राजस्व प्राप्तियाँ है। इनसे न तो सरकार की देयता बढ़ती है और न ही परिसम्पत्तियों

का हास होता है। राजस्व प्राप्तियों की मदों को उनकी प्रकृति के आधार पर कर आय और गैर कर आय नामक मदों में विभक्त किया जा सकता है। कर आय में केन्द्र सरकार द्वारा आयों, सम्पत्तियों एवं पूंजी के लेन-देन तथा वस्तुओं एवं सेवाओं पर लगाये जाने वाले कर से प्राप्त होने वाली आय सम्मिलित हैं। संघीय क्षेत्रों के करों की आय भी इसी वर्ग में आती है। दूसरी ओर केंद्रीय सरकार को मिलने वाली ब्याज प्राप्तियाँ, लाभ एवं लाभांश, वित्तीय सेवायें, सामाजिक एवं सामुदायिक सेवायें, आर्थिक सेवायें, अंतर्राष्ट्रीय संगठनों एवं विदेशों से प्राप्त नकद अनुदान, सहायता, पदार्थ एवं उपकरण तथा संघीय क्षेत्रों की गैर कर प्राप्तियाँ आदि गैर कर आय में सम्मिलित है। निम्नलिखित तालिका 3.3 में केन्द्र सरकार की राजस्व प्राप्तियों की कर आय और गैर कर आय की राशियाँ प्रदर्शित की गयी है। तालिका मे दिए गये आंकड़ों से केन्द्र सरकार की कर आय और गैर आय सहित समस्त राजस्व प्राप्तियों के सतत् व द्विमान प्रव त्ति की जानकारी होती है।

तालिका - 3.3

केन्द्र सरकार की राजस्व प्राप्तियां

(करोड़ रु. में)

वर्ष	राजस्व प्राप्तियां प्रतिशत में	पूँजी प्राप्तियां प्रतिशत में	योग (करोड़ रु. में)
	1980-81	1990-91	1999-2000
कर राजस्व	9358	42978	132365
गैर कर राजस्व	3061	11976	50475
कुल राजस्व प्राप्तियां	12419	54954	182840
(सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत में)			
कर राजस्व	6.9	108.0	16.9
गैर कर राजस्व	2.3	2.2	2.6
कुल राजस्व प्राप्तियां	9.1	10.3	9.5

Source : Economic Survey 1999-2000

उपरोक्त तालिका के आधार पर केन्द्र सरकार की राजस्व प्राप्तियों की कुछ विशेषतायें देखी जा सकती हैं। निरपेक्ष रूप से कर और गैर कर राजस्व बढ़ा है। सकल घरेलू उत्पाद में कर राजस्व का अंश लगभग 7 प्रतिशत बना है। दूसरी ओर गैर कर राजस्व में अपेक्षाकृत अधिक व द्धि हुई है। सकल घरेलू उत्पाद में गैर कर राजस्व का अंश 1980-81 में 2.3 प्रतिशत था जो 1990-2000 में बढ़कर 2.6 प्रतिशत हो गया। यह राजकोषीय प्रणाली की व द्विमान प्रभाविकता का परिचायक है। कर आय की संरचना में अप्रत्यक्ष करों की प्राप्ति का अंशदान बढ़ता जा रहा है। प्रत्यक्ष करों में आरंभ से ही निगम कर और वैयक्तिक आयकर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रहे हैं। कर आय की संरचना में अप्रत्यक्ष करो की प्राप्ति का अंशदान बढ़ता जा रहा है। अप्रत्यक्ष करों में संघीय उत्पादन शुल्क, सीमा, साधारण बिक्री कर, राज्य उत्पादन शुल्क, स्टाम्प तथा पंजीकरण फीस अधिक महत्त्वपूर्ण करों के रूप में उभरे हैं। कुल मिलाकर संघीय उत्पादन शुल्क,

समान्य बिक्री कर, निगम कर, राज्य उत्पादन शुल्क, सीमा शुल्क और वैयक्तिक आयकर नामक 6 कर भारत में कर आय के मुख्य आधार है। गैर-कर राजस्व प्राप्तियों में ब्याज प्राप्तियों का अंश सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। योजनाकाल में सरकार द्वारा विभिन्न वस्तु उत्पादक संस्थाओं और सेवा प्रदायक संस्थाओं को दिये गये अधिक ऋणों का परिणाम है। सामाजिक और आर्थिक सेवाओं में भी व द्धि की प्रव त्ति रही है। इसलिये इनसे प्राप्तियों का स्तर बढ़ा है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि ब्याज प्राप्तियों और विविध सामाजिक एवं आर्थिक सेवाओं की प्राप्तियाँ गैर-कर राजस्व के प्रमुख अंग हैं।

पूँजीगत प्राप्तियाँ
(Capital Receipt)

सार्वजनिक आय का दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व पूँजीगत प्राप्तियाँ है। सार्वजनिक आय का यह अंश पूँजीगत प्राप्तियों का है। जिससे सरकार की परिसम्पत्तयों का ह्रास होता है और सरकार की देयतायें बढ़ती है। उदाहरण के लिए परिसम्पत्तियों के विक्रय और उधार से प्राप्त आय पूँजीगत प्राप्तियाँ है। क्योंकि प्रथम स्थिति में सरकार की परिसम्पत्ति में कमी आती है और उधार लेने की स्थिति में सरकार की देयता बढ़ती है। योजनाकाल में केद्र सरकार की पूँजीगत प्राप्तियों में आंतरिक बाजार ऋण, बाह्य ऋण, राजकोषीय हुंडियाँ, स्वर्ण बांड, अल्प बचत, पब्लिक प्रोविडेन्ड फन्ड, राज्य प्रोविडेन्ड फन्ड, गैर सरकारी प्रोविडेन्ड फन्ड एल० आई०सी० की जमा आदि से मिलने वाली प्राप्तियाँ सम्मिलित हैं। इन सभी दशाओं में सरकार की परिसम्पत्तियाँ घटती हैं या उसकी देयता बढ़ती है। निम्नलिखित तालिका 3.4 में कतिपय वर्षों के लिए केन्द्र सरकार की पूँजीगत प्राप्तियाँ प्रदर्शित की गयीं हैं। तालिका से स्पष्ट है कि पूंजीगत खाते की प्राप्तियों में उत्तरोत्तर व द्धि हुई हैं। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण उल्लेखनीय पक्ष यह है कि सकल घरेलू उत्पाद में पूंजीगत प्राप्तियों का प्रतिशत अंश बढ़ रहा है। यह 1980-81 के 5.3 प्रतिशत से बढ़कर 1997-98 में 6.8 प्रतिशत हो गया। परन्तु हाल के वर्षों में इसके सापेक्षिक अंश में पुनः कमी आयी है।

तालिका - 3.4
केन्द्र सरकार की पूंजीगत प्राप्तियां

वर्ष	करोड़ रु.	सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत में
1980-81	7261	5.3
1990-91	31971	6.0
1998-99	104509	5.9
1999-2000	101042	5.2

Source : Economic Survey 1999-2000.

सार्वजनिक व्यय
(Public Expenditure)

भारत में योजनाकाल में सार्वजनिक व्यय में लगातार व द्धि हुयी है। अंगीकृत नीति और आरोपित

दबाव, दोनों के कारण सार्वजनिक व्यय बढ़ा है। योजनाकाल में सार्वजनिक व्यय की पूर्व मदों में व द्धि हुई है, साथ-साथ सार्वजनिक व्यय की नवीन मदों का भी समावेश हुआ है। भारत में योजनाकाल में विकास व्यय और विकासेतर व्यय में बहुत व द्धि हुई है। सरकार को आन्तरिक शान्ति और सीमाओं की सुरक्षा की व्यवस्था करने के अतिरिक्त अब आर्थिक विकास के भी प्रयास करने पड़ते हैं जिससे सार्वजनिक व्यय का बढ़ना स्वाभाविक है। निम्नलिखित तालिका 3.5 में प्रदर्शित किया गया है कि योजनाकाल में विकासात्मक और गैर-विकासात्मक दोनों प्रकार के व्यय में उल्लेखनीय हुई है। तालिका में राजस्व और पूँजीगत व्यय की सम्मिलित राशि प्रदर्शित की गयी है। राजस्व व चालू परिव्यय वे हैं जो न तो सरकारी परिसम्पत्ति में व द्धि करते हैं और न ही इसकी देयताओं में कमी करते हैं यथा सरकारी कर्मचारियों के वेतन, सुरक्षा सेनाओं के कर्मचारियों के वेतन एवं उनके प्रयोग के स्टेशनरी सामान पर होने वाला व्यय आदि। इसी प्रकार सुरक्षा सामग्री क्रय पर होने वाला व्यय भी चालू व्ययों की कोटि में है। दूसरी ओर पूँजीगत व्यय वे हैं जो परिसंपत्तियों में व द्धि और देयताओं में कमी करते हैं। इनमें विविध निर्माण कार्य और सरकारी ऋणों की वापसी सम्मिलित है।

तालिका - 3.5

राजस्व एवं पूंजीगत व्यय

(करोड़ रु. में)

व्यय की मदें	1980-81	1990-91	1999-2000
राजस्व व्यय	14455	73516	236987
पूंजी व्यय	7801	31782	46895
कुल व्यय	22256	105298	283882
	(सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत में)		+
राजस्व व्यय	10.6	13.7	12.3
पूंजी व्यय	5.7	5.9	2.4
कुल व्यय	16.4	19.7	14.7

Source : Economic Survey 1999-2000

भारत में 1950-51 के बाद विकास और विकासेतर व्ययों में लगातार व द्धि हुई है। परन्तु विकास व्यय में अपेक्षाकृत अधिक तीव्र गति से व द्धि आयी है। विकास व्ययों में शिक्षा, उद्योग और खनिज, कृषि, ऊर्जा, चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवायें, निर्माण कार्य, रेलवे, वैज्ञानिक अनुसधांन मुख्य रहे हैं। गैर विकास व्यय भी उक्त अवधि में अत्यन्त तेजी से बढ़े हैं। 1950-51 से 1944-95 की अवधि में सार्वजनकि गैर विकास व्यय 63 गुना अधिक हो गया है विकासेतर व्ययों में प्रतिरक्षा सेवायें, ब्याज अदायगी सेवायें, कर एकत्र करने का व्यय, सामाजिक कल्याण आदि मुख्य है। 1962 में चीन के आक्रमण के बाद प्रतिरक्षा व्यय में अधिक तीव्रगति से व द्धि हुई। 1965 तथा 1971 में पाकिस्तान द्वारा किये गये आक्रमण के कारण प्रतिरक्षा व्यय में अधिकव द्धि की प्रव त्ति बनी रही। विकास कार्यों के लिए भारी मात्रा मे आंतरिक और बाह्य स्त्रोतों से ऋण लिए गये हैं जिनके लिए ब्याज अदायगियाँ बढ़ी हैं। उक्त व्यय, केन्द्र राज्य और संघीय क्षेत्रों की व्यय संरचना के सम्मिलित स्थिति के द्योतक है।

भारत में योजनाकाल में केन्द्र कुल सरकार के कुल व्यय में लगातार तीव्र व द्धि हुई है। सकल घरेलू उत्पाद में इसका प्रतिशत अंश भी बढ़ता जा रहा है। वर्ष 1950-51 में केन्द्र सरकार और राज्य सरकारों द्वारा किया जाने वाला कुल व्यय सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 9.0 प्रतिशत था। तालिका 3.5 में स्पष्ट है कि 1990-91 में केवल केन्द्र सरकार का व्यय सकल घरेलू उत्पाद का 19.7 प्रतिशत था। 1997-98 में भी केन्द्र सरकार का कुल व्यय सकल घरेलू उत्पाद का 16.6 प्रतिशत था। यदि राज्य सरकारों के व्यय पर भी विचार किया जाये तो यह प्रतिशत अत्यन्त ऊँचा हो जाता है। सार्वजनिक व्यय का यह स्तर कई महत्त्वपूर्ण अर्थव्यवस्थाओं के समकक्ष है।

बजटीय अंतर का वित्त
(Financing of Deficit)

सार्वजनिक आय और सार्वजनिक व्यय की प्रव त्तियों का उपरोक्त विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि समस्त सार्वजनिक आय पर समस्त सार्वजनिक व्यय की अधिकता बनी है। अथवा बजट में घाटे की स्थिति बनी है। इससे भी अधिक उल्लेखनीय पहलू यह है कि राजस्व खाते की आय पर राजस्व व्यय की अधिकता अत्यधिक है। अर्थात् राजस्व घाटा, जो राजस्व प्रतियों और राजस्व व्यय का अंतर है, में अधिकता बनी है। यह अंतर उस अवस्था में कम हो जाता है जब पूँजीगत खाते की बचत को सम्मिलित करते हुए सम्पूर्ण घाटे पर विचार किया जाता है। तथापि भारत में प्रत्येक वर्ष बजटीय घाटा बना रहता है और इस बजटीय घाटे को पूरा करने के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था का प्रयोग किया जाता है। घाटे की वित्त व्यवस्था से मुद्रा पूर्ति में शुद्ध व द्धि

तालिका - 3.6
बजटीय अंतर का वित्त

(करोड़ रु. में)

मद	1980-81	1990-91	1999-2000
राजस्व खाता			
प्राप्तियां	12419	54954	182840
व्यय	14455	73516	236987
आधिक्य (+) / घाटा (–)	–2037	–18562	–54147
पूंजी खाता			
प्राप्तियां	7261	31971	101042
व्यय	7801	24756	46895
आधिक्य (+) / घाटा (–)	–540	+7215	+54147
सम्पूर्ण घाटा आधिक्य (+) / घाटा (–)	–2577	–11347	–00

Source : Economic Survey 1999-2000.

होती है। तालिका 3.6 में कतिपय वर्षों की बजट स्थिति और बजटीय अंतर की वित्त पूर्ति का विवरण दिया गया है।

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि 1980-81 में बजट घाटा 2577 करोड़ रुपये था। 1990-91 में बजट घाटा 113.47 करोड़ रुपये था बजट घाटे को पूरा करने के लिए सरकार ने घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा लिया है। ट्रेजरी बिल की व द्धि और नकद शेष में कमी की स्थिति घाटे की वित्त व्यवस्था की द्योतक है। उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि प्रत्येक वर्ष ट्रेजरी बिल में व द्धि हुई है। बहुधा इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो जाती है जिसमें प्रस्तावित घाटे की तुलना में वास्तविक घाटा अधिक हो जाता है। अतएव घाटे की वित्त व्यवस्था पर निर्भरता अधिक हो जाती है। घाटे की वित्त व्यवस्था के कारण मुद्रा आपूर्ति बढी। अतः कीमत व द्धि तीव्र हुई है। भारत की राजकोषीय स्थिति 1980 के बाद लगातार दबाव की स्थिति में बनी रही। 19991-92 में तो यह अत्यन्त संकटपूर्ण हो गयी। 1990 के खाड़ी युद्ध ने इसे अत्यन्त संकटपूर्ण बना दिया था। 1980 के बाद राजकोषीय असंतुलन को व्यक्त करने वाले समस्त संकेतक बढ़ रहे थे। राजकोषीय असंतुलन की जानकारी बजटीय घाटा, राजस्व घाटा राजकोषीय घाटा और मौद्रिक घाटा से होती है। बजटीय घाटा राजस्व और पूँजी दोनों प्रकार की समस्त प्राप्तियों और व्यय का अंतर है। इस घाटे को केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी राजकोषीय हुन्डियों में शुद्ध व द्धि और भारतीय रिजर्व बैंक के पास नकदी शेष आहरणों से पूरा किया जाता है। राजस्व घाटा (Revenue Deficit) राजस्व प्राप्तियों और राजस्व व्यय के अंतर को स्पष्ट करता है। राजकोषीय घाटा (Fiscal Deficit) को राजस्व प्रतियों और अनुदानों की तुलना में कुल राजकीय व्यय की अधिकता के संदर्भ में कुल संसाधन अंतर से माना जाता है। यह धारणा (राजकोषीय घाटा) सरकार की पूर्ण ऋण ग्रस्तता को स्पष्ट करता है। मौद्रीकृत घाटा से आशय केन्द्रीय सरकार के भारतीय रिजर्व बैंक से शुद्ध ऋण में व द्धि से है। तालिका 3.7 में कुछ वर्षों के लिए सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में विभिन्न घाटों की स्थिति प्रदर्शित की गयी है।

तालिका 3.7 यह स्पष्ट करती है। कि 1980 के बाद राजकोषीय घाटा अत्यधिक राह की ओर बढ़ता रहा। राजकोषीय घाटे का वार्षिक औसत 1985-86 से 1990-91 की अवधि में सकल घरेलू उत्पाद का 8.4 प्रतिशत हो गया। इससे यह स्पष्ट है कि सरकार की ऋण ग्रस्तता बढ़ती गयी। 1986-87 मे तो सकल राजकोषीय घाटा कुल घरेलू उत्पाद का लगभग 9.00 प्रतिशत हो गया था लगातार बढ़ता घाटा अर्थव्यवस्था के लिए अत्यन्त चिन्ताजनक हो गया था। जुलाई, 1991 के बजट में राजकोषीय असंतुलन में सुधार लाने और घाटे में कमी करने के प्रयास

तालिका - 3.7

सकल घरेलू उत्पाद के प्रतिशत के रूप में घाटा

वर्ष	राजकोषीय घाटा	ब्याज भुगतान	प्राथमिक घाटा	राजस्व
1980-81	5.7	1.9	3.8	1.5
1990-91	8.3	4.0	4.3	3.5
1994-95	6.0	4.6	1.4	3.2
1997-98	6.1	4.6	1.5	3.1
1998-99	5.0	4.5	0.6	3.7
1999-2000	4.1	4.6	–0.4	2.8

Source : Economic Survey 1999-2000

आरंभ किए गए और यह परिकल्पना की गयी कि राजकोषीय घाटे में 1990-91 में लगभग 2.0 प्रतिशत कमी करके 6.5 प्रतिशत पर लाया जायेगा। इसके लिए सरकारी खर्च में कमी करने और राजस्व बढ़ाने का लक्ष्य रखा गया। इसके अतिरिक्त कर राजस्व में प्रत्यक्ष करों का अंश बढ़ाने, प्रदर्शनकारी उपभोग में कमी करने, स्वदेशी और निर्यातोन्मुख उद्योगों को बढ़ावा देने के भी लक्ष्य रखे गये। इसी क्रम में उर्वरकों की आर्थिक सहायता में कमी करने, निर्यातों के लिए नकद क्षतिपूर्ति सहायता की समाप्ति, चीनी पर आर्थिक सहायता की समाप्ति, कतिपय सार्वजनिक उद्यमों में 20 प्रतिशत तक अनिवेश (Disinvestment) के निर्णय लिये गये।

राजकोषीय घाटे में कमी करने के विभिन्न प्रयासों के फलस्वरूप 1991-92 और 1992-93 में राजकोषीय घाटे में कमी आयी। 1991-92 और 1992-93 में राजकोषीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद में क्रमशः 6.2 प्रतिशत और 5.0 प्रतिशत हो गया। इन वर्षों में बजटीय घाटे और राजस्व घाटे में भी कमी की प्रव त्ति हुई है। इस अवधि में गैर कर आय में उल्लेखनीय व द्धि की प्रव त्ति स्पष्ट हुई है। 1991-92 और 1992-93 में प्राथमिक घाटा, जो राजकोषीय घाटे में ब्याज भुगतान की राशि निकालने के बाद बची राशि को बराबर होता है, में भी कमी आयी है। यह 1990-91 में 4.4 प्रतिशत था जो 1992-93 में 0.3 प्रतिशत हो गया। राजकोषीय असंतुलन का प्रमुख कारण सार्वजनिक व्यय विशेषकर गैर-योजना व्यय में अत्यन्त तीव्र व द्धि रही है। ब्याज भुगतान की राशि अत्याधिक होने से बजट पर दबाव लगातार बढ़ता गया है। 1992-93 में गैर योजना व्यय मे पूर्व वर्षों की तुलना में कम व द्धि हुई। कर राजस्व और विशेष रूप से गैर-कर राजस्व में व द्धि हुई जिससे राजकोषीय घाटे में कमी आयी।

राजकोषीय नीति के प्रभाव
(Effects of Fiscal Policy)

राजकोषीय नीति को भारत के आर्थिक विकास की दर में व द्धि करने के माध्यम के रूप में प्रयोग किया गया है। बढ़ते हुए प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों ने उपभोग विशेषकर विलासी उपभोग को सीमित करने का प्रयास किया है। संसाधन एकत्र करने में अप्रत्यक्ष कर विशेषकर उत्पादन शुल्क का महत्त्व अधिक तेजी से बढ़ा है। परन्तु आय और संपत्ति पर लगाया गया प्रत्यक्ष कर साधन संग्रह में अधिक योगदान नहीं कर सका है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि करों (प्रत्यक्ष+अप्रत्यक्ष) से योजनाकाल में अधिक संसाधन एकत्र नहीं किया जा सका है।

राजकोषीय प्रणाली से प्राप्त संसाधनों का प्रमुख उद्देश्य आर्थिक प्रगति की दर में व द्धि करना है। परन्तु यह अनुमान किया गया है कि इससे योजनाओं पर किए गए व्यय से कीमतों में अधिक तीव्र व द्धि आयी। कीमत व द्धि ने वेतन भोगी कर्मचारी, स्थिर आय वर्ग के लिए और निम्न आय वर्ग के लोगों के लिए कठिनाई उत्पन्न किया है। यद्यपि कीमत व द्धि उत्पादन व द्धि को प्रोत्साहित करती है। परन्तु अधिक तीव्र गति से बढ़ती कीमतों ने उत्पादन व द्धि को, लागत व द्धि के कारण, अपेक्षित वातावरण नहीं दे सकी। विदेशी ऋण का बढ़ता बोझ अर्थव्यवस्था के स्वल्प सीमित संसाधनों को ब्याज अदायगी और मूल राशि अदायगी के रूप में विदेशों में भेजने के लिए बाध्य कर रहा है।

राजकोषीय प्रणाली का एक प्रमुख उद्देश्य आय का सम्यक् और न्यायोचित पुनर्वितरण करना है। भारत में राजकोषीय नीति अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति में सफलता नहीं प्राप्त कर सकी। ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों और विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों के मध्य आय और संपत्तिगत विषमतायें

विद्यमान हैं। एक ओर लोग नितान्त विलासी उपभोग में व्यस्त है। व्यय मदों का चुनाव ही उनकी समस्या है तो दूसरी ओर आधार पर लोग अपनी अनिवार्यताओं की पूर्ति के लिए साधन नहीं जुटा पा रहे हैं। देश के 10 प्रतिशत ऊपर के लोगों के पास देश की 50 प्रतिशत सम्पत्ति है। इससे सम्पत्तिगत विषमताओं की स्थिति स्पष्ट होती है। इसी प्रकार रोजगार स जन के पक्ष पर भी राजकोषीय प्रणाली की सफलता अत्यन्त सीमित है। भारत में विभिन्न रोजगार कार्यालयों में रोजगार प्राप्ति के लिए नामांकित लोगों की संख्या लगातार बढ़ रही है। जबकि कुल मिलाकर इससे बहुत कम व्यक्तियों को ही सार्वजनिक और निजी क्षेत्र संगठित उद्योगों में रोजगार प्राप्त होता है। स्पष्ट है कि रोजगार स जन के प्रति सफलता अत्यन्त सीमित है।

दीर्घकालीन राजकोषीय नीति
(Long-Term Fiscal Policy)

भारत में राजकोषीय नीति को विकास क्रम के आधारिक चालक तत्व के रूप में, अंगीकृत किया गया है। भारतीय नियोजन प्रक्रया में आरम्भ से ही राजकोषीय नीति की इस भूमिका को दोहराया जाता रहा है। परन्तु राजकीय आधार पर ही यह भी स्वीकृत किया गया है कि नियोजन आरम्भ से 35 वर्षो तक की राजकोषीय नीति तदर्थता युक्त रही हैं। संभवतः इस कारण कि राजकोषीय नीति से राजस्व प्राप्त करने और व्यय करने के ऊँचे स्तर तो प्राप्त किए जा सकते हैं। परन्तु गरीबी, बेरोजगारी ओर विषमता निवारण की दिशा में सफलता अत्यन्त सीमित है। राजकोषीय नीति को तदर्थता के दोष से मुक्त करने और नियोजन को आवश्यकता के अनुरूप बनाने के लिए 1985-86 के बजट भाषण में सातवीं योजना के लक्ष्यों को ध्यान में रखकर दीर्घकालीन राजकोषीय नीति का प्रस्ताव संसद में प्रस्तुत किया गया। दीर्घकालीन राजकोषीय नीति के लक्ष्य सातवीं योजना के लक्ष्यों-आर्थिक संव द्धि, नवीनीकरण, आत्म-निर्भरता और सामाजिक न्यास के अनुरूप रहे हैं। सातवी योजना की विशिष्टता उत्पादक रोजगार मे व द्धि के प्रति कटिबद्धता रही है। यह सोचा गया था कि उत्पादकता और रोजगार बढ़ाकर गरीबी निवारण का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। इसके द्वारा ही निर्धन रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या का प्रतिशत 1984-85 के 36.9 से घटाकर 1989-90 तक 25.8 प्रतिशत पर लाया जा सकेगा। इसलिए दीर्घकालीन राजकोषीय नीति की मुख्य विशेषता उत्पादक रोजगार स जन के प्रति सजगता है।

नीतिगत और संकल्पनात्मक आधार पर यह सोचा गया है कि दीर्घकालीन वित्तीय नीति से वार्षिक बजटों के लिए एक निश्चित दिशा प्रदान की जा सकेगी और बजट का योजना के लक्ष्यों से सामंजस्य रखा जा सकेगा। भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में आर्थिक नीति के प्रमुख अव्यवों-वित्तीय, मौद्रिक, औद्योगिक, व्यापार और रोजगार नीति में सामंजस्य आवश्यक है। दीर्घ कालीन वित्तीय नीति की इस दिशा में सहायक भूमिका होगी। यह बचत और विनियोग व द्धि को प्रोत्साहित करेगी जिससे उत्पादन व द्धि और परिणामतः राजकीय आय में व द्धि होगी। यह राजस्व व द्धि स्वाभाविक रूप से होगी अतः राजस्व प्रबंध में अनिश्चितता का तत्त्व न रहेगा। दीर्घकालीन वित्तीय नीति सातवीं योजना के वित्तीय लक्ष्यों और बजट प्राविधानों के मध्य सहवर्ती होकर योजना गत भौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक होगी। बजटों में प्रतिवर्ष का घाटा, बहुधा बजट प्रस्ताव से अधिक, बजट अनुमान पर प्रश्न चिन्ह लगाता रहा है। इसलिए दीर्घकालीन राजकोषीय नीति में यह विचार रखा गया कि बजटीय घाटा समग्र घरेलू उत्पादन का 1.2 प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए। इस प्रकार यह बजट घाटे के प्रस्ताव और वास्तविक घाटा स्तर के अन्तराल को सीमित कर अनिश्चितता निवारण में सहायक है।

प्राविधान और प्रगति (Provisions and Achievements) – दीर्घकालीन राजकोषीय नीति मे अर्थव्यवस्था की बजटीय प्रणाली को अर्थव्यवस्था के लिए की मुख्य धारा से जोड़ने और तद्हेतु अधिक सक्षम बनाने के लिए प्रचलित राजकीय प्रणाली पर कुछ सुधार प्रस्तावित है। दीर्घकालीन राजकोषीय नीति की घोषणा के बाद प्रस्तुत बजटों में उक्त नीति की आकाक्षाओं को कार्यान्वित करने का प्रयास किया गया है। इसलिए यहाँ दीर्घकालीन राजकोषीय नीति के प्रमुख प्राविधानों का विश्लेषण के बाद के वर्षों के बजट प्रस्तावों संबंध में किया गया है।

भारतीय कर प्रणाली में अप्रत्यक्ष करो की प्रधानता है। केन्द्र सरकार द्वारा एकत्र की जाने वाली कर आय में प्रत्यक्ष करो की आय 20 प्रतिशत से भी कम है। केन्द्र सरकार की कर आय के साथ-साथ यदि राज्य और संघीय क्षेत्रों की भी कर आय पर विचार किया जाये तो अप्रत्यक्ष करों की प्रधानता अधिक स्पष्ट होती है। वर्ष 1980-81 में केन्द्र, राज्य और संघीय क्षेत्र के कुल बजटीय लेन-देन में कुल कर आय में प्रत्यक्ष करों की आय का अंश 16.4 प्रतिशत था जो 1984-85 में घटकर 14.9 प्रतिशत और 1986-87 के बजट अनुमान के आधार पर घटकर 13.6 प्रतिशत हो गया। इससे यह स्पष्ट है कि अप्रत्यक्ष कर व्यवस्था के प्रति भारतीय कर प्रणाली अधिक अनुकूल और लाभकारी है। दीर्घकालीन राजकोषीय नीति में प्रत्यक्ष करो को अधिक लाभकारी बनाने की भावना व्यक्त की गयी है। प्रत्यक्ष करों से अपेक्षाकृत अधिक राजस्व एकत्र करने के लिए माध्यम के रूप में आर्थिक प्रगति की दर में व द्धि, कर प्रणाली के किसी रिसाव को कम करना और कर भुगतान व्यवस्था को अधिक सरल बनाने के प्रयास निहित है। दीर्घकालीन राजकोषीय नीति की घोषणा के पश्चात् कुल प्रत्यक्ष कर आय में यद्यपि व द्धि हुई, परन्तु इसके प्रतिशत अंश में गिरावट आई है।

दीर्घकालीन राजकोषीय नीति में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों की संरचना में परिवर्तन इसलिए आवश्यक समझा गया ताकि राजस्व में स्वाभाविक रूप से लगातार व द्धि हो, कर प्रणाली में अधिक सक्षमता आये और इसे कर दाताओं के लिए अधिक सुविधाजनक बनाया जा सके। दीर्घकालीन राजकोषीय नीति की उक्त व्यवस्था के अनुरूप कर संरचना में सुधार किया जा रहा है। प्रत्यक्ष करो में सुधार प्रयास 1985-86 के बजट से ही आरम्भ कर दिए गये हैं। 1985-86 के बजट में आय कर की सीमा 15,000 रुपये से बढ़ाकर 18,000 रुपये कर दी गयी। 1986-87 के बजट में आयकर की मान कटौती 6000 रुपये से बढ़ाकर 10000 रुपए कर दी गयी। इसके अतिरिक्त जी०पी०एफ०, पी०पी०एफ०, एन एस० सी० इत्यादि में विनियोजित 6000 रुपये तक सम्पूर्ण राशि भी कटौती के रूप में मान ली गयी थी। इस प्रकार व्यावहारिक रूप में 34,000 रूपए तक की राशि कर मुक्त हो गयी थी। कर मुक्त आय सीमा की व द्धि से मध्य आय वर्ग के लिए अधिक सुविधा और विनियोग व द्धि की अधिक संभावनाऐं बढ़ने का अनुमान किया गया। व्यक्तिगत आय कर की भाँति निगम कर से भी परोक्ष रूप से विभिन्न रियायतें प्रदान की गयी हैं ताकि आंतरिक संसाधनों को बढ़ावा मिले और औद्योगिक विनियोग, संव द्धि एवं नवीनीकरण को प्रश्रय दिया जा सके। निगम कर की दरों में तो कोई परिवर्तन नहीं किया गया। परन्तु उन्हें यह सुविधा दी गयी है कि यदि निगम लाभ का 20 प्रतिशत तक भाग भारतीय औद्योगिक विकास बैंक में जमा करते हैं तो जमा की गयी राशि का योग्य आय में कटौती के लिए स्वीकृत कर ली जायेगी। दीर्घकालीन राजकोषीय नीति की भावना के अनुरूप निगम कर पर अधिभार की राशि स्थगित कर दी गयी है। इसी प्रकार 1986-87 के बजट से पूँजी लाभ कर की संरचना में भी परिवर्तन किया गया है।

दीर्घकालीन राजकोषीय नीति में अप्रत्यक्ष करो की संरचना में आधारित परिवर्तन के प्रस्ताव किए

गए है। अप्रत्यक्ष करो की जटिलता में सुधार के सुझाव दिए गए हैं। इसी क्रम में उत्पादन शुल्क में आमूल सुधार किया जा रहा है। लगातार कई वर्षों से आगतों व मध्यवर्ती वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क में कमी की सिफारिश की जा रही थी। उदाहरण के लिए 1978 में अप्रत्यक्ष कर जाँच समिति ने विनिर्माण स्तर पर मूल्य संवर्धन कर (MANVAT) का सुझाव दिया था। परन्तु विभिन्न आगतों और मध्यवर्ती वस्तुओं पर करो की जटिलता बनी रही। यह जटिलता समाप्त करने के उद्देश्य से दीर्घकालीन राजकोषीय नीति में 'मूल्य वर्द्धित कर योजना' (MODVAT) का सुझाव दिया गया है। इसके अनुसार आगतों और मध्यवर्ती वस्तुओं पर कर समाप्त किया जा रहा है और निर्मित अन्तिम वस्तुओं पर कर लगाया जा रहा है। इस प्रक्रिया से सरकार का लक्ष्य कर समाप्त करना नहीं अपितु यह कर का स्थानान्तरण मात्र है, मध्यवर्ती वस्तुओं से अंतिम वस्तुओं पर। अंतिम वस्तुओं पर लगे कर से अधिक राशि एकत्र की जा सकेगी जिसका अधिक भार सम्पन्न वर्ग पर होगा जो सामाजिक न्याय की भावना के अनुरूप होगा। इसलिए 1986-87 के बजट से मूल्य संवर्द्धित कर योजना आरम्भ की गयी ताकि मध्यवर्ती वस्तुओं पर कर भार कम किया जा सके। प्रारम्भिक स्थिति में इस योजना केन्द्रीय उत्पादन शुल्क अधिनियम, 1985 को 37 विशिष्ट अध्यायों के संबंध में लागू किया गया है जिसमें रसायन उत्पाद और संबंद्ध वस्तुयें, प्लास्टिक, आधारित धातु आदि की मध्यवर्ती वस्तुयें सम्मिलित हैं। यह अनुमान है कि इससे वस्तु उत्पादन संरचना में अधोगामी प्रव त्ति न आ सकेगी। आगत आपूर्ति पर प्रतिकूल प्रभाव न होगा और उत्पादन शुल्क को अधिक प्रगामी बनाया जा सकेगा। यह प्रत्यक्ष करों के भार और प्रभार को अधिक पारदर्शी बनायेगा एवं कीमतों की अनुचित व द्धि को रोकेगा।

कर चोरी की समस्या भारतीय कर प्रणाली को विवादों के घेरे में ला देती है। इस दोष से कर आय बढ़ाने और अतिरिक्त कराधान से कल्पित लाभ नहीं प्राप्त होते। अतिरिक्त साधन गतिशीलता के प्रयास का लक्ष्य प्रतिवर्ष अधिक संसाधन एकत्र करने के माध्यमों का आकलन करना होता है। परन्तु पिछले 10 वर्षों के आँकड़े यह स्पष्ट करते हैं कि सामान्य उतार-चढ़ाव सहित समग्र घरेलू उत्पादन में केन्द्रीय सरकार की कर आय का अंश कम होता रहा है। 1978-79 में केद्रीय सरकार का कर राजस्व समग्र घरेलू उत्पाद का 8.8 प्रतिशत और पुनः 1983-84 में समग्र घरेलू उत्पाद में कर आय का अंश घटकर 8.3 प्रतिशत था सामान्य रूप से कोई भी यह आशा कर सकता है कि यदि करो में कोई सुधार न हो, भुगतान के तौर तरीकों में कोई सुधार न हो, कोई नवीन कर न लगे और कोई विशेष परिस्थिति उत्पन्न न हो तो कर आय और समग्र घरेलू उत्पाद से अनुपात कम होना अथवा स्थिर रहना यह स्पष्ट करता है कि कर भुगतान का लक्ष्य पूरा नहीं किया जा सकता। स्पष्टतः यह लचर कर प्रणाली, कर प्रशासन की शिथिलता, दुरूह कर संरचना और कर दाताओं को परेशान करने वाली कर भुगतान की संरचना और औपचारिकताओं की जटिलता का परिणाम है। इनके चलते कर भुगतान में विलम्ब, हिचकिचाहट तथा कर बचाव और कर चोरी के प्रयास स्वाभाविक है। इसलिए दीर्घकालीन राजकोषीय नीति में कर चोरी रोकने के प्रभावी प्रयास की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। इस भावना के अनुरूप 1985-86 के बाद के बजटों में कर की दरों में नवीनीकरण और कर नियमों को सरल और अधिक तर्कसंगत बनाने का प्रयास किया गया है यथा आय कर के संदर्भ में सर्वेक्षण को अधिक प्रभावी बनाने के लिए आय कर विधान में नवीन अनुच्छेद् जोड़ा गया है। इसके अनुसार अधिकारियों को यह सुविधा प्रदान की गयी है कि वे सर्वेक्षण हेतु व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में प्रवेश कर सकते हैं। इस प्राविधान के फलस्वरूप 1985-86 में आय और निगम कर से अधिक आय एकत्र की जा सकती है। आगामी वर्षों में भी इस प्रव त्ति के बने रहने की सम्भावना

है। कर चोरी रोकने के लिए अब अधिक कड़ाई की जा रही है। अधिकारियों को अधिक सक्रिय बनाने के लिए प्रोत्साहन और प्रतिकूल कार्यवाही की व्यवस्था है।

दीर्घकालीन राजकोषीय नीति में आन्तरिक बचतों को बढ़ाने के लिए सम्भव माध्यमों के विदोहन पर बल दिया गया है। राजकोषीय नीति की उक्त भावना के अनुरूप 1985-86 से ही आंतरिक विशेषकर स्वैच्छिक बचत बढ़ाने के विविध प्रयास किये जा रहे है। बचतों को अधिक प्रतिफलदायक बनाने का प्रयास किया जा रहा है। बचत प्रोत्साहित करने की द ष्टि से सामान्य भविष्य निधि, लोक भविष्य निधि, कर्मचारी भविष्य निधि इत्यादि पर ब्याज दर बढ़ा दी गयी है। यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया ने प्रतिफल दरें बढ़ाकर छोटी बचतों को बढ़ाना अधिक आकर्षक बना दिया है। भारतीय यूनिट ट्रस्ट द्वारा निवेश के विभिन्न कार्यक्रमों की घोषणा वस्तुतः बचतों को अधिक आकर्षक बनाने के प्रयासों का ही परिणाम है। कई सार्वजनिक प्रतिष्ठानों ने बांड जारी कर छोटी-छोटी बचतों को अधिक गतिशील बनाने का प्रयास किया है। दीर्घकालीन राजकोषीय नीति में सार्वजनिक उद्यमों को अधिक सक्षम और लाभदायक बनाने की आवश्यकता पर बल दिया गया है। इन समस्त सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में 50,000 करोड़ रुपये का विनियोग किया जा चुका है। समग्र विनियुक्त पूँजी पर कुल लाभ की दर 1985-86 में मात्र 2.6 प्रतिशत ही रही है जो अत्यन्त कम है। अतः दीर्घकालीन राजकोषीय नीति में यह विचार व्यक्त किया गया है कि विनियोग और संव द्धि की ऊँची दर बनाये रखने के लिए सार्वजनिक उद्यमों की लाभ स जन दर और क्षमता बढ़ाया जाना आवश्यक है जिसके लिए लागतो के पक्ष पर सर्तकता आवश्यक है:

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि राजकोषीय नीति के प्राविधानों के अनुरूप बजट प्रणाली को समायोजित करने का प्रयास किया गया है। यद्यपि सर्वाश में राजकोषीय नीति के प्राविधानों को एक साथ लागू करना संभव नहीं है, तथापि इस संदर्भ में हुई प्रगति लाभदायक रही है। कर राजस्व में व द्धि हुई है और कर प्रणाली में निश्चितता बढ़ी है। परन्तु दीर्घकालीन राजकोषीय नीति में जहाँ एक ओर अवधारणात्मक कमी है वहीं दूसरी ओर बजट प्रस्ताव भी घोषित लक्ष्य से हटे हैं। दीर्घकालीन राजकोषीय नीति का आय मे व द्धि व उसकी संरचना में सुधार, बचत व द्धि आदि के प्रति विशेष सचेष्ट है, जबकि सैद्धान्तिक आधार पर राजकोषीय नीति का संबंध कर प्रणाली के साथ-साथ खर्च की प्रक्रिया और दिशा से भी होता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि दीर्घकालीन राजकोषीय नीति को समान सघनता के साथ जब तक व्यय पक्ष के साथ न जोड़ा जायेगा तब तक यह अधूरी ही रह जायेगी। भारत में योजनाओं का खर्च योजना दस्तावेजों के साथ जोड़ा जाता है जिसे योजना आयोग द्वारा तैयार किया जाता है और जिसे संसद से स्वीकृति प्राप्त होती है। इस आधार पर वित्तीय नीति को खर्च के संदर्भ में प्रभावी माध्यम बनाने के लिए सघन प्रयास की आवश्यकता है। वर्ष 1987-88 के बजट का प्रस्तावित घाटा 5688 करोड़ रुपये था। 1987-88 का वास्तविक घाटा सकल राष्ट्रीय घरेलू उत्पाद के 1.2 प्रतिशत से अधिक हो गया जो दीर्घकालीन राजकोषीय नीति की भावना के प्रतिकूल था। गरीबी निवारण और बेरोजगारी निवारण के लिए ग्रामीण क्षेत्र के लिए विशेष वित्तीय प्राविधान की आवश्यकता है। साथ-साथ उत्पादन प्रौद्योगिकी को माध्यमिक बनाने और लघु व ग्रामोद्योगों के लिए अधिक वित्तीय आबंटन की आवश्यकता है। राजकोषीय नीति की घोषणा के पश्चात् गरीबी-बेरोजगारी की भयावहता के अनुरूप संसाधनों का आवंटन नहीं हो पाया है।

विदेशी विनिमय

विदेशी विनिमय शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है। इससे हमारा तात्पर्य निम्नलिखित से हो सकता है :

(क) विनिमय की दर अर्थात् देश में प्रचलित मुद्रा की एक इकाई द्वारा किसी दूसरे देश की मुद्रा की खरीदी हुई मात्रा।

(ख) विदेशी विनिमय व्यवस्था या लेन-देन अर्थात् किसी एक देश की करेन्सी को दूसरे देश की करेन्सी में बदलना या ऐसी व्यवस्था जिससे विदेशी भुगतान होते हैं।

(ग) विदेशी विनिमय कोष या रिजर्व। विदेशी विनिमय का नियन्त्रण तथा नियमन, अर्थव्यवस्था की मौद्रिक प्रणाली का एक मुख्य अंग है। इस प्रकार के नियंत्रण तथा नियम की आवश्यकता तब ही महसूस होती है जब देश का भुगतान अवशेष गम्भीर रूप से असंतुलित रहता है। निम्नलिखित दशाओं में विदेशी विनिमय के नियंत्रण तथा नियमन की आवश्यकता महसूस होती है -

(i) जब देश का भुगतान अवशेष लगातार प्रतिकूल रहा हो,

(ii) जब देश में पूँजी इत्यादि का अधिक निकास हो रहा,

(घ) जब विदेशों में भुगतान के लिए विदेशी विनिमय के संचय की आवश्यकता हो।

(i) अवमूल्यन कर सकता है

(ii) अधिमून्यन कर सकता है

(iii) विनिमय दरों में होने वाले उतार-चढ़ाव को दूर कर एक स्थिर विनिमय दर कायम रखने का प्रयत्न करता है।

हमारे देश में विनिमय नियन्त्रण कार्य का भार रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया को सौंपा गया है। रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया औपचारिक विदेशी मुद्रा की दर अथवा रुपये के विदेशी मूल्य को कायम रखने की कोशिश करता है।

नई निर्यात-अयात नीति, 1992-97
(New Exim Policy, 1992-97)

यह 31 मार्च, 1992 को घोषित की गई और इसकी अवधि आठवीं पंचवर्षीय योजना के अनुरूप 1 अप्रैल, 1992 से 31 मार्च, 1997 तक के लिए पाँच वर्ष की रखी गई; जबकि पहले यह त्रिवर्षीय ही हुआ करती थी।

इस नीति की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

1. इसमें विदेशी व्यापार को काफी सीमा तक मुक्त या स्वतंत्र कर दिया गया है। 'नई नीति' का मूलभूत लक्षण स्वतंत्रता है। लेकिन आयातों के लिए नकारात्मक सूची (negative list) रखी गई है और इसी प्रकार निर्यातों के लिए भी एक नकारात्मक सूची रखी गई है।

2. आयतों की नकारात्मक सूची को दो भागों में बाँटा गया है-भाग-I - निषेधात्मक मदें- इन मदों के आयात की पूर्ण मनाही होती है। इसमें तीन मदें हैं- अविनिर्मित हाथीदाँत, पशु रेनेट व चर्बी से बना तेल। भाग-II प्रतिबंधात्मक मदें - ये लाइसेंस से ही आयात की जा सकती है, अथवा सार्वजनिक सूचना जारी करके आयात की जा सकती हैं। इसमें 11 उपभोक्ता वस्तुएँ रखी गई हैं, जैसे- उपभोक्ता इलैक्ट्रोनिक्स वस्तुएँ, उपभोक्ता दूर संचार उपकरण, घड़ियाँ, शराब, कैंसर, खेल का सामान इत्यादि। लेकिन 28 वस्तुओं को उपभोक्ता वस्तुओं की श्रेणी में नहीं लिया गया है; जैसे सभी प्रकार के टिम्बर के लट्ठे, दालें कच्चे काजू, बादाम, होम्योपैथी की दवाएँ, पहाड़ी नमक आदि प्रतिबन्धात्मक सूची में 70 मदें और हैं, जिनमें से 5 कीमती, अर्द्ध-कीमती व अन्य हीरे जवाहरात हैं,

6 सुरक्षा व इससे संबंद्ध मदें हैं, 4 बीज, पौधे व पशु से संबंद्ध हैं, 2 कीटनाशक पदार्थ है, 9 इलक्ट्रॉनिक्स मदें हैं, 2 रसायन व संबंद्ध में हैं, 16 लघु क्षेत्र की मदें है तथा 26 विविध मदें हैं।

3. सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आयात की सुरक्षित मदें आठ रखी गई हैं, जैसे पेट्रोल- पदार्थ, रासायनिक उर्वरक, दवाएँ, तेल-नारियल, मूँगफली बीज वगैरह।

4. निर्यात की नकारात्मक सूची को भी दो भागों में बाँटा गया है- भाग I निषेधात्मक सूची- इनके निर्यात की सख्त मनाही है; इसमें 7 मदें हैं जैसे वन्य जीवन के सभी रूप, विदेशी पक्षी, गौ-माँस आदि।

   (अ) जिनका निर्यात लाइसेन्स से ही सम्भव है- इसमें 51 मदें रखी गई हैं, जैसे ऊँट, रॉक, फास्फेट, कच्चा रेशम, वेस्ट पेपर आदि।

   (आ) जिनके निर्योतों पर परिमाणात्मक सीमा लगा दी गई है- इसमें 11 मदें हैं, जैसे मयूर पंखों से बनी दस्तकारियाँ आदि।

5. जिन मदों का निर्यात सार्वजनिक एजेन्सियों के मार्फत किया जाएगा उसमें 10 मदें हैं, जैसे-अभ्रक वेस्ट, प्याज शुद्ध दूध का घी, खनिज अयस्क आदि।

6. वे मदें जिनका निर्यात लाइसेन्स के बिना किया जा सकेगा, लेकिन इनके संबंध में कुछ शर्ते पूरी करनी होगी- इसमें 46 मदें रखी गई है जैसे बासमती चावल, काली मिर्च, नारियल के रेशे व इससे बनी वस्तुएँ, चीनी आदि। इस प्रकार नई निर्यात-आयात नीति में आयात व निर्यात के लिए वस्तुएँ को विभिन्न सूचियों में विभाजित किया गया है।

7. नई नीति में अग्रिम लाइसेन्सों के अन्तर्गत शुल्क-मुल्क आयातों का क्षेत्र बढ़ा दिया गया है। इसमें मात्रा-आधारित अग्रिम लाइसेन्सों के अलावा मूल्य-आधारित अग्रिम लाइसेन्सों को भी शामिल किया गया है। इससे निर्यातकों को निर्धारित मूल्य-सीमाओं के अन्दर वस्तुओं के आयात व निर्यात की ज्यादा छूट होगी।

8. निर्यात घरानों, ट्रेडिंग घरानों को अग्रिम लाइसेन्स स्कीम के तहत स्व-प्रमाणन की इजाजत दी जायेगी।

9. पूँजीगत वस्तुओं के आयात को उदार बनया गया है। पहली स्कीम में पूँजीगत माल के आयात पर 25% का रियायती शुल्क लगेगा, जिसके लिए निर्यात का दायित्व आयात के मूल्य का तिगुना होगा (चार वर्ष की अवधि में); दूसरी स्कीम में 15% का रियायती शुल्क लगेगा जिसके लिए निर्यात का दायित्व आयात के मूल्य का चौगुना (पाँच वर्ष की अवधि में) होगा।

10. 100% निर्यातोन्मुख इकाइयों व मुक्त व्यापार तथा निर्यात-प्रोसेसिंग क्षेत्र में स्थित इकाइयों को अधिक सुविधाएँ प्रदान की जायेंगी। वे अब स्वयं की मशीनरी के अलावा लीज पर मशीनरी भी लगा सकेंगी। ये इकाइयाँ अब कृषि, फलोत्पादन, पशु-पालन आदि में प्रवेश कर सकेंगी। ये अपना माल निर्यात-घरानों व ट्रेडिंग घरानों के मार्फत भी निर्यात कर सकेगी।

11. नई नीति के अन्तर्गत कुछ निर्याताकों को विशेष आयात लाइसेन्स दिए जा सकेंगे जैसे- माने गये निर्यातों (deemed exports), निर्यात घरानों व अन्य घरानों के लिए यह सुविधा होगी।

इस नीति में सामान्यतया तिमाही में एक बार संशोधन किया जा सकेगा।

इस प्रकार नई निर्यात-आयात नीति (1992-97) में विदेशी व्यापार को अधिक उदार बनाया गया है। व्यापार पर लगे पूर्व प्रतिबंध कम किए गए हैं। आयातों को अधिक मुक्त किया गया है; और काफी मदों को सार्वजनिक एजेन्सियों के दायरे से हटाया गया है, ताकि उनका आयात-निर्यात निजी क्षेत्र के द्वारा किया जा सके।

1 अप्रैल, 1993 से निर्यात-आयात नीति में संशोधन

(Changes in Export-Import Policy Since 1st April, 1993)

सरकार ने 31 मार्च, 1993 को निर्यात-आयात नीति (1992-97) में महत्त्वपूर्ण संशोधनों की घोषणा की। गत 31 मार्च, 1992 को अगले 5 वर्षों के लिए घोषित आयात-निर्यात नीति (Exim Policy) को और अधिक उदार बनाते हुए इसमें कृषि क्षेत्र में निर्यातोन्मुखी इकाइयाँ लगाने पर और छूट देने तथा सेवा क्षेत्रों के लिए एक नई योजना प्रारम्भ करने की घोषणा की गई है। इस नीति में किये गये संशोधन 1 अप्रैल, 1993 से लागू हो गए हैं। निर्यात-आयात नीति में किए गए महत्त्वपूर्ण संशोधनों का वर्णन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है।

(1) **निर्यात क्षेत्र का विस्तार** – निर्यात को प्रोत्साहन देने के लिए सरकार ने प्रतिबन्धात्मक सूची में शमिल 334 वस्तुओं में 144 वस्तुओं को निर्यात योग्य वस्तुओं की सूची में सम्मिलित कर लिया है। अब इनके निर्यात के लिए लाइसेन्स की आवश्यकता नहीं होगी। निर्यात प्रयासों में राज्यों को शामिल करने के लिए एक केन्द्रीय योजना बनाने का प्रस्ताव है, जिसमें औसद्योगिक क्षेत्र स्थापित करने तथा आधारभूत सुविधाओं को बेहतर बनाने का प्रावधान किया गया है। इसके लिए वाणिज्य मंत्रालय में एक राज्यप्रकोष्ठ (State Cell) की स्थापना की गयी है।

(2) **कृषि एवं संबंधित क्षेत्रों की निर्यातोन्मुख इकाइयों को शुल्क रहित आयात का लाभ** – संशोधित आयात-निर्यात नीति के अनुसार अब कृषि, मत्स्य, पशुपालन मुर्गीपालन, बागवानी, रेशम उद्योग तथा फूलों का व्यापार करने वाली इकाइयों को भी निर्यातोन्मुखी इकाई / निर्यात संसाधन क्षेत्र योजना (EOU/EPZ Scheme) के अन्तर्गत शुल्क रहित आयात की सुविधा प्राप्त होगी। इन क्षेत्रों की निर्यातोन्मुखी इकाइयों को अपने उत्पादों का 50% तक निर्यात करने पर वही सुविधाएँ तथा रियायतें मिलेंगी, जो अन्य औद्योगिक इकाइयों को शत-प्रतिशत अथवा 75% निर्यात करने पर मिलती है। ऐसी इकाइयाँ अब अपने शेष 50% उत्पादों को घरेलू बाजार में बेच सकेंगी, जबकि गैर-कृषि के लिए यह सीमा 25% तक ही है।

(3) **पूँजीगत माल की परिभाषा का विस्तार** – कृषि एवं संबंधित क्षेत्रों को लाभान्वित करने के लिए नई संशोधित नीति के अर्न्तगत पूँजीगत सामान की परिभाषा को बदल दिया गया है। इसमें कृषि एवं उससे संबंधित कार्य के काम आने वाले सामान को भी सम्मिलित कर लिया गया है। इसके फलस्वरूप अब कृषि क्षेत्र में कार्यरत इकाइयाँ भी निर्यात संबर्द्धन पूँजीगत लाभ योजना (Export Promotion Capital Goods Scheme) का लाभ उठाकर उपकरणों को रियायती दर पर आयात करने की सुविधा का लाभ उठा सकती है।

इसके साथ ही कृषि के क्षेत्र में काम आने वाले कुछेक उपकरणों और सामान को अब

आयातों की नकारात्मक सूची में से हटा दिय गया है, ताकि कृषि क्षेत्र की इकाइयाँ ऐसे सामान का अपने काम के लिए आसानी से आयात कर सके। इन वस्तुओं में मछलियों और मुर्गियों का भोजन, खाद्य, मोम, अंगूरों के बचाव के लिए उन पर लपेटा जाने वाला कागज आदि शामिल है। कृषि के क्षेत्र के लिए घोषित इन रियायतों के फलस्वरूप कृषि से संबंधित क्षेत्रों से निर्यात को बढ़ावा मिलेगा।

(4) **सेवा क्षेत्र के लिए पूँजीगत सामान निर्यात प्रोत्साहन योजना** – संशोधित निर्यात-आयात नीति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता सेवा क्षेत्र लाभ उठाने के लिए निर्यात संबर्द्धन योजना (Export Promotion Capital Goods Scheme for the Service Sector) का नाम दिया गया है। वास्तव में यह योजना पूर्व में ही लागू निर्यात संबंर्द्धन पूँजीगत माल योजना का सेवा क्षेत्र के लिए एक विस्तार हैं।

इस योजना के अन्तर्गत सेवाएँ उत्पन्न करने वाले लोग जैसे - वास्तुविक, पत्रकार, इंजीनियर, डॉक्टर, वकील, वैज्ञानिक, कलाकर, अर्थशास्त्री आदि 15% की रियायत शुल्क दर पर उपकरणों का आयात कर सकेंगे। इस योजना का लाभ होटल, रेस्तरां चलाने वाले तथा ट्रेवल एजेन्ट भी उठा सकेंगे। उनका निर्यात दायित्व अर्जित विदेशी मुद्रा के रूप में देखा जाएगा, चाहे यह मुद्रा घरेलू सेवाओं से अर्जित की जाए अथवा विदेशों में सेवा से। इस योजना के फलस्वरूप सेवा क्षेत्र की लम्बे समय से चली आ रही यह माँग भी पूरी हो जाती है कि उन्हें अब विनिर्मित क्षेत्र (Manufacturing Sector) के बराबर का स्तर दिया जाए।

(5) **निर्यात सम्बर्द्धन पूँजीगत माल योजना (EPCG) के अन्तर्गत केवल एक ही झरोखा जारी रहेगा** – वर्तमान में अन्य क्षेत्रों के लिए लागू इस योजना के अन्तर्गत 15% की रियायती आयात शुल्क दर को संशोधित निर्यात-आयात नीति में खुला रखा गया है। ऐसा करने के पीछे यह कारण बताया गया है कि 1993-94 के केन्द्रीय बजट में पूँजीगत सामान पर प्रशुल्क में कमी के कारण इस योजना के अर्न्तगत 25% आयात शुल्क से कोई अतिरिक्त लाभ उपलब्ध नहीं रह गया था, किन्तु सरकार ने यह स्पष्ट किया है कि पूँजीगत प्रधान परियोजनाओं के लिए इस योजना में परिवर्तन करके विकल्प की विस्त त रूपरेखा की घोषणा शीघ्र ही की जाएगी।

(6) **बैंक गारण्टी में उदारता**– ई०पी०सी०जी० योजना के अर्न्तगत एक आयातकर्ता को उपलब्ध कराने वाली बैंक गारण्टी की आवश्यकताओं को संशोधित नीति के तहत उदार बना दिया गया है तथा बैंक गारण्टी प्राप्त करने की प्रक्रिया को भी सुगम बनाया गया है।

(7) **अन्य सुविधाएँ** – जिन निर्यातकों ने रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता (जो 1 मई, 1993 से लागू की गई थी) लागू करने से पूर्व निर्यात करके विदेशी मुद्रा अर्जित कर ली थी, किन्तु 1 मार्च, 1993 पूर्व उन्होंने अपने शुल्क मुक्त आयात लाइसेन्स का उपयोग नहीं किया था, अतः उन्हें इसकी हानि उठानी पड़ी। अब इस संशोधित नीति के तहत ऐसे निर्यातकों की इस हानि को दूर करने के लिए यह निश्चित किया गया है कि उन्हें अनेक अप्रयुक्त आयात लाइसेन्सों के 8% के बराबर राशि नकद रूप में दी जाएगी।

पुनः उन निर्यातकों के लिए जिन्होनें अपने निर्यात 1 मार्च, 1992 तक पूरे कर दिये थे तथा जिन्होंने 27 फरवरी, 1993 तक अपनी एक्जिम स्क्रिप (Exim Scrips) का विनिमय नहीं किया था, उन्हें

उन एक्जिम स्क्रिप के समर्पण करने का एक और अवसर दिया जाएगा तथा वे उन पर 20% प्रीमियम प्राप्त कर सकते हैं। इन सुविधाओं के संबंध में सरकार भारतीय रिजर्व बैंक से आवश्यक विचार-विमर्श करके विस्त त जानकारी उपलब्ध कराएगी।

1997-2002 के लिए निर्यात-आयात नीति (Exim Policy for 1997-2002)

मोर्चा सरकार के वाणिज्य मंत्री बी०बी० रमैया ने 31 मार्च, 1997 को पाँच वर्ष के लिए नयी निर्यात-आयात नीति की घोषणा की। यह नीति 1 अप्रैल, 1997 से लागू हो गयी। इस नीति के माध्यम से सन् 2002 तक 100 अरब डॉलर का निर्यात प्रस्तावित किया गया है। 1996-97 में भारत के निर्यात लगभग 34 अरब डॉलर के थे तथा इससे पूर्व 1992-93 में मात्र 18.5 अरब डॉलर के निर्यात थे।

निर्यात-आयात नीति (1977-2002) में प्रक्रियागत जटिलताओं को कम किया गया है। अभी तक प्रतिबंधित सूची में शामिल 542 वस्तुओं के आयात को उदार बनाया गया है। इनमें अधिकांश उपभोक्ता वस्तुएँ हैं। प्रतिबन्धित सूची में शामिल कार्नफ्लेक्स, जूस, लाइटर्स वैक्यूम फ्लास्क, कलैण्डर्स व पोस्टर्स आदि को खुले सामान्य लाइसेन्स के अधीन लाया गया है, जबकि शहद, साबुन, अचार, तौलिए, रबड़ के जूते, वाटर कूलर गुड़ियाएँ तथा खेल के अनेक सामानों को विशेष आयात लाइसेन्स के अधीन कर दिया गया है।

'पूँजीगत वस्तुओं के निर्यात संवर्द्धन की योजना' के अधीन पूँजीगत वस्तुओं पर आयात शुल्क को 15 प्रतिशत से घटाकर 10 प्रतिशत कर दिया गया है। 'शून्य शुल्क योजना' के अधीन कृषि व संबंधित क्षेत्रों के लिए अधिकतम सीमा 20 करोड़ रुपयें से घटाकर 5 करोड़ रुपये की गयी है। कृषि क्षेत्र को प्रोत्साहन देने के लिए ट्रेडिग हाउस व निर्यात घरानों आदि की पात्रता निर्धारित करते समय कृषि निर्यात को दोगुना भार प्रदान करने की योजना है।

प्रक्रियागत सरलीकरण हेतु अब निर्यात संवर्द्धन की अनेक योजनाओं को दो योजनाओं तक सीमित रखा गया है। 'मात्रा आधारित अग्रिम लाइसेन्स योजना' को जारी रखते हुए विवादास्पद मूल्य आधारित अग्रिम लाइसेन्स योजना को निरस्त कर दिया गया है। पास- बुक योजना में संशोधन करके शुल्क अधिकार पास' योजना को लाया गया है। इसके तहत निर्यात सामग्रियों को बनाने के लिए आवश्यक वस्तुओं के आयात पर निर्यातकों को कोई अग्रिम कर नहीं देना होगा। यह योजना साख सुविधा के मामले में भी अधिक पारदर्शी होगी। निर्यात प्रक्रियाओं के सरलीकरण व इनमें तेजी लाने के उद्देश्य से विदेश व्यापार महानिदेशालय के सभी कार्यालयों को 1 सितम्बर, 1997 तक कम्प्यूटरीकृत करने की योजना है।

स्वर्णाभूषणों के निर्यात हेतु सोने का स्टाक करने के लिए अधिकृत एजेन्सियों की संख्या बढ़ाने की घोषणा इस नीति में की गयी है। अभी तक केवल खनिज एवं धातु व्यापार निगम, भारतीय निगम, भारतीय स्टेट बैंक तथा हस्तशिल्प एवं हथकरघा निर्यात संवर्द्धन परिषद् को ही स्वर्ण के स्टॉक करने की अनुमति थी। नयी एजेन्सियों का चयन भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया जायेगा। आभूषण निर्यातक इन एजेन्सियों से आसानी से स्वर्ण प्राप्त कर सकेंगे।

इस निर्यात-आयात नीति की मुख्य विशेषताएँ (Salient Features of Exim Policy) :

नयी नीति की प्रमुख विशेषताओं को एक द ष्टि में इस प्रकार देखा जा सकता है-

1. प्रक्रियागत जटिलताओं में कमी।
2. प्रतिबन्धित सूची में शामिल 542 वस्तुओं के आयात में उदारीकरण। इन वस्तुओं में लगभग 70 प्रतिशत वस्तुएँ उपभोक्ता वस्तुएँ हैं।
3. मूल्य आधारित अग्रिम लाइसेन्स प्रणाली की समाप्ति।
4. पास-बुक प्रणाली में संशोधन करते हुए नयी 'शुल्क अधिकार पास-बुक' की शुरूआत।
5. 'पूँजीगत वस्तुओं के निर्यात संवर्द्धन की योजना' के अन्तर्गत आयात शुल्क 15 प्रतिशत से घटाकर 10 प्रतिशत किया गया।
6. कृषि एवं संबंधित क्षेत्रों के लिए 'शून्य आयात शुल्क योजना' के अधीन 20 करोड़ की अधिकतम सीमा को घटाकर 5 करोड़ कर दिया गया है।
7. शून्य आयात-शुल्क वाली पूँजीगत सामान की निर्यात संवर्द्धन योजना का लाभ अब सेवा क्षेत्र को भी उपलब्ध।
8. कृषि निर्यात के प्रोत्साहन हेतु ट्रेडिंग हाऊस/स्टार हाऊस की पात्रता हेतु कृषिगत निर्यात को दोहरा भारांश। यही लाभ पूर्वोत्तर राज्यों के सभी निर्यात को उपलब्ध।
9. शुल्क रहित लाइसेन्स की वैधता 12 माह से बढ़ कर 18 माह तक।
10. नये बाजारों की खोज के लिए अतिरिक्त सहायता।
11. सॉफ्टवेयर उद्योग की वैधता 12 माह से बढ़ कर 18 माह तक।
12. विदेश व्यापार महानिदेशालय के सभी कार्यालयों में सितम्बर, 1997 तक कम्प्यूटरीकरण।
13. विद्युत क्षेत्र के साथ-साथ अब तेल व गैस क्षेत्र को भी 'माने गये निर्यात' का लाभ उपलब्ध।
14. स्वर्णाभूषणों के निर्यात हेतु सोने का स्टॉक करने के लिए अधिकृत एजेन्सियों की संख्या बढ़ाने की योजना।
15. अक्टूबर 1997 में सरकार ने विदेशों से सोने व चाँदी अप्रतिबंधित/असीमित आयात करने के लिए 11 अन्य एजेन्सियों को अधिकार प्रदान कर दिया है।

नई निर्यात-आयात नीति–2000
(New EXIM Policy)

राष्ट्रीय-नीति को बढ़ावा देने के द ष्टिकोण से, भारत सरकार द्वारा 31 मार्च, 2000 को वित्तीय वर्ष 2000-2001 के लिए नवीन निर्यात-आयात नीति की घोषणा की गई। केन्द्रीय वाणिज्य मंत्री श्री मुरासोली मारन की ओर से घोषित, इस नीति में दूध, कागज, सादा नमक, सिगरेट और इलेक्ट्रोनिक सामानों के आयात पर से मात्रात्मक- प्रतिबंध हटा दिया गया है। निर्यातों में व द्धि के बारे में यह आशा व्यक्त की गई है कि 2000-2001 में, निर्यात में डॉलर के द ष्टिकोण से, कम से कम 20% की बढ़ोत्तरी अवश्य ही होगी।

नीति की प्रमुख विशेषताएँ

1. **विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना** – भारत सरकार ने, चीन की भाँति उदार निवेश वाले दो विशेष आर्थिक क्षेत्र बनाने तथा चार निर्यात प्रसंस्करण क्षेत्रों को विशेष आर्थिक क्षेत्रों में परिवर्तित करने की घोषणा की है।

2. **आयात के मात्रात्मक प्रतिबंध को हटाना** – सरकार ने 'विश्व-व्यापार संगठन' (World Trade Organization) के प्रावधानों की पालना की द ष्टि से इस नीति में 714 वस्तुओं के आयात से मात्रा संबंधी रोक हटा ली है। इस कारण, 1 अप्रैल, 2000 से कच्ची और कैफीन रहित कॉफी, इंस्टेन्ट चाय, कागच, बुने कपड़े, परिधान, मसाले, अचार, शीतल पेय, कंस्ट्रेंट फ्रूट एवं शीतलताकृत मछली आयात प्रतिबंध से मुक्त हो गई हैं। इसी कड़ी में, फोटोग्राफी फिल्म, घड़ियाँ, माइक्रोवेव ओवन तथा हीरे और मोती भी, अब कितनी भी मात्रा में आयात किये जा सकेंगे।

3. **'डायमंड डॉलर खाता' खोलने की घोषणा** – इस नीति में, रत्नाभूषण, ग्रेनाइट और संगमरमर निर्यातकों को प्रोत्साहन देने निमित्त 'डायमंड डॉलर खाता' योजना प्रारम्भ की गई है। इस खाते में निर्यातक अपनी कमाई को डॉलर खाते में रख सकेंगे और उसमें रखी गई राशि का प्रयोग बिना तराशे या पॉलिश किये हुए हीरे खरीदने के लिए किया गया जा सकेगा। सरकार द्वारा यह भी घोषणा की गई है कि 1 अप्रैल से, गहनों का निर्यात 'स्पीड-पोस्ट' से किया जा सकेगा।

4. **विदेशी भागीदारी की छूट** – इस नीति के अनुसार, विशेष आर्थिक क्षेत्रों में लगने वाली इकाइयों में सौ प्रतिशत तक विदेशी भागीदारी की छूट के साथ ही, आयात-निर्यात पर भी कोई प्रतिबंध नहीं होगा।

5. **घरेलू उद्योगों पर विपरीत प्रभाव नहीं** – अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार संगठन के अन्तर्गत आने वाली 1429 वस्तुओं में से आधी वस्तुओं (714) को कोटा (Quota) पाबंदी के दायरे से बाहर लाने से घरेलू उद्योग पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा-ऐसा वाणिज्य मंत्री का मानना है। उनका यह भी कथन है कि यदि ऐसा होता है तो सरकार अपने आयात शुल्क के हथियार का इस्तेमाल करने में नहीं हिचकिचायेगी (क्योंकि खाद्य तेल पर ही 300 प्रतिशत तथा अन्य कृषि उत्पादों पर 100 से 150 प्रतिशत आयात शुल्क है)।

6. **मशीनों को खान में लगाने की छूट** – इस नीति के अन्तर्गत, ग्रेनाइट, संगमरमर और अन्य खनिजों का निर्यात करने वाली निर्यातोन्मुख इकाइयों को अपनी मशीने परिसर से हटाकर, खान तक ले जाने की छूट दी गई है, जिससे कम लागत पर माल का निर्माण हो सके तथा भारतीय व्यावसायियों को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में उचित कीमत प्राप्त हो सके। इसके अतिरिक्त, इन क्षेत्रों के निर्यातक, नई नीति के अन्तर्गत घोषित डी०ई०पी० (Development of Export Promotion) तथा ई०पी०सी०जी० (Export Promotion of Capital Goods) जैसी योजनाओं एवं उनके लाभों को भी प्राप्त कर सकेंगे।

7. **विशेष आर्थिक क्षेत्रों का स्थान-निर्धारण** – इस नीति के प्रावधानों के अनुरूप, दो विशेष आर्थिक क्षेत्रों की स्थापना क्रमशः गुजरात राज्य के पीपवाव एवं तमिलनाडू के तूतीकोरन नगर में की गई है। इन क्षेत्रों की विशेषता यह होगी है कि इनमें इकाइयाँ निर्यात और आयात के नियमों से मुक्त होकर कारोबार कर सकेगी। इन क्षेत्रों में मशीन और कच्चा माल आयात शुल्क मुक्त होगा। यहाँ की इकाइयाँ, देश के अन्य क्षेत्रों से जो माल मँगवाएंगी, उन पर उन्हें अन्तिम उत्पाद शुल्क नहीं देना होगा। इन क्षेत्रों के लिए कम से कम 400 हेक्टेयर का क्षेत्र पर रखा जाएगा। सांताक्रुज, कांडला, विजाग और कोच्चि के विशेष प्रसंस्करण क्षेत्रों को भी विशेष निर्यात क्षेत्र में बदला गया है।

8. **ज्ञान आधारित उद्योगों के निर्यात को प्रोत्साहन** – ऐसे उद्योगों, जो औषधि, जैव प्रौद्योगिकी एग्रो रसायन से संबंधित है तथा मानवीय ज्ञान की खोज पर निर्भर रहते हैं, के उद्योगों को, निर्यात के एक प्रतिशत मूल्य के बराबर प्रयोगशाला उपकरण और प्रयोग के सामान 'शुल्क-मुक्त' रूप से आयात करने की छूट होगी। इसका प्रमुख उद्देश्य अनुसंधान एवं विकास को बढ़ावा देना है। इस नीति में, रेशमी सामानों के निर्यात को, निर्यात से पूर्व, सिल्क बोर्ड से निरीक्षण करवाने की व्यवस्था समाप्त कर दी गई है।

9. **कच्चे माल की उपलब्धता में व द्धि हेतु प्रयास** – केन्द्र सरकार ने, इस नीति के अन्तर्गत निर्यात के लिए कच्चे माल की उपलब्धता बढ़ाने के उद्देश्य से 'शुल्क-मुक्त प्रतिपूर्ति योजना को 5000 से अधिक वस्तुओं के लिए लागू किया है। इसमें, मानक आयात-निर्यात अनुपात के आधार पर कच्चा माल शुल्क मुक्त रूप से मँगवाया जा सकता है।

10. **अन्य आवश्यक तत्त्व** – एक द ष्टि- इस नवीन नीति के, कतिपय महत्त्वपूर्ण पहलू निम्न प्रकार द ष्टिगोचार होते हैं -

    (i) **नीति कार्यकालः वर्तमान आयात** – निर्यात नीति का कार्यकाल अप्रैल, 1997 से मार्च 2002 तक का है किन्तु सरकार परिस्थितिनुसार, प्रत्येक वर्ष, इसमें सुधार कर सकती है।

    (ii) **कोष की स्थापना** – राज्य सरकारों की ओर से किए जाने वाले निर्यात को प्रोत्साहित करने के लिए 250 करोड़ रुपये के एक विशेष कोष की स्थापना की गई है।

    (iii) **बिना लाइसेंस अनुमति** – एक ओर सिल्क के आयात को विशेष आयात लाइसेंस के अधीन अनुमति प्रदान की गई है तो दूसरी ओर, 10 वर्ष से कम प्रयोग में लाई गई पूँजीगत वस्तुओं को बिना लाइसेंस के आयात की अनुमति दी गई है। विशेष आयात लाइसेंस को 1 अप्रैल 2001 तक समाप्त किया जाना है।

    (iv) निर्यात संवर्द्धन पूँजीगत वस्तुएँ आयात योजना को पाँच प्रतिशत आयात शुल्क पर सभी औद्योगिक क्षेत्रों को सुलभ कराने का द ष्टिकोण, इस नीति में समाविष्ट किया गया है।

    (v) सभी बंदरगाहों पर 30 जून, 2000 से, समस्त कामकाज इलेक्ट्रोनिक आधार पर प्रारम्भ किया जाएगा।

    (vi) कर आयोग को और सशक्त किया जाएगा, जिससे कि आयात होने वाले और निर्यात किए जाने वाले माल पर प्राप्त होने वाले कर को वास्तविक रूप मे प्राप्त किया जा सके एवं भ्रष्टाचार को समाप्त किया जा सके।

    (vii) घरेलू उद्योग को शुल्क संरक्षण एंटी – डंपिंग, सब्सिडी विरोधी प्रणाली के तहत सुरक्षा जारी रखने की नीति को बरकरार रखा जाएगा।

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र और निजीकरण का प्रश्न
(Public Sector in India and the Issue of Privatisation)

भारत के वर्तमान आर्थिक ढांचे को प्रायः मिश्रित अर्थव्यवस्था के नाम से पुकारा जाता है। इस अर्थव्यवस्था में उत्पादन के दो क्षेत्र हैं: पहला, निजी क्षेत्र तथा दूसरा, सार्वजनिक क्षेत्र भारत

की अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र की उपस्थिति कोई नया प्रयोग नहीं है। पश्चिम में बहुत सारे पूँजीवादी देशों ने भी समय-समय पर राज्य ने वहाँ के आर्थिक जीवन में न केवल हस्तक्षेप किया है बल्कि उत्पादन और वितरण कार्यों को भी प्रत्यक्ष रूप से संपन्न किया है। विशेष रूप से उन देशों में जहां पर औद्योगीकरण प्रक्रिया देर से शुरू हुई, वहां पर आर्थिक विकास के क्षेत्र में राज्य की भूमि काफी महत्त्वपूर्ण रही है। जर्मनी, संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान में भी औद्योगीकरण में राज्य का योगदान कम नहीं है।

अर्थव्यवस्था का सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों का विभाजन
(Division of the Economy into Public and Private Sectors)

स्वतंत्रता प्राप्त होने के समय सार्वजनिक क्षेत्र की क्रियाएँ सिंचाई, संचार, रेल, बंदरगाह, प्रसारण तथा कुछ विभागीय औद्योगिकी संस्थानों तक सीमित थी। इसके बाद सार्वजनिक क्षेत्र का विकास बहुत तेजी के साथ हुआ है। निजी क्षेत्र को सरकार की नीति के विषय में भी किसी भी प्रकार का भ्रम न हो, इसीलिए 1948 तथा 1956 के औद्योगिक नीति संबंधी प्रस्ताओं में निजी और सार्वजनिक क्षेत्रों का स्थान निर्धारित किया गया। मोटे तौर पर भारी और बुनियादी उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र में रखा गया। कुछ उद्योग सरकारी क्षेत्र के साथ-साथ निजी क्षेत्र में भी स्थापित किए जा सकते हैं। इस श्रेणी में एल्युमिनियम लघु औजार, औजारी इस्पात, उर्वरक, कृत्रिम रबर, सड़क यातायात आदि 12 उद्योग रखे गए। निजी क्षेत्र के लिए उपभोक्ता माल बनाने वाले सभी उद्योग छोड़ दिए गए। औद्योगिक क्षेत्र के बाहर अधिकाश बैंक, वित्त निगम, रेलें, वायु सेवा आदि जहाँ सार्वजनिक क्षेत्र में है वहाँ संपूर्ण कृषि निजी क्षेत्र में हैं।

विचार करने वाली बात यह है कि इस्पात, भारी इंजीनियरिंग तथा इसी प्रकार के दूसरे बुनियादी उद्योग सार्वजनिक क्षेत्र के लिए क्यों चुने गए और उपभोज्य पदार्थों का उत्पादन करने वाले उद्योग निजी क्षेत्र के लिए क्यों छोड़ दिए गए। इस प्रश्न का उत्तर आर० के० हजारी ने देने का प्रयास किया है। उनके अनुसार भारत सरकार का 1955 के बाद औद्योगिक विकास कार्यक्रम दो मान्यताओं पर आधारित है। प्रथम, सामान्य उपभोग की वस्तुओं का उत्पादन करने वाले उद्योगों में अभिप्रेरित निवेश (induced investment) होता है। अतः आयात पर नियंत्रण लगाने से इन उद्योगों को जो संरक्षण मिलता है, उनसे इनकी लाभ कमाने की सामर्थ्य बढ़ती है औ इनसे इनका विकास होता है। द्वितीय, जिन उद्योगों की स्थापना के लिए विदेशी विनिमय की अधिक आवश्यकता पड़ती है, जिनकी तकनीक जटिल होती है।

अध्याय - 4

घाटे की वित्त व्यवस्था

(Deficit Financing)

वर्तमान शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश तक सन्तुलित और अतिरेक का बजट आदर्श बजट माना जाता था। परन्तु आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं में विकास प्रक्रिया की विभिन्न आर्थिक और कल्याणकारी क्रियाओं में राज्य का एक समर्थ अभिकर्ता के रूप में प्रवेश होने के कारण सम्प्रति उसके कार्यक्षेत्र में अत्यन्त प्रसार हो गया है। परिणामतः राजकीय व्यय की मात्रा उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है जिसकी प्रक्रिया में घाटे का बजट तैयार करना एक सामान्य तथ्य हो गया है। सरकार को अपने व्यय प्रस्तावों की पूर्ति हेतु विभिन्न स्त्रोतों से वित्त एकत्र करने पड़ते हैं और इसी प्रक्रिया में बजट में घाटा भी उत्पन्न हो जाता हैं घाटे का वित्त व्यवस्था सरकारी बजट के घाटे को पूरा करने की एक विधि है जिसका प्रतिपादन पश्चिमी पूँजीवादी अर्थव्यवस्थाओं को 1929-33 विश्वव्यापी महामंदी से उबारने के लिए वर्तमान शताब्दी के चौथे दशक में जे० एम० केन्स ने किया था।

घाटे की वित्त-व्यवस्था का अर्थ
(Meaning of Deficit Financing)

भारतीय संदर्भ में सरकार को बजट के राजस्व खाते और पूँजी खाते से आय प्राप्त होती है। बजट के राजस्व खाते में करों, सार्वजनिक उद्यमों, ब्याज एवं प्रशासनिक सेवाओं से प्राप्त आय तथा पूँजीगत खातें में आन्तरिक और बाह्य स्त्रोतों से प्राप्त ऋण, अल्प बचत, विदेशी सहायता, राज्य व केन्द्र-शासित सरकारों द्वारा ऋण भुगतान आदि की प्राप्तियाँ सम्मिलित हैं। जब सरकार की समस्त स्त्रोंतो (राजस्व बजट और पूँजीगत बजट) से मिलने वाली आय और विभिन्न मदों पर किये जाने वाले व्यय बराबर होते हैं तो उसे संतुलित बजट कहा जाता है। इसके विपरीत जब कुल राजकीय व्यय समस्त स्त्रोतों से प्राप्त आय से अधिक हो जाता है तो इसे घाटे का बजट कहते हैं। बजट में घाटे के इस अन्तराल को पूरा करने की प्रक्रिया घाटे की वित्त व्यवस्था कहलाती है। घाटे की वित्त व्यवस्था वह विशेष वित्त विधि है जिसके द्वारा सरकार प्रस्तावित सार्वजनिक आय की तुलना में सार्वजनिक व्यय के आधिक्य को पूरा करने के लिए संसाधन एकत्र करती है। भारत में घाटे की वित्त व्यवस्था उस अवस्था की सूचक है जब किसी बजट प्रस्ताव के आय और व्यय के अन्तर को पूरा करने के लिए सरकार पिछले नकद शेषों को कम करके या केन्द्रीय बैंक से ऋण लेकर या अतिरिक्त करेंसी छापकर संसाधनों का निर्माण करती है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारूप के अनुसार "घाटे की वित्त व्यवस्था शब्द का प्रयोग बजट के घाटे द्वारा कुल राजकीय व्यय में प्रत्यक्ष व द्धि को प्रदर्शित करने के लिए किया जाता है। ये

घाटे चाहे आय खाते में हों या पूँजी खाते में, ऐसी नीति अपनाने का सार यही है कि सरकार अपनी उस आय की तुलना में अधिक व्यय करती है जो उसे करारोपण, सार्वजनिक अद्यम, ऋण, बचत तथा अन्य मदों से उपलब्ध होती है"।

विकसित अर्थव्यवस्थाओं में घाटे को पूरा करने के लिए जनता और बैंकों से ऋण लिया जाता है। ऋण ग्रहण की इस प्रक्रिया का प्रभाव मुद्रापूर्ति में व द्धि के रूप में पड़ता है। परन्तु घाटे की वित्त व्यवस्था से आंशय नवीन मुदा का स जन नहीं होता है। इस कारण पश्चिमी विकसित अर्थव्यवस्थाओं में घाटे की वित्त व्यवस्था से आशय नवीन मुद्रा के स जन से नहीं है। इसके विपरीत भारतीय अर्थव्यवस्था में घाटे की वित्त व्यवस्था का भिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है। भारत में पूर्व संचित नकद शेषों के अभाव में घाटे की वित्त व्यवस्था की व्यावहारिक परिणति में बजट प्रक्रिया में जब प्रस्तावित सार्वजनिक व्यय से सार्वजनिक आय की मात्रा कम पड़ जाती है। तब सरकार केन्द्रीय बैंक से इस घाटे को पूरा करने के लिए ऋण लेती है। केन्द्रीय बैंक ऐसी दशा में अतिरिक्त मुद्रा स जित करता है जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति बढ़ जाती है, जिसे सरकार सार्वजनिक व्यय प्रस्तावों को पूरा करने के लिए व्यय करती है। इस प्रकार भारत में घाटे की व्यवस्था का संबंध नवीन मुद्रा स जित कर कुल मुद्रा की पूर्ति की व द्धि से है।

घाटे की वित्त व्यवस्था का औचित्य
(Rationale of Deficit Financing)

घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा निर्मित अतिरिक्त मुद्रा सरकार की वस्तुओं ओर सेवाओं को अविलम्ब प्राप्त कर सकने की क्षमता बढ़ा देती है। व्यय कार्यक्रमों को पूरा करने का यह अपेक्षाकृत अधिक नवीन स्त्रोत है। केन्सीय अर्थशास्त्र के विकास के बाद इस संकल्पना का प्रसार और महत्त्व अधिक बढ़ गया है। सिद्धान्ततः घाटे की वित्त व्यवस्था का प्रयोग मुख्य रूप से तीन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। प्रथम, विकसित देशों में मंदी की अवस्था में जब समर्थ माँग की कमी हो अथवा औद्योगिक इकाइयों में अप्रयुक्त उत्पादन क्षमता विद्यमान हो तो घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा लेकर उत्पादन, रोजगार एवं आय में व द्धि की जा सकती है। द्वितीय, किसी आकस्मिक घटना, युद्ध, बाड़, अकाल आदि का सामना करने के लिए अतिरिक्त धनराशि प्राप्त करने हेतु घाटे की वित्त व्यवस्था का सहारा लिया जाता है। त तीय, किसी अल्पविकसित या विकासशील अर्थव्यवस्था, जहाँ अप्रयुक्त व अल्पप्रयुक्त उत्पादक संसाधन विद्यमान है, को विकासित करने तथा उत्पादन रोजगार, और आय बढ़ाने के लिए घाटे की वित्त व्यवस्था का प्रयोग किया जाता है।

भारत में घाटे की वित्त व्यवस्था का आधार मुख्य रूप से आर्थिक विकास की दर तीव्र करना रहा है। योजना आरम्भ के समय यह अनुभव किया गया कि देश में अप्रयुक्त उत्पादन क्षमता विद्यमान है। इन अतिरिक्त भौतिक संसाधनों और अल्प रोजगार व बेरोजगार श्रम शक्ति को उत्पादक कार्य में लगाने के लिए इसे अपरिहार्य माना गया। यह विचार किया गया है कि देश की अधिकांश श्रमशक्ति कृषि क्षेत्र से अपने जीवन निर्वाह की आय कमाती है। यहाँ सघन प्रच्छन्न बेरोजगारी की दशा विद्यमान है। यदि इन श्रमिकों को कृषि क्षेत्र से विनिर्माण क्षेत्र में हस्तांतरित कर दिया जाय, तो इससे निर्माण क्षेत्र में उत्पादन बढ़ जायेगा, जबकि कृषि उत्पादन में कोई कमी न होगी। औद्योगिक विकास से कृषि को भी गति मिलेगी। इन विनियोग कार्यक्रमों को पूरा

करने के लिए वित्त पूर्ति, घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा अतिरिक्त मुद्रा स जित करके सरकार विकास कार्यों को पूरा कर सकती है। यह भी विचार किया गया कि घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा स जित मुद्रा में मुद्रापूर्ति बढ़ेगी। फलतः लोग पूर्व स्तर के तुल्य वस्तुयें और सेवायें न खरीद सकेंगे। कीमत व द्धि जनित कम खरीद के कारण अवशिष्ट संसाधनों के उत्पादक कार्यों में प्रयुक्त होने से उत्पादन की मात्रा बढ़ने पर मुद्रा की मात्रा और उपलब्ध वस्तुओं तथा सेवाओं की मात्रा का असंतुलन समाप्त हो जायेगा। फलतः कीमतों में अनुचित व द्धि भी न हो सकेगी। इस परिकल्पना की प ष्ठभूमि में घाटे की वित्त व्यवस्था भारत मे आर्थिक विकास के लिए साधन के रूप में अपनायी गयी है। यद्यपि कतिपय वर्षों में युद्ध और अकाल का सामना करने के लिए भी घाटे की वित्त व्यवस्था की गयी, परन्तु आकस्मिक जरूरत को पूरा करने के लिए ही यह व्यवस्था थी। मुख्य रूप से तो घाटे की वित्त व्यवस्था का आधार आर्थिक विकास की दर तीव्र करना ही रहा है।

भारत में घाटे की वित्त व्यवस्था
(Deficit Financing in India)

भारत सरकार द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1947-51 की अवधि में अपने जमा नकद कोषों का उपयोग किया गया। इस अवधि में सरकार ने अपने जमा नकद कोष से 105 करोड़ रुपये व्यय किये। इसके पश्चात् सभी पंचवर्षीय योजनाओं में घाटे के बजट बनाये जाते रहे हैं जिसकी पूर्ति नव-निर्मित मुद्रा द्वारा की जाती रही है। प्रथम पंचवर्षीय योजना से लेकर अब तक की सभी पंचवर्षीय योजनाओं में घाटे की वित्त व्यवस्था की जाती रही है। यद्यपि सभी पंचवर्षीय योजनाओं में घाटे की वित्त व्यवस्था की जाती रही है। यद्यपि सभी पंचवर्षीय योजनाओं में घाटे की वित्त व्यवस्था प थक्-प थक् मात्रा में रही है। परन्तु सामान्य विचलनों सहित उसमें व द्धि की प्रव त्ति रही है। योजनाकाल में कुछ ऐसी विशेष परिस्थितियाँ उत्पन्न होती रही हैं जिनके कारण विभिन्न योजना प्रतिवेदनों में प्रस्तावित राशि से अधिक विनियोग करना पड़ा है। चीन और पाकिस्तान के आक्रमण ने त तीय पंचवर्षीय योजना में, 1966-67 के महान् सूखे ने वार्षिक योजनाओं में, पाकिस्तान के आक्रमण और बांगला देश के शरणार्थियों की समस्या ने चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में घाटे की वित्त व्यवस्था को प्रस्तावित राशि से अधिक बढ़ाने के लिए बाध्य कर दिया। वर्ष 1951-52 से 1995-96 तक घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा अत्याधिक अतिरिक्त मुद्रा निर्मित की गई।

विभिन्न योजनाओं में प्रस्तावित और वास्तविक घाटे का वित्त व्यवस्था का विवरण अग्रलिखित तालिका 4.1 में दिया गया है जिससे यह प्रतीत होता है कि योजनागत वास्तविक व्यय का एक बहुत बड़ा भाग घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा प्राप्त किया गया है। तालिका से यह भी स्पष्ट होता है कि घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा प्रभूत धनराशि एकत्र की गयी। इसके प्रमुख कारण के रूप में विकास के लिए संसाधन एकत्र करने की अभिलाषा तो रही ही है।, साथ-साथ सरकार के गैर विकासात्मक व्यय में बहुधा तीव्र गति से व द्धि हुई राजकीय पूँजी विनियोग के साथ राजकीय कर्मचारियों के वेतनमान और महँगाई भत्ते में व द्धि के कारण सरकार का खर्च उत्तरोत्तर बढ़ता गया। करवंचन और कृषि आय पर करों का अभाव अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक आय की प्राप्ति में महत्त्वपूर्ण बाधक तत्व है। खनिज तेल की कीमतों में व द्धि के कारण हमें अपने संसाधनों का बहुत बड़ा भाग इनके आयात के लिए देना पड़ता है। युद्ध और अकाल के वर्षों में अत्याधिक अतिरिक्त संसाधन एकत्र करने पड़े। इन सब तत्वों का संग्रथित परिणाम यह हुआ कि संसाधन एकत्र करने के लिए सभी योजनाओं में भारी मात्रा में घाटे की वित्त व्यवस्था करनी पड़ी।

छठी पंचवर्षीय योजनाकाल में कई वर्षों में वास्तविक घाटे की वित्त व्यवस्था अनुमानित स्तर से अधिक रही है, वर्ष 1980-81 में घाटे की वित्त व्यवस्था की कुल राशि 2700 करोड़ रुपये थी। 1981-82 के बजट में 1539 करोड़ रुपये के घाटे का अनुमान लगाया गया था। परन्तु घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा 1700 करोड़ रुपये की राशि स जित की गयी। इसी प्रकार 1982-83 और 1983-84 में घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा क्रमशः 1935 करोड़ तथा 1695 करोड़ रुपये की राशि स जित की गयी। इससे यह स्पष्ट होता है कि छठी योजना में घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा प्रस्तावित 5000 करोड़ रुपये से अधिक राशि की घाटे की वित्त व्यवस्था इसके प्रथम तीन वर्षों में ही कर ली गयी थी। यह अनुमान है कि छठी योजना में कुल 15659 करोड़ रुपये की घाटे की वित्त व्यवस्था की गयी। सातवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्र में हुए कुल व्यय का लगभग 15 प्रतिशत भाग घाटे की वित्त व्यवस्था से आया यद्यपि यह प्रतिशत छठीं योजना से कम है तथापि यह राशि अत्याधिक है। आठवीं योजना में इसमें कमी का अनुमान है।

तालिका 4.1

भारत में घाटे की वित्त व्यवस्था

(करोड़ रु. में)

योजनाकाल	योजना में वास्तविक व्यय	घाटे की वित्त व्यवस्था	योजना व्यय में घाटे की वित्त व्यवस्था का प्रतिशत
प्रथम योजना	1960	333	17.0
द्वितीय योजना	4672	948	20.4
त तीय योजना	8577	1133	13.2
वार्षिक योजनाएं	6756	682	10.1
चतुर्थ योजना	16160	2060	12.8
पाँचवीं योजना	40712	3560	9.8
छठी योजना	11082	16684	16.0
सातवीं योजना	225004	34669	15.4
आठवीं योजना	434100	20000	5.0

Source : Statistical outline of India and Eighth Five Year Plan.

घाटे की वित्त व्यवस्था का प्रभाव
(Effects of Deficit Financing)

भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1951 से नियोजित विकास प्रक्रिया अपनाई गयी जिसके लिए अतिरिक्त वित्तीय साधन एकत्र करने के द ष्टिकोण से घाटे की वित्त व्यवस्था की गयी। प्रत्येक योजना में उत्तरोत्तर बढ़ती हुई राशि अर्थव्यवस्था में विनियोग की गयी। विनियोग के वित्त व्यवस्था

के अभिन्न साधन के रूप में घाटे की वित्त व्यवस्था भी बढ़ाई गयी। घाटे की वित्त व्यवस्था के प्रभावों को निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है -

1. **आर्थिक विकास में योगदान** – घाटे की वित्त व्यवस्था से स जित मुद्रा ने विनियोग व द्धि में योगदान किया है। इससे अर्थव्यवस्था में व्याप्त दीर्घकालीन गतिरोध की अवस्था समाप्त हुई। अर्थव्यवस्था के विकास के विभिन्न भौतिक सूचकों यथा खद्यान्न, ऊर्जा, परिवहन, उर्वरक आदि में उल्लेखनीय प्रगति हुई। प्रति व्यक्ति आवश्यक वस्तुओं और सेवाओं की उपलब्धि में व द्धि हुई। आज हमारे पास प्रौद्योगिकी और उत्पादन कौशल के वे साधन उपलब्ध हैं जिसकी कल्पना भी हम योजना पूर्व नहीं कर सकते थे। नियोजन के पूर्व हम सामान्य उपयोग की साधारण वस्तुयें भी विदेशों से आयात करते थे। आज स्थिति यह है कि औद्योगिक द ष्टि से विश्व के विकसित राष्ट्रों में भारत का स्थान सातवाँ हो गया है। निर्यात व्यापार की मात्रा में व द्धि के साथ उसकी सूची में नवीन वस्तुयें जुड़ी हैं। खेती की मानसून पर निर्भरता कम हुई है और अब खेती मात्र जीवन निर्वाह का व्यवसाय न होकर लाभपूर्ण व्यवसाय के रूप में व्यवहृत होने लगी है। निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ा है। अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि समाजवादी ढाँचे के परिप्रेक्ष्य में सार्वजनकि क्षेत्र का अधिक प्रसार हुआ है और इसने निजी क्षेत्र को अधिक विकसित होने के लिए आधारिक अवस्थापना निर्मित कर दी है। यदि विकास के इन भौतिक सूचकांकों की प्राप्ति में सार्वजनिक व्यय की भूमिका निर्णायक रही है, तो घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा स जित मुद्रा (जो कुल व्यय का एक प्रमुख अंश है) का इन भौतिक सूचकांकों की प्राप्ति में निश्चित ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन धनात्मक परिणामों के साथ-साथ घाटे की वित्त व्यवस्था का प्रभाव अर्थव्यवस्था पर हानिकारक भी सिद्ध हुआ है। घाटे के वित्त व्यवस्था के प्रमुख हानिकारक प्रभावी को निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है। घाटे की वित्त व्यवस्था ने अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी दशायें उत्पन्न की है। इससे काला बाजारी और आय तथा संपित्त की असमानतायें बढ़ी हैं।

2. **मुद्रा की पूर्ति में व द्धि** – घाटे की वित्त व्यवस्था अर्थव्यवस्था में कुल मुद्रा आपूर्ति में व द्धि का एक सशक्त माध्यम है। इसके कारण अर्थव्यवस्था में कुल मुद्रा की आपूर्ति में अत्यन्त तेजी से व द्धि हुई। मुद्रा पूर्ति की व द्धि दर अर्थव्यवस्था में वस्तुओं और सेवाओं की उत्पादन व द्धि दर से अधिक हो गयी। नियोजन काल में कुल मुद्रागत साधनों M_3 (चलन में करेन्सी, बैंकों में माँग जमा, बैंकों में मियादी जमा और रिर्जव बैंक के पास अन्य) में उत्तरोत्तर व द्धि होती है। कुल मुद्रागत साधनों की मात्रा 1950-51 में 2020 करोड़ रुपये थी जोकि 1960-1961 में बढ़कर 2870 करोड़ रुपये हो गयी। इसके पश्चात् मुद्रा आपूर्ति में अधिक द्रुतगति से व द्धि हुई। वर्ष 1984-85 में कुल मुद्रागत साधन M_3 बड़कर 101815 करोड़ रुपये हो गया। एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह रही है कि मुद्रापूर्ति की व द्धि दर योजना काल में क्रमशः बढ़ती गयी है। योजना काल में शुद्ध राष्ट्रीय आय की व द्धि औसतन 3.8 प्रतिशत रही है। यदि केवल 1970-71 के दशक पर ही विचार किया जाए तो भी यह स्पष्ट हो जाता है कि वास्तविक राष्ट्रीय आय की व द्धि की तुलना में मुद्रा पूर्ति में अत्यन्त तीव्र दर से व द्धि हुई है।

3. **कीमत स्तर में व द्धि** – घाटे की वित्त व्यवस्था के कारण मुद्रापूर्ति में अपेक्षाकृत अधिक तीव्रगति से व द्धि होने के कारण अर्थव्यवस्था में स्फीतिकारी स्थितियाँ उत्पन्न हो गयीं।

कीमत निर्धारण की यदि विभिन्न क्लिष्टताओं को छोड़ दिया जाय तो भी यह कहा जा सकता है कि कीमत स्तर मुद्रा का वस्तुओं से अनुपात है। किसी वस्तु की कीमत उसकी मांग और पूर्ति के शेष द्वारा निर्धारित होती है। यही सामान्य नियम अर्थव्यवस्था में समस्त वस्तुओं और सेवाओं के संदर्भ में भी लागू होता है, अर्थात अर्थव्यवस्था में कुल वास्तविक उपज को समय पूर्ति और कुल मुद्रा पूर्ति को समय माँग माना जा सकता है। जब अर्थव्यवस्था में समय माँग (कुल मुद्रा पूर्ति) वहाँ उपलब्ध कुल वस्तुओं और सेवाओं (समग्र पूर्ति) से अधिक हो जाती है तो कीमतों में व द्धि और इसके विपरीत कीमतों में कमी आरम्भ हो जाती है। एक सरल उदाहरण लें। समय पूर्ति और समग्र माँग के प्रतीक के रूप में माना अर्थव्यवस्था में क्रमशः 100 'ल' वस्तु और 100 रुपये विद्यमान हैं अब वस्तु की प्रति इकाई कीमत 1.0 रुपये होगी। यदि रुपये (माँग के आधार) की मात्रा बढ़ती जाय और वस्तु की मात्रा कम होती जाय या अपरिवर्तित रहे या रुपये की मात्रा व द्धि की तुलना में वस्तुओं की मात्रात्मक व द्धि कम हो तो वस्तु की कीमत में व द्धि अवश्यम्भावी है। यहाँ जो तथ्य समय पूर्ति के प्रतीक 'ल' वस्तु के बारे में सत्य हैं, वही अन्य वस्तुओं ओर सेवाओं के बारे में भी सत्य है। हम लोगों ने घाटे की वित्त व्यवस्था के माध्यम से करोड़ों रुपये के नोट छाप डाले। फलतः समग्र माँग और पूर्ति में असंतुलन उत्पन्न हो गया जिससे कीमतें अत्याधिक बढ़ने लगीं। यदि मुद्रापूर्ति और वास्तविक राष्ट्रीय आय की व द्धि पर विचार किया जाय तो इस असंतुलन का वीभत्स चित्र साफ दिखाई पड़ता है। आधार वर्ष 1961-61 के आधार पर प्रथम पंचवर्षीय योजना में कीमतों में कमी आयी। इस अवधि में मुद्रा पूर्ति की व द्धि की तुलना में वास्तविक राष्ट्रीय आय की व द्धि अधिक रही है। इसके बाद कीमतों में तेजी से व द्धि हुई। द्वितीय योजना में सामान्य कीमत स्तर में 35 प्रतिशत, त तीय योजना में 32 प्रतिशत, वार्षिक योजनाओं में 26 प्रतिशत और चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में 54 प्रतिशत की व द्धि हुई 1970-71 के दशक में कीमत व द्धि चिन्ताजनक ही रही। सभी वस्तुओं के थोक कीमत निर्देशांक 1994-95 के 100 की तुलना में 1995-96 में बढ़कर 275 हो गये।

4. **गैर-आवश्यक उपभोग में व द्धि** — घाटे की वित्त व्यवस्था के परिणामस्वरूप जो अतिरिक्त क्रय शक्ति के लोगों के पास पहुँची, उसके विविध उपयोग हुए। जो लोग इनमें से भूखे थे, उन्होंने इसे आवश्यक उपयोग वस्तुओं पर खर्च किया। उपयोगी वस्तुओं का तदनुरूप उत्पादन न बढ़ने के कारण उनकी कीमतें बढ़ी। इससे सामान्य जीवन स्तर यापन का व्यय बढ़ गया और बचत स्तर कम हो गयी। निम्न आय स्तर की स्थिति मे अतिरिक्त आय की प्राप्ति आवश्यक उपभोग वस्तुओं के प्रयोग को बढ़ा देती है। दूसरी ओर सम्पन्न आय वर्ग में जिनकी आय बढ़ी? उसका अधिकांश भाग उनके द्वारा आरामदायक और विलासिता की वस्तुओं पर व्यय किया गया। इससे उनकी कीमते और उन वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के प्रति विनियोग अधिक तेजी से बढ़ा, जबकि उपेक्षित यह था कि उन वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन के प्रति विनियोग बढ़ाया जाता जिनका उपयोग जन-सामान्य या कम आय वर्ग के लोग करते हैं। आज के बाजार में आरामदायक एवं विलासिता की विभिन्न वस्तुयें सर्वत्र बहुसुलभ है। लेकिन अनिवार्यताओं की कमी है। इसका मुख्य कारण अतिरिक्त स जित मुद्रा का प्रमुख भाग सम्पन्न वर्ग के हाथों में पहुँचता रहा है। कीमत स्तर में व द्धि के कारण विनियोग राशि की क्रय शक्ति में उत्तरोत्तर कमी आई जिसके लिए पूर्वनिर्धारित विनियोग को लक्ष्य प्राप्ति हेतु बढ़ाना पड़ा। इसके परिणामस्वरूप

विकास की अन्य मदों की प्रक्रिया के निष्पादन में कठिनाई उत्पन्न हुई अथवा यह कहा जा सकता है कि समग्र आर्थिक विकास प्रक्रिया हतोत्साहित हुई।

इस विश्लेषण से यह प्रतीत होता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में घाटे की वित्त व्यवस्था ने जहाँ एक ओर उत्पादन व द्धि में सहायता की है, वहीं दूसरी ओर कीमत व द्धि के माध्यम से इसने जन-सामान्य का जीवन-यापन अत्यन्त दुष्कर कर दिया है। वस्तुतः आज घाटे के वित्त व्यवस्था, ऊँची मुद्रा पूर्ति, व द्धिमान कीमतें और फिर घाटे की वित्त व्यवस्था, का एक दुष्चक्र बन गया है। परन्तु घाटे की वित्त व्यवस्था के अपेक्षाकृत अधिक सघन दुष्परिणामों के बावजूद सतत् घाटे की वित्त व्यवस्था की जा रही है। 1995-96 के बजट में कुल 5000 करोड़ रुपये की राशि घाटे की वित्त व्यवस्था द्वारा स जित की गयी। वर्ष 1996-97 के बजट में 6578 करोड़ रुपये के बजट घाटे का अनुमान है। इसलिए प्रश्न उठता है कि फिर यह घाटे की वित्त व्यवस्था क्यों? वस्तुतः इस पर लगाये जाने वाले प्रमुख दोष स्फीतिकारी दशाओं के कारण है। यद्यपि कीमत व द्धि पर इसका महत्त्वपूर्ण प्रभाव अवश्य रहा है। लेकिन इसके साथ-साथ अन्य घटक, यथा कृषि व औद्योगिक उत्पादनों में से विभिन्न परियोजनाओं और उद्योगों में निहित क्षमता का उपयोग नहीं हो पा रहा है जिससे उत्पादन व द्धि की क्षमता और सम्भावना होते हुए भी उत्पादन नहीं बढ़ रहा है। अब यह आवश्यक है कि प्रथम, घाटे की वित्त व्यवस्था उत्तरोत्तर घटाई जाये। इसको एक सुरक्षित सीमा तक ही रखा जाये। द्वितीय घाटे की वित्त व्यवस्था से स जित अतिरिक्त मुद्रा का समस्त भाग और कुल राजकीय व्यय का अधिकांश भाग उत्पादन कार्यों पर खर्च किया जाये। तीसरे, घाटे की वित्त व्यवस्था से स जित मुद्रा अनिवार्यतः ऐसी योजनाओं पर खर्च किया जाये जिसकी परिपक्वता अवधि अत्यन्त कम हो, ताकि मुद्रा पूर्ति के पश्चात् उत्पादन शीघ्र बढ़े। इसे माँग एवं पूर्ति में वांछित संतुलन शीघ्र स्थापित किया जा सकेगा। इससे कीमत स्तर में धीरे-धीरे व द्धि होगी जो आर्थिक विकास के लिए लाभदायक होती है।

अध्याय - 5

बजट प्रक्रिया

(Budget Process)

'बजट' शब्द फ्रांसीसी भाषा के शब्द 'बूजट' (Bougette) से लिया गया है, जिसका अर्थ है चमड़े का बैग या थैला। आधुनिक अर्थ में इस शब्द का प्रयोग सबसे पहले इंग्लैण्ड में 1733 ई० में किया गया जबकि वित्तमंत्री ने अपनी वित्तीय योजना को लोकसभा के सम्मुख प्रस्तुत किया तो पहली बार व्यंग के रूप में यह कहा गया कि वित्तमंत्री ने अपना 'बजट खोला' तभी से सरकार की वार्षिक आय तथा व्यय के वित्तीय विवरण (Financial Statement) के लिये इस शब्द का प्रयोग होने लगा।

बजट की परिभाषा
(Definition of Budget)

कुछ लेखकों ने बजट की परिभाषा अनुमानित आमदनियों तथा खर्चों के केवल एक विवरण के रूप में की है। अन्य लेखकों ने बजट शब्द को राजस्व तथा विनियोजन अधिनियमों (Revenue and Appropriation Act) का पर्यायवाची कहा है। Lerory Beaulieu ने लिखा है कि "बजट एक निश्चित अवधि के अन्तर्गत होने वाली अनुमानित प्राप्तियों तथा खर्चों का एक विवरण है, यह एक तुलनात्मक तालिका है जिसमें उगाही जाने वाली आमदनियों तथा किये जाने वाले खर्चों की धनराशियाँ दी हुई होती है; इसके भी अतिरिक्त, यह आय का संग्रह करने तथा खर्च करने के लिये उपयुक्त प्राधिकारियों द्वारा दिया गया एक आदेश अथवा अधिकार हैं" Rene Stourm ने बजट की परिभाषा इस प्रकार की है कि "यह एक लेख-पत्र है जिसमें सरकारी आय तथा व्यय की एक प्रारम्भिक अनुमोदित योजना दी हुई होती है।" जबकि G.Jeze ने बजट का वर्णन इस प्रकार किया है "यह सम्पूर्ण सरकारी प्राप्तियों (Receipts) तथा खर्चों का एक पूर्वानुमान (Forecast) तथा (Estimate) है, और कुछ प्राप्तियों का संग्रह करने तथा कुछ खर्चों को करने का एक आदेश है। उपरोक्त परिभाषायें कम से कम दो प्रकार से दोषपूर्ण हैं। सर्वप्रथम इनमें यह नहीं कहा गया है कि बजट में विगत संक्रियाओं (Operations), वर्तमान दशाओं तथा साथ ही साथ भविष्य के प्रस्तावों से संबंधित तथ्यों का उल्लेख होना चाहियें। दूसरे, इन परिभाषाओं में बजट तथा 'राजस्व व विनियोजन अधिनियमों' के बीच कोई भेद नहीं किया गया है। इन दोनों में भेद किया जाना चाहियें। बजट तो प्रशासन के कार्य का प्रतिनिधित्व करता है और राजस्व व नियोजन अधिनियम व्यवस्थापिका अथवा विधान-मण्डल में कार्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

बजट में, एकीकृत तथा व्यापक रूप में, उन सभी तथ्यों का समावेश किया जाना चाहिये, जोकि सरकार के विगत तथा भावी व्यय और राजकोष (Treasury) की आय तथा वित्तीय स्थिति से

संबंध रखते हों। डब्ल्यू० एफ० विलोबी के अनुसार, "बजट सरकार की आमदनियों तथा खर्चों का केवल अनुमान मात्र ही नहीं है, बल्कि इससे कुछ अधिक हैं। वह (बजट) एक ही साथ रिपोर्ट, अनुमान तथा प्रस्ताव है अथवा उसे ऐसा होना चाहिये। यह एक ऐसा लेखपत्र (Document) है, अथवा होना चाहिए जिसके द्वारा मुख्य कार्यपालिका धन प्राप्त करने वाली तथा व्यय की स्वीकृति देने वाली सत्ता के समक्ष इस बात का प्रतिवेदन करती है कि उसने और उसके अधीनस्थ कर्मचारियों ने गत वर्ष प्रशासन का संचालन किस प्रकार किया; लोक कोषागार की वर्तमान स्थिति क्या है? और इन सूचनाओं के आधार पर वह आगामी वर्ष के लिए अपने कार्यक्रम की घोषणा संकेत करता है जिसके द्वारा कि एक सरकारी अभिकरण की वित्तीय नीति का निर्माण किया जाता है और यह बतलाती है कि उस कार्यक्रम के निष्पादन के लिए धन की व्यवस्था किस प्रकार की जाएगी।"

इस प्रकार, बजट वित्तीय कार्यों की एक योजना है। एक अन्य विद्वान ने बजट-पद्धति का वर्णन इस प्रकार किया है कि "बजट-पद्धति एक ऐसी व्यवस्थित रीति है जिसके द्वारा भूत (Past) तथा वर्तमान से सूचनायें एकत्र की जाती हैं और तदनन्तर यह प्रतिवेदन किया जाता है कि वे योजनायें किस प्रकार क्रियान्वित की गई।

प्रस्तावित बजट का स्वरूप
(Form of the Proposed Budget)

प्रथम भाग (Part-I)

(1) बजट में उन सभी विभागों तथा अभिकरणों के प्रशासन, संचालन तथा परिपालन के लिए किए जाने वाले सभी प्रस्तावित खर्चों का समावेश किया जाना चाहिए जिनके लिए कि व्यवस्थापिका या विधान-मण्डल (Legislature) द्वारा विनियोजन (Appropriation) किये जाने हों।

(2) पूँजीगत प्रयोजनाओं (Capital Projects) पर किये जाने वाले सभी खर्चों के अनुमान सम्मिलित किए जाने चाहिए।

द्वितीय भाग (Part-II)

आय के स्रोत (Sources of Income) - कराधन (Taxation), उधार (Borrowing); घाटे की वित्त व्यवस्था (Deficit Financing) के द्वारा व कागजी मुद्रा जारी करके।

बजट के आर्थिक तथा सामाजिक परिणाम
(Economic and Social Implications of Budget)

आधुनिक बजट राष्ट्र के आर्थिक तथा सामाजिक जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग अदा करता है, प्रारम्भिक काल में, चूंकि बजट सरकार की अनुमानित प्राप्तियों एवं खर्चों का एक विवरण मात्र था, अतः इसके केवल दो उद्देश्य थे- प्रथम सरकार को यह निश्चित करना होता था कि कार्यकुशलता के एक उपयुक्त स्तर पर अपनी आवश्यक क्रियाओं के संचालन करने के लिए जो थोड़े से धन की आवश्यकता है उस धन को वह किस प्रकार कर दाताओं की जेब से निकाले। दूसरे, विधान मण्डल को धन के बारे में स्वीकृति देनी होती थी, अतः सरकार यह जानना चाहती थी कि धन किस प्रकार व्यय किया जाये। इस प्रकार, प्रबंध नीति (Laissez Faire) के दिनों

में बजट आय-व्यय का केवल एक विवरण मात्र था। आधुनिक राष्ट्र और विशेषकर एक कल्याणकारी राज्य का एक विशिष्ट लक्षण सरकार की क्रियाओं की मात्रा तथा विविधता में व द्धि होना है। सरकार की क्रियाओं में तेजी से व द्धि हो रही है और सामाजिक जीवन के लगभग सभी पहलुओं में उनका विस्तार हो रहा है। सरकार अब एक ऐसे अभिकरण के सद श है जिसका कार्य ठोस एवं निश्चयात्मक क्रियाओं तथा नागरिकों के सामान्य कल्याण में व द्धि करना है। सरकार द्वारा बजट बनाने का कार्य उन बड़ी प्रक्रियाओं में से एक है जिनके द्वारा सार्वजनिक साधनों के उपयोग की योजना बनाई जाती है और उनका नियन्त्रण किया जाता है। अतः बजट सरकार की नीति का एक महत्वपूर्ण वक्तव्य तथा सरकार के उन कार्यक्रमों के स्पष्टीकरण का एक प्रमुख अस्त्र बन गया है जोकि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था (National Economy) के सरकारी तथा गैर सरकारी, दोनों ही क्षेत्रों में फैले होते हैं। बजट विकास तथा उत्पादन (Production) को, आय की मात्रा तथा वितरण को, और मानवीय शक्ति एवं सामग्री की उपलब्धता को प्रभवित करता है। कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की अर्थव्यवस्था में बजट एक महत्त्वपूर्ण योग देता है। अतः प्रत्येक नागरिक इस बात पर इच्छुक होता है कि वह बजट से सरकार की विभिन्न क्रियाओं एवं कार्यक्रमों की प्रकृति तथा लागत से संबंधित बातें ज्ञात करे। बजट से नागरिक यह जान सकते हैं कि सरकार की अनेक योजनाओं तथा कार्यक्रमों से उन्हें क्या-क्या लाभ प्राप्त होते जा रहे हैं। और उन्हें कितना-कितना कर अदा करना पड़ेगा? बजट के द्वारा नागरिकों की विभिन्न रुचियों (Interests) उद्देश्यों, इच्छाओं तथा आवश्यकताओं का एक कार्यक्रम के रूप में एकत्रीकरण किया जाता है जिससे कि नागरिक सुरक्षा, सुख व सुविधा के साथ अपना जीवन व्यतीत कर सकें। बजट में उल्लिखित सरकार की कराधान नीति (Taxation Policy) के द्वारा, यह हो सकता है कि वर्गीय विभिन्नताओं तथा असमानताओं को कम करने का प्रयत्न किया जाये। बजट में दी हुई सरकार की उत्पादन नीति का उद्देश्य निर्धनता, बेरोजगारी तथा धन के असमान वितरण को दूर करना हो सकता है। इस प्रकार राष्ट्र के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन पर बजट का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है।

बजट के महत्त्वपूर्ण सिद्धांत
(Important Principles of Budget)

बजट की परिभाषा और नागरिकों के सामजिक जीवन में उसके महत्त्व का विवेचन करने के पश्चात् यह आवश्यक है कि बजट के महत्त्वपूर्ण सिद्धांतों का ज्ञान प्राप्त किया जाये। बजट के महत्त्वपूर्ण सिद्धांत हैंः -प्रचार, स्पष्टता, व्यापकता, एकता, नियतकालीन, परिशुद्धता और सत्य शीलता।

अब हम बजट के इन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों की क्रमशः विवेचना करते हैं :

(1) **प्रचार (Publicity) –** सरकार के बजट की अनेक चरणों (Stages) में गुजरना होता है। उदाहरण के लिये, कार्यपालिका द्वारा व्यवस्थापिका के समक्ष बजट की सिफारिश, व्यवस्थापिका उस पर विचार तथा बजट का प्रकाशन व क्रियान्वयन। इन विभिन्न चरणों के द्वारा बजट को सार्वजनिक बना देना चाहिए। बजट पर विचार करने के लिए व्यवस्थापिका (Legislature) के गुप्त अधिवेशन नहीं होने चाहिए। बजट का प्रचार होना अत्यन्त आवश्यक है जिससे कि देश की जनता तथा समाचार पत्र विभिन्न करों तथा व्यय की विभिन्न योजनाओं के संबंध में अपने विचार प्रकट कर सकें।

(2) **स्पष्टता (Clarity)** – बजट का ढाँचा इस प्रकार तैयार किया जाना चाहिए कि वह सरलता व सुगमता से समझ में आ जाये।

(3) **व्यापकता (Comprehensiveness)** – सरकार के सम्पूर्ण राजकोषीय (Fiscal) कार्यक्रमों का सारांश बजट में आना चाहिए। बजट द्वारा सरकार की आमदनियों एवं खर्चों का पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया जाना चाहिए। इसमें यह बात स्पष्ट की जानी चाहियें कि सरकार द्वारा क्या कोई नया ऋण अथवा उधार लिया जाना है। सरकार की प्राप्तियों तथा विनियोजनाओं का ब्यौरे वाले स्पष्टीकरण होना चाहिए। बजट ऐसा होना चाहिए जिसके द्वारा कोई भी व्यक्ति सरकार की संपूर्ण आर्थिक स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर सके।

(4) **एकता (Unity)** – सम्पूर्ण खर्चों की वित्तीय व्यवस्था के लिये सरकार को सभी प्राप्तियों (Receipts) को एक सामान्य निधि (Fund) में एकत्रीकरण कर लिया जाना चाहिए।

(5) **नियतकालीनता (Periodicity)** – सरकार को विनियोजन तथा खर्च करने का प्राधिकार एक निश्चित अवधि के लिए ही दिया जाना चाहिए। यदि उस अवधि में धन का उपयोग न किया जाये तो वह प्राधिकार समाप्त हो जाना चाहिये अथवा उसका पुनर्विनियोजन (Re-appropriation) होना चाहिए। सामान्यः बजट अनुमान वार्षिक आधार पर दिये जाते हैं। व्यवस्थापिका को, उस अवधि की सम्पूर्ण आवश्यकताओं को, जिसमें कि व्यय किये जाने हैं, द ष्टिगत रखकर उस अवधि से पूर्व ही बजट पारित करना चाहिए। उदाहरण के लिये, यदि वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से प्रारम्भ होता है तो सुविधाजनक यह होगा कि व्यवस्थापिका अथवा विधानमण्डल 1 अप्रैल से पूर्व ही खर्चों की अनुमति दे दें।

(6) **परिशुद्धता (Accuracy)** – किसी भी सुद ढ़ वित्तीय व्यवस्था के लिए बजट अनुमानों की परिशुद्धता तथा विश्वसनीयता अत्यन्त आवश्यक है। वे सूचनायें, जिन पर कि बजट अनुमान आधारित हों, यथेष्ट रूप में ठीक, ब्यौरेवार तथा मूल्यांकन करने की द ष्टि से उपर्युक्त होनी चाहिए। जान-बूझकर राजस्व का कम अनुमान लगाने अथवा तथ्यों को छिपाने की बात नहीं होनी चाहिए। भारत में, संसद में तथा संसदीय समितियों में यह आलोचना प्रायः की जाती है कि बजट अनुमानों को तैयार करने में एक प्रव त्ति यह पाई जाती है कि राजस्व की प्राप्तियों का तो न्यूनांकन (Under- Estimation) किया जाता है और राजस्व-व्यय का अत्यंकन (Over Estimation)। इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नहीं है कि आय का कम अंकन करने वाले व्यय का अंधिक अंकन करने की इस प्रव त्ति से बजट का रूप ही बिगड़ जाता है।

(7) **सत्यशीलता (Integrity)** – इसका अर्थ है कि राजकोषीय कार्यक्रमों का क्रियान्वयन ठीक उसी प्रकार होना चाहिए जिस प्रकार कि बजट में उसकी व्यवस्था की गई हो। यदि बजट उस प्रकार क्रियान्वित नहीं किया जाता है जिस प्रकार कि उसका विधानीकरण किया गया था, तो फिर बजट बनाने का कोई अर्थ ही नहीं रह जाता।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि बजट के द्वारा उन उद्देश्यों को प्राप्त करना है जिनके लिये कि उसका निर्माण किया गया था, अर्थात् सत्यनिष्ठ एवं कुशल वित्तीय प्रशासन की स्थापना, तो ऊपर उल्लेख किये गये सिद्धांतों का पालन होना ही चाहिए।

बजट की रचना
(Formulation of the Budget)

बजट रचना के मुख्यतः दो भाग हैं- प्रथम बजट की तैयारी और द्वितीय बजट का अधिनियम

जिसमें बजट अनुमानों को व्यवस्थापिका में प्रस्तुत करना, व्यवस्थापिका द्वारा उसे स्वीकृति प्रदान करना, व्यवस्थापन आदि सम्मिलित है।

बजट की तैयारी (Preparation of Budget) – भारत में वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल को आरम्भ और 31 मार्च को समाप्त होता है। बजट अनुमान तैयार करने का कार्य आगामी वित्त के आरम्भ होने से 7-8 माह पूर्व प्रारम्भ होता है। बजट की रूपरेखा तैयार करने का सारा उत्तरदायित्व वित्त मंत्रालय का होता है, किन्तु इस कार्य में प्रशासकीय मंत्रालय और उसके अधीनस्थ कार्यालयों में वित्त मंत्रालय को प्रशासकीय आवश्यकताओं की विस्त त जानकारी प्राप्त होती है। योजना आयोग योजनाओं की प्राथमिकता के संबंध में मंत्रणा देता है और नियंत्रक महालेखा परीक्षक प्राक्कथन तैयार करने हेतु लेखा कौशल उपलब्ध कराता है।

बजट अनुमान तैयार करने की शुरूआत वित्त मंत्रालय द्वारा जुलाई अथवा अगस्त माह से ही शुरू कर दी जाती है अब वह विभिन्न प्रशासकीय मंत्रालयों तथा विभागाध्यक्षों को व्ययों के प्राक्कथन तैयार करने के लिए एक प्रपत्र (Form) भेजता है। विभागाध्यक्ष इन छपे हुए निर्धारित प्रपत्रों को स्थानीय कार्यालयों को भेज देता है। प्रपत्र में कुछ खाने होते हैं जिन्हें निम्न प्रकार दर्शाया जाता है :

1. विनियोगों के शीर्ष तथा उपशीर्ष,
2. गत वर्ष की वास्तविक आय तथा व्यय,
3. वर्तमान वर्ष के स्वीकृत अनुमान,
4. वर्तमान वर्ष के संशोधित अनुमान,
5. आगामी वर्ष के बजट प्राक्कलन, तथा
6. घटा-बढ़ी का विस्तार

अनुमान प्रपत्र की प्रतिलिपि इस प्रकार है :

(Budget Estimates)

Minor Heads & Sub-heads of Appropriation	Actuals for the last year	Budget Estimates Sanctioned for the current year	Revised Estimates for the current year		Budget Estimates for the next year		Explanation for Increases or Decreases
			Disbursing officer	Head of Dept.	Disbursing officer	Head of Dept.	

स्थानीय कार्यालयों द्वारा ये प्रपत्र तैयार करके प्रशासकीय, मंत्रालयों के संबंधित विभागों को भेज दिये जाते हैं। विभागों के अध्यक्ष अनुमानों का सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं और आवश्यकतानुसार संशोधन करके अपने-अपने विभागों के लिए उन्हें एकीकृत करते हैं। इसके बाद प्रशासकीय मंत्रालय इन प्राक्कलनों को नवम्बर के मध्य में वित्त मंत्रालय को प्रेषित कर देते हैं। प्रत्येक विभाग अपने प्राक्कलनों की एक प्रतिलिपि भारत के 'महालेखापाल' के पास पहुँचा देता है। इस कार्यालय में विभिन्न मदों की जांच की जाती है। उसके पश्चात् महालेखापाल अपनी टिप्पणियाँ वित्त मंत्रालय के पास भेज देता है। वित्त मंत्रालय द्वारा बजट अनुमानों का सूक्ष्म परीक्षण किया जाता है। यह परीक्षण मुख्यतः मितव्ययिता से संबंध रखता है, नीति से नहीं। व्ययों संबंधी नीति को देखना तो मुख्य रूप से प्रशासकीय मंत्रालयों का ही काम है। प्रशासकीय मंत्रालयों द्वारा प्रेषित बजट अनुमानों को मोटे रूप से तीन भागों में बांटा जाता है :

(i) **स्थायी प्रभार अथवा स्थायी व्यय (Standing Charges)** - इसमें स्थायी संस्थानों (Permanent establishments) के वेतन, भत्ते तथा अन्य व्यय सम्मिलित हैं। इनसे संबंधित अनुमान सूक्ष्म पुनरावलोकन हेतु वित्त मंत्रालय के बजट संभाग (Budget Division) को भेजे जाते हैं।

(ii) **नयी योजनाओं या कार्यक्रम (New Schemes)** – वित्त मंत्रालय द्वारा प्राक्कलनों की वास्तविक जांच इसी क्षेत्र में की जाती है। नवीन योजनाओं के संबंध में संसाधनों के आधार पर विभिन्न मदों की प्राथमिकता के संबंध में विचार किया जाता है। इस बारे में आयोग तथा वित्त मंत्रालय के आर्थिक मामलों के विभाग (Department of Economic Affairs) से भी सलाह ली जाती है।

(iii) **प्रचलित योजनाएं अथवा कार्यक्रम (Continuing Schemes)** – दूसरे विभाग में वे विषय रहते हैं जो वर्ष प्रतिवर्ष निरन्तर चलते रहते हैं। इन प्रचलित योजनाओं के प्राक्कलनों की जाँच व्यय-विभाग (Department of Expenditure) द्वारा की जाती है। इस सूक्ष्म परीक्षण द्वारा यह देखा जाता है कि जारी योजनाओं में कहाँ तक प्रगति हुई, उनके संबंध में की गयी वचनबद्धताएँ कहाँ तक पूरी की गयी हैं, आदि। यह परीक्षण निरन्तर चलता रहता है।

Methods used for the Formulation of Budget

बजट तैयार करने के लिए निम्नलिखित पाँच विधियों का इस्तेमाल किया जाता है-

(1) संवितरण अधिकारियों द्वारा प्रारम्भिक अनुमानों की तैयारी करना।
(2) नियंत्रण अधिकारियों द्वारा इन अनुमानों की संवीक्षा और समीक्षा।
(3) महालेखाकार तथा प्रशासनिक विभाग द्वारा संशोधित अनुमानों की संवीक्षा और समीक्षा।
(4) वित्त मंत्रालय द्वारा संशोधित अनुमानों की संवीक्षा और समीक्षा
(5) मंत्रिमंडल द्वारा समेकित अनुमान पर अन्तिम विचार।

उपर्युक्त विधियों का क्रमानुसार निम्नवत् विश्लेषण किया जा सकता है -

(1) **संवितरण अधिकारियों द्वारा तैयारी (Preparation by the Disbursing Officers)** — बजट तैयार करने का कार्य अगला वित्तीय वर्ष प्रारम्भ होने के 6 से 8 माह पहले से ही शुरू हो जाता है। चूंकि भारतीय वित्तीय वर्ष प्रत्येक वर्ष पहली अप्रैल को शुरू हो जाता

है, इसलिए बजट तैयार करने का कार्य अगस्त-सितम्बर के माह से शुरू हो जाता है। महालेखाकार जुलाई या अगस्त के महीने में विभिन्न विभागों के प्रमुखों को प थक्-प थक् राजस्व और व्यय के अनुमानों के लिए निर्धारित प्रपत्र भेजता है। विभाग प्रमुख संवितरण अधिकारियों तथा स्थानीय कार्यालयों के प्रमुखों को ये प्रपत्र भेजते हैं जो प्रारम्भिक अनुमान तैयार करते हैं। अनुमान तैयार करने का कार्य अत्याधिक महत्वपूर्ण कार्य है। श्री पी० के० बट्टल के शब्दों में, "यह विगत वर्षों के औसत निकालकर उन्हें किसी सुरक्षित आंकड़े में रखने का एक सामान्य गणितीय कार्य नहीं है जोकि बिल्कुल पिछले वर्ष के निष्पादन की पुनराव त्ति की तरह नहीं दिखाई देगा। इन आंकड़ों के पीछे प्रशासन की वास्तविकताएं छुपी होती है। किसी भी एक वर्ष की परिस्थितियाँ पिछले वर्ष की परिस्थितियों के बिल्कुल समान नहीं होती हैं और फिर भी वे नितान्त भिन्न भी नहीं होती हैं। इसलिए असमानताओं और समानताओं का अनुमान लगाने तथा प्रत्येक को उचित महत्व देने में स्व-विवेक का इस्तेमाल करना पड़ता है।" इसलिए अनुमान तैयार करने में सावधानी बरती जानी चाहिए। अनुमान तैयार करते समय स्थानीय अधिकारियों को निर्धारित प्रपत्र के चार स्तंभों को भरना होता है -

(i) पिछले वर्ष के वास्तविक आंकड़े।

(ii) चालू वर्ष के स्वीकृत अनुमान।

(iii) चालू वर्ष के संशोधन अनुमान, और

(iv) अगले वर्ष के बजट का अनुमान।

कभी-कभी बजट अनुमानों तथा खर्च किए गए या खर्च किए जाने वाले वास्तविक धनराशि के बीच काफी अन्तर रह जाता है। यह मुख्यः दो महत्त्वपूर्ण कारकों के कारण होता है। प्रथम, अनुमान लगभग 18 महीने पहले तैयार किए जाते हैं और दूसरे, भारतीय अर्थव्यवस्था मानसून का जुआ है तथा अनुमान मानसून आने से बहुत पहले ही तैयार कर लिए जाते है। इसके अलावा जैसा कि श्री अशोक चन्दा ने कहा है, "बजट में शामिल किए जाते समय नए परियोजनाओं के अनुमानों की तैयारी अधिकांश मामलों में कठिन होती है। इस प्रकार के अनुमान बहुधा केवल प्रत्याशाओं पर न कि ठोस और सकारात्मक पहलुओं पर आधारित होते हैं। फिर भी जब तक कि बजट अनुमानों में शामिल किए जाने हेतु कोई आंकड़ा वित्त मंत्रालय को नहीं भेजा जाता है तब तक इस स्कीम को शुरू नहीं किया जा सकता है।"

(2) **नियंत्रण अधिकारियों द्वारा अनुमानों की संवीक्षा और समीक्षा (Scrutiny and Review of Estimates by Controlling Officers)** – स्थानीय अधिकारी अपने-अपने नियंत्रण अधिकारियों या विभाग प्रमुखों को संवीक्षा और समीक्षात्मक अनुमान भेजते हैं। संवीक्षा नितान्त प्रशासनिक किस्म की होती है। नियंत्रण अधिकारी को पूर्णरूपेण विभाग के संभावित अनुदान को ध्यान में रखते हुए नए व्यय के लिए अपने विभाग के विभिन्न शाखाओं और अनुभागों के अपेक्षित महत्त्व का औचित्य सिद्ध करना पड़ता है। इसलिए उसे उनमें से कुछ को स्वीकार करना पड़ता है और दूसरों को अस्वीकार करना पड़ता है। फिर वह समूचे विभाग के अनुमानों को समेकित करता है और अक्तूबर के प्रारम्भ तक के प्रपत्र बजट अधिकारियों के हाथों में चले जाते हैं।

(3) **महालेखाकार तथा प्रशासनिक विभाग द्वारा संवीक्षा और समीक्षा** **(Scrutiny and Review by the Accountant General and the Administrative Department)** – नियंत्रण अधिकारियों के पास से अनुमान प्रपत्र चले जाने के उपरान्त राजस्व तथा स्थायी प्रभारों यथा स्थायी स्थापना, यात्रा भत्ता आदि से संबंधित अनुमानों का भाग। महालेखाकार तथा सामान्य प्रशासन विभाग के पास संवीक्षा तथा समीक्षा के लिए प्रस्तुत किया जाता है। सामान्य प्रशासन विभाग राज्य सरकारों में होते हैं। सामान्य समीक्षा के अतिरिक्त, महा-लेखाकार के कार्यालय को ऋण, जमा तथा प्रेषण शीर्षों के अन्तर्गत अनुमान भी तैयार करने होते हैं नवम्बर के मध्य तक ये अनुमान वित्त मंत्रालय के बजट विभाग के पास चले जाते हैं।

(4) **वित्त मंत्रालय द्वारा संवीक्षा** **(Scutiny by the Ministry of Finance)** – विभिन्न विभागों से इस प्रकार प्राप्त हुए अनुमानों की वित्त मंत्रालय द्वारा संवीक्षा की जाती है तथा संशोधन और विभागों से इस प्रकार प्राप्त हुए अनुमाानों की वित्त मंत्रालय द्वारा संवीक्षा की जाती है तथा संशोधन और पुर्नरीक्षण के उपरान्त उन्हें सरकार के बजट में पूर्णरूपेण समेकित कर लिया जाता है। श्री पी० के० वट्टल के शब्दों में, "वित्त विभाग द्वारा की गई संवीक्षा प्रशासनिक विभाग द्वारा की गई संवीक्षा से स्वभावतः भिन्न होती है। प्रशासनिक विभाग व्यय की नीति अथवा उसकी आवश्यकता से संबंधित है और इसीलिए उसका कार्य विभागों न की मांग को उपलब्ध नीधियों के भीतर बनाए रखना है। प्रशासनिक विभागों तथा वित्त विभाग के बीच अनसुलझे मतभेदों को निर्णय के लिए सरकार को प्रस्तुत किया जाता है।" वित्त मंत्रालय द्वारा अनुमानों की संवीक्षा वित्तीय द ष्टिकोण अर्थात् अर्थव्यवस्था एवं निधियों की उपलब्धता के अनुसार की जाती है। फिर वित्त मंत्रालय भारत सरकार के आय और व्यय का अनुमान तैयार करता है। अनुमानित व्यय के आधार पर बजट में नए करों के बारे में प्रस्ताव किए जाते हैं। दूसरे शब्दों में, बजट दो भागों में विभाजित होता है- आय पक्ष और व्यय पक्ष। इस रूप में समेकित बजट दिसम्बर माह तक तैयार हो जाता है।

(5) **मंत्रिमंडल द्वारा अनुमोदन** **(Approved by the Cabinet)** – वित्त मंत्री जनवारी में किसी समय बजट अनुमानों की जांच करता है और प्रधानमंत्री के परामर्श से कराधान आदि के बारे में अपनी वित्तीय नीति तैयार करता है। इसके पश्चात् संयुक्त विचार-विमर्श के लिए बजट मंत्रिमंडल के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि मंत्रिमंडल की नीति ही सामान्य दिशा निर्धारित करने के लिए उत्तरदायी है। मंत्रिमंडल द्वारा बजट का अनुमोदन कर दिए जाने पर उसे संसद में पेश किए जाने के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

भारतीय बजट, जिसे "वार्षिक वित्तीय विवरण" कहा जाता है, के दो भाग होते हैं -

(क) वित्त मंत्री का बजट भाषण, और

(ख) बजट अनुमान।

वित्त मंत्री के भाषण में देश की सामान्य आर्थिक दशाओं की जानकारी, सरकार द्वारा अपनाई जाने वाली वित्तीय नीति, चालू वर्ष के बजट अनुमानों तथा संशोधित अनुमानों के बीच पाए जाने वाले अन्तर का स्पष्टीकरण तथा व्याख्यात्मक ज्ञापन होता है जो चालू वर्ष के मूल अनुमानों में होने वाले उतार-चढ़ाव के कारणों की व्याख्या करता है। मंत्री का बजट भाषण राष्ट्र के वार्षिक

क्रियाकलापों में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना हैं केवल व्यावसायिक समुदाय ही नहीं बल्कि समुदाय के प्रत्येक वर्ग द्वारा इसकी बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा की जाती है।

भारत की समेकित निधि पर प्रभारित आय तथा भारत के लोक लेखा पर प्रभारित व्यय के लिए प थक-प थक अनुमानों को दर्शाने वाला वार्षिक वित्तीय विवरण संसद में प्रस्तुत किया जाता है। संविधान के अनुच्छेद 112 के अनुसार निम्नलिखित व्ययों को भारत की समेकित निधि पर प्रभारित माना जाता है -

(क) राष्ट्रपति की परिलब्धियाँ एवं भत्ते तथा उसके कार्यालय से संबंधित अन्य व्यय।

(ख) राज्य सभा के अध्यक्ष सभा के और उपाध्यक्ष तथा लोक सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते।

इस रूप में बजट निर्माण की विधि पूरी होती है।

बजट अधिनियम
(Enactment of Budget)

(क) **प्रस्तुतीकरण** – सभी लोकतांत्रिक देशों में कार्यपालिका द्वारा तैयार किए जाने के बाद बजट संसद में विचार एवं स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। संसद में बजट प्रस्तुत करने का उत्तरदायित्व कार्यपालिका और मंत्रिमंडल का होता है। भारत में सामान्य बजट वित्त मंत्री द्वारा और रेल बजट रेल मंत्री द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि सामान्य विधेयक (Ordinary Bill) तथा वित्त विधेयक (Money Bill) में आधारभूत अन्तर होता है। आम विधेयक में सरकार के लिए कुछ कार्यक्रम प्रस्तावित होते हैं जबकि वित्त विधेयक में ऐसे कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए सरकार को धनराशि खर्च करने का अधिकार दिया जाता है। इस कारण भारतीय संविधान के अनुच्छेद् 112 से 117 तक वित्त विधेयक से संबंधित निम्न प्रावधान किए गए हैं :

I. बजट अनुमानों से संबंधित हर एक मांग मुख्य कार्यपालिका अध्यक्ष (राष्ट्रपति) की अनुशंसा से ही की जाएं।

II. कोई भी व्यय प्रस्ताव राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना संसद के समक्ष नहीं रखा जा सकता।

III. विधेयक को किसी कर में कमी करने अथवा समाप्त करने का अधिकार तो है किन्तु वह नया कर लगाने या कर दर में व द्धि करने का अधिकार नहीं रखती।

IV. भारत की संचित निधि में संबंधित व्यय (Charges) पर संसद में बहस हो सकती है। किन्तु मतदान नहीं किया जा सकता है।

V. विनियोजन विधेयक (Appropriation Bill) में संसद की ओर से कोई ऐसा संशोधन नहीं किया जा सकता जिसमें किसी अनुदान का उद्देश्य या किसी प्रभारी व्यय राशि में परिवर्तन हो जाये।

VI. वित्त विधेयक के मामले में लोक सभा के अधिकार राज्य सभा की अपेक्षा बहुत अधिक है। अनुदान मांगों के लिए मत देने का अधिकार केवल लोक सभा को ही प्राप्त

है। वित्त विधेयक पर लोक सभा की स्वीकृति मिलने के पश्चात् उसे राज्य सभा के पास भेजा जाता है जिसे 14 दिनों के भीतर पास कर अथवा अपनी सिफारिशों के साथ लोक सभा को लौटा देना होता है। लोक सभा यदि उचित समझे तो राज्य सभा के किसी सुझाव पर पुनर्विचार कर सकती है अन्यथा वित्त विधेयक को अपने मूल रूप से पारित कर देती है तथा इसे संसद के दोनों सदनों द्वारा पारित मान लिया जाएगा। सर्वप्रथम 1977 में जनता शासन के आगमन के समय राज्य सभा में कांग्रेस का बहुमत होने की वजह से राज्य सभा में वित्त विधेयक को अपनी सिफारिशों के साथ निचले सदन के पास भिजवा दिया था। किन्तु लोक सभा की सर्वोपरिता की पुष्टि का यह अब तक का पहला या अन्तिम उदाहरण माना जा सकता है। यदि राज्य सभी 14 दिनों के अन्दर-अन्दर वित्त विधेयक को नहीं लौटाती है तब भी संविधान के अनुच्छेद् 109 के अनुसार उसे दोनों सदनों द्वारा पारित मान लिया जाता है।

यहाँ पर यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि कोई विधेयक वित्त विधेयक है या नहीं, इस बात का निर्णय भारतीय संविधान के अनुच्छेद् 110 के तहत लोक सभा के अध्यक्ष (Speaker) को करने का अधिकार है।

(ख) **बजट पर सामान्य वाद-विवाद (General Discussion on Budget)** – लोक सभा के कार्य संचालन नियम संख्या 207 (1)(2) में बजट प्रस्तुतीकरण के कुछ दिन पश्चात् सामान्य चर्चा का दिशा-निर्देशन करते हुए कहा गया है कि, 'सदन को इस बात की अनुमति होगी कि वह संपूर्ण बजट अथवा उसमें प्रस्थापित सिद्धांत के किसी प्रश्न के बारे में विचार-विमर्श कर सके, परन्तु इस समय कोई प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं किया जा सकेगा एवं न ही सदन में बजट का मतदान लिया जा सकेगा।' इस आम चर्चा के दौरान व्यय के किसी भी मद को परिचर्चा से बाहर नहीं रखा जाता तथा हर एक मुद्दे पर प्रशासनिक नीतियों की संक्षिप्त आलोचना तथा टीका-टिप्पणी की जा सकती है। करीब एकाध सप्ताह के अन्दर बजट पर सामान्य चर्चा समाप्त हो जाती है। तथा अन्तिम दिन वित्त मंत्री एक संक्षिप्त जवाब भी देता है।

(ग) **अनुदान मांगों पर ब्यौरे-वार चर्चा तथा मतदान (Voting on Demands of Supplies)**– बजट के तीसरे चरण में मंत्रालयों के अलग-अलग सभी क्रम-वार अनुमान मांगें एक प्रस्ताव के रूप में लोक सभा के समक्ष प्रस्तुत की जाती है जो कि निम्नवत् होते है - "31 मार्च 199.... को समाप्त होने वाले वर्ष की अवधि में (ग ह मंत्रालय से संबंधित) व्ययों की अदायगी के लिए एक धनराशि, जो कि रुपये से ज्यादा न हो, को राष्ट्रपति को खर्च करने के लिए स्वीकृत की जानी चाहिए।"

इस प्रकार की अनुदान मांगे प्रत्येक मंत्रालय के लिए अलग से प्रस्तावित की जानी चाहिए जब तक यह कठिनाई न हो कि किसी अनुदान राशि को अलग-अलग मंत्रालयों को बांटना असंभव हो। लोक सभा कार्यवाही नियम 131 के तहत प्रत्येक अनुदान मांग को समग्र रूप में तथा उसके अन्तर्गत मद-वार ब्यौरे के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। भारत सरकार का आम बजट 109 अनुदान मांगों में विभाजित रहता है, जिनमें से 103 मांगे लोक व्यय से संबंधित हर मंत्री मांगों को प्रस्तुत करते समय एक संक्षिप्त भाषण भी देता है जो आर्थिक नीतियों का प्रतिबिम्ब होने के बजाय प्रायः राजनीतिक रंग लिए होता है।

संसदीय कार्यवाही नियम 132 तथा 133 के तहत लोक सभा का अध्यक्ष सदन के नेता से विचार-विमर्श के पश्चात् एक निश्चित अवधि निर्धारित करता है जिसमें अनुदान मांगों पर विचार-विमर्श पूरा हो जाना चाहिए। भारत में आमतौर पर 26 दिनों की अवधि इस हेतु निर्धारित की गई है। एक-एक करके अनुदान मांगों पर विचार होते समय विपक्षी सदस्यों द्वारा बजट की तीखी आलोचना की जाती है। तथा अनेक प्रकार के कटौती प्रस्ताव सदन के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं। ये कटौती प्रस्ताव तीन प्रकार के होता हैः

(i) **नीति संबंधी कटौती प्रस्ताव** (Policy Cut Motion) – किसी अनुदान मांग के पीछे निहित सरकारी नीति को अस्वीकृत करने की सिफारिश के उद्देश्य से सदस्य द्वारा मांग की जाती है कि "मांग की धनराशि घटा कर एक रुपया कर दी जानी चाहिए।" इस प्रस्ताव को लाने वाला सदस्य नीति संबंधी मुख्य मदों की समीक्षात्मक आलोचना करते हुए सदन के विचार-विमर्श की वैकल्पिक नीति की प्रतिस्थापना की ओर अग्रसर करने का प्रयत्न करता है। इस अवधि में प्रशासन की कमियों को उजागर करते हुए सरकार की तीखी आलोचना की जाती है।

(ii) **मितव्ययिता संबंधी कटौती प्रस्ताव** (Economy Cut Motion) – सरकारी व्यय में संभावित दुरुपयोग या अपव्यय की ओर सदन का ध्यान आकर्षित करने के उद्देश्य से सदन का कोई सदस्य इस प्रस्ताव को पेश करते हुए मांग कर सकता है कि, "अनुदान मांग की राशि में से विशिष्ट धनराशि कम कर दी जानी चाहिए।" ये कटौती प्रस्ताव किसी मांग की किसी विशेष मद में कमी, उसकी पूर्ण समाप्ति अथवा सम्पूर्ण अनुदान में से एक मुश्त धनराशि कम करने के लिए पेश किए जाते हैं। वाद-विवाद के समय सदस्यों को केवल विचारणीय मुद्दे पर ही अपने विचार रखने की अनुमति दी जाती है।

(iii) **प्रतीकात्मक कटौती प्रस्ताव** (Token Cut Motion) – संसदीय नियम 209 के अन्तर्गत कोई भी सदस्य सरकार के किसी विशेष कार्य के बारे में शिकायत करते हुए यह प्रस्ताव ला सकता है कि संबंधित अनुदान "मांग की धनराशि में 10000 रुपये की कटौती की जानी चाहिए।" यह प्रस्ताव प्रतीकात्मक ही होता है ताकि सरकार का ध्यान किसी विशेष समस्या की ओर आकर्षित किया जा सके।

हमारी संसदीय प्रणाली में प्रायः प्रतीक कटौती प्रस्ताव ही लाए जाते हैं तथा अध्यक्ष द्वारा इन पर बहस की अनुमति देने के पश्चात् वाद-विवाद होता है। बहस की समाप्ति पर संबंधित मंत्री सदस्यों की आलोचनाओं का जवाब देता है तथा सदस्यों द्वारा बतलायी शिकायतों को दूर करवाने का आश्वासन भी देता है। तथापि ऐसा कहा जाता है कि भारतीय संसद में बहस का स्तर बहुत अच्छे स्तर का नहीं होता। श्री एस०एल० शकधर ने लिखा है कि, "बजट संबंधी वाद-विवादों में एक प्रमुख दोष पाया जाता है और वह यह है कि बजट संबंधी बहस केवल सिद्धांतों पर आधारित होता है और अनुमानों के ब्यौरे के संबंध में जरा भी बहस नहीं की जाती। सदन अपने आपको इस विषय में संतुष्ट नहीं करता कि अनुमानों के विस्त त आंकड़े ठीक प्रकार तैयार किए गए हैं। विभिन्न सेवाओं, पूर्तियों, संस्थानों, प्रयोजनाओं तथा कार्यक्रमों के लिए जो विविध धनराशियाँ दिखाई गयी हैं क्या वे न्यायोचित हैं, क्या अनुमानों में दिए गए व्यय उपलब्धियों से मेल खाते हैं, और

क्या सरकारी विभागों द्वारा वास्तव में व्यय की गई धनराशियाँ विनियोजन अधिनियम के अथवा उसमें निहित उद्देश्य के अनुसार थीं अथवा क्या कोई दुर्विनियोजन या अन्य कोई वित्तीयोअनियमितता थी।"

(घ) **मतदान प्रक्रिया (Voting Process)** – भारतीय संसद में कुल 26 दिनों के भीतर 'अनुदान मांगों को पास करने की परम्परा है। अध्यक्ष द्वारा किसी अनुदान मांग पर बहस के लिए निर्धारित समय के अन्तिम दिन सायं 5 बजे मतदान का कार्य आरम्भ हो जाता है। इस प्रक्रिया से सभी विभागों की अनुदान मांगें गुजरती है। किन्तु पूरी बहस के लिए निर्धारित दिनों के अन्तिम दिन शेष बची सभी मांगों पर भी मतदान हो जाता है चाहे फिर उन पर ब्यौरेवार बहस हुई हो या न हुई हो। इस प्रकार अन्तिम दिन करोड़ों रुपयों की अनुदान मांगें बिना बहस के ही पास कर दी जाती हैं। हिल्टन यंग ने इस प्रक्रिया के दोषपूर्ण प्रचलन की ओर संकेत करते हुए कहा था कि, "वर्ष के कुल व्यय के एक तिहाई से आधे भाग पर किसी आलोचना अथवा वाद-विवाद के बिना घंटे भर में मतदान हो जाता है। इससे अधिक असंतोषजनक स्थिति की कल्पना कदाचित ही की जा सकती है। इससे सदन द्वारा व्यय पर नियंत्रण करने संबंधी संपूर्ण श्रम साध्य प्रक्रिया एक ढोंग प्रतीत होती है।"

(ङ) **लेखानुदान (Vote on Account)** – भारतीय संविधान के अनुच्छेद् 116(1) के अन्तर्गत संसद को यह अधिकार प्राप्त है कि बजट प्रक्रिया के पूर्ण होने से पूर्व ही वित्तीय वर्ष के प्रथम दो माह के लिए कार्यपालिका को अग्रिम अनुदान स्वीकृत कर खर्च करने की अनुमति प्रदान करें। संविधान में ऐसा उपलब्धि किया गया है जिसके अन्तर्गत लेखानुदान द्वारा अग्रिम अनुदान देने की शक्ति लोक सभा को दी गई है जिससे सरकार अनुदानों की मांगों पर मतदान होने तथा विनियोग विधेयक और वित्त विधेयक के पारित होने तक अपना कार्य चला सके। सामान्यतः इसकी राशि अनुदानों की विभिन्न मांगों के अधीन समस्त वर्ष के लिए प्राक्कलित व्यय के छठे भाग के बराबर होती है। इस परिपाटी के प्रारम्भ होने के कारण अब अनुदान मांगों पर 1 अप्रैल के पश्चात् भी बहस जारी रखी जाती है। इस प्रकार की पद्धति अपनाए जाने से संसद को बजट संबंधी प्रस्तावों पर अधिक व्यापक बहस करने का अवसर मिलता है। ताकि प्रशासकीय कमियों को उजागर करके कार्यपालिका को अधिक सचेष्ट किया जा सके।

(च) **विनियोजन विधेयक (Appropriation Bill)** – अनुदान मांगों पर संसद में मतदान होने जाने का मतलब यह नहीं तो कि सरकार को सार्वजनिक कोष (Public Fund) से पैसा निकालने का हक प्राप्त हो गया है। संविधान की धारा 110(1)(d) में कहा गया है कि, "भारत की संचित निधि में से कोई भी धनराशि विधि द्वारा विनियोजन के बिना नहीं निकाली जा सकती। "जब सभी अनुदान मांगों पर मतदान हो जाता है तो इनको संचित निधि सहित विनियोजन अधिनियम में एकीकृत कर लिया जाता है और इस प्रकार धन खर्च करने के अधिकार को प्राप्त करने के लिए विनियोजन बिल को पास करवाने की क्रिया सम्पादित करनी होती है। इस विधेयक का आशय निधि में से व्यय के विनियोग के लिए सरकार को कानूनी अधिकार देता है। विनियोग विधेयक पर चर्चा उसमें शामिल अनुदानों में निहित लोक महत्व के विषयों पर प्रशासनिक नीति तथा ऐसे मामलों तक, जो अनुदानों की मांगों पर चर्चा करते समय पहले उठाये गए हों, सीमित रहती है। इस पर कोई संशोधन

पेश नहीं किए जा सकते। अन्य मामलों में विनियोग विधेयक संबंधी प्रक्रिया वही होती है जो कि अन्य विधेयकों के संबंध में होती है। विधेयक को लोक सभा द्वारा पारित किए जाने के पश्चात् अध्यक्ष उसे 'धन विधेयक' होने के रूप में प्रमाणीकृत करता है और उसको राज्यसभा के पास भेज देता है। राज्य सभा को धन विधेयक पर अपनी स्वीकृति देनी ही होती है। तत्पश्चात् विधेयक राष्ट्रपति की अनुमति के लिए उसके समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

(छ) **वित्त विधेयक (The Finance Bill)** – बजट में दो हिस्से होते हैं - व्यय प्रावधान तथा आय प्राप्ति प्रस्ताव विनियोजन विधेयक (Appropriation Act) पारित हाने के साथ सरकार के राजकोष से धनराशि खर्च करने का अधिकार मिल जाता है। किन्तु इस व्यय की पूर्ति के लिए वित्तीय साधनों की प्राप्ति कर प्रस्तावों द्वारा संभव होती है। इस प्रकार संसद के समक्ष सरकार द्वारा वित्त विधेयक प्रस्तुत किया जाता है जिसमें नये कर या वर्तमान करों की दरों में संशोधन संबंधी प्रस्ताव होते हैं। भारतीय संविधान के अनुच्छेद् 265 में यह कहा गया है कि, "कानूनी सत्ता के बिना न तो कोई कर लगाया जा सकता है एवं न ही वसूल किया जा सकता है।"

वित्त विधेयक में पूर्व में प्रचलित तथा नये दोनों प्रकार के कर प्रस्तावों को शामिल किया जाता है। आय-कर, उत्पादन शुल्क, निगम कर आदि कुछ स्थायी कर होते हैं, जिनकी प्रचलित दरों में सरकार आवश्यकता अनुसार प्रत्येक वित्तीय वर्ष के लिए परिवर्तन प्रस्तावित करती है। यहाँ यह स्पष्ट होना चाहिए कि भारत की संघीय वित्त व्यवस्था (Federal Financial System) के अन्तर्गत केन्द्र सरकार को जिन करों को लगाने या उनकी दरों में परिवर्तन करने का अधिकार है उन्हीं को वित्त विधेयक में शामिल किया जाता है। कर प्रस्तावों को प्रस्तुत करते समय कार्यपालिका को यह देखना होता है कि अनेक अनुत्पादक करों (Unproductive Taxes) के बजाय कुछ प्रमुख उत्पादक करों (Productive Taxes) को ही वित्त विधेयक में शामिल करें।

विनियोजन विधेयक तथा वित्त विधेयक में कुछ मौलिक अन्तर होता है। विनियोजन विधेयक में प्रायः कोई परिवर्तन नहीं किया जाता जबकि वित्त विधेयक में बहस के दौरान सदस्यों द्वारा करों की दरों में परिवर्तन के लिए संशोधन प्रस्तुत किए जाते हैं (किन्तु कर, बढ़ाने को नहीं) , तथा कभी-कभी सरकार सदन की भावना को ध्यान में रखते हुए कर कटौती प्रस्तावों को स्वीकार भी कर लेती है। सदस्यों की सहमति पर सरकार कई बार आय-कर, पोस्टल टेरिफ या कतिपय उपभोक्ता वस्तुओं पर लगाए गए उत्पादन शुल्क में कमी करने को तैयार हो जाती है। लोकमत के दबाव के कारण रेलवे बजट में भी यात्री भाड़े तथा मालभाड़े की दरों को घटाने संबंधी संशोधन भी सरकार द्वारा स्वीकार किए जाने के अनेक उदाहरणों को भारतीय संसद के इतिहास में देखा जा सकता है।

(ज) **वित्त विधेयक पर चर्चा करना और उसे पारित करना (Discussion on Finance Bill and Enactment)** – सदन में वित्त मंत्री यह प्रस्ताव रखता है कि, वित्त विधेयक को विचारार्थ लिया जाना चाहिए, वित्त मंत्री के इस प्रस्ताव के साथ विचार-विमर्श प्रारम्भ होता है। इसके पश्चात् विधेयक को सदन की प्रवर समिति (Select Committee) को सौंप दिया जाता है। प्रत्येक पर समीक्षात्मक टिप्पणियां तथा सुझाव देकर समिति उसे वापस लौटा देती है। इसके पश्चात् सदन में धारा-वार बहस होती है और इसी दौरान सदस्यों

द्वारा कर कटौती प्रस्ताव भी प्रस्तुत किए जाते हैं। बहस की समाप्ति वित्त मंत्री के उत्तर द्वारा होती है। जिसमें सदन के रुख को ध्यान में रखते हुए यथासंभव कर प्रस्तावों की कटौती की घोषणा भी कर सकता है। इसके पश्चात् वित्त विधेयक को पारित करने के मामले में एक प्रस्ताव सदन में पेश किया जाता है। चूंकि सरकार बहुमत वाले दल की होती है इसलिए वित्त विधेयक को पारित करवाने में सरकार को कोई असुविधा नहीं होती है। लोकसभा में वित्त-विधेयक पास हो जाने पर राज्य सभा के पास भेज दिया जाता है जो 14 दिनों के भीतर उसे लौटाने को बाध्य है। विनियोजन विधेयक की भांति वित्त विधेयक पर भी राज्य सभा की शक्तियाँ सीमित हैं। जब दोनों सदन वित्त विधेयक को पारित कर देते हैं तो उसे राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के लिए भेज दिया जाता है। राष्ट्रपति के हस्ताक्षर हो जाने के पश्चात् विधेयक कानून बन जाता है, तथा सरकार को कर राजस्व वसूल करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

(झ) **राष्ट्रपति का विशेषाधिकार (Veto of the Executive Head)** – जब विधेयक राष्ट्रपति के पास जाता है तो राष्ट्रपति उस पर हस्ताक्षर कर बिल को वापिस कर देता है या फिर उसे अपनी सिफारिशों के साथ 5 या 10 दिन के भीतर लोक सभा को लौटाना होता है। यदि सिफारिशों के साथ बिल वापिस होता है तो लोक सभा मूल रूप से ही बिल को पास करके राष्ट्रपति को पुनः हस्ताक्षर के लिए भेज देती है। निर्धारित अवधि में राष्ट्रपति अपने हस्ताक्षर कर दे तो ठीक अन्यथा अवधि की समाप्ति के पश्चात् वित्त बिल स्वतः कानून बन जाता है।

सरकार द्वारा बजट क्रियान्वयन
(Execution of Budget by Government)

जब संसद द्वारा केन्द्रीय बजट पारित कर दिया जाता है तब इसे लागू करने की कार्यवाही शुरू की जाती है। इस प्रक्रिया में मुख्यतया दो सिद्धांतों का पालन करना अत्यंत आवश्यक माना जाता है :

1. बजट पर क्रियान्वयन विनियोजन के अनुरूप होना आवश्यक है।
2. बजट क्रियान्वयन से संबंधित सरकारी मशीनरी पूर्ण निष्ठा तथा कुशलता से कार्य करने के लिए प्रेरित होनी चाहिए।

इन दो सिद्धांतों की प ष्ठभूमि में बजट पर क्रियान्वयन में पाँच प्रक्रियाएं सम्मिलित की जाती हैं जो निम्नलिखित है :

(1) वित्तीय स्त्रोतों का एकत्रीकरण (Collection of Financial Sources)
(2) एकत्रित साधनों का रक्षण (Custody of Collected Resources)
(3) वित्तीय साधनों का वितरण (Disbursement)
(4) सरकारी आय-व्यय का लेखा (Accounting)
(5) अंकेक्षण तथा प्रतिवेदन (Aduit & Reporting)

बजट क्रियान्वयन की इन अवस्थाओं की विस्त त रूपरेखा के संदर्भ में हमारे प्रशासनिक तंत्र की कुशलता तथा निष्ठा का मूल्यांकन किया जा सकता है। अतः इन्हें ब्यौरे-वार समझाना जरूरी है।

(1) वित्तीय स्त्रोतों का एकत्रीकरण
(Collection of Financial Sources)

वित्त विधयेक में प्रस्तावित कर प्रस्तावों के अन्तर्गत सर्वप्रथम संभावित आय प्राप्ति का अनुमान करना होता है तथा उसके बाद वसूली का कार्य किया जाता है। आय प्राप्ति के अनुमान लगाते समय उच्च स्तर के निर्णय की आवश्यकता होती हैं। जबकि वसुली करने वाले व्यक्तियों से उच्च किस्म की निष्ठा, ईमानदारी तथा सुनिश्चितता की अपेक्षा की जाती है।

आय स्त्रोतों के मूल्यांकन तथा वसूली की जिम्मेदारी अलग-अलग व्यक्तियों को सौंपी जाये अथवा किसी एक ही संस्था को यह एक विवाद का विषय माना जाता है। किन्तु आम राय किसी एक एजेन्सी को दोनों कार्य सौंपने के पक्ष में रही है। यद्यपि सुविधा की द ष्टि से इसके उप-विभाग बनाये जा सकते हैं। भारत में यह कार्य राजस्व विभाग को सौंपा जाता है जो सीधे वित्त मंत्रालय के नियंत्रण में होता है। यह विभाग केन्द्रीय राजस्व बोर्ड के नाम से जाना जाता है।

केन्द्रीय राजस्व बोर्ड में सचिव के स्तर का एक अध्यक्ष होता है तथा संयुक्त सचिव स्तर के चार सदस्य होते हैं तथा इनकी सहायता के लिए नीचे के स्तर के लिए कई और अधिकारी होते हैं। बोर्ड में तीन निरीक्षण निर्देशक होते हैं जिसमें दो आय-कर के लिए तथा एक सीमा शुल्क तथा केन्द्रीय उत्पादन शुल्क के लिए होता है। इस बोर्ड से जुड़े अन्य निम्न विभाग हैं :

(i) आय-कर, अतिरिक्त लाभ तथा व्यावसायिक कर,
(ii) स्टैम्प्स विभाग,
(iii) सीमा शुल्क (भूमि तथा वायु सीमा शुल्क सहित),
(iv) केन्द्रीय उत्पाद शुल्क; तथा
(v) अफीम विभाग

वे विभाग केन्द्रीय सचिवालय स्तर पर होते हैं तथा इनकी शाखाएँ विभिन्न राज्यों के जिला स्तरों तक होती हैं। उदाहरणार्थ, जिला स्तर पर आय-कर अधिकारी होता है जो केन्द्र की ओर से आय-कर एकत्रित करने के कर्तव्य का निर्वाह करता है।

राज्यों में राजस्व

भारतीय संविधान में राज्यों के वित्तीय स्त्रोतों को अलग से परिभाषित किया गया है। राज्यों के वित्तीय स्त्रोतों में मुख्यतया भू-राजस्व, बिक्री-कर; उत्पाद-शुल्क कृषि कर, मनोरंजन कर तथा जंगलात का नाम लिया जा सकता है। इनकी वसूली के लिए केन्द्रीय ढ़ंग पर ही राज्य स्तर पर राजस्व बोर्ड का गठन किया जाता है। जो राज्य के वित्त मंत्रालय के नियंत्रण में होता है। जिला स्तर पर वित्तीय स्त्रोतों से वसूली की व्यवस्था होती है। चूकि भू-राजस्व राज्य सरकार की आय का प्रमुख स्त्रोत होता है, अतः इसके लिए ही राजस्व बोर्ड का गठन किया जाता है तथा इस राजस्व की वूसली में जिला प्रशासन जिसमें कलक्टर, तहसीलदार तथा पटवारी शामिल हैं, की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

(2) एवं (3) एकत्रित कोषों का संरक्षण तथा वितरण
(Custody of Funds & their Disbursement)

एकत्रित राजस्व की संरक्षण व्यवस्था के संदर्भ में दो बातों को विशेष ध्यान में रखने की आवश्यकता होती है :

(i) वित्तीय साधनों के गबन अथवा दुरुपयोग से सुरक्षा,

(ii) वित्तीय लेन-देनों का सुविधाजनक तथा त्वरित संचालन।

धन के संरक्षण तथा संवितरण की व्यवस्थाएं प्रत्येक देश में अपनी ऐतिहासिक परम्पराओं के परिप्रेक्ष्य में विकसित की जाती हैं। इस समय हमारे देश में 300 राजकोष (Treasuries) तथा 1200 उपराजकोष (Sub-Treasuries) कार्य कर रहे हैं। ये राजकोष जिला तथा तहसील स्तर पर सरकार की ओर से भुगतान स्वीकार करते हैं तथा सरकार के नाम पर भुगतान करते हैं। इसके अलावा रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया द्वारा भारत सरकार तथा सरकारों के कोषों के संरक्षण तथा संवितरण का कार्य किया जाता है। सरकार को यदि कोई भुगतान किया जाना है तो दो प्रतियों में चालान भरकर या तो कोषागार में या केन्द्रीय बैंक की किसी शाखा या स्टेट बैंक ऑफ इंडिया अथवा उसकी सहायक बैंकों को किसी शाखा में पैसा जमा कराना होता है। इसके विपरीत, यदि किसी व्यक्ति अथवा इकाई को धनराशि प्राप्त करनी हो तो उस व्यक्ति के द्वारा सरकारी राजकोष के किसी उपयुक्त अधिकारी के हस्ताक्षरयुक्त चैक अथवा प्राप्ति बिल अधिकृत बैंक की शाखा में प्रस्तुत करना होता है।

इस प्रकार की सम्पूर्ण व्यवस्था वित्त मंत्रालय के दिशा-निर्देशन में चलती है। बजट पास होने के तुरन्त बाद वित्त मंत्रालय विभिन्न मंत्रालयों को स्वीकृति अनुदानों की सूचना दे देता है। विभिन्न मंत्रालय बजट प्रावधानों तथा प्रशासनिक स्वीकृतियों की सूचना विभागाध्यक्षों को भिजवा देते हैं। यह प्रक्रिया जिला स्तर तक चलती है जहां से वितरण अधिकारी सरकारी कोषों के संरक्षण तथा संवितरण का कार्य राजकोष उप- राजकोष तथा अधिकृत बैंक की किसी शिक्षा के माध्यम से नियमानुसार करता रहता है।

राजकोष की भूमिका

राजकोष के द्वारा केन्द्र तथा राज्य सरकार दोनों की ओर से धन की प्राप्ति तथा भुगतान का कार्य प्रतिदिन किया जाता है तथा दोनों लेखे भी अलग-अलग रखे जाते हैं। उप-राजकोषों द्वारा नियमित रूप से अपने लेखे जिला राजकोष के पास भिजवाये जाते हैं, जहां इनका वर्गीकरण तथा सूचीबद्धता की जाती है। इसके पश्चात् उप-राजकोषों से प्राप्त लेखों तथा जिला राजकोषों के लेखों को प्रति 15 दिन के पश्चात राज्यों के महालेखापाल के पास भेजा जाता है। प्रत्येक लेखे के साथ खर्च के प्रमाणक तथा आय प्राप्ति की चालान रसीदें भी भिजवायी जाती है। इस प्रकार राजकोष व्यवस्था भारतीय वित्तीय प्रशासन की एक आधारभूत कड़ी है जो इतने विशाल क्षेत्र में फैले देश के कोने-कोने में केंद्र सरकार की राजस्व प्राप्तियों तथा भुगतानों की समुचित व्यवस्था करती है तथा बजट लेखों के सुव्यवस्थित संचालन को सम्भव बनाती है।

यह उल्लेखनीय है राजकोष द्वारा भुगतान के तकनीकी पहलुओं पर बिल पास करने के पूर्व अथवा चैक का निस्तारण करने के पूर्व पूरी तरह से छानबीन की जाती है तथा सभी औपचारिकताएं

पूरी करवायी जाती हैं। संवितरण अधिकारी की जिम्मेदारी इससे भी अधिक रहती है। उसे किसी भी धनराशि के भुगतान के पूर्व यह देखना होता है कि :

(i) क्या यह बजट प्रावधानों के अनुरूप है ?

(ii) भुगतान के लेखे की समुचित व्यवस्था है या नहीं ?

(iii) क्या प्रशासनिक तथा तकनीकी औपचारिकताएं पूर्ण कर ली गयी हैं ? तथा

(iv) क्या भुगतान की मांग उचित है ?

बैंकिग के विस्तार के कारण अब सरकारी कोषों का भण्डारण रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक अथवा उसकी शाखाओं में किया जाता है। इसके अलावा राजकोष अथवा उप-राजकोष भी इस दायित्व का निर्वाह करते हैं।

भारत में प्रचलित वित्तीय कोषों के संरक्षण तथा संवितरण की राजकोष व्यवस्था के आलोचकों का कहना है कि इसके कारण भारत के नियंन्त्रक तथा महालेखा (Comptroller & Accountant General) को भारत की संचित निधि से भुगतान किए जाने वाले धनराशि पर प्रभावी नियंत्रण रखने में कठिनाई होती है। इस आलोचना के बावजूद भी यह बात महत्वपूर्ण है कि भारत की कोषागार पद्धति बहुत हद तक सरकारी व्यय को नियमानुसार निर्देशित करने में उपयोगी रही है।

धन का पुनर्विनियोजन

विधान मंडलों द्वारा स्वीकृत धनराशियों को संबंधित विभाग द्वारा बजट प्रावधानों के अनुसार प्रत्येक वित्तीय वर्ष की समाप्ति के पूर्व 31 मार्च तक खर्च करना होता है अन्यथा अनुदान की स्वीकृति समाप्त हो जाती है। पर यदि किसी विशिष्ट अनुदान की किसी एक मद में धन बच जाए और यदि दूसरे मद से अधिक खर्च हो जाए तो विभागाध्यक्ष को एक सीमा तक स्वविवेक का उपयोग करते हुए धन का स्थानान्तरण करने का अधिकार होता है। इस प्रकार कुल व्यय-राशि को बिना परिवर्तित किए किसी एक शीर्ष की एक मद अथवा इकाई मे से दूसरी इकाई में धन के हस्ताान्तरण की व्यवस्था को पुनर्विनियोजन क्रिया कहा जाता है।" यह स्पष्ट होना चाहिए कि पुनर्विनियोजन एक अनुदान शीर्ष से दूसरे शीर्ष में नहीं किया जा सकता। यह तो केवल व्यवस्थापिका द्वारा ही किया जा सकता है। इसके अलावा, बजट तथा लेखों की शुद्धता की द ष्टि से भी इस प्रकार पुनर्विनियोजन उचित नहीं माने जाते। त तीय, व्यवस्थापिका ने किसी अनुदान शीर्ष में कटौती कर दी हो तो पूरा करने के लिए भी पुनविर्निंयोजन की वैधानिक अनुमति नहीं होती। चतुर्थ, प्रभारित मदों में यदि कुछ बातें रही हों तो उसे मतदान वाल व्यय मदों में पुनर्विनियोजन नहीं किया जा सकता। अन्त में, राजस्व तथा पूँजीगत व्यय शीर्षों में भी पुनर्विनियोजन करने की कानूनी तौर पर कोई व्यवस्था नहीं है।

इस प्रकार पुनर्विनियोजन का अधिकार विभागाध्यक्षों को बहुत सीमित दायरे में ही अपने स्वविवेक का उपयोग करने की अनुमति देता है तथा 31 मार्च के पश्चात् अनप्रयुक्त राशि में स्वीकृति स्वतः समाप्त हो जाती है।

(4) **वित्तीय कोषों का लेखांकन (Account of Funds)** – बजट क्रियान्वयन में लेखांकन का अत्याधिक महत्त्व है। भारत में लेखांकन को कार्यपालिका से अलग करके उसके लिए लेखा तथा अंकेक्षण विभाग की अलग स्थापना की गयी है। नियंन्त्रक तथा भारत का महालेखा

परीक्षक इसका मुखिया होता है महालेखापाल उसे लेखांकन कार्य में सहायता करते हैं। रेलवे को छोड़कर प्रत्येक केन्द्रीय नागरिक विभाग के लिए एक महालेखापाल होता है, तथा प्रत्येक राज्य में भी इनका एक पद होता है लेखांकन के सामान्य नियम भारत के लेखा परीक्षक द्वारा प्रदान किए जाते हैं। इन नियमों के अनुसार लेखाओं की तैयारी चार स्तरों पर सम्पादित होती है :

(i) प्रारम्भिक लेखा इन्द्राज उस कोषागार स्तर पर होती है जहाँ किसी प्रकार का लेन-देन होता है,

(ii) व्यय शीर्षों के अनुसार सभी लेन-देनों का ब्यौरे-वार वर्गीकरण करना,

(iii) लेखाधिकारियों द्वारा लेखों का मासिक संकलन करना, तथा

(iv) भारत के महालेखा परीक्षक द्वारा लेखों का वार्षिक संकलन।

राज्य सरकार के खर्च से जिला स्तर पर कार्यरत कोषागार केन्द्र तथा राज्य दोनों सरकारों के लेखे रखता है। रेलवे, पोस्ट तथा टेलीग्राफ, सार्वजनिक निर्माण विभाग तथा जंगलात से संबंधित भुगतान तो कोषागार द्वारा किए जाते हैं किन्तु इनके लेखे विभागीय अधिकारियों द्वारा रखे जाते हैं। प्रत्येक महीने की 11 तथा 12 तारीख को कोषाधिकारी द्वारा संबंधित अवधि में किए गए भुगतानों की सूचना (मय बाउचर्स) महालेखाकार को भेजी जाती है।

(5) **लेखा परीक्षा** (Audit) – प्रत्येक माह की पहली तारीख तक गत माह के हिसाब-किताब महालेखाकार कार्यालय में पहुँच जाते हैं जहाँ प्राप्तियाँ तथा खर्चों का लेखा शीर्ष के अनुसार वर्गीकरण होता है। इस प्रकार के वर्गीकरण से पूरे देश भर की लेखा पद्धति में समानता स्थापित करने तथा बजट संबंधी पूर्वानुमान लगाने में काफी सुविधा रहती है। महालेखाकार के कार्यालय स्तर पर भारत सरकार की ओर से निम्न चार शीर्षों में प्रमुखतया लेखा सूचनाएँ संकलित की जाती हैं :

(i) राजस्व खाता

(ii) पूँजीगत खाता

(iii) ऋण खाता

(iv) दूरस्थ प्राप्तियाँ

प्रथम करों तथा अन्य संबंधित मदों से प्राप्त राजस्व तथा उससे जुड़े हुए खर्च के हिसाब को रखा जाता है जबकि पूँजीगत खाते में उधार लिए गए तथा एकत्रित हुए कोषों तथा इनसे संबंधित व्यय के लेखे रखे जाते हैं। तीसरे खाते में ऐसी प्राप्तियों के भुगतानों का लेखा-जोखा रखा जाता है जिसके कारण या तो सरकार देनदार बनती है या फिर लेनदार। चौथे लेखे में उन लेखा-देनों का हिसाब रखा जाता है। जो मुख्यतया पोस्टल सेवाओं, सार्वजनिक निर्माण सेवाओं, सुरक्षा सेवाओं तथा जंगलात से संबंधित लेन-देन हों तथा अन्य कोई राशि जो पूर्व किसी लेखे में सम्मिलित न की गयी हो।

महालेखाकर के कार्यालय में छोटे शीर्षों तथा उप-शीर्षों में प्राप्त होने वाले लेखों को बड़े शीर्षों में वर्गीकृत किया जाता है ताकि उन्हें उस रूप में तैयार किया जा सके जिस रूप में व्यवस्थापिका द्वारा बजट अनुदान मांगे पास की गयी थीं।

बड़े शीर्षों में वर्गीकरण के पश्चात् इन लेखों का अंकेक्षण होकर इन्हें अधिकारियों के पास भेजा जाता है, जो प्रत्येक माह इनको संलग्न करके हर अगले माह सरकार के समक्ष प्रस्तुत करते रहते हैं।

भारत में महालेखा परीक्षक द्वारा लेखों का वार्षिक आधार पर संकलन किया जाता है तथा उनके द्वारा वित्तीय लेखे विनियोजन लेखे तथा अपनी अंकेक्षण रिपोर्ट राज्य के राज्यपाल अथवा देश के राष्ट्रपति को प्रस्तुत की जाती है, जो प्रतिवर्ष संसद (या विधानमंडल) के बजट 48 संत्र या तंत्र के समय संसद के समक्ष प्रस्तुत की जाती है।

वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में कार्यपालिका द्वारा बजट का प्रस्तुतीकरण व्यवस्थापिका द्वारा उसे पास करने की प्रक्रिया तथा सरकार आय-व्यय लेखों की सुव्यवस्थित व्यवस्था से जुड़ी क्रियाओं का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। स्वस्थ लोकतंत्रीय व्यवस्था में ये क्रियाएं नागरिक हितों का संवर्द्धन होती है तथा प्रशासकों को इस बात का अहसास कराती रहती है कि लोकसत्ता ही सर्वापरि है एवं उन्हें अपने क्रियाकलापों के लिए लोक प्रतिनिधियों के प्रति जवाब देह होना पड़ता है।

बजट के महत्त्वपूर्ण सिद्धांत
(Important Principles of the Budget)

विभिन्न देशों के लम्बे अनुभव से बजट के संबंध में कुछ सिद्धांत प्रतिपादित हुए है। ताकि बजट को अधिक सार्थक और उपयोगी बनाया जा सके। यद्यपि इनमें से कोई ऐसा सिद्धांत नहीं है जिसे अनुलंघनीय माना जा सके तथापि एक स्वस्थ बजट के लिए इनका होना उपयोगी माना जाता है। बजट के इन सिद्धांतो को व्यापक रूप से हम दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम, वे जिनका संबंध कार्यापालिका से है और द्वितीय, वे जो व्यवस्थापिका से संबंध रखते हैं।

कार्यपालिका से संबंधित सिद्धांत
(Principles Related to Executive)

बजट कार्यपालिका के विभिन्न विभागों के बीच समन्वय का एक मुख्य स्त्रोत है। इसके द्वारा अपव्यय और पुनराव त्ति को कम किया जा सकता है। बजट बनाते समय सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों का मूल्यांकन हो जाता है और अनावश्यक क्रियाओं को समाप्त करने का आधार मिलता है। बजट से प्रशासन में अनुशासन आता है 'इसके विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संगठन के सभी भाग मिलकर कार्य करते हैं। कार्यपालिका की द ष्टि से बजट को प्रभावशाली और उपयोगी बनाने के लिए जो सिद्धांत अपनाये जाते हैं वे मुख्यतः निम्नांकित हैं -

1. **मुख्य कार्यपालिका का पर्यवेक्षण** – बजट एक प्रकार से मुख्य कार्यपालिका के कार्यक्रम की रूपरेखा है। ऐसी स्थिति में यह अत्यन्त आवश्यक है कि बजट पर मुख्य कार्यपालिका का सीधा पर्यवेक्षण हो।
2. **कार्यपालिका का दायित्व** – मुख्य कार्यपालिका द्वारा तैयार किया गया बजट ऐसा होना चाहिए जो व्यवस्थापिका के उद्देश्यों को पूरा करता हो और साथ ही उसमें मितव्ययता का अनुपालन भी किया गया हो।
3. **आवश्यक साधन** – बजट की तैयारी और क्रियान्विति का उत्तरदायित्व मुख्य रूप से कार्यपालिका पर होता है। इसे पूरा करने के लिए आवश्यक है कि मुख्य कार्यपालिका को पर्याप्त प्रशासनिक उपकरण अथवा साधन प्रदान किए जाएं।

4. **आवश्यक सूचना** – बजट बनाते समय जो अनुमान बनाए जाएं तथा यदि उन्हें व्यवस्थापिका में प्रस्तुत कर क्रियान्वित किया जाए, तो यह आवश्यक है कि प्रत्येक स्तर पर संबंधित अधिकारियों के प्रतिवेदनों को आधार बनाया जाए। इन प्रतिवेदनों के माध्यम से ही बजट को उपयोगी और सार्थक बनाया जा सकता है। इनके अभाव में यह अन्धा और निराधार होगा। इससे इसकी उपयोगिता भी नष्ट हो जाएगी।

5. **स्वविवेक के लिए अवसर** – बजट के अनुमान मोटे तौर पर निर्धारित किए जाने चाहिए ताकि समय के परिवर्तन के साथ मुख्य उद्देश्य प्राप्त करने के लिए उपयुक्त साधनों का चुनाव किया जा सके।

6. **एक सहकारी प्रयास** – बजट में कुशलता के साथ-साथ सभी विभागों तथा उपविभागों का सक्रिय सहयोग भी प्राप्त होना चाहिए। बजट की रचना केवल एक केन्द्रीय कार्यालय का ही कार्य नहीं, वरन् एक ऐसी प्रक्रिया है जो संपूर्ण प्रशासकीय संरचना का एक महत्वपूर्ण कार्य है।

7. **लोचशीलता** – बजट के रूप में इतनी लोचशीलता होनी चाहिए कि बदलती हुई आवश्यकताओं के साथ उनमें परिवर्तन किए जा सकें।

उपर्युक्त सिद्धांत यह स्पष्ट करते हैं कि बजट निर्माण करना एक सुव्यवस्थित और वैज्ञानिक प्रक्रिया है। कार्यपालिका से अत्यन्त योग्यता और सजगता की अपेक्षा की जाती है।

व्यवस्थापिका से संबंधित सिद्धांत
(Principles Related to the Legislature)

बजट के माध्यम से व्यवस्थापिका को कार्यपालिका पर नियंत्रण स्थापित करने का अवसर प्राप्त होता है। प्रारम्भ में यह नियंत्रण केवल राजस्व के स्त्रोतों एवं मात्रा को बढ़ाने की द ष्टि से किया जाता था किन्तु बाद में इसमें व्यय को भी समाविष्ट किया गया। व्यवस्थापिका का नियंत्रण यह स्पष्ट करता हैं कि उसकी स्वीकृति के बिना कोई कर एकत्रित नहीं किया जा सकता और न ही कोई व्यय किया जा सकता है। कार्यपालिका पर व्यवस्थापिका का समुचित नियंत्रण स्थापित करने के लिए कुछ निम्नलिखित सिद्धांत विकसित किए गए है :

(i) **प्रचार (Publicity)** – सरकारी बजट विभिन्न सोपानों में से होकर गुजरता है। इनके प्रचार और प्रकाशन द्वारा बजट को सार्वजनिक जानकारी का विषय बना लेना चाहिए। बजट पर विचार-विमर्श करते समय व्यवस्थापिका के गुप्त अधिवेशनों की आवश्यकता नहीं है। बजट का पर्याप्त प्रचार और प्रकाशन होने पर ही देश की जनता और समाचारपत्र उसके संबंध में अपनी राय प्रकट कर सकते हैं।

(ii) **स्पष्टता (Clarity)** – बजट यदि अस्पष्ट और उलझन पूर्ण हुआ तो निश्चय ही यह सामान्य जनता की समझ से बाहर रहेगा। बजट की सार्थकता और सफलता के लिए उसे इतना स्पष्ट होना चाहिए कि जनता इसे भली प्रकार समझ सके।

(iii) **एकता (Unity)** – बजट में जो व्यय दिखाए जा रहे हैं। उन सभी की वित्तीय व्यवस्था करने के लिए सरकार को सभी प्राप्तियां एक सामान्य विधि में एकत्रित करनी चाहिए। राजस्व को प थक् करना एक अच्छे बजट का लक्षण नहीं है।

(iv) **व्यापकता (Comprehensiveness)** – बजट के अन्तर्गत समस्त सरकारी कार्यक्रमों पर प्रकाश डालते हुए व्यय और राजस्व को पूर्ण रूप से स्पष्ट किया जाना चाहिए। बजट

के देखने पर स्पष्ट रूप से यह ज्ञात होना चाहिए कि सरकार द्वारा कौन-कौन से नए कर लगाए जा रहे हैं और किन-किन मदों पर सरकार द्वारा व्यय किया जाएगा। सरकार द्वारा जारी किए जाने वाले नए ऋण भी बजट में सम्मिलित होते हैं। बजट देखने में सरकार की सम्पूर्ण आर्थिक स्थिति का बोध हो सकता है।

(v) **नियतकालीनता (Periodicity)** – बजट द्वारा सरकार को विनियोजन तथा व्यय करने का जो अधिकार दिये जाए वह एक निश्चित समय के लिए होना चाहिए। यदि धन का उपयोग इस समय के अन्तर्गत नहीं किया जाता है, तो उसे प्रयोग करने का अधिकार समाप्त हो जायेगा और केवल पुनर्विनियोजन करने पर ही उसे व्यय किया जा सकेगा। सामान्य रूप से बजट-अनुदान वार्षिक आधार पर निर्धारित किए जाते हैं। वित्त-वर्ष प्रारम्भ होने से पूर्व ही बजट की मदें स्वीकार कर ली जाती हैं।

(vi) **निश्चितता (Accuracy)** – बजट की विभिन्न मदें तथा अनुमान यथासंभव निश्चित एवं परिशुद्ध होने चाहिएं। बजट के अनुमान पर्याप्त सूचनाओं पर आधारित हों, ठीक हों, व्यवस्थित हों और मूल्यांकन करने की द ष्टि से उपयुक्त हों। तथ्यों को गोपनीय रखकर या राजस्व का कम अनुमान लगाकर बजट की परिशुद्धता को समाप्त करने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए।

(vii) **ईमानदारी (Integrity)** – विभिन्न कार्यक्रम उसी प्रकार क्रियान्वित किए जाएं जिस प्रकार उनको बजट में प्रदर्शित किया गया है, अन्यथा बजट निरर्थक हो जाता है। बजट की रचना के समय जो उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं उन्हें प्राप्त करने के लिए ईमानदार एवं कार्यकुशल प्रशासन का होना नितान्त आवश्यक है।

कुछ अन्य सिद्धांत
(Some Other Principles)

एक स्वच्छ और अच्छे बजट की रचना में उपर्युक्त के अतिरिक्त कुछ अन्य सिद्धांत भी अपनाए जाने चाहिए :

1. **संतुलित बजट (Balanced Budget)** – बजट संतुलित होना चाहिए। यह अनुमानित व्यय अनुमानित आय तथा राजस्व से अधिक नहीं होना चाहिए। यद्यपि सरकारी वित्त में अधिक लोचशीलता होती है, क्योंकि अतिरिक्त व्यय को पूरा करने के लिए आवश्यक धन का प्रबंध किया जा सकता है, तथापि इसकी भी एक सीमा होती है। जो देश लगातार इस सीमा को पार करता रहेगा वह दीर्घकाल में दिवालिया हो जाएगा और उसकी अर्थव्यवस्था चरमरा जायेगी।

   जब बजट में व्यय और राजस्व बराबर होते हैं तो उसे हम संतुलित बजट कहते हैं किन्तु जब व्यय राजस्व की अपेक्षा कम होता है तो उसे आधिक्य या बचत बजट (Surplus Budget) कहा जाएगा और यदि व्यय अनुमानित राजस्व की अपेक्षा अधिक है तो उसे घाटे का बजट कहा जाएगा। यदि कभी घाटे का बजट बन जाए तो कोई चिन्ता की बात नहीं है, किन्तु निरन्तर ऐसा होना राज्य के स्थायित्व और वित्तीय साख के लिए खतरनाक होता है। भारत के बारे में यही बात लागू हो रही है। अनवरत् रूप से पेश किये जाने वाले घाटे के बजटों के कारण देश की अर्थव्यवस्था को गंभीर खतरों से जूझना पड़ रहा है। प्रधानमंत्री पी० वी० नरसिंहराव और वित्त मंत्री डॉ॰ मनमोहन सिंह इन खतरों की तरफ अपने कार्य काल में ध्यान दिलाते रहे।

   आधुनिक अर्थशास्त्री घाटे की अर्थव्यवस्था को कुछ परिस्थितियों में सहनीय और आवश्यक मानते हैं उनके कथनानुसार घाटे की व्यवस्था का मुकाबला करने के लिए जनता के लिए

अधिक काम तथा आय की व्यवस्था करना आवश्यक है। राज्य ऐसा तभी कर सकता है जब वह सार्वजनिक कार्यों पर सरकारी व्यय की व द्धि करें। इस व्यय की वित्तीय व्यवस्था घाटे के बजट द्वारा की जा सकती है। इन विचारकों का कहना है कि एक संतुलित बजट अपनी जनता को कुछ वापिस कर देता है जो उसके ऋण अथवा करों के रूप मे जनता से लिया है। ऐसी स्थिति में व्यक्तिगत अर्थव्यवस्था पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसके विपरीत घाटे का बजट जब आय से अधिक व्यय का प्रावधान करता है तो उसे पूरा करने के लिए वह कागजी मुद्रा का सहारा लेता हैं इस प्रकार राज्य जनता से जितना धन लेता है उससे अधिक प्रदान करके जनता की क्रय-शक्ति को बढ़ाता है। व्यापारिक मंदी का मुकाबला करने के लिए घाटे की व्यवस्था एक लोकप्रिय साधन बन चुकी है।

(2) **मिश्रित बजट (Composite Budgeting)** – स्वस्थ बजट का एक दूसरा सिद्धांत यह है कि वह विशुद्ध न होकर मिश्रित होना चाहिए अर्थात् प्राप्तियों तथा व्यय दोनों के सभी लेन-देन पूरी तरह से दिखाए जाने चाहिए, न कि केवल उनकी विशुद्ध स्थिति को ही। इस नियम की अवहेलना करने पर वित्तीय प्रक्रिया अस्पष्ट हो जाएगी, वित्तीय नियंत्रण प्रभावहीन बन जाएगा और लेखे अपूर्ण बन जाएंगे। उदाहरण के लिए, यदि एक विभाग के व्यय का अनुमान 4 लाख रुपए है और आय का अनुमान दो लाख रुपये है। यदि वह विशुद्ध बजट की रचना करे तो व्यवस्थापिका से केवल दो लाख रुपये का अनुदान चाहेगा और इस प्रकार वह व्यवस्थापिका को अपने आधे व्यय पर नियंत्रण रखने से वंचित कर देगा।

(3) **बजट के दो भाग (Two Parts of the Budget)** – बजट के दो भाग किए जाने चाहिए। एक भाग में चालू व्यय और आय होनी चाहिए तथा दूसरे भाग में पूंजीगत भुगतान तथा प्राप्तियां होनी चाहिए। प्रथम भाग राजस्व बजट कहलाएगा और दूसरा भाग पूँजीगत बजट कहलाएगा। यदि इस प्रकार का अन्तर न किया गया तो समस्त आर्थिक चित्र धुंधला रह जाएगा। इसलिए दोनों भागों को अलग रखा जाता है और अलग-अलग संतुलित किया जाता है।

(4) **बजट तथा लेखों की समानता (Similarity of Budget and Accounts)** – बजट का एक अन्य सिद्धांत यह है कि इसका रूप लेखों के रूप से मिलता हुआ होना चाहिए। ऐसा करने से बजट की रचना में सुविधा होगी, बजट पर नियंत्रण रखा जा सकेगा और लेखों को भी ठीक प्रकार रखा जा सकेगा। भारत में प्राक्कलन समिति द्वारा प्रस्तावित सुझावों पर विचार करने के बाद वित्तमंत्री बजट का रूप निश्चित करता है।

(5) **बजट का नकदी आधार (The Cash Basis of the Budget)** - बजट में आय और व्यय अनुमान वर्ष की वास्तविक प्राप्ति या व्यय से संबंधित होने चाहिए। नकद बजट का काम यह है कि इसके आधार पर एक वित्तीय वर्ष के लेखों की अन्तिम तैयारी वर्ष के समाप्त होते ही की जाती है। इस प्रणाली का दोष यह है कि वर्ष के लिए वित्तीय तस्वीर सही-सही नहीं उभर पाती। आगामी वर्षों में किए जाने वाले भुगतानों को हटा कर घाटे के स्थान पर वर्तमान वर्ष के बजट में अतिरेक की स्थिति दिखाई जा सकती है। यद्यपि बजट का राजस्व भाग दोष से बचा रहता है, किन्तु यह अन्तिम लेखों की तैयारी और प्रस्तुतीकरण को प्रकट करता है।

अध्याय - 6

निष्पादन बजट

(Performance Budget)

समाज की आवश्यकताओं को देखते हुए सरकार के पास संसाधन हमेशा सीमित मात्रा में होते हैं। इसलिए इन संसाधनों का आर्थिक रूप से अधिक सक्षम ढंग से प्रयोग करना चाहिए। संसाधनों का सक्षम ढंग से प्रयोग करने के लिए सरकार विभिन्न व्यय प्रस्तावों का उनकी लागतों और लाभों के संदर्भ में आकंलन करती है तथा उन कार्यक्रमों का चुनाव किया जाए ताकि उनका वास्तविक निष्पादन का स्तर संभावित परिणामों के निकट हों। वास्तव में उन्हीं बजट प्रस्तावों को शामिल करना चाहिए जिनका क्रियान्वयन किया जा सके। किसी भी बजट प्रस्ताव के क्रियान्वयन की सफलता उसके ठोसपन तथा सरकारी प्रशासन की कार्यक्षमता, पर्याप्तता और उनके चरित्र पर तथा सम्बन्धित परिस्थितियों पर निर्भर करती है। बजट प्रस्तावों के क्रियान्वयन से प्राप्त होने वाले वास्तविक परिणाम, प्रत्याशित परिणामों से भिन्न होते हैं, इसलिए हमें एक ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता महसूस होती है जिससे मूल्यांकन किया जा सके। इसका अभिप्राय यह है कि किसी एक परियोजना पर संसाधनों को व्यय करने का निर्णय ही प्रबंधन (programming) है। इसके अर्न्तगत परियोजना क्रियान्वयन के प्रत्येक चरण में किये जाने वाले व्यय की मात्रा निश्चित कर दी जाती है। यह प्रोग्राम अपनी प्रक ति के अनुसार इससे संबंधित संभावित परिणामों को दर्शाता है। बजट के इस भाग को बजट प्रोग्रामिंग (budget programming) कहा जाता है। इसी परियोजना के वास्तविक परिणामों की जांच करने के लिए परिक्षण किये जाते है कि परियोजना का वास्तविक परिणाम इसके प्रत्याशित परिणामों से कितने कम अथवा कितने अधिक हैं तथा इसके क्या कारण हैं? बजट के इस पक्ष को बजट निष्पादन (budget performaning) कहा जाता है। जैसा कि अमेरिका में हूवर आयोग (Hoover Commission) ने कहा है कि बजट निष्पादन सरकार की क्रिया, कार्यकलापों और परियोजनाओं पर निर्भर करता है। (A performance budget is based upon activities, functions and project of the government) जब बजट बनाते समय इन दोनों पक्षों (निष्पादन व प्रोग्रामिंग) को ध्यान में रखा जाता है, तो उसे performance and programme budgeting (PPB) अथवा (performance and programme budgeting system) (PPBS) कहा जाता है।

कार्यकारिणी के स्तर पर सरकार की व्यय नीति के निर्माण और निष्पादन में सुधार PPBS के अर्न्तगत शामिल किया जाता है। सार्वजनिक व्यय के परम्परागत उपागम में कार्यकारिणी को विधायिका के प्रति जवाबदेह माना गया है तदनुसार कानून बनाए गए हैं। कार्यकारिणी (executive) को इन कानूनों का निर्वाह करना ही पड़ता है। लेकिन एक समय के दौरान इस उपागम की कमियां उभर कर सामने आने लगीं जिसके फलस्वरूप इस प्रक्रिया में प्रबंधकीय क्षमता व लोचशीलता के लिए कानूनों को सुधारने के प्रयास किए गए। PPB इस संदर्भ में किये गए अन्तिम प्रयासों

में से एक है जिसके अन्तर्गत व्यय नीति के प्रतिपादन और क्रियान्वयन (formulation and execution) में सुधार किए गये हैं।

PPBS का औचित्य कुछ आधारभूत परिकल्पनाओं पर आधारित हैं जो निम्नलिखित हैं :

(i) यह हमारी आर्थिक समस्याओं की आधारभूत प्रक ति को मान्यता प्रदान करता है तथा हमारी आर्थिक समस्याएं समाज की आवश्यकताओं की तुलना में संसाधनों की दुर्लभता के कारण उत्पन्न होती है इन सीमित साधनों के लिए विभिन्न आवश्यकताओं को प्रतियोगिता करनी पड़ती है। इनमें केवल उन्हीं को चुना जाता है जिनमें लागत लाभ अनुपात न्यूनतम होता है।

(ii) विभिन्न परियोजना में से किसी एक परियोजना का चुनाव केवल उसकी उपयोगिता पर ही निर्भर नहीं करता वरन् उसके सक्षम क्रियान्वयन पर भी निर्भर करता है। इसके लिए सक्षमता का मापदंड और इसको प्राप्त करने के लिए युक्ति खोजनी होगी। इसके अतिरिक्त अल्प उत्पादन व अतिरिक्त उत्पादन की मात्रा से संबंधित निर्णय लेने का आधार भी होना चाहिए।

(iii) परम्परागत बजटीय प्रविधियों और नीतियों में कोई स्वचालित नियामक (Automatic Regulator) शक्ति नहीं होती है जो विधायिका और कार्यपालिका परियोजना की उपयोगिता के समाप्त होने के बारे में जानकारी दे सकें। इस कार्य की पूर्ति के लिए ऐसी कार्यप्रणाली की आवश्यकता है जिसमें विभिन्न निर्णयों और उनके परिणामों को कसौटी पर परखा जा सके। प्रारम्भ में यह संभव है कि यह व्यवस्था अथवा कार्यप्रणाली अपूर्ण हो, लेकिन हमें समय व अनुभव के साथ इसमें सुधार की उम्मीद रखनी चाहिए इसलिए किसी भी स्थिति में अपूर्ण व्यवस्था का होना, व्यवस्था के लिए श्रेष्ठ होने से है। PPBS एक ऐसी ही व्यवस्था है।

(iv) एक उपयुक्त PPBS के अभाव में सरकारी निर्णयों में अव्यवस्था आ ही जाती है। सरकार में निर्णय लेने की प्रभावी प्रक्रिया सामान्तया कई संस्थाओं के बीच विभाजित होती है जबकि किसी विशिष्ट परियोजना और उसके परिणामों की जांच समग्र रूप में की जाती है, किसी विशेष अंश के संदर्भ में नहीं। इसका अभिप्राय यह है कि ज्यादातर स्थितियों में एक से अधिक संस्थाओं के निर्णयों को समन्वित करने की आवश्यकता पड़ती है तथा विभिन्न स्थितियों व चरणों में उनके प्रभाव की जांच की जाती है। कभी-कभी तदर्थ समाधान (Adhoc solutions) बहुत ही उपयोगी जान पड़ते है लेकिन तदर्थता (Adhocism) के आधार पर किसी नीति का प्रतिपादन नहीं किया जा सकता। जब हम वर्तमान को भविष्य के साथ जोड़ते हैं तब, यह एक विध्वंसकारी नीति उपकरण बन जाता है।

(v) यह समस्या इस तथ्य से और भी गंभीर बन जाती है कि सरकार द्वारा आर्थिक आधार पर बजटिंग (budgeting) की जाती है जबकि परियोजनाओं तथा कार्यक्रमों की अवधि काफी अधिक होती है। इसलिए बजटीय प्रावधानों और नीतियों के बीच लम्बे समय तक समन्वय की आवश्यकता पड़ती हैं। इसके अतिरिक्त एक लंबे समय तक बजटीय प्रावधानों और कार्यक्रमों का प्रभावी मूल्यांकन भी करना पड़ता है। PPBS का मुख्य जोड़ फारवर्ड प्रोग्रामिंग (forward programming) पर होता है।

यह बात जोर देकर कही जा सकती है कि PPBS कोई मशीनी चीज नहीं है। यह ठोस मानवीय निर्णय का स्थान नहीं ले सकती है। PPBS का प्रमुख कार्य निर्णय में सहायता करना होता

है ताकि सही निर्णय लिए जा सकें। PPBS मानवीय कारकों की लागत अथवा/और लाभ के द ष्टिकोण की उपेक्षा नहीं करता। यह उन मानवीय कारकों को भी शामिल करता है जिनको मात्रात्मक रूप में मापा नहीं जा सकता। यहां पर विश्लेषण का व्यवस्थित होने का अर्थ यह नहीं है कि वह मात्रात्मक भी है। इस विश्लेषण का उद्देश्य सत्ताधिकारियों द्वारा निर्णय लेने की प्रक्रिया में सुधार करना है ताकि बेकार के मुद्दों को हटाया जा सके तथा उपयुक्त मुद्दों को समन्वित किया जा सके। जब भी मान्यताओं में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन द ष्टिगोचर हो, उसे संशोधित करना संभव हो इस व्यवस्था में व्यय के प्रत्येक निर्णय को शामिल नहीं किया जा सकता परन्तु सरकार के सभी महत्वपूर्ण कार्यो को इसके अर्न्तगत सम्मिलित किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों जैसे कोयला, विद्युत, पैट्रोलियम, गैस वायु, सौर ऊर्जा आदि। स्पष्ट है कि PPBS का कार्यक्षेत्र काफी विस्त त है। परंतु कार्यक्षेत्रों के विभिन्न उपक्षेत्रों में विभिन्न विश्लेषणात्मक तकनीकों व आधारों की आवश्यकता पड़ती है। प्रारंभ में यह संभव है कि सफलता कम मात्रा में मिले लेकिन उस उपागम की उपयोगिता को देखते हुए इसका मह त्वपूर्ण क्षेत्रों में अपनाया जाना अति आवश्यक है।

तकनीकी रूप में बजट निष्पादन व बजट योजना (budget programme) एक जैसे हैं परन्तु समरूप नहीं है। बजट योजना में तीन चरण होते हैं – प्रथम विभिन्न राजकोषीय उपायों और नीतियों के उद्देश्यों को परिभाषित करना। इन उपायों व नीतियों का प्रभाव योजना के उत्पादन व परिणामों पर पड़ता है। इस चरण के अर्न्तगत उन योजनाओं व नीतियों को शामिल किया जाता है जिन्हें किन्ही विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करना है।

द्वितीय इस चरण की प्रक ति विश्लेषणात्मक है इस चरण में लागत-लाभ उपागम को अपनाया जाता है जिसके आधार पर विभिन्न विकल्पों में से किसी एक विकल्प का चुनाव किया जाता है। सामान्यतया उस विकल्प को चुना जाता है जो आर्थिक द ष्टि से सर्वोत्तम हो।

त तीय इस चरण के अर्न्तगत वर्तमान योजनाओं और नीतियों को भविष्य में होने वाले लाभों, समस्याओं, लागतों व अन्य संदर्भो में देखा जाता है। समयावधी के अन्त में चुनी गई योजना की वास्तविक उपलब्धि की समीक्षा की जानी चाहिए। इस समीक्षा को बजट का निष्पादन (performance budgeting) कहा जाता है बजट निष्पादन और बजट योजना एक दूसरे से संबधित होते हैं। एक के बिना दूसरे का कोई अर्थ नहीं होता बजट योजनाएं सामान्यतया एक दीर्घकालीन "roling plan system" हो है अतः PPBS सरकार के लिए काफी महत्वपूर्ण होता है।

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि सरकार की कई सेवाओं के निष्पादन की माप करना संभव नहीं होता। इसके अतिरिक्त कई प्रत्यात्मक (Conceptual) और अन्य समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। उदाहरण के लिए, एक से अधिक योजनाओं का एक ही उद्देश्य हो सकता है अथवा एक योजना का एक उद्देश्य भी हो सकता है। इसी तरह, अद श्य परिणामों (intangible results) से संबधित योजनाएं हो सकती हैं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई आदि सुविधाओं में सुधार आदि।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय स्तर पर क षि, उद्योग, सार्वजनिक स्वास्थ्य आदि के क्षेत्र में PPBS का कुशलतापूर्वक क्रियान्वयन नहीं किया जा सकता। इसके लिए काफी बड़े पैमाने पर आंकड़ों की आवश्यकता पड़ती है जिनको प्राप्त करने में काफी लागत आती है। इसलिए विस्त त

विश्लेषण के लिए सरकार के कार्यो को मत्रांलय, विभाग (Department) तथा अनुभाग (Section) स्तर पर बांट दिया जाता है। इससे परियोजना की विभिन्न चरणों पर समीक्षा करने में मदद मिल सकती है।

भारत में सभी मत्रांलय व विभाग निष्पादन बजट की प्रक्रिया से जुड़े रहते हैं। यह निष्पादन बजट (Peformance Budget) विशिष्ट उद्देश्यों के संदर्भ में मुख्य परियोजनाओं, योजनाओं और क्रियाओं को प्रस्तुत करते हैं तथा पिछले वर्ष के बजट और उपलब्धियों की समीक्षा करते हैं। परंतु अभी यह बजटीय प्राविधियां अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है। आवश्यकता इस बात की है कि सभी मंत्रालय व विभाग प्रत्येक क्षेत्र में निष्पादन के उचित मापदंड विकसित करें। इसके अतिरिक्त निष्पादन बजट के लिए उपयोगी सूचना सभी मंत्रालयों को उपलब्ध करायी जानी चाहिए तभी हम निष्पादन बजट में एक सतोंषजनक मापदंड को प्राप्त कर सकेगें।

भारत में निष्पादन बजट
(Performance Budgeting in India)

भारत में निष्पादन बजट लागू करने की मांग सर्वप्रथम 1954 में लोकसभा-विवाद में की गई थी। इसके उपरान्त समय-समय पर यह मांग दोहराई जाती रही। संसद की अनुमान समिति ने अपनी बीसवीं रिपोर्ट 1957-58 में यह सिफारिश की थी कि बजट की उपलब्धि तथा कार्यक्रम बजट व्यवस्था में सम्मिलित की गई लागत और योजनाओं के उचित मूल्यांकन के लिए आदर्श होगी, विशेषतया बड़े पैमाने पर विकास-संबंधी क्रियाओं के लिए। निष्पादन बजट को लागू करना लक्ष्य होना चाहिए जिसे धीरे-धीरे और उत्तरोत्तर चरणों में बजट-संबंधी कोई गम्भीर व्यवस्था के बिना प्राप्त किया जाये। अनुमान समिति ने अपनी सिफारिश का समर्थन समय-समय पर अपनी सिफारिशों को दोहरा कर किया और कहा कि सार्वजनिक उपक्रमों को कहा जाए कि उपलब्धि तथा कार्यक्रम विवरण तैयार करें। 1961 में भारत सरकार ने सार्वजनिक उपक्रमों को इस बारे में आदेश जारी किये और कहा कि वे संसद को पेश करने के लिए व्यापार जैसे बजट के अतिरिक्त ऊपर लिखित विवरण भी भेजें।

विदेशी विशेषज्ञों की सिफारिशों, लोक-प्रशासन के भारतीय संस्थान तथा योजना आयोग ने भी उपलब्धि बजट के लिए आंदोलन में अपने प्रयत्नों से योगदान दिया। प्रशासनिक सुधार आयोग ने सरकार को सिफारिश की कि 1969-70 के बजट से शुरू होकर दो साल के भीतर-भीतर सरकार के सभी संगठनों और विभागों में निष्पादन बजट को लागू किया जाए जो विभाग अथवा संगठन विकास कार्यक्रमों पर सीधा नियंत्रण रखते हैं। सरकार इस समय सारणी पर न टिक पाई। इसने निर्णय किया कि सभी विकास संबंधी विभागों के द्वारा धीरे-धीरे निष्पादन बजट को लागू किया जाए। इससे पूर्व भी वित्त मंत्रालय ने एक मसौदा तैयार किया था जिसका शीर्षक था चुने हुए संगठनों के निष्पादन बजट 1968-69 जो संसद के सामने अप्रैल, 1968 में पेश किया गया जिसमें चार मंत्रालयों विभागों के बजटों का विकल्प प्रस्तुतीकरण था और जो परम्परागत बजट मसौदों के पूरक के रूप मे पेश किया गया। तब से अधिकाधिक विभागों के लिए निष्पादन बजट तैयार किये जाते रहे हैं। 1977-78 तक भारत सरकार के लगभग 32 विकास-संबंधी विभागों को इस योजना के अधीन सम्मिलित कर लिया गया था। यह प्रक्रिया चल रही है। कई राज्य सरकारों ने भी विकास-संबंधी विभागों में उपलब्धि बजट तैयार करने शुरू कर दिये हैं।

निष्पादन बजट का इतिहास
(History of Performance Budget)

निष्पादन बजट का प्रचलन वित्त प्रशासन में अभी कुछ ही वर्षो से शुरू हुआ है, परन्तु आज यह इसका एक अंग हो गया है। जब हम वित्त प्रशासन में सुधार की बात करते हैं तो निष्पादन बजट का नाम स्वतः ही आ जाता है। निष्पादन बजट परम्परागत बजट से बहुत भिन्न है। परम्परागत बजट जिसे 'लाइन-आइटम बजट' भी कहते हैं कर्मचारी, भवन, सज्जा आदि व्यय की मदों को ध्यान में रख कर बनाया जाता है। इस बजट से इतना ही पता चलता है कि कितना सार्वजनिक धन कर्मचारियों पर खर्च हुआ, कितना अन्य मदों पर। इससे यह ज्ञात नहीं होता है कि सार्वजनिक धन के व्यय से कितनी उपलब्धियां प्राप्त हुई हैं। इसी कमी को निष्पादन बजट पूरा करता है। निष्पादन बजट विशिष्ट उद्देश्यों व कार्यो पर केन्द्रित रहता है। यह बताता है कि कितने कार्य सम्पादित करने का विचार है।

परम्परागत बजट या 'लाइन-आइटम बजट' उस काल की देन थी, जब सरकार के कार्य संकीर्ण होते थें अतः सार्वजनिक व्यय कम रहता था, और प्रयत्न भी यही किया जाता था कि कम से कम खर्चा हो। साथ ही, वित्त प्रशासन मध्यम व निम्न श्रेणी के कर्मचारियों को सदैव शंका की द ष्टि से देखता था, तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने नियंत्रण की एक विशाल श्र ंखला उत्पन्न कर ली थी। निश्चय ही, इससे प्रशासन की गति मंद हो गयी पर औपनिवेश्कि शासन को इससे क्यों परेशानी होती।

स्वतन्त्र भारत में औपनिवेशिक उद्देश्य अर्थहीन बन गए। अपनी चतुर्मुखी उन्नति के लिए भारत में पंचवर्षीय योजनाओं का सहारा लिया गया और इन योजनाओं के अर्न्तगत सार्वजनिक व्यय बेतहाशा बढ़ने लगा। इस नयी राजनीतिक परिस्थिति में मितव्ययता तथा उत्तरदायित्व के पुराने विचार महत्वहीन हो गये। वास्तव में इन विचारों से देश की प्रगति में बाधा ही पड़ने लगी, क्योंकि जैसी कहावत है कि पैसा बचाने के चक्कर में रूपया खो देते हैं। ब्रिटिश काल में व्याप्त अविश्वास तथा सन्देह के प्रशासनिक द ष्टिकोण स्वतन्त्र भारत में बाधक सिद्ध होने लगे। आज आवश्यकता यह है कि हम अपने विकास कार्यक्रमों को जल्दी-जल्दी पूरा करें ताकि इनके फल लोगों तक पहुंच सकें। ऐसे समय सन्देह एंव शंका की प्रक्रियाएं उपयोगी सिद्ध नहीं होती।

निष्पादन बजट की परिभाषा सीधी है। इस प्रकार का बजट सार्वजनिक व्यय को कार्यो, प्रोग्रामों तथा क तियों में प्रकट करता या दिखाता है। इस प्रकार निष्पादन बजट परम्परागत बजट से इस अर्थ में भिन्न है कि परम्परागत बजट केवल यह बताता है कि कितना रूपया कर्मचारियों पर खर्च हुआ, कितना फर्नीचर पर, कितना सज्जा आदि पर। भारतीय प्रशासकीय सुधार आयोग (1966-1970) के अनुसार निष्पादन बजट सरकारी क्रियाओं को कार्यो, कार्यक्रमों तथा परियोजनाओं में प्रकट करने की एक प्रक्रिया है। इस प्रकार के बजट का वर्णन सबसे पहले अमेरिका के हूवर कमीशन ने 1949 में किया था। हूवर कमीशन ने सिफारिश की थी कि बजट को कार्यो, क्रियाओं तथा परियोजनाओं की रूपरेखा में होना चाहिए। जब बजट इस भांति बनने लगेगा तो यह स्पष्ट होने लगेगा कि क्या कार्य सम्पादित किये गये हैं या क्या सेवाएं दी जा रही हैं।

निष्पादन बजट, बजट बनाने का एक नया तरीका प्रस्तुत करता है। परम्परागत बजट तो यह बताता है कि कितना खर्चा कर्मचारियों पर हुआ, कितना स्टेशनरी पर, कितना गाड़ियों पर, आदि। इस प्रकार का बजट तो केवल साधनों तक ही अपने को सीमित कर लेता है। मुख्य चीज तो यह है कि कर्मचारियों, स्टेशनरी आदि पर खर्चा किस काम को पूरा करने पर किया गया; अर्थात् सम्पादित होने वाला काम निष्पादन बजट का केन्द्र बिन्दु हो जाता है।

निष्पादन बजट एक संगठन के उद्देश्यों का विश्लेषण करता है, और फिर इसके अनेक कार्यो के अर्न्तगत व्यय दिखाया जाता है। यहां यह ध्यान में रखने योग्य बात है कि कार्य (function), कार्यक्रम (programme) तथा परियोजना (activity or project) के विशेष अर्थ होते हैं। कार्य के अर्न्तगत कार्यक्रम तथा परियोजनाएं आती हैं। उदाहरण के तौर पर हम यह कह सकते हैं कि शिक्षा विभाग का कार्य है-शिक्षा। इस कार्य के अर्न्तगत कार्यक्रम हो सकता है-'प्राथमिक शिक्षा'; लेकिन इस कार्यक्रम के अर्न्तगत परियोजनाएं भी आती हैं, जैसे स्कूल भवन निर्माण, शिक्षकों का प्रशिक्षण आदि।

पारम्परिक बजट निर्माण व निष्पादन बजट निर्माण में अन्तर
(Distinguish between Traditional and Performance Budgeting)

सन् 1950-62 तक भारतीय बजट के अन्तर्गत वित्तीय पहलुओं पर जोर दिया जाता रहा है। इसी कारण इसमें वास्तविक लक्ष्यों और उपलब्धियों के साथ वित्तीय परिव्ययों का अर्न्तसम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाया था। नियोजित अर्थव्यवस्था और सरकारी क्रियाकलापों की जटिलता एवं बढ़ते हुए परिमाण के सन्दर्भ में भारतीय बजट व्यवस्था को नई दिशा प्रदान करने की आवश्यकता महसूस हुई। इसके परिणामस्वरूप नई बजट व्यवस्था उभरकर सामने आई। इस नई बजट तकनीकी का संबंध विकासात्मक दायित्वों और योजना के लक्ष्यों को पूरा करने से है। यह आशा कि जाती थी कि यह बजट तकनीक सरकार के प्रकार्यात्मक क्षेत्रों, कार्यक्रमों और क्रियकलापों की अर्थव्यवस्था में सरकार के प्रयासों का व्यापक चित्र प्रस्तुत करेगी। इन सबके अतिरिक्त इस नई बजट तकनीकी में निवेशों को उत्पादों के साथ एकीक त करने का प्रयास किया गया जिससे परम्परागत बजट प्रणाली कहा जाता है जिसकी भारत में शुरूआत अंग्रेजों द्वारा की गई। परम्परागत बजट में क्रय के मदों पर जोर दिया जाता है जिन पर खर्च किया जाना होता है। इसमें व्यय के उद्देश्य को स्पष्ट नहीं किया जाता है। इसलिए परम्परागत बजट केवल विभिन्न अभिकरणों तथा उनके व्यय के लिए आवंटित राशि को ही अभिव्यक्त कर सकता है। इससे केवल विधायी नियंत्रण में ही सुविधा होती है। भारत में यह पद्धति सौ वर्षो से भी अधिक समय तक चलती रही।

परम्परागत बजट प्रमुखतया विधिक एवं लेखा संबंधी साधन का काम करता है। इसमें विभिन्न विभागों की व्यय संबंधी आवश्यकताओं पर प्रति वर्ष खर्च होने वाले अनुमानित राशि का समेकन किया जाता है। समूचे व्यय को मांगों और अनुदानों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इसमें व्यय के मदवार वर्गीकरण पर जोर दिया जाता है उदाहरणार्थ, स्थापना प्रभार उपस्कर तथा सामग्री। फ्लेक्स निग्रो (Fleix-Nigro) के अनुसार "परम्परागत बजट स्वभावतः अधिक कठोर होता है। नियंत्रण सरकार द्वारा क्रय की गई प्रत्येक मद/सेवा के लेखांकन द्वारा स्थापित किया जाता है।" (The traditional budget is more rigid in nature. Control is secured by accounting for each item/ service purchased by the Government.)

परम्परागत बजट में निम्नलिखित कमियां पाई जाती है :

1. इसमें व्यय पर नियंत्रण रखने की सुविधा होती है तथा इससे निर्णायकों की इकाई लागत और कार्यक्रमों के मूल्यांकन में मदद मिलती है।
2. इससे मौजूदा कार्मिक स्थिति तथा प्रबंध एंव उपस्कर की दशाओं का पता नहीं चलता है।
3. इससे विधान निर्माण को यह पता नहीं चल पाता कि उसका निर्वाचक किसी विशिष्ट परियोजना से किस प्रकार प्रभावित होता है।
4. इसका नागरिकों के लिए कोई शैक्षिक महत्व नहीं होता है।
5. इससे कार्यक्रम निविष्टियों और उत्पादों के मध्य संबंध का पता नहीं चल पाता है।
6. यह कार्य के वैकल्पिक माध्यमों को निर्धारित करने के लिए मार्गदर्शक का काम नहीं कर सकता है।
7. इससे प्रत्येक विकल्प के आपेक्षिक लागतों और लाभों का पता नहीं लग पाता है।
8. परिणामस्वरूप केन्द्रीय बजटीय अभिकरण लक्ष्यों की अपेक्षा वित्तीय लेखों और कार्यक्रमों के सम्पादन में ही अधिक रूचि लेते हैं।
9. यह 'कल्याणकारी राज्य' की अपेक्षा 'पुलिस राज्य' के लिए अधिक उपयुक्त है।
10. इसका इस्तेमाल व्यय की वस्तुओं पर मदवार रखने के लिए किया जाता है।

निष्पादन बजट निर्माण
(Performance Budgeting)

परम्परागत बजट निर्माण की कमियों को दूर करने के उद्देश्य से ही निष्पादन बजट निर्माण शुरू किया गया जिसने अब पूरी तरह से परम्परागत बजट निर्माण का स्थान ग्रहण कर लिया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त यह पहली बार संयुक्त राज्य अमेरिका में बजटीय तकनीक के रूप में शुरू किया गया। 1950 से अफ्रीकी सरकार ने इसे ग्रहण किया और बाद में एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिका के कई देशों ने इसे अपनाया। संयुक्त राज्य अमेरिका के हूवर आयोग (1949) ने इसे संयुक्त राज्य अमेरिका में लागू करने का सुझाव दिया था।

प्रशासनिक सुधार आयोग की रिपोर्ट के अनुसार, "कार्य-निष्पादन बजट कार्यो, कार्यक्रमों, कार्यकलापों तथा परियोजनाओं के तहत सरकारी संकार्यो को प्रस्तुत करने की एक प्रविधि है।" एस. एस. विश्वनाथन के शब्दों में, "निष्पादन बजट निर्माण एक ऐसा विस्त त संक्रियात्मक दस्तावेज है जिसे कार्यक्रमों, क्रियाओं के तहत तैयार किया जाता है, प्रस्तुत किया जाता है और क्रियान्वित किया जाता है। इसमें उनके वित्तीय भौतिक पहलू घनिष्ठ रूप से अन्तर्ग्रन्थित रहते हैं।" निष्पादन बजट का अति महत्वपूर्ण उद्देश्य सम्पादित किए जाने वाले कार्य तथा प्रदान की जाने वाली सेवा को ठीक-ठीक परिभाषित करना और उस कार्य या सेवा पर कितनी वित्तीय लागत आएगी उसका वास्तविक अनुमान लगाना है।

पीटर एन. डीन निष्पादन बजट निर्माण के पांच महत्वपूर्ण तत्वों के बारे में सुझाव दिया है जोकि निम्नलिखित है :

1. सूचना के प्रयोजनों हेतु सरकारी बजट का कार्यक्रमों एंव क्रियाकलापों में उप-विभाजन जोकि समान उद्देश्यों या संकार्यो वाली अभिज्ञात इकाइयों के द्योतक होते हैं।

2. बजट वर्ष के लिए प्रत्येक कार्यक्रम तथा क्रियाकलाप के संक्रियात्मक उद्देश्यों का पता लगाना।
3. प्रत्येक कार्यक्रम के लिए बजट निर्माण और लेखांकन।
4. उत्पादों तथा क्रियाकलापों के निष्पादन का मापन।
5. मानक और मानदंड स्थापित करने के लिए परिणामी आंकड़ों का इस्तेमाल करना ताकि लागत और निष्पादन का मूल्यांकन हो सके। तथा सरकारी संसाधनों का अधिक कुशलतापूर्वक उपयोग हो सके।

उन विकासशील देशों के लिए परिणामोन्मुख बजट की आवश्यकता जरूरी है जहां निवेश योग्य संसाधन कम हों तथा विकास में गतिरोध अधिक होता हो। आधुनिक कल्याणकारी राज्य के लिए बजटीय निष्पादन का माप अधिक महत्वपूर्ण होता है। अब केवल निष्पादन बजट निर्माण से ही संभंव हैं। यह परिणामोन्मुख बजट होता है।

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर निष्पादन बजट की प्रमुख विशेषताओं का निम्नानुसार उल्लेख किया जा सकता है :

1. यह बजट आंबटन के जरिए सरकारी कार्यक्रमों को नियंत्रित करता है। यह कार्यक्रमों, क्रियाकलापों तथा कार्यो के रूप में सरकार कार्यो को प्रस्तुत कर के किया जा सकता है।
2. सार्वजनिक नीतियों को सरकारी वित्तीय संक्रियाओं के प्राकार्यात्मक वर्गीकरण के जरिए पता लगाने का प्रयास किया जाता है।
3. स्पष्टतया अभिज्ञात लागत अपरिव्ययों के माध्यम से ही राजकीय निष्पादन की समीक्षा की जा सकती है।
4. साधनों की अपेक्षा साध्य पर ही ध्यान दिया जाता हैं।
5. यह स्पष्टतया सरकारी खर्चे के उद्देश्यों को परिभाषित कर सकता है।
6. प्रत्येक सरकारी कार्य-निष्पादन की लागत का ठीक-ठीक अनुमान लगा सकता है।
7. यह लक्ष्यों का पहले ही निर्धारण कर सकता है जिन पर सरकारी विभागों के निष्पादन का समय-समय पर मूल्यांकन किया जा सकता है।
8. परिमाणात्मक तथा मात्रात्मक रूप में कार्यकुशलता तथा कार्यमापन के लिए यह एक आधार का काम करता हैं।
9. विगत वर्ष के निष्पादन का अभिलेख बजट के लिए भावी अनुमान का काम कर सकता है।
10. इससे जोर उपलब्धि के साधन से हटकर स्वयं उपलब्धि पर चला जाता है।

कार्य-निष्पादन बजट तैयार करने के लिए क षि, शिक्षा, उद्योग और स्वास्थ्य जैसी सरकार की प्रकार्यात्मक श्रेणियों का उपयोग किया जाता है। प्रत्येक प्रकार्यात्मक श्रेणी को 'कार्यक्रमों में विभाजित किया जाता है (जैसे स्वास्थ्य को प्राथमिक, बाल तथा जन स्वास्थ्य कार्यक्रमों में विभाजित किया जाता है।) फिर प्रत्येक कार्यक्रम को क्रियाकलापों में उपविभाजित किया जाता है जिन्हें फिर से आगे परियोजनाओं में विभाजित किया जाता है। इस द ष्टि से निष्पादन बजट निर्माण की चार प्रावधाएँ होती हैं :

1. सभी सरकारी क्रियाकलापों के प्रकार्यात्मक वर्गीकरण का समेकन।
2. राजकोषीय प्रबंध प्रणाली का विकास करना तथा लागत प्रतिवेदन।
3. पर्याप्तता और इकाई लागतों के संबंध में सरकारी निष्पादन का मूल्यांकन करने के लिए उपयुक्त सांख्यिकी माप-तौल की विधि का विकास करना।
4. सार्वजनिक नीतियों के निर्माताओं को समय-समय पर प्रतिपुष्टि प्रदान करने के लिए निष्पादन मूल्यांकन करना।

निष्पादन बजट में किए गए विभिन्न वर्गीकरण मुख्यतः बजट के तीन महत्वपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होते हैं जो कि निम्नलिखित हैं :

(क) बजट निर्माण;

(ख) आर्थिक विश्लेषण; और

(ग) बजट का क्रियान्वयन और जवाबदेही।

एक वर्गीकरण से इन तीनों उद्देश्यों की पूर्ति न होने पर भी दूसरे वर्गीकरण का सहारा लिया जाएगा और इस प्रकार उद्देश्य और वर्गीकरण के बीच एक जटिल नेटवर्क तैयार हो जाता है। इसमें निम्नलिखित पहलू समाविष्ट होते हैं :

1. **आर्थिक स्वरूप :** यह सरकारी स्थितियों एवं नीतियों के बारे में तर्कपूर्ण निर्णय हेतु उपयोगी सामग्री उपलब्ध कराने के लिए होता है जिससे आर्थिक गतिविधियों के संयोजन एवं स्तर पर प्रभाव पड़ता हैं।
2. **प्रकार्यात्मक स्वरूप :** यह क्रियान्वयन स्तर पर तथा विधायी पुनरीक्षा के लिए होता है।
3. **कार्यक्रम :** इसके द्वारा सरकार की एक ही प्रकार के क्रियाकलापों को एक समूह में रखा जाता है।
4. **निष्पादन :** इसके द्वारा सरकारी निष्पादन के परिणात्मक और मात्रात्मक माप के लिए निष्पादन इकाई का विकास किया जाता है।
5. **संगठनात्मक इकाई** : इसके द्वारा बजट को सरकार के संगठनात्मक आवश्यकता वाली संरचना के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।
6. **उद्देश्य** : इसके द्वारा सरकारी व्यय के उद्देश्यों को उद्घाटित किया जाता है।

निष्पादन बजट निर्माण के गुण
(Merits of Performance Budgeting)

परम्परागत बजट की तुलना में निष्पादन बजट निर्माण के प्रायः निम्नलिखित गुण होते हैं :

1. यह परम्परागत बजट की बहुत सी कमियों को पूरा करता है।
2. इसे आधुनिक वित्तीय प्रशासन के एक औजार के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।
3. इसके माध्यम से नीति और निष्पादन, निवेश और उत्पाद, सरकारी कार्यक्रमों और गतिविधियों एंव वित्तीय पहलुओं के मध्य पारस्परिक संबंध स्थापित होता है।
4. इससे बजटीय प्रक्रिया में सुधार हेाता है तथा इसका संबधं राजकोषीय नीति-निर्माण से होता है।

5. इससे वास्तविक सरकारी निष्पादन का विश्लेषण संभव होता है।
6. इससे वित्तीय जवाबदेही और विधायी नियंत्रण की बेहतर प्रणाली का विकास हो सकता है।
7. इससे सरकारी कार्यो की लेखा परीक्षा की प्रक्रिया सुगम हेागी।
8. इससे सरकार की दीर्घावधिक विकास नीतियों का प्रभावी परिणामोन्मुख मूल्यांकन हो सकेगा।
9. यह वित्तीय प्रशासन में दूरगामी सुधारों का प्रवर्तक होगा।
10. इससे सरकार के वित्तीय लेन-देन में अपव्यय और अकुशलता को दूर करने में मदद मिलेगी।
11. यह दिशोन्मुख तथा अधिक विकासात्मक होता है।
12. यह उत्तरदायित्व का निर्धारण करता है तथा राजस्व और व्यय के विकल्पों का सुस्पष्ट चित्र प्रस्तुत करता है।

निष्पादन बजट की समस्याएं और सीमाएं
(Problems and Limitations of Performance Budgeting)

परम्परागत बजट की तुलना में निष्पादन बजट निर्माण के समक्ष निम्नलिखित समस्याएं आती हैः

1. सरकारी निष्पादन का सदैव आसानी से पता नहीं चल पाता है और प्रायः इसका परिणाम भी सुस्पष्ट नहीं होता है।
2. सरकारी अभिकरणों की बहुत सी परिसम्पत्तियों का इकाई लागतों के अनुसार हिसाब नहीं रखा जा सकता है।
3. लेखा शीर्षों को विकास शीर्षों के साथ जोड़ना एक जटिल कार्य है।
4. इससे सरकारी निष्पादन का परिमाणात्मक मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।
5. संगठनात्मक इकाइयों के समनुरूप प्रकार्यों एवं कार्यक्रमों की वास्तविक श्रेणियां कुछ न कुछ कठिन होती है।
6. इससे बजट प्रक्रिया में प्रशासनिक त्रुटियों का केवल समाधान ही हो सकता है। यह प्रशासनिक तथा संगठनात्मक कमियों को दूर करने का कोई मात्र साधन नहीं है।
7. इससे कागजी कार्य काफी बढ़ जाता है और समय की भी बरबादी होती है।
8. इसके लिए प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर वित्तीय विशेषज्ञों की आवश्यकता होती है और इस प्रकार यह खर्चीली प्रक्रिया है।
9. इसके लिए एक सुसंगठित सूचना प्रणाली की आवश्यकता होती है अन्यथा इससे प्राप्त नहीं हो सकता है।
10. संसाधनों का पुनर्नियोजन एक संवेदनशील मुद्दा है जिसे केवल तकनीकी प्रविधियों से ही नहीं सुलझाया जा सकताा है।
11. इस कार्य में योजना तथा योजना-भिन्न व्यय का कोई महत्व नहीं होता है।

प्राक्कलन समिति ने अपनी बीसवीं रिपोर्ट में निष्पादन बजट निर्माण की प्रक्रिया अपनाने की सिफारिश की थी। प्रशासनिक सुधार आयोग (1968) ने संघ तथा राज्य सरकारों से यह जोरदार अपील की थी कि वे निष्पादन बजट निर्माण की प्रक्रिया अपनाएं। 1968 में चार केन्द्रीय मंत्रालयों ने इस प्रक्रिया को अपनाया। प्राक्कलन समिति ने अपनी 60वीं रिपोर्ट में औद्योगिक उपक्रमों के लिए तथा 70वीं रिपोर्ट में सार्वजनिक क्षेत्र के लिए यह प्रक्रिया अपनाने का सुझाव दिया।

1965 में योजना आयोग की योजना परियोजनाओं संबंधी समिति (सी.ओ.पी.पी.) ने इस मामले का अध्ययन किया। 1966 में निष्पादन बजट के संबंध में एक कार्यकारी दल गठित किया गया जिसने इसे अपनाने की व्यवहार्यता का अध्ययन किया। अध्ययन दल ने सुस्पष्ट कारणों से भारत में निष्पादन बजट धीरे-धीरे शुरू करने की नीति का समर्थन किया। 1968-69 में निष्पादन बजट चार केन्द्रीय मंत्रालयों में शुरू किया गया जो 1970-71 तक बढ़कर 7 मंत्रालयों तक हो गया।

वित्त मंत्रालय के बजट प्रभाग ने इसके लिए अनुवर्ती उपाए किए। बहुत से निचले तथा मध्यम स्तर के अधिकारियों को निष्पादन बजट-निर्माण का प्रशिक्षण दिया गया। यह प्रशिक्षण ग ह मंत्रालय के सचिवालय प्रशिक्षण विद्यालय में दिया गया। सार्वजनिक क्षेत्र के लिए भारतीय लोक प्रशासन संस्थान (आई.आई.पी.ए.) ने यह प्रशिक्षण प्रदान किया।

बहुत से राज्य सरकारों ने भी निष्पादन बजट निर्माण शुरू किया जिसे सर्वप्रथम पंजाब राज्य ने अपनाया। 1978-79 तक प्रायः सभी राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों ने इसे अपना लिया।

आज प्रायः सभी विकासशील देशों में निष्पादन बजट-निर्माण अधिक पसन्द किया जाता है। भारत ने इसे सही समय पर अपनाया है। तथापि, इसे शुरू करने में सरकार के समक्ष बहुत सी कठिनाइयां आई हैं। लेकिन इन कठिनाइयों को वित्तीय विशेषज्ञों द्वारा दूर किया जा सकता है। निष्पादन बजट निर्माण की सफलता बहुत कुछ कार्मिकों के प्रशिक्षण, विकासशील सूचना प्रणाली तथा सभी स्तर पर एक सद ढ़ प्रशासनिक व्यवस्था की उपस्थिति पर निर्भर करती है।

अध्याय - 7

शून्य आधारित बजट

(Zero-Base Budget) (Z.B.B.)

निष्पादन अथवा कार्यक्रम बजट की भांति शून्य-आधाारित बजट भी युक्ति प्रधान बजट होता है। उद्देश्य प्रबंधन [Management by Objectives (MBO)] की भांति इसे भी निजी क्षेत्र के लोक प्रशासन में अपनाया गया है जो अभी तक संयुक्त राज्य अमरीका तक ही सीमित रहा है यह एक उभरती हुई प्रक्रिया है जिसे अमरीका में विभिन्न प्रकार के औद्योगिक संगठन तथा राज्य और नगर की सरकारों ने अपनाया है। 1969 में ZBB का विकास एक कम्पनी में किया गया जिसका नाम था 'टैक्सास इन्स्ट्रूमेटस' (Texas Instruments)। सरकार में प्रथम बार इसको जार्जिया के गवर्नर जिमी कार्टर (Gimmy Carter) ने 1973 के वित्तीय वर्ष के बजट तैयार करने के लिए अपनाया था। (जिमी कार्टर तत्पश्चात् संयुक्त राज्य अमरीका के राष्ट्रपति बने थे)।

भारत में केन्द्रीय वित्त मंत्री वी. पी. सिंह ने संसद की सलाहकार समिति को बताया कि सरकार जीरो बेस बजट को पहले छोटे पैमाने पर 1986-87 में अपनाएगी और फिर 1987-88 में बजट बनाने में अपनाएगी। ZBB प्रक्रिया में किसी भी योजना के पक्ष में बजट में धन देने से पूर्व उसका आलोचनात्मक पुनरावलोकन किया जाता है। भारत तथा दूसरे देशों में परम्परागत बजट की प्रक्रिया के अधीन प्रथा यह है कि यह जाने बिना कि क्या अमुक योजना अच्छी चल रही है अथवा नहीं और क्या इसको जारी रखना उचित भी है अथवा नहीं, बढ़ोत्तरी के आधार पर धन दे दिया जाता है। ZBB प्रक्रिया में योजना के प्रभाव, लक्ष्यों, निशानों, उपलब्धि के मानकों, मूल्यांकन और विभिन्न प्रकार की क्रिया संबंधी पारस्परिक तुलना से संबंधित भारी मात्रा में संख्यात्मक आंकड़ों की आवश्यकता होती है। भारत की स्थिति में ZBB की सहायता से सरकार बड़ी संख्या में ऐसी योजनाओं और उनसे संबधित उपक्रमों को समाप्त कर सकती है, चाहे वे वार्षिक योजना में सम्मिलित की गई है अथवा नहीं, जबकि उनकी उपयोगिता समाप्त हो चुकी है अथवा-कर्मचारियों तथा अवसरंचना पर पूंजी लगाने के बावजूद भी यह प्रभावकारी ढंग से शुरू नहीं हो पाई। यदि इस प्रक्रिया को ठीक प्रकार लागू किया गया तो इससे केन्द्रीय सरकार के राजस्व खाते का घाटा 1981-82 में 294 करोड़ रू. से बढ़कर 1985-86 में लगभग 5,634 करोड़ बन गया।

गाई पीटर्स (Guy Peters) के अनुसार ZBB के पीछे सबसे मौलिक विचार यह है कि किसी भी विभाग या उपक्रम को प्रतिवर्ष शुरू से लेकर अपने समूचे बजट को उचित ठहराना होगा। इसके विपरीत परम्परागत अथवा बढ़ोत्तरी के बजट में यह कल्पना की जाती है कि बजट का एक आधार (पिछले वर्ष मंजूर किए गए धन की मात्रा) जो पक्का है और प्रश्न केवल ये है कि इसमें क्या बढ़त की जाए। ZBB की खोज इस समस्या का समाधान करने के लिए की गई।

शून्य आधारित बजट-प्रणाली का अर्थ
(Meaning of Zero-Base Budgeting)

जीरो बेस बजटिंग की कई व्याख्याएं की जाती हैं। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें हर चीज को बाहर फेंक दिया जाता है और फिर नए सिरे से हर वस्तु को प्रारभ्भ से शुरू किया जाता है अथवा यह पहिए की फिर से खोज करना है। स्पष्टतः यह धारणा ठीक नहीं है। पीहर (Pyhrr) का कथन हैं कि व्यावहारिक शब्दावली में जीरो बेस बजटिंग का अर्थ सभी कार्यक्रमों का मूल्यांकन करना हैं। विकल्पों और कार्यक्रमों की उपलब्धि के मूल्यांकन पर कभी-कभी हमें फिर से पुनर्विचार करना होता है और एक कार्यक्रम को फिर से निर्देशित करना होता है। ऐसी स्थिति में जरूर हम हर वस्तु को बाहर फेंक देते हैं और पुनः फिर से प्रक्रिया शुरू करते हैं। किन्तु अधिकतर स्थितियों में कार्यक्रम जारी रहेंगे उनमें सुधारों और परिवर्तनों का समावेश कर लिया जाएगा, क्योंकि अधिकतर कार्यक्रमों में विश्लेषण का केन्द्र-बिन्दु कार्यक्रमों की कुशलता और प्रभावकारिता के मूल्यांकन और विभिन्न स्तरों पर जो प्रयास किए जा रहे हैं, उनकी प्राथमिकताओं और मूल्यांकन पर होगा।

जीरो बेस बजटिंग में जिन दो मूल प्रश्नों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है, वे हैं :

(1) क्या वर्तमान क्रियाएं कुशल तथा प्रभावकारी हैं ?

(2) क्या वर्तमान क्रियाओं को समाप्त कर दिया जाए अथवा कम कर दिया जाए, ताकि उच्च प्राथमिकता वाले नए कार्यक्रमों को धन दिया जा सके अथवा वर्तमान बजट को कम कर दिया जाए।

ZBB कार्य पद्धति में यह अनिवार्य है कि प्रत्येक संगठन अपने सभी कार्यक्रमों और क्रियाओं को चाहे वे चल रही हैं अथवा नई हैं, व्यवस्थित ढंग से उन पर पुनर्विचार करे और उनका मूल्यांकन करे, क्रियाओं पर पुनर्विचार उत्पादन अथवा उपलब्धि तथा लागत के आधार पर किया जाए, ताकि प्रबन्धकीय निर्णय करने पर बल दिया जा सके, संख्योन्मुख बजट बन सकें और विश्लेषण को बढ़ाया जा सके। ZBB एक द ष्टिकोण है। यह एक जड़ कार्यविधि नहीं है जिसको सभी संगठनों में समान रूप से लागू किया जा सके। इस प्रक्रिया को प्रत्येक संगठन की विशेष आवश्यकताओं के अनुकूल ढालना जरूरी होगा। किन्तु इस द ष्टिकोण के लिए चार मूल कदम हैं जो इस प्रकार हैं :

(i) निर्णय करने वाली इकाइयों की पहचान करना।

(ii) ''निर्णय समूह'' में प्रत्येक निर्णय इकाई का विश्लेषण करना।

(iii) सभी निर्णय समूहों का मूल्यांकन तथा श्रेणीकरण करना, ताकि खर्चे के लिए प्रार्थना की जा सके।

(iv) विस्त त परिचालन बजट तैयार करना जिनमें वह निर्णय-समूह प्रतिबिम्बित हों जिनको बजट के खर्चे में स्वीकृति दे दी गई है।

संगठन में प्रत्येक बजट इकाई को विभिन्न स्तरों के वित्तीय बंटवारे के लिए आकस्मिकताओं का विकार करना होगा। वित्तीय बंटवारे का अधिकतम मूल स्तर बचे रहने का न्यूनतम खर्च, (जिसे सर्वाईवल पैकेज कहते हैं), होगा-अर्थात वित्तीय बंटवारे का वह न्यूनतम स्तर जो संगठन के जीवित रहने के लिए और अपनी मौलिक सेवाओं को उपलब्ध कराने के लिए चाहिए, संगठन की इकाइयों

को यह भी पूछा जा सकता है कि यदि उनके बजटों में 5 अथवा 10% की कटौती कर दी जाए, तो वह क्या करेंगे और अपनी सेवाओं के वर्तमान स्तरों को बनाए रखने के लिए उन्हे कितनी आवश्यकता है।

शून्यात्मक बजट प्रणाली की प्रक्रिया
(Process of Zero Base Budgeting)

शून्यात्मक बजट प्रणाली की प्रक्रिया के कई सोपान हैं। इसका कार्यान्वयन सोपानों के निष्पादन के क्रम में होता है। यह सोपान इस प्रकार हैं :

(1) विभागीय-इकाइयों का समेकन,
(2) विभागीय उद्देश्यों तथा लक्ष्यों का अभिप्रेषण,
(3) निर्णय-घटकों की सरंचना तथा विकास,
(4) वरीयता-क्रम का निर्धारण,
(5) शीर्षस्थ-प्रबन्धन-स्तर पर विचार विमर्श,
(6) अन्तिम वरीयता क्रम निर्धारण एवं स्वीकृति,
(7) वित्तीयन

किसी भी संगठन में इस प्रणाली को लागू करने के लिए विभागीय प्रखण्डों को इकाइयों के रूप में समेकित किया जाता है। इस प्रखण्ड के प्रधान का दायित्व सम्बन्धित इकाई के आर्थिक कार्यकलापों से सम्बन्धित प्रारूप तैयार करना होता है। इकाई के आर्थिक प्रारूप का निर्धारण संगठन में व्यावसायिक उद्देश्यों तथा निर्धारित लक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में किया जाता है। शीर्षस्थ प्रबन्धन, संगठन के उद्देश्य तथा वार्षिक बजट के लक्ष्यों की प्रत्येक इकाई को सूचित करता है। प्रत्येक इकाई का प्रधान अपनी आवश्यकतानुसार निर्णय लेता है कि प्रत्येक गतिविधि का आर्थिक प्रारूप क्या होगा ? इस गतिविधि से सम्बन्धित प्रारूप को ''निर्णय घटक'' कहा जाता है। हर घटक की संगठन की उपयोगिता के अनुसार लागत लाभ तथा निष्पादन शैली के सन्दर्भ में समीक्षा की जाती है। इसे निर्णय घटकों का विकास कहा जाता है। फिर ''निर्णय घटकों'' को संगठन की आवश्यकता तथा अन्य पक्षों के अनुसार वरीयता क्रम प्रदान किया जाता है, तदुपरान्त इन्हें शीर्षस्थ प्रबन्धन को विचारार्थ अग्रसारित किया जाता है। इस स्तर पर अभीष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु इकाई प्रधान से विचार विमर्श किया जाता है। इसके पश्चात् पुनः सभी घटकों को संगठन स्तर पर वरीयता क्रम प्रदान किया जाता है, तत्पश्चात् संगठन के उपलब्ध आर्थिक संसाधनों की क्षमता के अनुसार वरीयता प्राप्त घटकों का वित्तीय अनुमोदन तथा अन्तिम रूप से वित्तीय किया जाता है।

शून्यात्मक बजट प्रणाली से लाभ
(Merits of Z.B.B.)

शून्यात्मक बजट प्रणाली की अपनी कुछ विशेषताएँ है, जिसकी वजह से इसे राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में प्रतिस्थापित किया जा रहा है। इस प्रणाली में बजट प्रक्रिया पूर्णतया वरीयता विश्लेषण पर आधारित है। इसमें संगठन या राष्ट्रों के उद्देश्यों तथा सामयिक आवश्यकताओं को पूर्ण महत्व प्रदान किया जाता है। दूसरे शब्दों में, इस प्रणाली में राष्ट्रीय अभीष्ट लक्ष्यों का पूर्ण समावेश रहता हैं।

दूसरे, इस प्रणाली में नियोजन तथा बजट निष्पादन में कारणगत सम्बन्ध होता है। प्रस्तावित नियोजन का मूल्यांकन, विश्लेषण तथा उपयोगिता ही बजट का स्वरूप निर्धारित करती है।

तीसरे, इस प्रणाली में निर्णय घटकों की सरंचना तथा विकास लागत तथा लाभ के विश्लेषण के आधार पर की जाती है। यदि कोई कार्यकलाप, संगठन के उद्देश्यों के अनुसार निश्चित लागत के लिए अपेक्षित लाभ नहीं प्रदान करता है तो उसे अनुत्पादक समझा जाता है। इस प्रकार यह प्रणाली वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है।

चौथे, इसकी निष्पादन प्रक्रिया में सभी स्तर के अधिकारी सम्मिलित रहते हैं जिसे प्रत्येक स्तर पर कर्तव्य बोध का वातावरण बना रहता है। इसके अतिरिक्त नैतिकता भी प्रत्येक स्तर पर दायित्व निर्वाह में प्रेरणा देती है। निष्क्रिय साधन भी सक्रियता प्राप्त करते हैं।

पांचवें, इस प्रणाली द्वारा बजट निष्पादन में पर्याप्त समायोजनशीलता रहती हैं यदि किसी कारणवश, संगठन के आर्थिक संसाधनों में कमी के कारण वित्तीय व्यवस्था प्रतिकूल हो जाती है अथवा वित्त में सापेक्ष कमी हो जाती है तो क्रम वरीयता प्राप्त ''निर्णय घटकों''को बजट प्रक्रिया से प थक् कर दिया जाता है। इससे न तो संगठन के उद्देश्यों पर प्रभाव पड़ता है और न ही संगठन की कार्य क्षमता पर। इस प्रकार यह प्रणाली वैज्ञानिकता पर आधारित है तथा साधारण परिस्थितियों में वास्तविकता के काफी समीप होने की विशिष्टता रखती है।

भारत में शून्यात्मक बजट प्रणाली अपनाने की कठिनाइयाँ
(Problems in Adoption of Z.B.B. in India)

भारतीय परिवेश में शून्यात्मक बजट प्रणाली के निष्पादन में कुछ मूलभूत अवरोधक तत्वों का आभास होता है। यह तत्व ही प्रणाली की सफलता का मार्ग प्रशस्त कर सकती है। सर्वप्रथम कठिनाई भारतीय अर्थव्यवस्था में व्याप्त प्रशासन की निष्क्रियता ही परिलक्षित होगी, हमारे प्रशासक स्वयं कार्य करने में विश्वास कम करते हैं- दायित्व-अन्तरण के फलस्वरूप, लिपिक वर्ग की ''बुद्धिमत्ता का शिकार'' यह प्रणाली भी हो सकती है, जिस प्रकार 1968-69 में निष्पादन बजट प्रणाली का तिरस्कार किया गया, उसी प्रकार यह सभ्भव है कि प्रशासक वर्ग इसका प्रत्यक्ष विरोध करें अथवा इसे असफलता के द्वार तक पहुंचा दें।

दूसरे, भारतीय अर्थव्यवस्था के पिछड़ेपन में कर्मचारी संघों तथा परम्परावादी राजनीतिज्ञों का अमूल्य सहयोग है, कर्मचारियों में काम न करने की प्रव त्ति बढ़ती जा रही है। संघ के नेताओं का परम उद्देश्य, संगठन को अगतिशील बनाना है, भारतीय उद्योगों में कम्प्यूटर टेक्नोलॉजी का विरोध जिस प्रकार नेताओं ने किया है, उससे इस प्रणाली की सफलता पर प्रश्न चिह्न लगता प्रतीत होता है। यद्यपि परम्परावादी राजनीतिज्ञों का युग समाप्त-प्राय है तथापि कुछ सीमा तक उनकी आलोचना का शिकार होना निश्चित ही है।

तीसरे, इस प्रणाली में क्षमतावान, बुद्धिमान तथा अनुभवी अधिकारियों की ही आवश्यकता है। ऐसा नहीं है कि हमारे यहां ऐसे अधिकारियों की कमी है, परन्तु जिस प्रकार जातिवाद, पक्षपात के कारण जिम्मेदार पदों पर अक्षम अधिकारी नियुक्त किये जाते हैं, उससे यह प्रणाली अप्रभावित नहीं रह सकती है। वित्त सम्बन्धी मामलों में गैर वित्तीय भूमिका के अधिकारियों की नियुक्ति इसका स्पष्ट प्रमाण है।

चौथे, इस प्रणाली में आरम्भिक स्तर पर सम्प्रेषण, सूचनाओं तथा आँकड़ों से सम्बन्धित कार्य अधिक होता है। भारतीय परिवेश में निम्न सम्प्रेषण व्यवस्था सूचनाओं के संकलन तथा आँकड़ों के तथ्यपरक विश्लेषण में व्याप्त अक्षमता, इस प्रणाली की सफलता में मूलभूत रूप से बाधक सिद्ध होगी। आँकड़ों का संकलन इस प्रकार किया जाता है कि वास्तविकता पर पर्दा पड़ जाये।

पाँचवें, भारतीय अर्थव्यवस्था में ग्रहण क्षमता (Adaptability) की कमी है, किसी भी तकनीकी ज्ञान को सम्पूर्ण रूप से समाहित करना, एक ही प्रयास में सभ्भव नहीं है, प्राथमिक स्तर पर प्रखर विरोध होता है। वित्त मन्त्रालय द्वारा घोषित आदेश के अनुसार इसका पूर्णरूपेण उपयोग 1987-88 के बजट में किया गया। जबकि प्रत्येक स्तर पर नियुक्त दायित्वपूर्ण पदों के अधिकारियों को इसका समुचित ज्ञान भी नहीं है, जिससे वे इस प्रणाली के कार्यान्वयन में स्वयं बाधक सिद्ध होंगे।

सुझाव
(Suggestions)

यदि भारत सरकार वास्तव में परम्परागत प्रणाली का परित्याग करने के लिए तैयार है, तो हमें अपनी व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करने पड़ेंगे अन्यथा इस उद्घोषणा का भी वही परिणाम होगा जो 1968-1969 में निष्पादन बजट प्रणाली का हुआ था। इस दिशा में निम्नलिखित प्रयास करने होंगे :

(1) सर्वप्रथम, भारतीय नौकरशाही, राजनीतिज्ञों तथा कर्मचारी संघों के नेताओं की मानसिकता को पूर्णतया परिवर्तित करना होगा। यद्यपि राजनीतिज्ञों की मानसिकता काफी परिवर्तित हो रही है, फिर भी नौकरशाही व कर्मचारी संघों के बदलने में काफी श्रम करना पड़ेगा, इस दिशा में सरकार को प्रणाली से सम्बन्धित प्रचार व प्रसार करना चाहिए।

(2) सरकार को चाहिए कि देश में ऐसे बजट विशेषज्ञों का एक कैडर तैयार करे जो प्रत्येक स्तर पर नियुक्त अधिकारी को प्रशिक्षित कर सकें। उचित होगा कि सरकार उच्चाधिकार प्राप्त समिति का गठन करे, जिसमें ख्याति प्राप्त अर्थशास्त्री, वित्त विशेषज्ञ एवं प्रबन्धकों का प्रतिनिधित्व हो।

(3) सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों की बागडोर प्रशासकों की जगह विशेषज्ञों को सौंपी जानी चाहिए, जिससे वे सरकार के उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में उपक्रमों की व्यावसायिकता के आधार पर प्रबन्धन कर सकें, अधिकतर सरकारी उपक्रमों के घाटे में रहने के परोक्ष में यही कारण है।

(4) प्रत्येक इकाई स्तर पर बजट विशेषज्ञों, प्रबन्धकों तथा टेक्नोक्रेट्स की एक समिति का गठन किया जाये, इस समिति का स्वरूप इकाई के व्यवसाय पर निर्भर होना चाहिए।

(5) अधिक उपयुक्त तो यह होगा कि सरकार योजना आयोग की पद्धति पर ''बजट आयोग'' व ''मूल्य आयोग'' की स्थापना करे, जिसमें राष्ट्र के लब्धप्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों, प्रबन्धकों, वैज्ञानिकों को सम्बद्ध किया जाये। सरकार को इन आयोग की सलाह पर ही बजट निष्पादन तथा ''मूल्य निर्धारण'' सम्बधी निर्णय लेने चाहिए। इससे सरकार को जन विरोध तथा अनावश्यक कठिनाइयों से दो चार नहीं होना पड़ेगा, क्योंकि हमारे देश में जब भी मूल्य

व द्धि होती है तो जन आन्दोलनों द्वारा आपूरित क्षति होती है, दूसरे सरकार की लोकप्रियता भी कम होती है।

(6) इस प्रणाली, के निष्पादन की दिशा में आवश्यक वातावरण बनाया जाये। इसे कई अंशों में लागू किया जाये। एक साथ लागू करने से अनियमिततायें होंगी, जिससे बजट अपने उद्देश्य में विफल हो सकता है, प्रारम्भ में कुछ सरकारी उपक्रमों में इसे लागू किया जाये।

(7) प्रत्येक स्तर पर कम्प्यूटरों का समुचित प्रयोग किया जाये। इससे आँकड़ो के विश्लेषण, सूचनाओं के द्रुतगामी सम्प्रेषण में काफी सुविधा होगी, दूसरे बजट प्रक्रिया में समय ही बहुत कम लगेगा।

इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण होगा कि सरकार को इस दिशा में द ढ़ प्रतिज्ञ होना चाहिए कि वह किसी भी दबाव में इसका परित्याग नहीं करेगी, तभी इसका समुचित लाभ हमारी व्यवस्था में परिलक्षित होगा।

नियन्त्रण
(Control)

वित्त मंत्रालय द्वारा अनुमानों की समीक्षा
(Scrutiny of Estimates by the Finance Ministry)

जब अनुमान सभी विभागों से वित्त मंत्रालय में पहुंच जाते हैं, तब वहां उनकी समीक्षा और छानबीन होती है। वहां पर्याप्त संशोधन होता है। तदनन्तर वे एकत्रित किये जाते हैं और उनके योगों के आधार पर भारत सरकार के बजट का एक रूप तैयार होता है। हम पहले ही कह चुके हैं कि वित्त मंत्रालय की पूर्व अनुमति बिना अनुमानों में व्ययों की व द्धि नहीं की जा सकती। यदि कोई प्रशासकीय मंत्रालय किसी व्यय को अनिवार्य रूप से बढ़ाना चाहता है, परन्तु वित्त मंत्रालय उनको अस्वीकार कर देता है, तो वह विषय मंत्रिमंडल के समक्ष उपस्थित किया जाता है। कैबिनेट को उस पर अपना निर्णय देना पड़ता है, परन्तु प्रायः वह वित्त मंत्री के ही पक्ष में होता है। कैबिनेट को वैधानिक अधिकार है कि वह वित्त मंत्री की बात न माने, परन्तु व्यवहार में ऐसा होता नहीं, वित्त मंत्री की बात नहीं टाली जाती।

वित्त मंत्रालय की इतनी महिमा क्यों है, उसकी अन्य मंत्रालयों के अनुमानों पर निंयत्रण करने का अधिकार क्यों दिया जाता है? इसके कारण मुख्यतया दो हैं - पहला कारण यह है कि वित्त मंत्रालय व्यय करने वाला विभाग नहीं है। वह इस स्थिति में है कि कर देने वाली जनता के हितों की रक्षा कर सके। दूसरा कारण यह है कि दूसरे सभी विभागों के खर्च के लिए उसी को धन की व्यवस्था करनी पड़ती है। अतः यह उचित ही है कि उसको यह कहने का अधिकार हो कि अमुक व्यय न किया जाये।

वित्त मंत्रालय प्रस्तुत अनुमानों की छानबीन वित्तीय द ष्टि से करता है। दूसरे शब्दों में, उसको यह मालूम है कि उपलब्ध धन कितना है। साथ ही किफायत करते हुए उसको यह देखना पड़ता है कि कहीं धन की कमी न पड़ जाये। वह यह नहीं देखता कि अन्य मंत्रालयों की नीति क्या है। उसको केवल यह देखना पड़ता है कि उसकी वित्तीय मांगें पूरी की जा सकती हैं या नहीं।

किस दक्षता में वित्त मंत्रालय छानबीन करता है, यह देखने के लिए उसकी वह कार्यवाही देखनी चाहिए जो वह व्यय के नये प्रस्तावों पर करता है। यदि कोई नयी सामाजिक योजना या कोई नये प्रसार का प्रस्ताव होता है तो उसके ऊपर वह अनेक प्रश्न करता है। जैसे -

क्या यह प्रस्तावित योजना वास्तव में आवश्यक है ? यदि आवश्यक है तो अब तक इसके बिना कैसे काम चला है ? आज यह क्यों उठायी गई है ? अन्यत्र क्या होता है ? क्या ऐसी सेवा कहीं और है ? इस पर व्यय कितना आयेगा ? वह धन कहां से आयेगा? कहां से कटौती की जाये कि इसके लिए धन उपलब्ध हो सके ? क्या यह संभव नहीं है कि आगे चलकर इसकी आवश्यकता ही न रहे ? आदि आदि।

बजट के ऊपर जो नियंत्रण भारत में वित्त मंत्रालय लगाता है, वही ब्रिटेन में कोष विभाग (Treasury) लगाता है और अमेरिका में 'बजट' ब्यूरो (Bureau of Budget) लगता है।

वित्त मंत्रालय द्वारा अनुमानों पर नियंत्रण की आलोचना
(Criticism of Finance Ministry's Control Over Estimates)

वित्त मंत्रालय के उपर्युक्त नियंत्रण की इधर हाल के वर्षों में तीव्र आलोचना हुई है। पहली बात यह कही जा सकती है कि उक्त नियंत्रण उस युग का अवशेष है जब शासन कल्याण का नहीं, शांति और व्यवस्था का साधन था और देश की आर्थिक सम द्धि का उत्तरदायित्व जनता और समाज का था। सरकार को जो भूमि आदि से कर मिलता था, उसको वह बड़ी सावधानी से खर्च करती थी। प्रशासन के खर्चे से सदा किफायत की जाती थी। यहीं सरकारी बजट का मूल मंत्र था। आज स्थिति बदल गयी है। सरकार सार्वजनिक कल्याण के लिए उत्तरदायी है। अतः मुख्य मन्तव्य व्ययों में किफायत करना न होकर लाभप्रद कार्यों में धन लगाना होना चाहिए। परन्तु, आज भी वित्त मंत्रालय प्रायः नई योजनाओं के लिए बार-बार इंकार ही करता रहता है। इससे प्रगति में अवरोध होता है। दूसरा विचार यह है कि वित्त मंत्रालय का अन्य मंत्रालयों पर नियंत्रण उचित एवं नैतिक नहीं है। यह नहीं कहा जा सकता कि वित्त मंत्रालय के अधिकारी कभी गलती नहीं कर सकते, या वे जो कहते हैं, वह ठीक ही कहते हैं। जहां करोड़ों रुपयों का एक सीमित अवधि के भीतर व्यय करने की समस्या उठती है, वहां से सीधी और मोटी अक्ल से ही काम लेते हैं और 'नहीं' कह देना आसान समझते हैं। यह स्वाभाविक भी है। परिणाम यह होता है कि प्रस्तावित अनुमान स्वीकृत कर लिया जाता है, या सीधे-सीधे अस्वीकृत हो जाता है। बहुधा ऐसा होता है कि अधिकारी दूरदर्शिता नहीं बरत पाते और आज की छोटी-सी बचत के लिए कल के बड़े लाभ को छोड़ देते हैं। परम्परागत बड़े व्ययों को पास कर देते हैं, परन्तु किसी छोटे से नये प्रस्ताव पर अड़ जाते हैं। एक आलोचना की यह टिप्पणी की जाती है कि यदि राजकोष से कुछ हजार पौंड मांगे जाते हैं तो वह इंकार कर देता है, परन्तु यदि लाखों की मांग की जाये तो वह मान ली जाती है। तीसरी आलोचना यह है कि समकक्ष वित्त मंत्रालय का अन्य मंत्रालयों पर नियंत्रण उचित नहीं है। उसके लिए अधिक अच्छा यह होगा कि प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में एक अन्तर्विभागीय समिति स्थापित की जाये।

ये आलोचनाएं निःसार नहीं हैं। परन्तु, यह तो मानना ही पड़ेगा कि बजट को संतुलित करने के लिए नियंत्रण का होना आवश्यक है, वह वित्त मंत्रालय करे या राजकोष विभाग। इसके अतिरिक्त सभी विभागों में सहकारिता भी आवश्यक है। उसको देखने और लागू करने के लिए भी उक्त शक्ति की आवश्यकता है, अन्यथा अनियम, भ्रम, अपव्यय आदि की संभावना बनी रहेगी।

अपनाने में आने वाली कठिनाइयां
(Problems in a Adoption)

किसी भी देश की आर्थिक क्रियाओं की दिशा को निर्धारित करने में सरकार की बजट नीति का प्रमुख हाथ रहता है। बजट में आय और व्यय के अनुमान लगाये जाते हैं तथा व्ययों को पूर्ण करने हेतु विभिन्न प्रकार की पद्धतियों एवं साधनों को उपयोग में लाया जाता है। बजट शब्द फ्रेंच शब्द बजटे (Budgette) से लिया गया है जिसका आशय एक छोटे थैले से है। इस प्रकार बजट सरकार की आय एवं व्ययों का एक वार्षिक विवरण है। बजट को स्वीकृत करने के लिए विधन-मंडल के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है।

भारतीय बजट में (1) गत वर्ष के वास्तविक आय एवं व्यय (2) चालू वर्ष के आय एवं व्यय संबंधी स्वीकृत अनुमान, (3) चालू वर्ष एवं पिछले वर्ष के वास्तविक आय-व्यय संबंधी आंकड़े, (4) भावी वर्ष के बजट अनुमान, तथा (5) चालू वर्ष के दुहराये हुए आय-व्यय अनुमान प्रस्तुत किए जाते हैं। वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल से प्रारभ्भ होकर 31 मार्च को प्रतिवर्ष समाप्त होता है। किसी भी देश की आर्थिक क्रियाओं को निर्धारित करने में सरकार की बजट नीति का प्रमुख हाथ रहता है। बजट नीति में सरकार की आय, व्यय तथा ऋण संबंधी नीतियों को सम्मिलित किया जाता है। बजट के द्वारा एक देश की सही आर्थिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

अध्याय - 8

बजट एक आर्थिक व प्रशासनिक यन्त्र के रूप में

(Budget as an Instruments of Economic & Administrative Development

बजट तथा प्रशासनिक विकास
(Budget & Administrative Development)

सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक विकास के लिए बजट का महत्व, किसी भी सरकार का प्रभावशाली होना इस बात पर निर्भर करता है कि इसके पास कितनी **प्रभावशाली प्रशासनिक प्रणाली** है। क्योंकि प्रशासनिक मशीनरी ही कार्यपालिका द्वारा निर्धारित की गई **नीतियों** को लागू करती हैं।

1. इसके अलावा प्रशासकीय प्रक्रिया एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा आम जनता की आवश्यकताओं का मूल्यांकन व संचालन करके सरकार तक पहुँचाया जा सकता है। इसलिए एक कुशल **प्रशासनिक व्यवस्था** का होना जरूरी है। क्योंकि यह देश के **आर्थिक, राजनैतिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है** लेकिन यह सब तभी संभव है। जब एक ठोस **आर्थिक** आधार हमारे पास होगा। और इस आधार को मूलरुप देने के लिए **'बजट'** का सहारा लिया जाता है, क्योंकि **आर्थिक विकास जनसंख्या में परिवर्तन,** लोगों की आवश्यकताओं में लगातार बढ़ोत्तरी तथा समस्यायें तथा शिक्षा, यातायात, मानव कल्याण आदि के क्षेत्र में बढ़ती हुई आवश्यकताएँ सरकार के लिए चुनौती का काम करती हैं। जिसके लिए सरकार को अतिरिक्त प्रशासनिक प्रक्रिया को introduce करना पड़ता है तथा इन प्रक्रियाओं को किस प्रकार कार्यक्रमों के अनुसार लागू करें और सबसे महत्वपूर्ण बात है कि किस प्रकार **Finance** किया जाए।
2. **प्रभावशाली वित्तीय योजनाओं** के लिए तथा विभिन्न सरकारी कार्यक्रमों को **एकजुट** करने के लिए **'Budget'** ही एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा लोगों का सरकार के प्रति विश्वास समाज कल्याण और राष्ट्रीय उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफलता मिल सकती है जिससे प्रशासन में उच्च स्तर की **कुशलता** प्राप्त की जा सकती है। तथा आर्थिक उन्नति को भी वास्तविक रूप दिया जा सकता है। Budget का प्रयोग सभी **आर्थिक** फैसले लेते समय किया जाता है।
3. इस प्रकार बजट की योजना का एक महत्वपूर्ण माध्यम माना जा सकता है। क्योंकि किसी भी योजना के लिए वित्तीय संसाधनों का बँटवारा करना होता है। इसके लिए कब कितना और क्यों? पैसा दिया जाए ये बातें बजट द्वारा निर्धारित की जाती है।

4. सभी विकासशील देशों में वित्तीय संसाधनों की कमी है, परन्तु **विकास प्रशासन** भी उनका मुख्य उद्देश्य है। अर्थात् प्रशासन के प्रत्येक पहलू को विकसित करने के लिए वचनबद्ध है। क्योंकि इसके बिना वहाँ की जनता का सरकार में नीयत रखना सम्भव नहीं है। उपलिखित दोनों बातें तभी सम्भव हो सकती है। जब हमारे पास **वित्तीय व मानवीय** संसाधनों का उचित उपयोग हो। इनके कारण बजट का महत्व प्रकाश में आता है। क्योंकि ऐसा Budget के माध्यम से होता है। बजट के माध्यम से ही **विकास** की दशा प्रदान की जाती है। दूसरे शब्दों में Budget एक ऐसा प्रशासनिक यन्त्र है। जिसके माध्यम से **आर्थिक विकास** को प्राप्त किया जा सकता है।

5. बजट को मध्य नजर रखते हुये सरकार अपनी नीतियाँ निर्धारित करती है। तथा घोषणा करती है और प्रशासकीय प्रणाली का एक रुप देती है। यदि किसी भी नीति में परिवर्तन करना है तो बजट में निर्धारित प्रावधानों को Examine करना पड़ता है।

6. बजट के माध्यम् से ही किसी प्रशासकीय संस्था का संगठन प्रक्रिया निर्धारित की जाती है अर्थात् विभिन्न संगठनों में कितना स्टाफ होगा, कुशलता की द ष्टि से भर्ती की क्या प्रक्रिया अपनाई जाएगी क्योंकि कई बार वित्तीय संसाधनों की कमी के कारण संगठनों में मौलिक परिवर्तन करने पड़ते हैं। इसलिए प्रशासन सुचारु रूप से चलता रहे यह बात वित्तीय संसाधनों की उपलब्धि पर निर्भर करती है। तथा उपलब्ध संसाधनों के उचित व अधिकतम उपयोग पर।

7. योजना और बजट को लेकर सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यदि इन देशों में Co-ordination होगा तो योजना बहुत ही प्रभावशाली होगी अर्थात् प्रशासन की कुशलता इन दोनों के बुद्धिमतापूर्ण मेल पर निर्भर करती है। क्योंकि Budget को substative आधार माना जाता है। इसके बिना योजना केवल व्यर्थ का अभ्यास होगा। कोई व्यवहारिक उपयोगिता नहीं होगी।

8. सरकारी प्रशासनों में सार्वजनिक कार्य सार्वजनिक उपयोगिताएँ, कल्याणकारी कार्यक्रम सामाजिक सेवाएँ, सार्वजनिक उत्पादन, उपकरण आदि शामिल किए गए हैं। इन सभी कार्यक्रमों पर वित्तीय द ष्टि से नियंत्रण रखना बहुत आवश्यक है। अर्थात् किस प्रकार विभिन्न प्रतियोगी विभागों को पैसा दिया जाए तथा किस प्रकार बड़ी Projects को प्रतिबन्धित किया जाए जो कि एक बड़ी समस्या है। 'बजट' ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा इनको नियंत्रित किया जा सकता है। अब प्रत्येक प्रशासकीय विभाग के कार्यक्रमों को—कार्यक्रम, कार्य, गतिविधियों आदि में बाँट दिया जाता है। अब ज्यादा ध्यान Functional classification पर दिया जाता है।

9. बजट द्वारा यह सम्भव है कि विभिन्न **Projects और क्रियाओं मे चुनाव प्रबन्धकीय नियंत्रण व** मूल्यांकन को लागू किया जाता है। और इनके खर्चे में कुशलता और आर्थिकता द्वारा एक **सदुपयोग की प्रक्रिया** को प्राप्त किया जा सकता है। वास्तव में **Budget** एक Executive Agency का कार्य करता है। क्योंकि इन Projects के management में इसी का महत्वपूर्ण Role रहता है।

10. जब कोई भी विभाग अपनी योजनाएँ तैयार करता है, सम्मिलित करता है नियंत्रण एवं मूल्यांकन करने के बाद Report तथा पुनर्निरीक्षण आदि में कार्य करता है। तो इन सभी

का एक जगह मूल्यांकन **Budget** के माध्यम से किया जाता है। अतः सारी प्रशासकीय प्रक्रिया में Budget का महत्वपूर्ण रोल रहता है। जैसे :

(i) सभी प्रशासकीय विभागों को वित्त प्रदान करना।

(ii) वित्तीय संसाधनों को संचालित करना और प्रशासनिक द ष्टि से, कुशलता एवं मूल्यांकन की द ष्टि से सरकार के निर्धारित मूल्यों को प्राप्त करना शामिल है।

लेखांकन की प्रक्रिया में जो व्यय के साथ–साथ Record की जाती है। मैं इस बात की समीक्षा 'बजट' के माध्यम से की जाती है कि किसी प्रशासनिक विभाग के लिए क्या काम था तथा उसकी क्या Performance रही। इनके माध्यम से बजट एक प्रशासकीय प्रक्रिया को एक व्यवहारिक रूप देता है।

1. प्रबन्धकीय फैसले लेते समय– Decision maker को Guidance देता है।
2. फैसलों को लागू करते समय क्या Procedure अपनाना है। निर्देशन देता है।
3. It is a communication media.

बजट एक आर्थिक विकास के यन्त्र के रूप में
(Budget as an Instrument of Economic Development)

पुराने समय में जबकि राज्य के कार्य बहुत सीमित थे तो बजट को एक यन्त्र के रुप में माना जाता था जिसके माध्यम से वित्तीय मामलों में क्रमबद्धता लाई जा सके और मुख्य Focus इस बात पर था कि किस प्रकार खर्चे में **मितव्यता** और लोगों पर कम से कम **कर** का भार पड़े। ये दो मुख्य उद्देश्य बजट के थे लेकिन आजकल बजट का कार्यक्षेत्र काफी बढ़ गया है। और विभिन्न विभागों के बीच प्रतियोगिता **को मध्य नज़र रखते हुए बजट का कार्य सम द्धता और कल्याण को बढ़ावा देना है। अर्थात् बजट अब आर्थिक नीति का माध्यम बन गया है।**

अब बजट का सम्बन्ध

(1) **यह पैदावार बढ़ाता है।**

(2) **आय तथा व्यय के बँटवारे में असमानता को धीरे-धीरे खत्म करना।**

(3) **कीमतों में व द्धि पर नियंत्रण करना जो किसी संकट या युद्ध के समय पैदा हुई हो।**

(i) आम जनता के लिए **रोजगार के साधन उपलब्ध कराना।**

(ii) बजट उत्पादन की प्रक्रिया में सहायक इस प्रकार हो सकता है कि ये उद्योग एवं क षि की पूर्ण सुरक्षा दे तथा Subsidy (छूट) प्रदान करे।

(2) आय तथा व्यय में असमानता दूर करने के लिए कर प्रणाली में आवश्यक सुधारों का सुझाव दिया जाए। तथा विभिन्न करों से प्राप्त पैसे को गरीब वर्ग की शिक्षा, आवास तथा कल्याण योजनाओं पर खर्च किया जा सके।

(iii) कीमतों में तेजी को रोकने के लिए जो युद्ध या संकट के द्वारा अतिरिक्त संचालित किया जाता है उसे वापिस ले लिया जाए।

(iv) जनता को रोज़गार के मामले में बजट सार्वजनिक व विकासशील स्कीमों में ज्यादा पैसा खर्च करके दे सकता है या निजी रोज़गार के लिए Loan Provide कर सकता है।

सामान्यतः बजट को **आर्थिक क्षेत्र** में तीन मुख्य कार्य करने पड़ते हैं।

(1) पैसा निर्धारित करना। (**As a Tool of Allocation of Money**)

(2) आर्थिक नीति का संचालन **(As a Tool of Fiscal Policy)** (वित्त सम्बन्धी)।

(3) मुद्रण नीति का संचालन (As a Tool of Monetary Policy.) (मुद्रा संबंधी)।

(1) पैसा निर्धारित करना :

(As a Tool of Allocation of Money)

किसी भी आर्थिक व्यवस्था में सर्वांगीण आर्थिक विकास के लिए बजट को धन वितरण का संचालन करना पड़ता है। कि हमारे पास कितने वित्तीय संसाधन है। और विकास को लेकर प्राथमिकता का क्रम क्या है। साधारणतया बजट के माध्यम से वितरण की प्रक्रिया को अन्तिम रूप दिया जाता है।

(i) इसके अतिरिक्त बजट को "As a tool of control of public expenditure (खर्च)"

(ii) As a tool of finance management.

(iii) As a tool of economic planning.

(iv) As a tool of evolution of various development schemes & plans.

(i) जहाँ पर वित्तीय प्रक्रिया में व्यय पर नियन्त्रण की बात है। इसके लिए Budget बनाते समय एक निश्चित प्रक्रिया का रूप दिया जाता है। जिस पर बजट लागू होने के बाद व्यवहारिक रुप से अमल किया जाता है। अर्थात् वित्तीय अधिनियम व उपनियमों के तहत एक निश्चित प्रक्रिया को रखा गया है। जिसके माध्यम से खर्चे की प्रक्रिया पर सामयिक लागत तथा नतीजों को ध्यान में रखकर समीक्षा की जाती है।

(ii) Financial management के लिए बजट इसलिए सहायक है कि जब वित्तीय फैसले किए जाते हैं तो Budget उनके Guide के रूप में कार्य करता है। और आर्थिक विकास के उद्देश्य को भी प्राप्त करता है तो फैसले की प्रक्रिया मे बजट के निर्देशन को स्वीकार करना पड़ेगा।

(iii) इसी प्रकार योजना बनाते समय बजट को ध्यान में रखते हुए यह तय करने का फैसला किया जाता है कि विभिन्न प्रशासकीय क्षेत्रों वित्तीय संसाधनों के उचित उपयोग को ध्यान में रखकर योजनाएँ बनाई गयी है।

(iv) मूल्यांकन के लिए बजट किसी भी विभाग के कार्यो का निरीक्षण कर सकता है। इसके लिए इसके पास पर्याप्त मशीनरी है। प्रत्येक विभाग की कार्यशैली के लिए वित्तीय संदर्भ में कुछ निश्चित मापदण्ड स्थापित किए गए हैं जिनकी परिधि में विभाग को अपना काम करना पड़ता है।

(2) आर्थिक नीति का संचालन :

(Budget as a Tool of Fiscal Policy)

किसी देश की वित्तीय नीति बजट में Reflected (प्रतिबिम्बित) होती है। सार्वजनिक व्यय व आय का स्पष्ट रूप दर्शाने वाले दस्तावेज का नाम **Fiscal policy** है। आर्थिक विकास के लिए वित्तीय नीति एक ठोस संगठन के तौर पर कार्य करती है अर्थात् आर्थिक नीति में :

(i) (कर व्यवस्था) Taxation system.

(ii) (निवेश नीति) Investment policy.

(iii) (प्रशासन की आय तथा व्यय) Revenue & expenditure of administration

(i) **कर व्यवस्था :** बजट का सरकार की कर नीति पर क्या प्रभाव पड़ा अर्थात् आने वाले वर्ष में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष करों का क्या अनुपात होगा तथा किस प्रकार से वे कर ज्यादा अर्थपूर्ण है तथा किन–किन Tax को छोड़ देना चाहिए। ये सब बातें वित्तीय नीति में तय की जाती है, जिसकी सलाह बजट द्वारा की जाती है। कर प्रणाली की प्रकृति बजट द्वारा तय की जाती है।

(ii) **निवेश नीति :** किसी देश की आर्थिक नीति का निवेश नीति पर भी प्रभाव पड़ता है। यह बात अलग है कि निवेश नीति का निर्धारण बजट द्वारा किया जाता है अर्थात् कितना निवेश करना है। किस Sector में करना है, कब करना है, प्रकृति क्या होगी आदि बातें बजट द्वारा निर्धारित की जाती है। इसके अलावा Private sector में भी बजट **'कर नीति'** द्वारा इसे नियंत्रित करता है। इस प्रकार निवेश नीति के माध्यम से **बजट** का **आर्थिक विकास** में बहुत महत्व है।

(iii) **प्रशासन की आय तथा व्यय :** बजट को सरकार की वित्तीय योजना का स्वामी कहा जा सकता है। यह ही सम्भावित आय तथा व्यय को सरकार के सामने पेश करता है। आय तथा व्यय की क्रियायें भी सुचित करता है। Budget preparation के समय देश की वित्तीय व्यवस्था का पूर्ण ब्यौरा दिया जाता है।

(3) मुद्रण नीति का संचालन :

(As a Tool of Monetary Policy)

Monetary Policy का अर्थ है कि मुद्रा बाजार में इसका क्या प्रभाव व लागत है किसी देश की आर्थिक व्यवस्था में मुद्रा के circulation का क्या प्रभाव है। कितनी मुद्रा संचालित की जाए–यह बात बहुत ही महत्वपूर्ण है। किसी देश का आर्थिक विकास इसी बात पर निर्भर करता है। मुद्रा के संचालन पर विभिन्न आर्थिक विकास के पहलू होते हैं, अर्थात् मुद्रक नीति विभिन्न तरीकों से आर्थिक व्यवस्था को प्रभावित करती है।

(i) मुद्रा संचालित करके Currency Circulation.

(ii) Currency Credit (साख जमा)

(iii) Borrowing of Govt. (सरकार की उधार)

(i) Currency Circulation से देश के आर्थिक विकास को रूप दिया जाता है। इसी के माध्यम से विभिन्न वस्तुएँ व सेवाएँ विनिमय की जाती हैं, उत्पादन की प्रक्रिया में पैसा तेल का कार्य करता है।

पैसे की कुल उत्पादन से ज्यादा circulate किया या कम। इस बात का निर्धारण बजट द्वारा किया जाता है। यदि देश के आर्थिक विकास में कोई रुकावट आती है तो कुल उत्पादन के मूल्य से ज्यादा पैसा circulate किया जा सकता है।

(ii) इसी प्रकार सरकार की साख नीति भी आर्थिक विकास को प्रभावित करती है। विभिन्न सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं क्योंकि इसके द्वारा नियत किया जाता

है कि सरकार को कितना पैसा credit (जमा) में है, ताकि आर्थिक व्यवस्था ठीक रहे, क्योंकि आर्थिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण घटक सरकार की साख नीति पर निर्भर करता है।

(iii) इसके इलावा सरकार की उधार नीति का निर्धारण व नियंत्रण भी बजट के माध्यम से किया जाता है कि कितना किस योजना के लिए उधार लिया जाए तथा उधार के क्या माध्यम होंगे (राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय उधार) का निर्धारण बजट द्वारा किया जाता है।

विकासशील देशों में जहाँ पूँजी निवेश को लेकर काफी समस्या है, वहाँ बजट का महत्व और अधिक बढ़ जाता है। इन देशों के सार्वजनिक निवेश के माध्यम से ही तीव्र व संतुलित आर्थिक विकास को लाने की योजना बनाई गई है। इन देशों में पूंजी निवेश की दर में लगातार व द्धि हो रही है। इस बढ़ते हुए खर्च का प्रबन्ध के लिए क्या किया जाए यह एक व्यापक समस्या है। इसलिए इन बातों की जिम्मेवारी बजट पर आ गई है। बजट के प्रभाव दूरगामी होते हैं जिसका प्रभाव अपने देश के अतिरिक्त दूसरे देशों पर भी पड़ता है। इसलिए सार्वजनिक खर्चे की मात्रा, प्रक्रिया का निर्धारण–सूझबूझ से तथा सामंजस्य से करना चाहिए। Govt. के पास इसका खर्चा होना चाहिए। **Demands for Grant** के पास होने के बाद **Appropriation bill** पर voting होती है? जब राज्य सभा सारे **माँग अनुदानों** पर मतदान करके पास कर देती है। तो इन सब पास की गई माँग अनुदानों को एक **बिल** का रूप दे दिया जाता है। इस विनियोग बिल को नये सिरे से लोक सभा में पेश किया जाता है। व्यवहारिक रुप से इस बिल का ज्यादा महत्व है केवल माँग अनुदानों में निर्धारित राशि को वैधता प्रदान करने के लिए ऐसा किया जाता है। ताकि मन्त्रालयों को अपने–अपने खातों से पैसा निकलवाने की Authority मिल जाए।

(i) **भारतीय** संविधान में Art. 166(1) के अन्तर्गत यह प्रावधान है कि भारतीय संचित निधि से एक भी पैसा नहीं निकाला जा सकता जब तक विनियोग बिल पास न हो जाए। विनियोग बिल के पास होने की प्रक्रिया वही है जो सामान्य बिल पर लागू होती है।

(ii) विनियोग बिल पेश करने के बाद किसी तरह का संशोधन Allowed नहीं है। क्योंकि माँग अनुदान की राशि पहले ही संसद पास कर चुकी है। विनियोग बिल पर बहस के समय charged item 42 मतदान नहीं होता लेकिन इन पर बहस की जा सकती है। विनियोग बिल पर बहस करते समय – विभिन्न मुद्दों को लेकर सरकार की कार्य प्रणाली से संबंधित कुछ सुझाव व टिप्पणियाँ दी जा सकती हैं। इसके अलावा जिन मुद्दों के लिए प्रस्तावित खर्चा रखा गया है उसमें भी विभिन्न सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते हैं। विनियोग बिल के माध्यम से हम सामान्य बजट तथा रेल बजट को कानूनी रूप प्रदान कर सकते हैं।

अध्याय - 9
भारत में वित्त संघवाद
(Fiscal Federalism in India

संघीय शासन–प्रणाली में केन्द्र और राज्यों के बीच न केवल विधायी और प्रशासनिक शक्तियों का विभाजन होता है बल्कि वित्तीय शक्तियों का भी विभाजन होता है। वित्तीय स्त्रोतों के विभाजन को लेकर केन्द्र और राज्यों के बीच मतभेद पैदा होना स्वाभाविक भी है।

26 जनवरी, 1950 को भारतीय संविधान के लागू होने के साथ–साथ देश में गणराज्य की स्थापना हुई। इस संविधान के अध्याय 12 में वर्णित अनुच्छेद (264 से 300) में केन्द्र और राज्य के वित्तीय स्त्रोतों का प्रावधान है। संविधान में यह व्यवस्था की गई कि भारत के राष्ट्रपति की आज्ञा से प्रत्येक पांच वर्ष के बाद एक वित्तीय आयोग की स्थापना की जायेगी, जिसका सम्बन्ध पंचवर्षीय योजनाओं से होगा और जो समय–समय पर राज्यों व केन्द्र के मध्य वित्तीय सम्बन्धों पर अपने सुझाव देगा।

संविधान के अन्तर्गत स्त्रोतों के विभाजन की विशेषताएं
(Characteristics of Division of Sources Under Constitution)

यह निश्चय किया गया है कि संघ सरकार व राज्य सरकारों की आय पथक्–पथक् संचित कोषों में जमा होगी। संघ सरकार की समस्त आय को भारत के संचित कोष में तथा राज्य की सारी आय को 'राज्य के संचित कोष' में जमा किया जाएगा। संविधान के अन्तर्गत आय के स्त्रोतों के विवरण के संबंध में मुख्य विशेषताएँ निम्न प्रकार हैं :

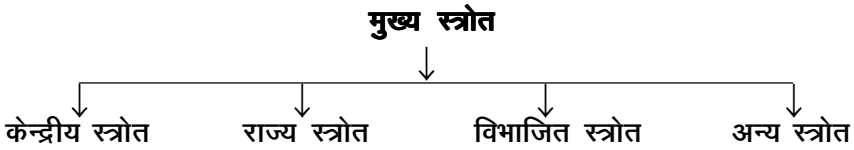

(1) **केन्द्रीय स्त्रोत :** केन्द्र अपनी आय के स्त्रोत में पूर्णरूपेण स्वतंत्र है। इसमें उन स्त्रोतों को रखा गया है जिन पर पूर्ण अधिकार केन्द्र सरकार का रहेगा जैसे रेलवे, डाक–तार, प्रसारण, संचार, सीमा कर, निगम कर, कंपनियों की पूँजी पर कर, उत्पादन शुल्क, मुद्रा व विदेशी विनिमय, निगम कर, अंश बाजार के सौदों पर मुद्रांक कर से भिन्न कर, चैक, हुण्डियों आदि पर मुद्रांक कर, सम्पदा पर कर, विदेशी ऋण, संगठित लाटरियाँ, संघ सरकार की सम्पत्ति, डाकखाना बचत बैंक, संघ का लोक ऋण, भारत का रिजर्व बैंक आदि।

(2) **राज्य स्त्रोत :** इस स्त्रोत से प्राप्त आय का उपयोग राज्य सरकारों द्वारा ही किया जा सकेगा। इसमें मुख्यतया कृषि आय कर, मालगुजारी, विक्रय कर, मनोरंजन कर, भू–राजस्व,

भूमि व भवनों पर कर, खनिज अधिकार पर कर, पूँजी कर, मादक द्रव्य पर उत्पादन कर, विद्युत सामग्री के उपभोग पर कर, विज्ञापनों पर कर, वाहनों पर कर, सड़कों पर यात्रा कर, चुँगी कर, पथ कर आदि प्रमुख हैं।

(3) **विभाजित स्त्रोत :** इसमें कर लगाने व वसूल करने के अधिकार प्राप्त होंगे, परन्तु प्राप्त सम्पूर्ण आय वित्त सिफारिशों के आधार पर निर्धारित अनुपात में राज्यों के मध्य विभाजित कर दी जायेगी तथा केन्द्र कुछ भी अंश अपने पास नहीं रखेगा। जैसे गैर–कृषि आय पर लगे कर, उत्पादन कर, भाड़े पर कर, विभाजन पर कर आदि।

(4) **केन्द्र द्वारा लगाए व वसूल किए गए, परन्तु राज्यों को विभाजित स्त्रोत :** इसमें वे कर सम्मिलित किये जाते हैं, जो केन्द्र द्वारा वसूल किए जाते हैं, परन्तु उनकी आय राज्यों को विभाजित कर दी जाती है जैसे कि सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर, बिलों, प्रतिज्ञा–पत्रों, चैक व बीमा पॉलिसी पर स्टांप कर, माल व यात्रियों पर सीमांत कर, रेलवे, भाड़े पर कर आदि।

(5) **अन्य स्त्रोत :** इसमें निम्न स्त्रोतों को सम्मिलित करते हैं :

(i) **केन्द्र द्वारा लगाए व राज्य द्वारा वसूली :** कुछ कर केन्द्र द्वारा लगाए जाते हैं, परन्तु उन्हें राज्य सरकारें वसूल करेंगी और यह उन्हीं की आय के स्त्रोत माने जायेंगे। जैसे स्टाम्प कर, सौन्दर्य प्रसाधन पर लगा कर आदि।

(ii) **केन्द्र द्वारा लगाए व वसूल वाली परन्तु विभाजन योग्य मदें :** धारा 270 के अन्तर्गत कुछ करों को लगाने व वसूल करने का अधिकार केन्द्र सरकार को होगा, परन्तु उसकी शुद्ध आय का विभाजन केन्द्र एवं राज्य सरकारों के मध्य वित्तीय आयोग की सिफारिशों के आधार पर होगा। उदाहरणार्थ, आय कर एवं उत्पादन कर।

(iii) **अधिभार** (Surcharge) : केन्द्र सरकार आय कर एवं उत्पादन करों पर अधिभार लगा सकती है जो विभाजनीय नहीं होगा और इसकी समस्त आय पर केन्द्रीय सरकार का अधिकार होगा।

(iv) **व्यवसाय कर :** राज्य सरकार व्यवसाय कर लगा सकती है जिसकी अधिकतम सीमा 850 रुपये वार्षिक तक हो सकती है। व्यवसाय कर व्यक्ति आय के आधार पर भिन्न–भिन्न हो सकता है।

(v) **राजनीतिक एवं आर्थिक समानता :** संविधान द्वारा विभिन्न राज्यों के मध्य राजनीतिक एवं आर्थिक समानता लाने के प्रयास किये जायेंगे।

(vi) **पिछड़े राज्यों का विकास :** संघ सरकार का उद्देश्य पिछड़े राज्यों को आर्थिक विकास के अवसर प्रदान करना है जिससे विषमताएँ समाप्त की जा सकें।

(vii) **अनुदान की व्यवस्था :** संविधान के अनुच्छेद् 273 के अनुसार यह व्यवस्था की गयी है कि जूट का निर्यात करने वाले राज्यों को संचित निधि से अनुदान मिलेगा।

(viii) **अनुसूचित जातियों का कल्याण :** जिन राज्यों में अनुसूचित जातियों के कल्याणार्थ योजनाएँ बनायी जाती हैं उनके लिए केन्द्र सरकार से वित्तीय सहायता प्राप्त होगी।

(ix) **राज्य के हितों की सुरक्षा :** संसद द्वारा किसी वित्तीय मामले पर अधिनियम बनाने

पर राज्य के हित जुड़े हों तो राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति प्राप्त करनी होगी जिससे राज्य के हितों को सुरक्षित रखा जा सके।

(x) **प्रशासनिक सुविधा व समन्वय :** राज्य वित्त संबंधी विषयों पर प्रशासनिक सुविधा एवं समन्वय की द ष्टि से संविधान में व्यापक रुप से व्यवस्थाएँ की गई हैं।

(xi) **विशेष व्यवस्थाएँ :** संविधान में कुछ एक विशेष व्यवस्थाएँ की गयी हैं, जिससे केन्द्र सरकार की आय एवं सम्पत्ति पर राज्य सरकारों द्वारा कर नहीं लगाया जा सकता। ऐसा करने से केन्द्र के स्त्रोतों को पूर्ण रुप से सुरक्षित रखने की व्यवस्था की गयी है।

(xii) **वित्त आयोग :** केन्द्र व राज्यों के मध्य वित्तीय संबंधों को मधुर बनाने हेतु प्रत्येक पाँच वर्ष के बाद वित्त आयोग की स्थापना की जाती है जिसमें एक सभापति के अतिरिक्त चार अन्य सदस्य भी होते हैं। यह आयोग निम्न विषयों पर राष्ट्रपति को सुझाव देता है :

(a) करों की आय को केन्द्र व राज्य के मध्य विभाजित करने की व्यवस्था,

(b) राज्यों को दिए गए सहायता अनुदानों का निर्धारण करना,

(iii) वित्त व्यवस्था को सुद ढ़ बनाने हेतु अन्य मामलों पर परामर्श देना।

(xiii) **ऋण :** संविधान की धारा 293(2) के अनुसार केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकारों को ऋण की गारंटी दे सकती है तथा ऋण भी प्रदान कर सकती है। यह ऋण कोष से दिए जाते हैं।

(xiv) **वित्तीय आपातकालीन शक्तियाँ--** राष्ट्रपति संविधान के अनुच्छेद् 360 के अनुसार वित्तीय संकट की घोषणा कर सकता है। इस स्थिति में राष्ट्रपति उस क्षेत्र के सरकारी कर्मचारी और न्यायाधीश के वेतन भत्तों में कमी कर सकता है।

सरकारिया आयोग की रिपोर्ट, 1987

केन्द्र राज्य संबंधों मे बढ़ते हुए विवादों, तनावों एवं असन्तुलन के कारण इसकी पुनः समीक्षा करना आवश्यक हो गया था। इसी संदर्भ में श्रीमती इन्दिरा गाँधी की सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय के सेवा–निव त्त न्यायमूर्ति आर. एस. सरकारिया के नेत त्व में तीन सदस्यीय आयोग की नियुक्ति की घोषणा संसद में की थी। इस आयोग के दो अन्य सदस्य श्री बी. शिवारामन एवं डॉ. एस. एन. सेन थे।

इस आयोग ने सभी राजनीतिक दलों, संविधानशास्त्रियों, राज्य सरकारों एवं विशिष्ट विद्वानों से विचार–विमर्श कर एक सर्वसम्मत रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसी रिपोर्ट को 'सरकारिया आयोग रिपोर्ट' कहा जाता है। संक्षेप में, आयोग ने निम्नलिखित सिफारिशें प्रस्तावित की हैं :

(i) आयोग ने केन्द्रीकरण की बढ़ती हुई प्रव त्ति की निन्दा की है। उसका मत है कि नियोजन प्रक्रिया में विकेन्द्रीकरण हो।

(ii) आयोग ने शक्तिशाली एवं स द ढ़ केन्द्र की स्थापना पर बल दिया है। आयोग का मत है कि केन्द्रीय सरकार राज्यों के विशेषाधिकारों का अतिक्रमण कर राज्य–सूची के विषयों को समवर्ती सूची में शामिल कर रहा है।

(iii) आयोग ने राज्यों में संवैधानिक विफलता की स्थिति में अनुच्छेद् 356 के मनमाने ढंग से दुरुपयोग की कड़ी निन्दा की है।

(iv) आयोग ने राज्य के संबंध में सिफारिशें इस प्रकार की हैं कि :

(क) राज्यपाल के पद पर केन्द्र में सत्तारुढ़ दल के सक्रिय राजनीतिज्ञों को नियुक्त न किया जाय।

(ख) राज्यपाल की नियुक्ति से पूर्व उस राज्य के मुख्यमंत्री से परामर्श किया जाए। यदि आवश्यक हो तो इसके लिए संविधान के अनुच्छेद् 155 को संशोधित किया जाए। आयोग का यह विचार है कि प्रधानमंत्री राज्यपाल की नियुक्ति के संबंध में उपराष्ट्रपति एवं लोकसभा के अध्यक्ष से परामर्श कर सकता है।

(ग) राज्यपाल का कार्यकाल, अतिविशिष्ट कारण के अतिरिक्त, राज्य में पाँच वर्ष से अधिक न हो।

(v) आयोग ने स्थायी अन्तर्राज्यीय परिषद् की स्थापना का सुझाव दिया है। इस परिषद् का गठन संविधान के अनुच्छेद् 263 के द्वारा राष्ट्रपति कर सकता है।

(vi) आयोग ने राष्ट्र–निर्माण में राज्यों की भूमिका को सराहा है। अतः उसका मत है कि केन्द्र एवं राज्यों में परस्पर विचार–विमर्श होना चाहिए।

(vii) आयोग की सिफारिश है कि संविधान में कोई भी मूलभूत परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।

(viii) अखिल भारतीय सेवाओं के सम्बन्ध में आयोग की सिफारिश है कि यान्त्रिकी, चिकित्सा एवं शिक्षा सेवाओं को अखिल भारतीय सेवा में जोड़ा जाये। आयोग ने इन सेवाओं में सुधार तथा कार्य–कुशलता बढ़ाने के संदर्भ में अनेक सुझाव दिये हैं।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि भारतीय संघीय व्यवस्था में अन्य संघीय देशों की अपेक्षा अधिक केन्द्रीकरण हैं; अर्थात् केन्द्र को अधिक शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। संकट काल में संघीय व्यवस्था एकात्मक शासन का रूप धारण कर लेती है। यह सैद्धान्तिक स्थिति है। व्यवहार में विगत् 52 वर्षो के इतिहास ने यह सिद्ध कर दिया है कि संविधान–निर्माताओं का उपर्युक्त उपबन्धों की व्यवस्था करना बुद्धिमत्तापूर्ण था। देश में विघटनकारी तत्व सक्रिय रहे हैं। अतः इन पर नियंत्रण अपेक्षित था। 52 वर्ष के इस काल में 1964 तक केन्द्रीय शासन काफी शक्तिशाली था। इन वर्षो में केन्द्र एवं राज्यों में कांग्रेस दल के मंत्रिमंडल पदारुढ़ थे। पं. नेहरु का असाधारण चुम्बकीय व्यक्तित्व केन्द्रीय शासन की सत्ता को अक्षुण्ण बनाये रखने में सहायक था। 1964 से 1972 तक केन्द्रीकरण की प्रव त्ति उलट गयी थी। राज्य अधिक शक्तिशाली हो गए थे। 1964 में पं. नेहरु के देहावसान के बाद कांग्रेस दल की सत्ता बिखर गयी। केन्द्रीय नेताओं का पहले की तरह एकछत्र नियन्त्रण न रहा। 1964 में श्री लाल बहादुर शास्त्री एवं 1966 में श्रीमती गाँधी को प्रधानमंत्री बनाने में कुछ राज्यों के मुख्यमंत्रियों ने निर्णायक भूमिका निभायी थी। 1967 के निर्वाचनों में अनेक राज्यों में गैर–कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों की स्थापना हुई। कांग्रेस मंत्रिमण्डल वाले राज्यों में भी कांग्रेसी नेताओं में परस्पर विवाद थे। 'आया राम गया राम' की राजनीति ने राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न कर दी थी। 1971 में

मध्यावधि निर्वाचनों के परिणाम ने इस स्थिति को बदल दिया। श्रीमती इन्दिरा गाँधी के नेत त्व में कांग्रेस को लोकसभा में दो–तिहाई बहुमत प्राप्त हुआ। 1972 में राज्यों के निर्वाचनों में काग्रेस सत्तारुढ़ हुई और श्रीमती गाँधी के रुप में एक सबल एवं योग्य नेता के प्रादुर्भाव ने केन्द्रीय सत्ता को पुनः शक्तिशाली बना दिया।

संघीय शासन से संबंधित विगत् वर्षो में परस्पर दो विरोधी शक्तियाँ सक्रिय रही हैं– एकल–प्रबल दलीय पद्धति तथा आर्थिक नियोजन। ये केन्द्रीकरण की दिशा में गतिशील प्रव त्तियाँ हैं। आर्थिक नियोजन के कारण सम्पूर्ण देश की अर्थव्यवस्था को एक इकाई मानकर देश की योजनाओं का निर्माण किया जाता रहा है। एकल–प्रबल दलीय पद्धति के फलस्वरुप अधिकाँशतः केन्द्र एवं राज्यों में कांग्रेस मन्त्रिमण्डल सत्तारूढ़ रहे हैं; अतः दलीय अनुशासन के माध्यम से विघटनकारी तत्वों एवं प्रव त्तियों पर प्रतिबन्ध रखा गया। इसमें दलीय नेताओं–नेहरु, लाल बहादुर शास्त्री एवं श्रीमती इन्दिरा गाँधी जैसे सबल एवं द ढ़ नेत त्व की भूमिका निर्णायक रही। विकेन्द्रीकरण की दिशा में सक्रिय तत्व थे–भाषावाद एवं क्षेत्रीयता। भाषावार प्रान्तों एवं क्षेत्रीयता की प्रबल माँग ने केन्द्रीय शासन की शक्ति पर प्रतिबन्ध का कार्य किया है और केन्द्रीय शासन को बाध्य होकर भाषावार प्रान्तों (यथा–पंजाब, महाराष्ट्र एवं गुजरात आदि) का निर्माण करना पड़ा।

भारत में संघवाद 1950 की अपेक्षा आज कहीं अधिक वास्तविक रूप में है। संयुक्त राज्य अमरीका, कनाड़ा एवं आस्ट्रेलिया को जो विद्वान संघीय शासन का यथार्थ रुप मानते हैं, उनकी द ष्टि भारत एक अर्द्धसंघीय या एकात्मकता की तरफ झुका हुआ संघ है, लेकिन संघवाद की उपर्युक्त धारणा आज पूर्णतः मान्य नहीं है। संघवाद के स्वरुप में परिवर्तन हुआ है और सभी संघीय देशों में केन्द्रीय शासन स्वयं साध्य नहीं है अपितु सुशासन का एक साधन है। ऐसी स्थिति में संघीय शासन की कोई ऐसी परिभाषा मान्य नहीं हो सकती जो गतिशील न हो। भारतीय संघ आधुनिक संघवाद की सहयोगी प्रव त्ति पर आधारित है। उसका स्वरूप ऐतिहासिक एवं सामाजिक परिस्थितियों का परिणाम है। भारत में संघीय एकात्मक तत्वों के समावेश का मूल कारण राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता का अक्षुण्ण रखना है। एपिलबी जैसे अमरीकी विद्वानों की तो यह धारणा है कि भारत में केन्द्रीय शासन कमजोर है, और "कोई भी अन्य महान राष्ट्रीय शासन शासकीय कार्यक्रमों को पूर्ण करने के लिए राज्य–शासनों पर उतना निर्भर नहीं जितना कि भारतीय केन्द्रीय शासन।" भारत में अमरीकी संघीय जैसे कोई केन्द्रीय सेवा नहीं है। स्पष्ट है कि संविधान–निर्माताओं ने विश्व के सभी प्रमुख संघीय संविधानों के व्यावहारिक रुप से शिक्षा ग्रहण करते हुए एवं राष्ट्रीय एकीकरण को ध्यान में रखकर एकात्मक तत्वों का समावेश किया है। डॉ. अम्बेडर के अनुसार, "संविधान में राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं जैसी है।" संविधान लक्ष्य के प्रतिकूल यह मत भ्रामक धारणा पर आधारित है। विगत् 52 वर्षो के इतिहास से यह स्पष्ट है कि केन्द्र को शक्तिशाली न बनाया गया तो राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता भंग हो गयी होती। देश की राजनीति में एक ऐसी अन्तःधारा प्रवाहित है जो अखण्डता की पक्षधर है। फिर भी, आवश्यकता इस बात की है कि राज्यों के प्रति जहाँ केन्द्र का द ष्टिकोण उदार एवं विस्त त होना चाहिए वहीं राज्यों का द ष्टिकोण संकीर्ण नहीं होना चाहिए तथा उन्हें केन्द्र के सहयोगी के रूप में कार्य करना चाहिए।

केन्द्र व राज्यों के तनाव क्षेत्र
(Tension Fields of Centre and State)

संविधान लागू होने से प्रारिम्भक वर्षो में केन्द्र और राज्यों के पारस्परिक संबंध मधुर थे, लेकिन समय के साथ ऐसे अनेक प्रशासनिक मुद्दे उभरे जिन्होंने केन्द्र और राज्यों के मतभेदों को जन्म दिया। 1967 के चतुर्थ आम–चुनाव के पूर्व केन्द्र और राज्यों के पारस्परिक संबंध अत्यन्त सहयोगपूर्ण थे। 1952 से लेकर 1967 तक के काल में देश के राजनीतिक परिद श्य पर कांग्रेस का प्रभुत्व था। केन्द्र और राज्यो के विवाद को कांग्रेस का अन्दरुनी मामला समझा जाता था। अगर कोई विवाद का विषय उभरता था तो उसे पारिवारिक कलह मानकर हल कर लिया जाता था। नेहरु जैसे अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के नेता के आगे कोई सिर उठाने की कोशिश नहीं कर सकता था। फिर भी राज्यों के कुछ दबंग और शक्तिशाली मुख्यमंत्री कभी–कभी अपनी बातों पर अड़ जाया करते थे। पश्चिम बंगाल के तात्कालिक मुख्यमंत्री डॉ. बी.सी. राय ने 'दामोदर घाटी कारपोरेशन' के मामले में बहुत सख्त रवैया अख्तियार किया था।

1967 के आम चुनावों ने भारत के स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक इतिहास को एक नया मोड़ दिया। संघीय प्रणाली का क्रियान्वयन 'एक दलीय प्रभुत्व ढांचे (One Party Dominant Framework) की बजाय 'बहुदलीय प्रतियोगी राजनीति' (Multi Party Competitive Politics) के ढांचे के रूप में होने लगा। 1967 के आम चुनावों के बाद कांग्रेस दल के दीर्घकाल से चले आ रहे राजनीतिक एकाधिकार समाप्त हुए और अनेक राज्यों में गैर–कांग्रेसी दलों की संविद सरकारें बनीं। गैर–कांग्रेसी सरकारें केन्द्र में सत्तारूढ़ कांग्रेस की सरकार को अविश्वास की द ष्टि से देखने लगीं। इसी कालखण्ड में कई क्षेत्रीय दलों का अभ्युदय हुआ। गैर–कांग्रेसी दलों के मुख्यमंत्री को ऐसा महसूस हुआ कि केन्द्र के विरुद्ध शिकायतें दर्ज कराने लगे। परिणामस्वरुप एक ऐसा अविश्वास का वातावरण बना जिसने केन्द्र और राज्यों के बीच तनाव, विवाद और मतभेद के युग का सूत्रपात किया। संक्षेप में, केन्द्र तथा राज्य के बीच टकराव के प्रशासनिक मुद्दे निम्न रहे जो आज भी यथावत हैं।

1. **राज्यपाल का पद :** राज्यपाल राज्य का संवैधानिक कार्यकारी है। 1967 के आम चुनावों के बाद राज्यपालों के अधिकार क्षेत्र, नियुक्ति की प्रक्रिया को लेकर केन्द्र और राज्यों के बीच टकराव की शुरुआत हुई। गैर–कांग्रेसी राज्य सरकारें बराबर यह आरोप लगाती रहीं कि केन्द्र राज्यपालों के माध्यम से उनकी सरकारों को बर्खास्त करने में लगा हुआ है। गैर–कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों की शिकायत थी कि उनके राज्य में राज्यपालों की नियुक्ति करते समय केन्द्र इस परम्परा का पालन नहीं कर रहा है कि मुख्यमंत्री से परामर्श लिया जाए। कुछ राज्यपालों ने तो लोकतांत्रिक परम्पराओं का भी उल्लंघन किया। उन्होंने केन्द्र सरकार के एजेण्ट की भूमिका का निर्वाह करना ही अपना कर्तव्य समझ लिया। पश्चिम बंगाल के तात्कालिक राज्यपाल धर्मवीर अपनी भूमिका को लेकर इतना विवादास्पद बने कि उन्हें स्थानान्तरित करना पड़ा। राज्यपाल की भूमिका को लेकर आज भी केन्द्र और राज्यों के मध्य टकराव होते रहते हैं। 1993 के मीनी आम चुनावों के दौरान भी राजस्थान के राज्यपाल बलिराम भगत और मुख्यमंत्री भैरों सिंह शेखावत के बीच तनाव हुआ था।

2. **नौकरशाही** : नौकरशाही दूसरा प्रशासनिक विषय है जिस पर केन्द्र तथा राज्यों के बीच मतभेद दिखलायी देते हैं। भारत में अखिल भारतीय सेवाओं के माध्यम से संघ सरकार

राज्यों पर नियंत्रण रखती हैं। संविधान में संघ तथा राज्य सरकारों के लिए अलग–अलग सेवाओं की व्यवस्था की गयी है। परन्तु ब्रिटिश शासन से विरासत में हमने एकीकृत उच्च प्रशासनिक सेवाओं की पद्धति भी प्राप्त की है तदनुसार अखिल भारतीय सेवाओं के कर्मचारी संघ तथा राज्य दोनों जगह कार्य करते हैं। संविधान में यह व्यवस्था है कि भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा संघ और राज्यों में समान रुप से कार्य करेंगी। चतुर्थ आम चुनाव के बाद नौकरशाही के संबंध में दो प्रश्न सामने आये : पहला प्रश्न यह था कि क्या नौकरशाही गैर–कांग्रेसी राज्य सरकारों की नीतियों का क्रियान्वयन उसी उत्साह तथा प्रतिबद्धता से कर पायेगी, जिस उत्साह से वह अब तक कांग्रेस सरकार की नीतियों का क्रियान्वयन करती थी। यह प्रश्न वस्तुतः सरकारी कर्मचारियों की तटस्थता से जुड़ा हुआ है। कतिपय लोगों के मन में यह धारणा थी कि तीस वर्षो तक कांग्रेस दल के कार्यक्रमों और नीतियों को कार्यान्वित करने वाली नौकरशाही, तमिलनाडु में द्रमुक–अन्नाद्रमुक, केरल में साम्यवादी दल, पश्चिमी बंगाल में मार्क्सवादी–साम्यवादी दल और पंजाब में अकाली दल की नीतियों और कार्यक्रमों का सहजता से कैसे क्रियान्वयन कर पायेगी ? दूसरा सवाल नयी अखिल भारतीय सेवाओं के गठन से संबंधित था। कुछ गैर–कांग्रेसी राज्य सरकारों ने आरोप लगाया कि अखिल भारतीय सेवाओं के कर्मचारी केन्द्र के एजेंट होते हैं तथा वे राज्य की नीतियों का सही ढंग से क्रियान्वयन नहीं करते। कई राज्यों ने इन कारणों से अखिल भारतीय सेवाओं का विरोध किया कि अखिल भारतीय सेवाएँ राज्यों की स्वायत्तता को कम करती हैं। इन राज्यों का यह भी कहना रहा है कि अखिल भारतीय सेवाओं के कारण राज्य सेवाओं का विस्तार रुक जाता है तथा स्थानीय लोगों के उच्च सेवाओं में आने के अवसर कम हो जाते हैं। दरअसल, अखिल भारतीय सेवाएँ केन्द्र राज्य संबंधों में कटुता बढ़ाने का कारण इसलिए बन जाती हैं क्योंकि वे उनकी नियुक्ति, पदोन्नति और अनुशासनात्मक कार्रवाइयों के मामलों पर केन्द्रीय सरकार पर ही निर्भर करती हैं और राज्यों में उनके प्रति अपनत्व की भावना नहीं दिखलायी देती है।

3. **कानून-व्यवस्था के मसले पर राज्यों को केन्द्रीय निर्देश :** केन्द्र–राज्यों के प्रशासनिक संबंधों को केन्द्रीय रिजर्व पुलिस (सी.आर.पी.) को कतिपय राज्यों में तैनात किए जाने के सवाल ने विवादग्रस्त बनाया है। साधारणतया राज्य सरकारों के आग्रह पर ही केन्द्रीय सशस्त्र बलों को तैनात किया जाता है। लेकिन कुछ ऐसे भी अवसर आए जब राज्य सरकारों के विरोध किए जाने के बावजूद राष्ट्रीय सम्पत्ति की रक्षा के लिए केन्द्रीय रिजर्व पुलिस को राज्यों में तैनात किया गया। केन्द्रीय सरकार का कहना था कि राष्ट्रीय सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए स्थानीय पुलिस का पर्याप्त सहयोग नहीं मिल रहा है। लेकिन केरल, पश्चिमी बंगाल और तमिलनाडु की गैर–कांग्रेसी सरकारों ने केन्द्र के इस कदम का तीव्र विरोध किया था। 1967 से 1971 तक के कालखंड में केन्द्रीय रिजर्व बल का राज्यों में तैनाती किए जाने के सवाल पर केन्द्र तथा राज्यों के संबंधों में कटुता बढ़ी थी। केरल के तत्कालीन मुख्यमंत्री नम्बूद्रीपाद ने आरोप लगाया था कि राज्य में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस की तैनाती राज्य के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप है। केन्द्र सरकार ने इस स्थिति से निबटने के लिए 1976 में बयालिसवें संविधानिक संशोधन के द्वारा संविधान में अनुच्छेद् 257A को जोड़ा। इस अनुच्छेद् को जोड़ने के पीछे केन्द्र द्वारा यह तर्क दिया गया कि कतिपय राज्य सरकारें केन्द्रीय सम्पत्ति की रक्षा के लिए तैयार नहीं

हैं, इसलिए केन्द्र सरकार केन्द्रीय रिजर्व पुलिस की तैनाती किसी भी राज्य में कर सकती है। आपातकाल के बाद जब केन्द्र में जनता पार्टी सत्तारुढ़ हुई तो उसने इस अनुच्छेद् को हटा दिया लेकिन केन्द्रीय सम्पत्ति की रक्षा के लिए राज्यों में केन्द्रीय रिजर्व पुलिस को तैनात किए जाने का केन्द्र सरकार के अधिकार को कायम रखा गया। इस प्रकार, केन्द्र का यह संवैधानिक अधिकार है कि वह राष्ट्रीय सम्पत्ति और केन्द्रीय प्रतिष्ठानों की रक्षा के लिए केन्द्रीय रिजर्व पुलिस को राज्यों में तैनात करे। परन्तु गैर–कांग्रेसी राज्य सरकारें इस राज्य के आन्तरिक मामलों में केन्द्र का हस्तक्षेप कहकर केन्द्र–राज्य कटुता को जन्म देती है।

4. **आर्थिक नियोजन :** के. सन्थानम के अनुसार, नियोजन व्यवस्था ने नीति और वित्त संबंधी सभी मामलों में राज्यों की स्वायत्तता को एक छाया का रूप प्रदान कर दिया है। वस्तुतः नियोजन का संघवाद पर जो प्रभाव पड़ा है उससे केन्द्रीयकरण को प्रोत्साहन मिला है। भारत में सम्पूर्ण देश केन्द्र एवं राज्यों के लिए योजना निर्माण का कार्य योजना आयोग करता है। यह एक केन्द्रीय अभिकरण है जिसका निर्माण केन्द्रीय मंत्रिमंडल के एक प्रस्ताव के आधार पर हुआ है। इसमें प्रधानमंत्री, कुछ केन्द्रीय मंत्री तथा विशेषज्ञ होते हैं। इसमें राज्यों का कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। यह नीतियों की एकरुपता पर बल देता है। यह आयोग समूचे देश के लिए यह मानकर योजना बनाता है कि मोटे तौर से भी राज्यों की परिस्थितियाँ समान हैं। नियोजन का संबंध शासन के समस्त विषयों से है, चाहे वह विषय संघ सूची का हो अथवा राज्य सूची का। राज्य सूची के विषय पर भी योजना आयोग का प्रभुत्व स्थापित हो गया है। परन्तु 1967 और उसके बाद के राजनीतिक बदलाओं के कारण अब राज्य सरकारें योजना आयोग तथा केन्द्रीय सरकार के निर्णयों को उसी रुप में स्वीकार नहीं करतीं। अब अनेक राज्यों में केन्द्र की कांग्रेस सरकार से भिन्न दल की सरकारें होने के कारण केन्द्र की हर बात पर सहमति की प्रव त्ति समाप्त हो रही है। परिणामस्वरूप आर्थिक नियोजन विवादास्पद बनता जाएगा। इस बात का आभास राष्ट्रीय विकास परिषद् की पिछली कुछ बैठकों में मिलता है।

वित्तीय तथा योजना संबंधी मामलों में केन्द्र-राज्य तनाव

सैद्धान्तिक द ष्टि से केन्द्र तथा राज्यों के मध्य विवादों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। (1) संस्थागत विषय : इसके अन्तर्गत राज्यपाल का पद, नौकरशाही की भूमिका और संविधान के स्वरूप आदि मसले को लेकर उत्पन्न होने वाले विवाद। (2) कार्यात्मक विषय : कानून–व्यवस्था के अधिक्षेत्र के सवाल पर विवाद, अन्तर्राज्यीय विवाद; भाषा विवाद, राज्य सूची विषयों पर केन्द्रीय हस्तक्षेप, आदि मसले इसमें शामिल हैं। (3) वित्तीय योजना संबंधी मसले : संघीय शासन व्यवस्था में केन्द्र और राज्यों के मध्य वित्तीय और योजना संबंधी मसलों को लेकर मतभेद होना स्वाभाविक है। सन् 1967 के चतुर्थ आम चुनावों के बाद भारत में केन्द्र तथा राज्यों के बीच निम्नलिखित वित्तीय और योजना संबंधी विषयों को लेकर विवाद उभरे हैं :

(i) **वित्तीय संसाधनों के वितरण की प्रचलित व्यवस्था :** वर्तमान में वित्त आयोग और योजना आयोग द्वारा वित्तीय संसाधनों के वितरण की प्रचलित व्यवस्था से अधिकांश राज्य सन्तुष्ट नहीं हैं। प्रचलित व्यवस्था में करों से प्राप्त होने वाली आय का प्रधान भाग केन्द्रीय कोष में जाता है और अपने लोक कल्याण एवं जनविकास संबंधी दायित्वों की व द्धि के बावजूद

भी राज्यों की आय के स्त्रोत अत्यन्त अल्प रखे गए हैं। इसके परिणामस्वरुप राज्यों की योजनाओं की सफलता बहुत कुछ केन्द्रीय अनुदान पर ही निर्भर हो जाती है। सन् 1967 के बाद राज्यों की यह शिकायत रही कि केन्द्र की सरकार उन राज्यों पर न केवल नियंत्रण रखती है बल्कि भेदभाव भी बरतती है।

इसके अतिरिक्त, राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान एवं सहायता बहुत ही कम है और वे अपने बढ़ते हुए दायित्वों का निर्वाह करने में असमर्थ हैं, राज्यों की योजना की आकृति तय करने का कोई निश्चित मानदण्ड नहीं है और वे राज्य; जिनकी आय के स्त्रोत ज्यादा हैं, महत्वाकांक्षी योजनाओं का निर्माण कर लेते हैं जिससे राज्यों की आय में विषमता बढ़ती है। केन्द्रीय सरकार आये दिन अपने कर्मचारियों के मंहगाई भत्तों में व द्धि करती रहती है जिसका प्रतिकूल प्रभाव राज्यों के कोष पर पड़ता है और उन्हें भी अपने कर्मचारियों के भत्तों में व द्धि करनी पड़ जाती है। राज्यों को दिए जाने वाले कतिपय अनुदान केन्द्रीय सरकार की स्वविवेकी शक्ति के अन्तर्गत आते हैं और राज्यों को बराबर यह शिकायत रही है कि केन्द्रीय सरकार इन अनुदानों का वितरण करते समय पक्षपातपूर्ण आचरण करती है।

(ii) **राज्यों का केन्द्र पर वित्तीय निर्भरता :** राज्य सरकारें वित्तीय साधनों के लिए केन्द्र सरकार पर बहुत अधिक निर्भर हो गयी है। राज्यों द्वारा केन्द्र सरकार से 1961 में 20 अरब 14 करोड़ रुपया ऋण लिया गया था। 10 साल बाद 1971 में यह धनराशि 63 अरब 65 करोड़ रुपए हो गयी। 1978 में यह धनराशि बढ़कर 1खरब 11 अरब 69 करोड़ रुपए हो गयी। राज्यों की ऋणग्रस्तता अब इस स्थिति में पहुंच गयी है कि ऋण अदायगी तथा ब्याज की रकम मिलकर नयी केन्द्रीय सहायता से अधिक हो जाती है जिसका अर्थ यह है कि साधनों का वितरण विपरीत दिशा में हो जाता है। ऐसी स्थिति संतुलित केन्द्र–राज्य संबंधों के प्रतिकूल है।

(iii) **वित्त आयोग की भूमिका** : आलोचना का विषय यह भी है कि केन्द्र से हस्तान्तरित होने वाली राशि का केवल एक–तिहाई भाग ही वित्त आयोग की सिफारिशों पर होता है जबकि दो–तिहाई भाग वित्त आयोग के क्षेत्र से बाहर है। बटवारे की यह पद्धति मनमाने ढंग की है, चाहे वह बंटवारा योजना आयोग द्वारा ही क्यों न किया जाता हो? फिर केवल योजना आयोग ही ऐसे अनुदान नहीं देता। वित्त आयोग तथा योजना आयोग के क्षेत्र से बाहर के अनुदान प्रथम पंचवर्षीय योजना में दिये अनुदानों का केवल 7.3 प्रतिशत थे, किन्तु बाद की पंचवर्षीय योजनाओं में इनका महत्व बढ़ता गया तथा चौथी योजना में वह बढ़कर लगभग 41 प्रतिशत हो गया। ये अनुदान जिन्हें विवेकानुदान कहा जाता है योजना अनुदानों की अपेक्षा 73% बढ़ गए। सरकार की इच्छा पर छोड़े गए इन अनुदानों के विरुद्ध सबसे बड़ी आपत्ति यह है कि वित्तीय संघीय संबंधों में न्याय के सिद्धान्त का उल्लंघन करते हैं। सभी मुख्यमंत्रियों ने सातवें वित्त आयोग के समक्ष अनुच्छेद् 282 के अत्यधिक प्रयोग पर जिसके अन्तर्गत ये विवेकानुदान दिए जाते हैं, पुनः विचार करने को कहा।

(iv) **आर्थिक नियोजन के संबंध में विवाद** : योजना आयोग की भूमिका को लेकर भी केन्द्र और राज्यों के मध्य विवाद उभरे हैं। कुछ राजनीतिक अध्येताओं का मानना है कि योजना

आयोग ने संघवाद की प्रकृति और स्वरूप को निरस्त कर दिया है। वस्तुतः योजना आयोग सम्पूर्ण देश की योजना के लिए कुछ आधारभूत विषय निश्चित करता है। लेकिन राज्यों की समस्याएँ अलग–अलग होती हैं। अतः उनकी मूल समस्याओं का निराकरण नहीं हो पाता है। राज्य के पास अपना योजना बोर्ड नहीं है जो राज्य की योजनाओं को तकनीकी द ष्टि से निश्चित कर सके। हाल के कुछ वर्षो में केन्द्रीय सरकार और योजना का राज्य सरकारों द्वारा विरोध करने की प्रव त्ति उभर रही है। राज्य सरकारों द्वारा यह माँग की जा रही है कि योजना आयोग के कार्यो को सीमित किया जाना चाहिए तथा दिए जाने वाले अनुदान शर्त मुक्त हों।

(v) **अन्तर्राज्यीय व्यापार** : संविधान के द्वारा अन्तर्राज्यीय व्यापार का नियमन करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को प्राप्त है। केन्द्रीय सरकार राष्ट्रीय और स्थानीय हितों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए कभी–कभी राज्यों के अधिकारों में हस्तक्षेप करती है। इस हस्तक्षेप के कारण केन्द्र–राज्य सम्बन्ध कटु हो जाते हैं।

मई 1979 में मुख्यमंत्रियों के दो दिन के सम्मेलन में केन्द्र के वित्तीय साधनों के बटवारे के सवाल पर तीव्र विवाद पैदा हो गया था। पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु ने इस मामले को सर्वोच्च न्यायालय में ले जाने तक का निर्णय ले लिया था। पश्चिमी बंगाल के तत्कालीन वित्त मंत्री अशोक मित्र ने आरोप लगाया कि कच्ची तम्बाकू, चीनी तथा कपड़ों पर एकत्र करों के बंटवारे के सवाल पर अनेक स्मरण पत्र भेजने के बावजूद केन्द्र ने अपना वायदा पूरा नहीं किया। भारतीय संविधान लागू होने के बाद पहली बार ऐसा हुआ जबकि केन्द्र और राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों को लेकर विवाद इतना गहराया कि अदालत में जाने की नौबत आ गयी।

वित्तीय संबंधों का न्यायपूर्ण आबंटन : नये संतुलन की तलाश

केन्द्र राज्यों के वित्तीय संबंधों को मधुर और सहज बनाने के लिए प्रशासनिक सुधार आयोग तथा राजमन्नार समिति ने अपने प्रतिवेदनों में कतिपय सुझाव दिए थे। इसी उद्देश्य से पश्चिमी बंगाल की सरकार ने भी एक विस्त त मसविदा प्रस्तुत किया था। प्रशासनिक सुधार आयोग ने अनुच्छेद् 282 के अन्तर्गत राज्यों को दी जाने वाली वित्तीय सहायता का सहज रुप प्रस्तुत किया। इस संबंध में आयोग ने निम्नलिखित अनुशंसाएँ की थी :

(i) केन्द्र तथा राज्यों को दी जाने वाली सहायता राशि की मात्रा तय की जानी चाहिए। इसके बाद ऋण के रुप में दी जाने वाली धनराशि निश्चित कर लेनी चाहिए।

(ii) इस सहायता राशि को वितरित करते समय वह धनराशि अलग कर लेनी चाहिए जो राष्ट्रीय महत्व की परियोजनाओं पर खर्च की जाती है। अवशेष धनराशि को ही केन्द्रीय अनुदान के रुप में राज्यों को वितरित किया जाना चाहिए।

(iii) यदि राज्य सरकार ने किसी परियोजना को पूरा नहीं किया तथा केन्द्रीय अनुदान की अधिक धनराशि व्यय कर दी है तो बाद में केन्द्रीय अनुदान की मात्रा कम की जा सकती है।

राजमन्नार समिति का सुझाव था कि वित्त आयोग स्थायी रूप से स्थापित किया जाए तथा राज्यों के पक्षों में करों का पहले से अधिक वितरण हो ताकि उन्हें केन्द्र पर कम

से कम निर्भर रहना पड़े। राज्यों को वित्तीय क्षेत्र में स्वायत्तता प्रदान करना चाहिए। राज्य को निगम कर, निर्यात कर तथा आबकारी कर में से हिस्सा मिलना चाहिए।

राज्य स्वायत्तता की मांग का बिगुल बजाते हुए पश्चिमी बंगाल की वामपंथी सरकार ने अपने मसविदे में कहा है– (i) कुल राजस्व का 75% भाग राज्य सरकारों को व्यय हेतु प्रदान किया जाए। (ii) योजना आयोग की कार्यप्रणाली में फेर–बदल किया जाए। (iii) संविधान के अनुच्छेद् 280(क) को खत्म करना चाहिए। (iv) राज्यों को कर लगाने एवं वसूलने का पूर्ण अधिकार मिलना चाहिए। (v) संविधान के अनुच्छेद् 280 की धारा 2 और 7 को समाप्त करना चाहिए। (vi) केन्द्रीय मंत्रिमण्डल के वाणिज्य संबंधि संविधान के अनुच्छेद् 302 में निहित अधिकारों को खत्म करना चाहिए।

उपर्युक्त संवैधानिक प्रावधानों के देखने से ऐसा लगता है कि राज्यों को अधिक मात्रा में वित्तीय साधन तभी उपलब्ध हो सकते हैं जब अधिक साधन एकत्रित किए जाएं। वित्त विशेषज्ञों का मानना है कि गत 52 वर्षों में राज्य सरकारों के व्यय में तेजी से बढ़ोत्तरी हुई है लेकिन राज्यों ने इसकी पूर्ति के लिए समुचित विकसित साधन विकसित नहीं किए।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि वित्तीय अधिकारों के मामले में केन्द्र तथा राज्यों के बीच किसी प्रकार के मतभेद या टकराव की गुंजाइश नहीं है। वे एक दूसरे के पूरक बन सकते हैं। दिशानिर्देश देने, समन्वय स्थापित करने तथा साधनों के बंटवारे का काम केन्द्र के जिम्मे हो तथा आर्थिक कार्यक्रमों को लागू करने का दायित्व और अधिकार राज्यों के अधिकार क्षेत्र में हो तो विवाद का कोई कारण नहीं हो सकता।

अध्याय - 10
सार्वजनिक वित्त पर वित्त मंत्रालय का नियन्त्रण
(Finance Ministry's Control Over Public Finance)

वित्त मन्त्रालय कार्यपालिका का वह प्रभावशाली यन्त्र है जिसके द्वारा सरकारी व्यय पर नियन्त्रण रखा जाता है। इस विभाग का कार्य व्यय करने वाले विभिन्न विभागों (Spending Departments) पर नियन्त्रण रखना है और उनमें समन्वय तथा सामंजस्य बनाए रखना है। इसी विभाग की सहायता से सरकार के आय और व्यय के अनुमान तैयार किये जाते हैं और आर्थिक व वित्तीय नीतियों तथा कार्यक्रमों का आयोजन होता है।

वित्त मन्त्रालय का महत्व इस तथ्य से प्रकट होता है कि कोई मन्त्रालय जब कोई नई योजना चलाना चाहता है है तो इसे वित्त मन्त्रालय से राय लेनी पड़ती है और इसकी 'काम चलाऊ' (Tcntative) स्वीकृति मिल जाने के बाद ही उक्त विभाग अग्रसर हो सकता है। इस प्रकार की नीतियाँ और योजनायें जब संसद द्वारा स्वीकृत हो जाती हैं तो उसी विभाग पर बजट को कार्यान्वित करने और तदर्थ नियन्त्रण तथा जाँच पड़ताल करते रहने का उत्तरदायित्व होता है।

वित्त मंत्रालय के बजट संबंधी कार्य
(Budgetary Functions of Ministry of Finance)

इस प्रकार के नियंत्रण के अतिरिक्त वित्त मंत्रालय निम्नांकित बजट संबंधी कार्य सम्पादित करता है :

1. यह देखना कि प्रशासकीय विभाग वित्तीय वर्ष में आवश्यकता से अधिक रकम नहीं पा जाते हैं और जो कुछ वे खर्च नहीं कर सके उस बची रकम को वित्तीय वर्ष की समाप्ति के पूर्व लौटा देते हैं।
2. समय–समय पर विभागों से रिपोर्ट मांगकर यह देखते रहना कि व्यय की क्या प्रगति है और जहाँ कहीं आवश्यक प्रतीत हो उन्हें चेतावनी देते रहना।
3. केन्द्रीय राजस्व आयोग के द्वारा संग्रहित होने वाले राजस्व पर द ष्टि रखना। यह आयोग केन्द्र के कुछ मुख्य करों, यथा–कस्टम, आय कर आदि की उगाही करता है।
4. नियन्त्रक अफसरों की मर्यादा के बाहर पुनः विनियोजनों (Reappropriations) को स्वीकृति प्रदान करना।
5. सामान्यतः प्रशासनिक मन्त्रालयों को वित्तीय सलाह देना और मार्गदर्शन करना।

वित्त मंत्रालय का दायित्व केन्द्रीय सरकार का वित्त प्रबन्ध करने और सारे देश पर प्रभाव डालने वाले सभी वित्तीय मामलों को निपटाने का है। यह मन्त्रालय विकास और अन्य

आवश्यकताओं के लिए देश विदेशों से साधन जुटाने की व्यवस्था करता है और सरकार की कर लगाने तथा ऋण लेने की नीतियों का नियमन करता है। यह अन्य सम्बद्ध मन्त्रालयों के सहयोग से राज्यों और सरकारी क्षेत्रों के उपक्रमों के लिए किये जाने वाले अन्तरणों सहित भारत सरकार के सम्पूर्ण व्यय का नियन्त्रण करता है, चाहे वह देश में किया जाता हो या विदेश में। यह मंत्रालय बैंक कारोबार, बीमा मुद्रा, सिक्का–ढलाई और विदेशी मुद्रा से संबंधित मामले भी निपटाता है।

वित्त मंत्रालय विभाग का संगठन
(Organisation of Finance Ministry)

वित्त मन्त्रालय भारत सरकार के सभी विभागों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विभाग है। यह मन्त्रालय इस समय आर्थिक मामलों के विभाग, राजस्व विभाग (Revenue Department) तथा व्यय विभाग (Expenditure Department) में विभक्त है। प्रत्येक विभाग का अध्यक्ष एक सचिव है और विभागों में समन्वय स्थापित करने के लिए प्रधान सचिव (Principal Finance Secretary) होता था परन्तु अब इसे समाप्त कर दिया गया है।

इस मन्त्रालय का मन्त्री कैबिनेट स्तर का एक वरिष्ठ मंत्री होता है। उसकी सहायता के लिए राज्यमंत्री और उपमंत्री होते हैं। वित्त मंत्रालय का प्रादुर्भाव सन् 1810 में 'वित्त विभाग' के रुप में हुआ था। सन् 1947 में वित्त विभाग का नाम 'वित्त मन्त्रालय' किया गया।

केन्द्रीय वित्त–मन्त्रालय की रिपोर्ट वर्ष 1974-75 के अनुसार वित्त–मन्त्रालय के चार विभाग थे–राजस्व और बीमा विभाग, व्यय विभाग, आर्थिक कार्य विभाग और बैकिंग विभाग। लेकिन 1975-76 के प्रतिवेदन से प्रकट हुआ कि मन्त्रालय को पुनर्गठित कर तीन भागों में बाँट दिया गया है– (1) व्यय विभाग, (2) आर्थिक कार्य विभाग, तथा (3) राजस्व और बैंकिंग विभाग। मन्त्रालय की 1977-78 की रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान में भी इसके तीन विभाग हैं, किन्तु इतना और परिवर्तन कर दिया गया है कि भूतपूर्व राजस्व और बैंकिग विभाग की बैंकिंग प्रशाखा को जुलाई 1977 से आर्थिक कार्य विभाग में मिला दिया गया है।

वर्तमान में इस मन्त्रालय के तीन विभाग हैं :

1. आर्थिक कार्य विभाग; (Department of Economic Affairs)
2. व्यय विभाग; और (Department of Expenditure, and)
3. राजस्व विभाग। (Department of Revenue)

अब हम इन विभागों का वर्णन विस्तारपूर्वक करेंगे :

1. **आर्थिक कार्य विभाग (Department of Economic Affairs) :** यह विभाग अन्य बातों के साथ–साथ मौजूदा आर्थिक प्रव त्तियों का परिवीक्षण करता है और आन्तरिक तथा बाह्य प्रबन्ध को प्रभावित करने वाले सभी मामलों के सम्बन्ध में सरकार को सलाह देता है जिसमें वाणिज्यिक बैंकों तथा सर्वाधिक ऋणदाता संस्थाओं का कार्य–चालन, पूँजी निवेश का विनियमन, विदेशी सहायता आदि शामिल हैं। भारत संघ तथा उन राज्य सरकारों और विधान–मण्डल वाले संघ राज्य क्षेत्रों के जब वे राष्ट्रपति शासन के अन्तर्गत हों, बजट तैयार करने और उन्हें संसद में पेश करने की जिम्मेदारी भी इस विभाग की है।
   आर्थिक कार्य विभाग के सात प्रमुख प्रभाग निम्नलिखित हैं :

(i) **आर्थिक प्रभाग** (Economic Division)

(ii) **बीमा प्रभाग** (Insurance Division)

(iii) **बजट प्रभाग** (Budget Division)

(iv) **बैंकिग प्रभाग** (Bank Division)

(v) **निवेश प्रभाग** (Investment Division)

(vi) **मुद्रा और सिक्का प्रभाग** (Currency and Coinage Division)

(vii) **विदेशी वित्त प्रभाग** (External Finance Division); **और**

(viii) **प्रशासन प्रभाग** (Administration Division)

(i) **आर्थिक प्रभाग (Economic Division) :** आर्थिक कार्य विभाग का आर्थिक प्रभाग, वित्त मन्त्रालय का एक प्रमुख स्कन्ध है जो आर्थिक नीति संबंधी मामलों में सरकार की सहायता के लिए जिम्मेदार है। प्राथमिक रुप में इसकी भूमिका सलाहकार की है।

इस प्रभाग का कार्य देश और विदेशों की वार्षिक प्रव त्तियों और घटनाओं का और इन प्रव त्तियों और घटनाओं से आर्थिक नीतियों पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन और विश्लेषण करना है ताकि मंत्रालय को इनकी जानकारी और आर्थिक सलाह दी जा सके। यह प्रभाग सरकार की सम्पूर्ण मूल्य नीति से प्रत्यक्ष रुप से संबंधित है। इस प्रभाग को पांच मुख्य एककों में संगठित किया गया है – (i) मूल्य, उत्पादन और वेतन नीति, (ii) सरकारी वित्त, मुद्रा बैंकिग और ऋण नीति, (iii) राजकोषीय नीति, (iv) भुगतान–संतुलन व विदेशी व्यापार और (v) आर्थिक सूचना। यह प्रभाग भारतीय रिजर्व बैंक, योजना आयोग, केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन और अन्य मन्त्रालयों के आर्थिक और सांख्यिकी विभागों के निकट सहयोग से काम करता है। आर्थिक समीक्षा (दी इकानामिक सर्वे) नामक दस्तावेज इसी प्रभाग द्वारा तैयार की जाती है। यह प्रभाग सरकारी उपयोग के लिए वित्त, विदेशी व्यापार और भुगतान संतुलन के संबंध में सांख्यिकी संकलन और सामान्य आर्थिक निर्देश भी तैयार करता है। यह संभाग कराधान, सरकारी वित्त, मुद्रा और बैंकिग मूल्य और वेतन नीति, विदेशी व्यापार, भुगतान–संतुलन, विदेशी सहायता, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और वित्त संबंधी प्रश्नों और समस्याओं के सम्बन्ध में समय-समय पर तकनीकी विश्लेषण करके विभाग के अन्य प्रभागों को सहायता प्रदान करता है। अर्थ प्रभाग मन्त्रिमण्डल के लिए आर्थिक स्थिति का तिमाही प्रतिवेदन भी तैयार करता है। यह प्रतिवेदन हमारे विदेश स्थित दूतावासों को भी भेजा जाता है। यह प्रभाग सरकार की सम्पूर्ण मूल्य–नीति के लिए प्रत्यक्ष रुप से जिम्मेदार है और अर्थ–व्यवस्था में मूल्य–व द्धिकारी दबाओं को रोकने, प्राथमिकता वाली आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने और साधनों के आवश्यक निर्धारण में प्रशासनिक मन्त्रालयों के प्रयत्नों में समन्वय स्थापित करने के काम में उत्तरोत्तर अधिक भाग ले रहा है। इस प्रभाग का कई तकनीकी समितियों और कार्यकारी दलों, जैसे आयोजना के लिए वित्तीय साधन विषयक कार्यकारी दलों के कार्य से भी निकट संबंध है। यह प्रभाग संयुक्त राष्ट्र महासभा, संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक परिषद्, अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास बैंक, भारत–सहायता संघ, एशिया और प्रशान्त महासागरीय

प्रदेशों के लिए आर्थिक तथा सामाजिक परिषद्, एशियाई विकास बैंक, व्यापार और टैरिफ संबंधी सामान्य करार, संयुक्त राष्ट्र संघीय व्यापार और विकास सम्मेलन, राष्ट्र–मण्डलीय वित्तमन्त्रीय सम्मेलन, राष्ट्र–मण्डल के राष्ट्राध्यक्षों के सम्मेलन, गुट–निरपेक्ष राष्ट्रों के सम्मेलन आदि जैसी विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं में भाग लेने वाले भारतीय प्रतिनिधि मण्डलों के उपयोग के लिए आर्थिक विषयों पर संक्षिप्त विवरण और ज्ञापन तैयार करता है। यह प्रभाग अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष के साथ किए जाने वाले विचार–विमर्श के सिलसिले में आँकड़े एकत्र करने, उनका संकलन, समन्वय और विश्लेषण करके सामग्री प्रस्तुत करने के लिए मुख्य रुप से जिम्मेदार है और ऐसे विचार–विमर्श के लिए सूचना–सामग्री और आधार–सामग्री भी तैयार करता है।

(ii) **बीमा प्रभाग (Insurance Division) :** बीमा प्रभाग डाक–तार विभाग, जो डाकघर जीवन बीमा निधि के नाम से एक योजना चला रहा है, सहित विभिन्न मन्त्रालयों तथा विभागों को बीमांकिक परामर्श प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त बीमा प्रभाग, जीवन तथा साधारण दोनों किस्म के बीमा उद्योग से सम्बन्धित सभी मामलों का पर्यवेक्षण करता है। इस प्रभाग पर राष्ट्रीयकृत बीमा उपक्रमों अर्थात् भारतीय जीवन बीमा निगम तथा भारतीय साधारण बीमा निगम एवं उनकी कम्पनियों के कार्य–चालन के प्रशासन सहित नीति तैयार करने और बीमा संबंधी कानूनों के प्रशासन का भी दायित्व है।

बीमा–प्रभाग निम्नलिखित अधिनियमों का प्रशासन देखता है–बीमा अधिनियम, 1938, जीवन बीमा निगम अधिनियम 1956, आपात जोखिम (माल) बीमा अधिनियम, 1962, आपात् जोखिम (कारखाना) बीमा अधिनियम 1962, समुद्री बीमा अधिनियम 1963, साधारण बीमा (आपात व्यवस्था अधिनियम 1971, आपात जोखिम (माल) बीमा अधिनियम 1971, आपात जोखिम (उपक्रम) अधिनियम, 1971, साधारण बीमा कारोबार (राष्ट्रीयकरण) अधिनियम 1972 और युद्ध जोखिम (समुद्री जहाज) बीमा योजना। इसके अलावा इस पक्ष पर विस्थापित व्यक्ति ऋण समायोजन अधिनियम, 1951 के अन्तर्गत स्थापित बीमा दावा बोर्ड के प्रशासन का दायित्व भी है। बीमा नियंत्रक शिमला का कार्यालय और आपात् जोखिम बीमा योजना निदेशालय, बीमा पक्ष के अधीन क्रमशः सम्बद्ध और अधीनस्थ कार्यालय हैं। जीवन बीमा और विविध बीमा, दोनों का राष्ट्रीयकरण होने से बीमा नियन्त्रक कर्त्तव्यों मे कमी आई है।

(iii) **बजट प्रभाग (Budget Division) :** इस प्रकार का काम रेलवे–बजट से अलग केन्द्रीय सरकार का बजट, अनुदानों की अनुपूरक माँगे और अतिरिक्त अनुदानों की माँगें तैयार कर उन्हें प्रस्तुत करना है। राष्ट्रपति शासन के अन्तर्गत आने वाले राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों के बजटों और उनकी अनुपूरक माँगों को तैयार करने का काम भी इसी प्रभाग में होता है। इसके अलावा यह प्रभाग सरकारी ऋण, केन्द्र और राज्यों के बाजार–उधार और राष्ट्रीय बचत संगठन से सम्बन्धित सभी मामलों की देख–रेख करता है। केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार और राज्य सरकारों की अर्थोपाय सम्बन्धी स्थिति की निगरानी और भारत की आकस्मिक निधि का प्रबन्ध बजट प्रभाग की जिम्मेदारी है। भारत के नियन्त्रक महालेखा परीक्षक के कर्त्तव्यों और शक्तियों व लेखापरीक्षक और लेखाओं के बारे में सभी प्रश्नों, वित्त–आयोग से सम्बन्धित सभी

विषयों, केन्द्रीय सरकार द्वारा दिए जाने ऋण के ब्याज की दरें निर्धारित करने सम्बन्धी प्रश्नों और समय–समय पर उनकी समीक्षा करने, केन्द्रीय राजकोष के नियमों के प्रशासन और नियन्त्रण महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदनों को संसद् के दोनों सदनों में पेश करने का काम भी यही प्रभाग करता है।

(iv) **बैंकिग प्रभाग (Banking Division) :** आर्थिक कार्य विभाग का बैंकिग प्रभाग बैंकिग प्रणाली से सम्बन्धित सभी मामलों के लिए उत्तरदायी है और सरकारी क्षेत्रों के बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और वित्तीय संस्थाओं का प्रशासनिक प्रभारी भी है। सरकारी क्षेत्र के कुल 28 बैंकों, अर्थात् भारतीय स्टेट बैंक, इसके 7 अनुषंगी बैंक और 20 राष्ट्रीयकृत बैंक है। देश में 196 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक जो 380 जिलों में फैले हुए हैं। बैंकिंग प्रभाग के नियंत्रण के अन्तर्गत आने वाली विभिन्न वित्तीय संस्थाओं के नाम इस प्रकार हैं :

1. भारतीय औद्योगिक विकास बैंक
2. भारतीय औद्योगिक वित्त निगम
3. भारतीय औद्योगिक वित्त तथा निवेश निगम
4. भारतीय औद्योगिक पुननिर्माण बैंक जिसे औद्योगिक एककों की पुर्नस्थापना के लिए गठित किया गया है।
5. भारतीय निर्यात–आयात बैंक
6. कृषि और ग्रामीण विकास योजनाओं को पुनर्वित सहायता प्रदान करने के लिए स्थापित किया गया राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक।
7. आवास वित्त पोषण के लिए राष्ट्रीय आवास बैंक
8. पर्यटन के निधिकरण और अन्य सम्बन्धित मामलों के लिए भारतीय पर्यटन वित्त निगम
9. लघु औद्योगिक क्षेत्र के विकास के लिए लघु उद्योग विकास बैंक।

आर्थिक कार्य विभाग का बैंकिग प्रभाग, जीवन बीमा निगम और यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया को छोड़कर वाणिज्यिक बैंकों तथा दीर्घकालीन वित्तीय संस्थाओं के कार्य–चालन पर प्रभाव डालने वाली सरकारी नीतियों के निर्माण और उनके कार्यान्वयन से सम्बन्धित है। यह प्रभाग भारतीय रिजर्व बैंक से सम्बन्धित कार्य करता है तथा वाणिज्यिक बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं का परिचालन शासित करने वाली संविधियों, नियमों और विनियमों आदि के कार्यान्वयन प्रशासन का पर्यवेक्षण करता है।

बैंकिग प्रभाग के निम्नलिखित कार्यकारी उप–प्रभाग हैं– (क) बैंकिग परिचालन तथा प्रशासन प्रभाग, (ख) औद्योगिक वित्त प्रभाग, (ग) विकास तथा समन्वय प्रभाग तथा (घ) औद्योगिक सम्बन्ध तथा सतर्कता प्रभाग।

(v) **निवेश प्रभाग (Investment Division) :** निवेश प्रभाग निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित कार्य करता है – (1) पूँजी निर्गम नियन्त्रण, (2) विदेशी निवेश नीति, (3) विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, (4) संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वाधान में बहुराष्ट्रीय निगमों की आचार संहिता, (5) भारतीय निवेश केन्द्र, (6) अनिवासी भारतीयों को भारत में निवेश के लिए सुविधाएँ, (7) शेयर बाजार, और (8) भारतीय यूनिट ट्रस्ट।

(vi) **मुद्रा और सिक्का प्रभाग** (**Currency and Coinage Division**) : यह प्रभाग मुद्रा और सिक्का निर्माण, जिसमें टकसालों और उनके धातु परीक्षण कार्यालयों का प्रशासन शामिल हैं, सिक्योरिटी पेपर मिल, इण्डिया सिक्योरिटी प्रेस, बैंक नोट, प्रेस और सिल्वर रिफाइनरी से सम्बन्धित सभी विषयों की देख–रेख करता है। यह सिक्यूरिटीज कंट्रेक्ट्रस (रेग्यूलेशन) एक्ट, 1956 का प्रबन्ध करने तथा देश में काम कर रहे शेयर बाजारों पर नियन्त्रण रखने का काम भी करता है। बम्बई, कलकत्ता और हैदराबाद की टकसालें इसी प्रभाग से सम्बन्धित हैं।

(vii) **विदेशी वित्त प्रभाग** (**External Finance Division**) **:** विदेशी वित्त प्रभाग भारत को विदेशों से मिलने वाली सहायता, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय विकास संघ, एशियाई विकास बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय कृषि विकास निधि, संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम कम तथा राष्ट्रमण्डल तकनीकी सहयोग निधि के साथ भारत के सम्बन्धों, भारत द्वारा दूसरे देशों को दी जाने वाली सहायता, विदेशी मुद्रा नियन्त्रण और विदेशी मुद्रा बजट तैयार करने से सम्बन्धित कार्य करता है। विदेशों के साथ व्यापार और अदायगियों के करारों के सभी प्रस्तावों और विदेशी व्यापार से सम्बन्धित नीति के सामान्य पहलुओं की जाँच का काम भी इसी प्रभाग के जिम्मे है।

(viii) **प्रशासन प्रभाग** (**Administration Division**) **:** प्रशासन प्रभाग, आर्थिक कार्य सम्बन्धी विभाग तथा उससे सम्बद्ध एवं अधीनस्थ कार्यालयों के प्रशासनिक मामलों और सतर्कता एवं संगठन तथा कार्य–प्रणाली सम्बन्धी विषयों का कार्य करता है। इस विभाग में हाल ही में स्थापित आन्तरिक कार्य अध्ययन व संगठन और कार्य–प्रणाली एकक अपने सामान्य संगठन और कार्यप्रणाली संबंधी कार्यो के अलावा मुख्य समस्याओं का पता लगाने में सहायता करते हैं और कार्य–भार का अनुमान लगाने, संगठन और कार्य–प्रणाली तथा अन्य संबंधित अध्ययनों का काम करते हैं। भारत सरकार के मन्त्रालयों संबंधी सचिवालय के विभिन्न निर्देशों के कार्यान्वयन का काम भी इसी एकक को सौंपा गया है। प्रशासन प्रभाग आर्थिक कार्य विभाग के मुख्य सचिवालय और इस विभाग से सम्बद्ध तथा अधीनस्थ संगठनों में संशोधित राजभाषा अधिनियम 1963 के अन्तर्गत ग ह मंत्रालय द्वारा समय–समय पर जारी किए गये निर्देशों के कार्यान्वयन की प्रगति की देखरेख के लिए जिम्मेदार है।

(2) **व्यय विभाग** (**Department of Expenditure**) **:** वित्त मंत्रालय का व्यय विभाग निम्नलिखित विषयों का प्रशासन संचालित करता है : (1) वित्तीय नियंत्रण एवं प्रतिबन्ध और वित्तीय शक्तियों का प्रत्यायोजन; (2) भारत सरकार के सभी मंत्रालयों एवं कार्यालयों से संबंधित वित्तीय अनुमतियाँ, विशेषतः उप विभागों में जिन्हें कोई सामान्य अथवा विशेष आदेश प्राप्त नहीं हैं; (3) मितव्ययिता लाने के लिए सरकारी संस्थानों की भर्ती पर पुनर्विचार; (4) लागत लेखा संबंधी प्रश्नों पर मंत्रालयों तथा सरकारी उद्यमों को परामर्श देना; (5) भारतीय लेखा परीक्षण विभाग; (6) प्रतिरक्षा लेखा विभाग। मोटे रूप से यह कहा जा सकता है कि व्यय विभाग भारत सरकार के समस्त व्यय का नियंत्रण करता है और अपव्यय को रोकने के लिए उत्तरदायी है।

व्यय विभाग में निम्नलिखित प्रभाग हैं :

(i) योजना वित्त प्रभाग I (Plan Finance Division I);

(ii) **योजना वित्त प्रभाग** II (Plan Finance Division II);

(iii) **वित्त आयोग प्रभाग** (Finance Commission Division);

(iv) **संस्थापन प्रभाग** (Establishment Division);

(v) **लागत लेखा शाखा** (Cost Accounts Branch);

(vi) **महालेखा नियंत्रक का संगठन** (Controller General of Accounts);

(vii) **कर्मचारी निरीक्षण एकक** (Staff Inspection Unit);

(viii) **रक्षा प्रभाग** (Department of Defence) **और**

(ix) **सरकारी उद्यम कार्यालय** (Govt. Industry Office)।

(i) **योजना वित्त प्रभाग I (Plan Finance Division I) :** योजना वित्त प्रभाग I केन्द्र और राज्यों की योजनाओं के लिए कुल बजट संबंधी और अतिरिक्त बजटीय संसाधनों का अनुमान लगाने के लिए वित्त मंत्रालय में एक केन्द्र बिन्दु है। यह राज्य संबंधित मामलों का निपटारा करता है।

(ii) योजना वित्त प्रभाग II (Plan Finance Division II) : इस प्रभाग द्वारा केन्द्रीय योजना से संबंधित सभी मामलों को निपटाया जाता है। यह सार्वजनिक नियोजन मण्डल (Public Investment Board) के रुप में भी कार्य करता है।

(iii) वित्त आयोग प्रभाग (Finance Commission Division) : इस प्रभाग को आजकल व्यय विभाग में रखा गया है। इस प्रभाग को ये कार्य सौंपे गये हैं– (क) वित्त आयोग की सिफारिशों के कार्यान्वयन पर नजर रखना; (ख) राज्यों के वित्त के सम्बन्ध में अध्ययन करना और ऐसे शोध पत्र और आँकड़े प्रकाशित करना, जिनका इससे सम्बन्ध है। इस प्रभाग ने सम्बन्धित केन्द्रीय मंत्रालयों/विभागों और राज्यों के साथ नवें वित्त आयोग की सिफारिशों पर अनुवर्ती कार्यवाही की। यह प्रभाग वर्तमान में दसवें वित्त आयोग के उपयोग के लिए राज्यों के वित्तों से सम्बन्धित आँकड़ों/सूचना एकत्र करने तथा उसका विश्लेषण करने में व्यस्त है।

(iv) संस्थापन विभाग (Establishment Division) : संस्थापन प्रभाग मुख्यतः विभिन्न वित्तीय नियमों और विनियमों को प्रशासित करने के लिए जिम्मेदार है जिनमें केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों की सेवा–शर्तो से सम्बन्धित नियम और विनियम भी शामिल हैं। वित्त मन्त्रालय के वार्षिक प्रतिवेदन 1991-92 के अनुसार सरकार के सेवा सम्बन्धी नियमों का सरलीकरण करने तथा कार्य–विधियों को सुप्रवाहित करने के लिए कुछ उपाय किए गये हैं और अधिक उपायों पर विचार किया जा रहा है। सेवारत/सेवानिव त्त होने वाले सरकारी कर्मचारियों, पेंशनभोगियों और परिवार पेन्शनभोगियों को और आगे लाभों की मंजूरी देने के लिए भी विभिन्न उपाय किए जा रहे हैं।

संस्थापन प्रभाग में कार्यान्वयन कक्ष शामिल है। तीसरे वेतन आयोग की सिफारिशें पर कार्यवाही करने के लिए कार्यान्वयन कक्ष की स्थापना अप्रैल, 1973 में की गयी थी। यह कक्ष थोड़े से कर्मचारियों से ही कार्य–संचालन कर रहा है।

(v) लागत लेखा शाखा (Cost Accounts Branch) : इस शाखा का प्रशासनिक नियंत्रण

वित्त–मंत्रालय के व्यय विभाग द्वारा किया जाता है। इसका प्रधान मुख्य लागत लेखा अधिकारी होता है जो भारत सरकार के संयुक्त सचिव की हैसियत का है। मुख्य लागत लेखा अधिकारी केन्द्रीय लागत लेखा पूल का अधिकारी होता है। उसकी सहायता के लिए कुछ अन्य अधिकारी होते हैं।

वित्त मन्त्रालय की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार लागत लेखा शाखा के मुख्य कार्य ये हैं–

(क) मूल्य निर्धारण करने, सामान और मजदूरी के मूल्य में होने वाली व द्धि की मात्रा के सम्बन्ध में निर्णय करने, निर्यात के सम्बन्ध में नकद सहायता की मात्रा का निर्णय करने, अपनाई जाने वाली लागत लेखा प्रणालियों के सम्बन्ध में सलाह देने आदि के उद्देश्य से विभिन्न मंत्रालयों से प्राप्त हुए सन्दर्भो के आधार पर सरकारी और गैर–सरकारी दोनों क्षेत्रों के विभिन्न एककों में लागत सम्बन्धी अध्ययन करना,

(ख) सरकार द्वारा नियुक्त की गई विशेषज्ञ समितियों में जब भी आवश्यक हो, सदस्य के रूप में कार्य करना और

(ग) सलाह के लिए भेजे गए लागत और लेखा सम्बन्धी मामलों पर भारत सरकार के विभिन्न मन्त्रालयों विभागों तथा सरकारी उपक्रमों को सलाह देना।

लागत लेखा ने लगभग 190 लागत रिपोर्ट जारी की जिसमें गैर–सरकारी क्षेत्रों के कई लागत सम्बन्धी अध्ययन शामिल हैं, जिनका प्रयोजन मूल्य निर्धारण, निर्यात सम्बन्धी दावों का विनियमन, उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क में कमी करने की आवश्यकता पर विचार करने आदि शामिल हैं। इस शाखा के अधिकारी महत्वपूर्ण समितियों में काम करते रहे हैं। वर्ष 1977 से मुख्य लागत लेखा अधिकारी को, प्रबन्ध सूचना और लेखा कार्य प्रणाली को स्थापित करने के लिए विभिन्न मंत्रालयों का मार्ग दर्शन करने और परामर्श देने संबंधी उच्च स्तरीय सलाहकार समिति का सदस्य नामित किया गया है। इस शाखा ने भारत सरकार के विभिन्न मंत्रालयों/विभागों को उनके द्वारा समय–समय पर भेजे गये विभिन्न लागत सम्बन्धी और वित्तीय मामलों पर सलाह भी दी है।

(vi) **महालेखा नियन्त्रण संगठन (Controller General of Accounts) :** महालेखा नियन्त्रक के संगठन की स्थापना लेखा परीक्षा से लेखाओं के अलग होने और केन्द्रीय सरकार के लेखाओं का विभागीकरण किए जाने के बाद 1967 में की गई थी। मंत्रालय में यह शीर्ष नीति निर्मात्री संस्था है और संघीय तथा राज्य सरकारों के लेखाओं का स्वरूप निर्धारण करने के लिए भारतीय संविधान के अनुच्छेद् 150 अ के अन्तर्गत राष्ट्रपति की शक्तियों का पालन अब इस संगठन के माध्यम से किया जाता है।

(vii) **कर्मचारी निरीक्षण एकक (Staff Inspection Unit) :** कर्मचारी निरीक्षण एकक का गठन पूर्णतः अथवा अधिकाँश रूप से सरकारी अनुदानों पर आश्रित सरकारी कार्यालयों और संस्थाओं में प्रशासनिक कार्यकुशलता के अनुरुप कर्मचारियों की संख्या में किफायत करने और कार्य निष्पादन करने और कार्य निष्पादन सम्बन्धी मानक एवं कार्य के प्रतिमान तैयार करने के उद्देश्य से 1964 में किया गया।

1964-77 के वर्षो के दौरान इस एकक ने कर्मचारियों सम्बन्धी 651 समीक्षाएँ की जिनके अन्तर्गत 1,09,805 पद आ जाते हैं। इन समीक्षाओं के परिणामस्वरूप लगभग 13.25 करोड़ रुपए की प्रत्यक्ष किफायत (अर्थात् वर्तमान पदों को कम करके) तथा 12.07 करोड़ रुपए की निरोधक किफायत (अर्थात् नये पदों की माँग को अस्वीकृत करके) हुई। 1971 के दौरान कर्मचारी निरीक्षण एकक ने 28 समीक्षाएँ पूरी कीं जिनमें से 25 समीक्षाएँ कर्मचारियों के अध्ययन 6 तथा 3 प्रतिमानों से संबंधित अध्ययन थे।

कार्यालयों के लिए कर्मचारियों का निर्धारण करने के लिए प्रतिमान तैयार करने तथा आन्तरिक कार्य अध्ययन एककों की रिपोर्टो का परीक्षण–पड़ताल करने के अलावा कर्मचारी निरीक्षण एकक वित्तीय परामर्श सम्बन्धी कार्य के सम्बन्ध में अध्ययन करके वित्तीय सलाहकारों की सहायता करता है। कर्मचारी निर्धारण करने संबंधी ज्ञान का तथा अनुभव रखने वाला एक केन्द्रीय अभिकरण होने के नाते, कर्मचारी निरीक्षण एकक एक यह भी कार्य करता है कि वह अन्य मन्त्रालयों/विभागों के कार्यालयों को संगठित करने तथा उनके लिए कर्मचारी निर्धारण करने के सम्बन्ध में सहायता प्रदान करे।

(viii) **रक्षा प्रभाग (Department of Defence) :** इस प्रभाग का अध्यक्ष वित्त सलाहकार (रक्षा सेवाएँ) है जिसका पद अपर सचिव के स्तर का है। वित्त सलाहकार रक्षा व्यय के क्षेत्र में वित्त मन्त्रालय का मुख्य प्रतिनिधि होता है। इस प्रभाग का गठन इस प्रकार किया गया है कि जिससे रक्षा व्यय पर समुचित वित्तीय नियन्त्रण रखा जा सके और साथ ही रक्षा प्राधिकारियों को उन अधिकारियों से, जो रक्षा मंत्रालय और तीनों सेनाओं की संगठन सम्बन्धी समस्याओं और आवश्यकताओं से भली–भाँति परिचित हों, नीति–निर्माण योजना और उनके कार्यान्वयन सम्बन्धी कार्यो के साथ रक्षा सम्बन्धी गतिविधियों के सम्पूर्ण क्षेत्र के बारे में वित्तीय सलाह मिल सके। 1977-78 की रिपोर्ट के अनुसार वित्तीय सलाहकार (रक्षा सेवाएँ) की सहायता के लिए 3 अपर वित्तीय सलाहकार (संयुक्त सचिव) और बहुत से उप–वित्तीय सलाहकार हैं जिनमें से प्रत्येक को रक्षा संगठन की एक–एक महत्वपूर्ण शाखा से सम्बद्ध किया गया है। इसकी रिपोर्ट के अनुसार रक्षा प्रभाग में डेस्क अधिकारी योजना आरम्भ की गयी और शुरू–शुरू में 14 डेस्क बनाए गए हैं जिनमें 21 डेस्क कार्यकर्त्ता हैं।

(ix) **सरकारी उद्यम कार्यालय (Government Industry Office) :** यह कार्यालय अप्रैल, 1965 में सरकारी उद्यमों के लिए सेवा समन्वय और मूल्यांकन अभिकरण के रुप में स्थापित किया गया। उसका उद्देश्य परियोजनाओं के तकनीकी, आर्थिक और वित्तीय पहलुओं तथा सरकारी क्षेत्र के उद्यमों के संचालन में समन्वय और मूल्यांकन से सम्बन्धित व्यवस्थाएँ करना और उनको सुद ढ़ बनाना है। यह कार्यालय सरकारी उद्यमों के प्रबन्ध से सम्बन्धित प्रशासनिक मन्त्रालयों के साथ निकट सम्पर्क रखते हुए काम करता है। उद्यम–कार्यालय इन उद्यमों की समस्याओं का निरन्तर अध्ययन करता है तथा उनके कार्य संचालन में सुधार के उपाय ढूंढने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करता है।

1977-78 की रिपोर्ट के अनुसार सरकारी उद्यम कार्यालय के छः प्रमुख प्रभाग हैं अर्थात् प्रशासन एवं समन्वय, उत्पादन, निर्माण, वित्त, प्रबन्ध, सूचना एवं अनुसन्धान। यद्यपि सरकारी उद्यम कार्यालय के इन छः प्रभागों को अलग–अलग कार्य सौंपे गए हैं, फिर भी वे आपस में पूरी तरह मिल कर कार्य करते हैं। सरकारी उद्यम कार्यालय का सर्व प्रमुख अधिकारी अपर सचिव एवं महानिदेशक हैं।

सरकारी उद्यम कार्यालय, सरकारी उद्यमों में उत्पादन बढ़ाने तथा उनकी प्रबन्धकीय समस्याओं पर विचार–विमर्श करने के लिए सम्मेलन और संगोष्ठियाँ आयोजित करने में सरकारी उद्यम विषयक स्थायी समिति (स्कोप) और अनेक प्रबन्धकीय संस्थाओं तथा प्रशिक्षण अभिकरणों को सहयोग प्रदान करता रहता है।

(3) राजस्व विभाग (Department of Revenue) : राजस्व विभाग, संघीय प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष करों से सम्बन्धित राजस्व मामलों के सम्बन्ध में दो सांविधिक बोर्डो अर्थात् प्रत्यक्ष कर बोर्ड तथा केन्द्रीय उत्पाद शुल्क तथा सीमा शुल्क बोर्ड के माध्यम से नियन्त्रण रखता है। इस विभाग को केन्द्रीय विक्रय–कर, स्टाम्प शुल्क, स्वर्ण नियन्त्रण, विदेशी मुद्रा और अन्य संगत वित्तीय अधिनियमों से सम्बन्धित कानून में दिए गये नियन्त्रणों तथा विनियामक उपायों के प्रशासन तथा प्रवर्तन का काम भी सौंपा गया है।

राजस्व विभाग के मुख्यालय प्रशासन को तीन भागों में बांटा गया है :

(i) केन्द्रीय प्रभाग (Central Division);

(ii) प्रत्यक्ष कर प्रभाग (Direct Taxes Division); तथा

(iii) अप्रत्यक्ष कर प्रभाग (Indirect Taxes Division)।

(i) केन्द्रीय प्रभाग (Central Division) : राजस्व विभाग के इस प्रभाग का सम्बन्ध आयोगों, अपीलीय ट्रिब्यूनल, अप्रत्यक्ष कराधान जाँच समिति और प्रवर्तन निदेशालय (Directorate of Enforcement) से होता है।

(ii) प्रत्यक्ष कर प्रभाग (Direct Taxes Division) : केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड केन्द्र सरकार द्वारा लगाए जाने वाले प्रत्यक्ष करों के प्रशासन के लिए उत्तरदायी है। केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड, जो केन्द्रीय राजस्व बोर्ड, अधिनियम, 1963 के अन्तर्गत 1 जनवरी, 1964 को गठित किया गया था, अपने सम्बद्ध और अधीनस्थ कार्यालयों के कार्य पर नियन्त्रण रखता है और उनकी देखभाल करता है। केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड एक शीर्षस्थ संगठन है जो आय–कर विभाग पर नियन्त्रण रखता है। यह कर प्रशासन में सम्बन्धित सभी नीतियों को तैयार करने के लिए उत्तरदायी है तथा उपर्युक्त कानूनों के तहत विभिन्न संवैधानिक कार्यो को भी निष्पादित करता है। बोर्ड के अधिकारी राजस्व विभाग, वित्त मन्त्रालय में अपनी पदेन हैसियत से भी कार्य करते हैं। बोर्ड में एक चेयरमैन और 6 सदस्य होते हैं। प्रत्यक्ष कर कानूनों के प्रशासन से सम्बन्धित कार्यो का निष्पादन करने के लिए बोर्ड ने अपने नियन्त्रणाधीन सम्बद्ध और अधीनस्थ कार्यालयों को सारे देश में फैला दिया है। बोर्ड के सम्बद्ध कार्यालय निम्नलिखित हैं :

(i) आय–कर महानिदेशालय (प्रशासन), दिल्ली।

(ii) आय–कर महानिदेशालय (प्रबन्ध पद्धति), दिल्ली।

(iii) आय–कर महानिदेशालय (प्रशिक्षण), नागपुर।

(iv) आय–कर महानिदेशालय (कर–छूट), कलकत्ता।

केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड के अन्तर्गत आने वाले अधिकारियों के कार्यो का वर्णन इस प्रकार है :

(क) निरीक्षण निदेशालय आय-कर और अंकेक्षण, नई दिल्ली : इसके प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं :

(i) I.A.C.. अधिकारियों द्वारा जाँच के लिए नीतियाँ बनाना और कार्यक्रम तय करना, अंकेक्षण की आन्तरिक समूहों के कार्य का पर्यवेक्षण और आगम अंकेक्षण से सम्बन्धित आपत्तियों के मामलों के सम्बन्ध में निर्णय लेना;

(ii) कार्यक्षेत्र संगठन का प्रशासनिक निरीक्षण करना;

(iii) विभागीय कर्मचारियों के लिए विभागीय परीक्षाओं का आयोजन करना;

(iv) सभी विभागों के प्रमुखों से नियुक्ति से सम्बन्धित प्राप्त सभी संदर्भो को निपटाना।

(ख) निरीक्षण निदेशालय, अन्वेषण, नई दिल्ली : इस निदेशालय में निरीक्षण के तीन निदेशक होते हैं :

(i) **अनिरीक्षण विंग के कार्य (Functions of Investigation Wing)**

(1) जाँच प्रविधि में सुधार करने और कर चोरी का मुकाबला करने के लिए आय–कर सम्बन्धी सूचना को एकत्रित करने में अधिकारियों की सहायता करना।

(2) विभिन्न आय–कर केसों पर निगरानी रखना और जाँच में सहयोग करना।

(ii) सतर्कता विंग के कार्य (Functions of Vigilence Wing)

जाँच निदेशक (सतर्कता) एक अतिरिक्त मुख्य सतर्कता अधिकारी के रुप में कार्य करता है और सतर्कता से सम्बन्धित सभी राजपत्रित और गैर–राजपत्रित कर्मचारियों के केसों पर कार्यवाही करता है।

(iii) **विशिष्ट कक्ष के कार्य**
(Functions of Special Cell)

यह सैल (कक्ष) बड़े औद्योगिक घरानों द्वारा की जाने वाली करों की चोरी के सम्बन्ध में कार्यवाही करता है।

(ग) निरीक्षण निदेशालय, अनुसंधान, सांख्यिकी और प्रकाशन, नई दिल्ली : यह निदेशालय दो विंग अथवा शाखाओं के मिश्रण से बनी है :

(i) प्रकाशन और लोक सम्बन्ध विंग (Publication and Public Relations Wing)

(1) आय–कर विभाग से संबंधित विभिन्न नियमों, अधिनियमों, बुलिटेन और अन्य प्रकाशनों को संग हित और प्रकाशित करना।

(2) सामग्री का हिन्दी में अनुवाद करना और हिन्दी के उत्तरोत्तर प्रयोग पर नजर रखना।

(3) लोक सम्बन्धों से सम्बन्धित सभी विषय आदि को शामिल किया जाता है।

(ii) अनुसंधान और सांख्यिकी विंग (Research and Statistics Wing)

(1) सभी प्रत्यक्ष-करों से संबंधित अखिल भारतीय आगम सांख्यिकी को सम्पादित और उसकी आपूर्ति करना।

(2) कार्य की प्रगति की प्रतिमा की रिपोर्ट को सम्पादित करना व आँकड़े उपलब्ध कराना।

(3) केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड द्वारा विभिन्न सामग्री पर अनुसंधान कार्य करना।

(घ) संगठन और प्रबन्ध सेवा निदेशालय, नई दिल्ली : इस निदेशालय के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं :

(i) मानवीय संसाधनों का आदर्शतम्, उपयोग करने के लक्ष्य के अनुसार कार्य करने के तरीकों को सरल बनाना।

(ii) प्रविधि अनुसन्धानों की सहायता लेकर कर्मचारियों के नियमों का मूल्यांकन करना तथा नये नियम विकसित करना।

(iii) कार्य की व्यवस्था और संगठनात्मक, संरचना का पुनरावलोकन करना।

(iv) विभागाध्यक्षों द्वारा कर्मचारियों से सम्बन्धित दिये गये सुझावों की जाँच करना।

(iii) अप्रत्यक्ष कर प्रभाग (Indirect Taxes Division) : केन्द्रीय उत्पाद विभाग, सह प्रभाग, कस्टम विभाग, नारकोटिक (Narcotic) विभाग और कई अन्य निदेशालयों से सम्बन्धित कार्यो को देखता है। इन सभी पर केन्द्रीय उत्पादन और सीमा शुल्क बोर्ड का नियन्त्रण रहता है। इस बोर्ड का मुख्य कार्य अप्रत्यक्ष कर (सीमा शुल्क तथा केन्द्रीय उत्पादन शुल्क, आदि) लगाना और उनकी उगाही करना तथा तस्करी निवारण प्रयत्नों की नीति तैयार करना है। इस समय इस बोर्ड में एक अध्यक्ष तथा 6 सदस्य हैं जिन्हें भारत सरकार के पदेन विशेष सचिव का दर्जा प्राप्त है। अनेक सम्बद्ध तथा अधीनस्थ कार्यालय केन्द्रीय उत्पादन शुल्क और सीमा शुल्क बोर्ड को, उसके प्रशासनिक एवं कार्यकार कार्यो के निष्पादन में सहयोग प्रदान करते हैं। ये कार्यालय निम्नलिखित हैं :

1. निरीक्षण तथा लेखा परीक्षा महानिदेशालय,
2. राजस्व अधिसूचना महानिदेशालय,
3. अपवंचनरोधी महानिदेशालय,
4. राष्ट्रीय सीमा शुल्क, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क एवं नार्कोटिक्स अकादमी,
5. संगठन और प्रबन्ध सेवा निदेशालय,
6. निवारक संकाय निदेशालय,
7. सांख्यिकी और आसूचना निदेशालय,
8. प्रकाशन निदेशालय,
9. केन्द्रीय राजस्व नियन्त्रण प्रयोगशाला; और
10. मुख्य सतर्कता अधिकारी।

बोर्ड को सौंपे गये कार्यकारी कार्य सम्पूर्ण भारत में फैले हुए सीमा शुल्क और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, समाहर्तालयों के माध्यम से निष्पादित किए जाते हैं। इस समय समाहर्त्तालियों की संख्या 36 है जो मुख्यतया केन्द्रीय उत्पाद शुल्क से सम्बन्धित हैं और इन्हें क्षेत्रीय एककों के रूप में संगठित किया गया है।

वित्त मन्त्रालय, जो सरकार के वित्तीय मामलों की देखभाल करता है, बजट की रचना के लिए प्रधानतः उत्तरदायी है। वित्त मन्त्री राष्ट्र के कोष का संरक्षक होता है। उसका यह सर्वोपरि कर्तव्य है कि वह राष्ट्रीय वित्त का उपयोग समझदारी तथा कुशलता से करे। वित्त मन्त्रालय राज्य के लिए आवश्यक राजस्व एकत्र करने के लिए उत्तरदायी होता है; और धनराशि निश्चित करने तथा एक सीमा तक व्ययों का स्वरुप निश्चित करने में वह प्रमुख भूमिका निभाता है। संघीय सरकार के वित्तीय नियमों के अन्तर्गत वित्त मन्त्रालय को वित्तीय अधिकार प्रदान किये गये हैं। इस व्यवस्था के सम्बन्ध में भारतीय संविधान के अनुच्छेद् 77 (3) में उल्लेख है। यह अनुच्छेद् संघ के राष्ट्रपति को संघीय सरकार के संचालन सम्बन्धी नियम बनाने का प्राधिकार प्रदान करता है। वित्त मन्त्रालय वार्षिक वित्तीय विवरण (अर्थात् बजट) तैयार करने, संसद में उसका मार्गदर्शन करने, विभिन्न विभागों द्वारा इसके क्रियान्वयन के निरीक्षण, राजस्व एकत्र करने, प्रशासकीय विभागों को वित्तीय मन्त्रणा देने तथा वित्तीय नियन्त्रण के लिए उत्तरदायी होता है। इन अधिकारों का उपयोग वित्त मन्त्रालय ने सदैव नहीं किया। अन्य मन्त्रालयों तथा विभागों पर इसका नियन्त्रण धीरे–धीरे ही बढ़ा है–आरम्भ में गवर्नर जनरल की परिषद् के अन्य सदस्यों ने विभागीय स्वायत्तता तथा प्रतिष्ठा के नाम पर इसका विरोध किया था। सरकार पर क्रमशः लोक नियन्त्रण बढ़ने और शासन के संसदीय स्वरुप के विकास ने वित्त मन्त्रालय की स्थिति को शक्तिशाली बना दिया है। 1919 के मॉण्टफोर्ड सुधारों (Montford Reforms of 1919) ने वित्त विभाग द्वारा अन्य विभागों पर वित्तीय मामलों के नियन्त्रण की व्यवस्था की थी। विधानमण्डल की लोक सेवा समिति की रचना तथा विभागों के लेखाओं की लेखा–परीक्षा और परिनिरीक्षण करने के लिए लेखा–नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति के फलस्वरूप वित्त विभाग या वित्त मन्त्रालय की प्रतिष्ठा तथा शक्ति में बहुत व द्धि हुई है।

भारत में प्रत्येक आगामी वित्तीय वर्ष के लिए (वित्तीय वर्ष 1 अप्रैल को आरम्भ और 31 मार्च को समाप्त होता है) बजट अनुमान की तैयारी में शासन के चार विभिन्न अंग–वित्त मन्त्रालय, प्रशासन मन्त्रालय, योजना आयोग और लेखा–नियन्त्रक तथा महालेखापरीक्षक–कार्य करते हैं।

बजट की रचना का सारा उत्तरदायित्व वित्त मन्त्रालय पर होता है, किन्तु प्रशासकीय आवश्यकताओं का व्यापक ज्ञान सम्बन्धित प्रशासकीय मन्त्रालयों को ही होता है। बजट योजना की प्राथमिकताओं को स्पष्ट करने के लिए वित्त मन्त्रालय को योजना आयोग से निरन्तर निकट सम्पर्क बनाये रखना पड़ता है। इसमें लेखा–नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक का भी महत्वपूर्ण योगदान रहता है। वही अनुमानों को तैयार करने में आवश्यक लेखा सम्बन्धी सूचनाएँ उपलब्ध कराता है।

बजट अनुमान की तैयारी सम्बन्धी कार्य आगामी वित्तीय वर्ष के आरम्भ होने के 6 या 8 मास पूर्व ही आरम्भ हो जाता है। इसका श्रीगणेश वित्त मन्त्रालय से होता है, जो विभिन्न प्रशासकीय मन्त्रालयों तथा विभागों को व्यय के अनुमान तैयार करने के लिए एक पत्र भेजता है। नियम यह है कि प्रत्येक विभाग जो धन व्यय करता है उसे ही अपनी आवश्यकतानुसार आगामी वर्ष के अनुमान भी तैयार करने चाहिए। 'प्रपत्रों के ढाँचे' वित्त मन्त्रालय द्वारा प्रदान किये जाते हैं, जिनमें अनुमान तथा अन्य आवश्यक सूचनाएँ सम्बन्धित विभागों को भरनी व भेजनी

पड़ती हैं। प्रशासकीय मन्त्रालय इन छपे हुए प्रपत्रों को धन व्यय करने वाले अधिकारियों अर्थात् कार्यालयों के प्रधानों (जिले में जिलाधीशों) को पहुँचा देते हैं। प्रत्येक प्रपत्र में अधोलिखित स्तम्भ होते हैं :

(1) पिछले वर्ष के यथार्थ अंक (actuals);

(2) चालू वर्ष के लिए संशोधित (sanctioned) अनुमान;

(3) चालू वर्ष के लिए संशोधित अनुमान;

(4) आगामी वर्ष के लिए बजट अनुमान;

(5) चालू वर्ष के यथार्थ अंक, जो अनुमानों को तैयार करते समय प्राप्त हुए हों, तथा पिछले वर्ष के समानान्तर काल के यथार्थ अंक।

आगामी वर्ष के अनुमान निम्नलिखित आधारों पर निर्मित किये गये हैं :

(अ) चालू वर्ष के संशोधित अनुमान;

(आ) विगत तथा पिछले वर्षो के 15 महीनों के यथार्थ अंक;

(इ) गत वर्षो के अंकों की कोई मान्यतायुक्त नियमितता; तथा

(ई) परिवर्तन उत्पन्न करने वाली कोई विशिष्ट परिस्थितियाँ।

धन व्यय करने वाले अधिकारी अपने तैयार किये हुए अनुमानों को विभाग के प्रधान के पास दो भागों में भेजते हैं। पहले भाग में राजस्व तथा स्थायी प्रभार (charges) का उल्लेख होता है। दूसरे भाग को दो प्रवर्गो में विभाजित किया जाता है। पहले प्रवर्ग में उन विषयों का उल्लेख होता है जो प्रतिवर्ष निरन्तर चलते रहते हैं और दूसरे प्रवर्ग में पूर्णतः नवीन विषय होते हैं।

ये अनुमान विभाग के प्रधान के पास भेज दिये जाते हैं जो आवश्यकतानुसार उनकी समीक्षा तथा संशोधन करके पूरे विभाग के लिए जोड़ता है (consolidates)। विभिन्न विभागों से प्राप्त अनुमानों को सम्बन्धित प्रशासकीय मन्त्रालयों को भेज दिया जता है; यहाँ पुनः दूसरी बार उस (मन्त्रालय) की सामान्य नीति के सन्दर्भ में निरीक्षण किया जाता है। इसके बाद प्रशासकीय मन्त्रालय इन अनुमानों को नवम्बर के मध्य में वित्त मन्त्रालय के बजट सम्भाग को भेजता है।

वित्त मन्त्रालय का बजट सम्भाग प्रशासकीय मन्त्रालय द्वारा प्रस्तुत इन अनुमानों की सूक्ष्मतापूर्ण समीक्षा करता है। यह स्मरणीय है कि प्रशासकीय मन्त्रालय द्वारा किये गये निरीक्षण से बजट सम्भाग द्वारा निरीक्षण भिन्न प्रकार का होता है। यह व्ययों की नीतियों की समीक्षा नहीं करता—नीति की समीक्षा करना तो मुख्यतः प्रशासकीय विभागों एवं मन्त्रालयों की माँगों को सरकार की उपलब्ध निधियों की सीमा के अन्दर ही रखना पड़ता है। बजट सम्भाग द्वारा जाँच या निरीक्षण, वित्तीय द ष्टिकोण से अर्थात् मितव्ययता तथा निधियों की उपलब्धि के द ष्टिकोण से होती है। इस कार्य को करते समय वित्त मन्त्रालय व्यय से सम्बन्धित अनेक प्रस्तावों को विशेषज्ञ की द ष्टि से नहीं देखता। वास्तव में वित्त मन्त्रालय को 'आलोचना तथा प्रति—परीक्षण' (cross examination) करने में एक विशिष्ट दक्षता प्राप्त है जो लम्बे अनुभव का परिणाम है, किन्तु उसमें निरन्तर समयानुकूल अभिनव परिवर्तन होता रहता है। इसके अतिरिक्त, इसका द ष्टिकोण कुछ बुद्धिमान मनुष्य जैसा होता है।" इसके द्वारा इस प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं :

क्या प्रस्तावित व्यय वास्तव में आवश्यक है?

यदि आवश्यक है तो अब तक बिना इसके कैसे काम चलता था?

अब क्यों इसकी आवश्यकता अनुभव हुई है?
अन्यत्र क्या किया जाता है?
इसमें कितना व्यय होगा और वह धनराशि कहाँ से प्राप्त होगी?
इस व्यय के परिणामस्वरूप किसको धन की कमी अनुभव होगी?
क्या नवीन विकास इसको आवश्यक बनाते हैं?

यहाँ यह प्रकट करना उचित है कि यह परिनिरीक्षण (scrutiny) केवल नये व्ययों के लिए किये गये प्रस्तावों पर ही काम में लायी जाती है। नियमानुसार किसी भी विभाग के नये या बढ़े हुए व्यय सम्बन्धी कोई प्रस्ताव वित्त मन्त्रालय की सहमति के बिना बजट में सम्मिलित नहीं किये जा सकते। सरकार को जो भी सीमित साधन उपलब्ध हैं, उनको देखते हुए प्रशासकीय मन्त्रालयों को उनकी वास्तविक आवश्यकताओं से अधिक धन प्राप्त नहीं होना चाहिए।

स्थिति यह है कि वित्त मन्त्रालय प्रशासकीय मन्त्रालयों की माँगों को पारित करता है, व्ययों के औचित्य की समीक्षा करता है और प्रत्येक मन्त्रालय के लिए एक राशि निश्चित करता है। स्मरणीय है कि इन मामलों में वित्त मन्त्रालय और वित्त मन्त्री स्वेच्छा से कार्य नहीं कर सकते। पंचवर्षीय योजना सम्बन्धी आवश्यक माँगें, मन्त्रालयों के नीति सम्बन्धी निर्णय, देश में विद्यमान परिस्थितियाँ, इन सभी बातों की झलक बजट में होती है और इसी सीमा तक वे वित्त मन्त्री के अधिकार को सीमित करते हैं। वित्त मन्त्रालय द्वारा उन सभी प्रस्तावों का बड़े ध्यान से निरीक्षण किया जाता है जो सरकार पर कोई नया या बढ़ा हुआ व्यय भार डालते हैं।

नये व्यय दो प्रकार के होते हैं क्रय एवं निर्माण आदि सम्बन्धी तथा स्थापना (Establishment) के लिए अनुदान। बड़ी रकम की खरीदारी या निर्माण कार्य, जैसे मुम्बई में परमाणु शक्ति प्रबन्धक (Atomic Energy reactor) मन्त्रिमण्डल की सहमति से प्रारम्भ किये जाते हैं। स्पष्टतः बजट में ऐसे व्यय सम्मिलित करने के सम्बन्ध में वित्त मन्त्रालय का नियन्त्रण सीमित है। किन्तु अतिरिक्त व्यय सम्बन्धी विभागों को वित्त मन्त्रालय बड़े ध्यान से देखता है। यदि व्यय करने वाले किसी विभाग का प्रभारी मन्त्री वित्त मन्त्रालय की 'अस्वीकृति' से सहमत नहीं होता तो वह उस मामले पर मन्त्रिमण्डल में विचार करने की माँग कर सकता है। मन्त्रिमण्डल का निर्णय सभी सदस्यों को मान्य होता है। यदि मन्त्रिमण्डल का सदस्य अपनी नीति एवं माँग पर द ढ़ रहता है और मन्त्रिमण्डल के निर्णय से सहमत नहीं होता तो वह त्यागपत्र देकर सम्बन्ध विच्छेद कर सकता है। स्मरणीय है कि मन्त्रिमण्डल में वित्त मन्त्री की स्थिति विलक्षण रूप से शक्तिशाली होती है; मन्त्रिमण्डल को उसके विचारों को विशेष महत्व देना चाहिए, विशेषकर विवादग्रस्त व्यय की धनराशि पर्याप्त बड़ी होने पर। एक पूर्व वित्त मन्त्री ने एक भिन्न प्रसंग में कहा था कि "कोई भी वित्त मन्त्री केवल शक्तिशाली स्थिति में न कि कमज़ोर स्थिति में रहकर समुचित ढंग से कार्य कर सकता है।" उनका यह कथन वित्त मन्त्री के शक्तिशाली होने पर पर्याप्त प्रकाश डालता है।

विभिन्न मन्त्रालयों के व्यय के अनुमानों पर वित्त मन्त्रालय को यह नियन्त्रण क्यों दिया गया है? इसके दो कारण दिये जाते हैं; प्रथम, वित्त मन्त्रालय स्वयं कोई व्यय करने वाला मन्त्रालय नहीं है, अतः करदाता के हितों के लिए वह निष्पक्ष संरक्षक के रुप में कार्य कर सकता है। द्वितीय, इस मन्त्रालय को प्रस्तावित व्यय पूरे करने के लिए आर्थिक उपाय तथा साधन खोजने होते हैं। अतः यह उचित ही है कि उसे यह अधिकार होना चाहिए कि अमुक व्यय किया जाना चाहिए या नहीं। हैल्डेन समिति के अनुसार, "यदि उसे (वित्त मन्त्री को) हौज को भरने तथा उसमें निश्चित

मात्रा में जल बनाये रखने के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है तो उसे पानी की निकासी पर भी नियन्त्रण प्राप्त होना चाहिए।" व्यय करने वाले शासन के शेष सभी मन्त्रालयों की तुलना में वित्त मन्त्रालय की स्थिति प्रधान है; परन्तु यह स्थिति हाल में कई कारणों से आलोचना का विषय बन गयी है। ऐपल्बी का निम्नलिखित मत ध्यान देने योग्य है :

"वर्तमान प्रणाली के अधीन पूरे वर्ष की विभिन्न 'योजनाएँ' या 'परियोजनाएँ' वित्त मन्त्रालय के समक्ष प्रस्तुत की जाती हैं। इनमें से कुछ तो शीघ्र ही तय करने तथा विधियों के बँटवारे सम्बन्धी होती हैं और कुछ बाद के बँटवारों के बन्धक रूप में होती हैं। ये योजनाएँ प्रायः नीति सम्बन्धी विचारों से अधिक नहीं होती हैं। अतः उनके द्वारा ऐसे वास्तविक प्रशासकीय तथा व्यय सम्बन्धी परिवर्तन तो कभी नहीं किये जा सकते जिन पर गम्भीरता से विचार किया जा सके। इनका मुख्य दोष विलम्ब तथा भ्रम सम्बन्धी होता है। इसके लिए वित्त मन्त्रालय को ही प्रायः दोषी ठहराया जाता है। जैसे–जैसे बजट बनाने का समय निकट आता जाता है, इन सभी योजनाओं की जाँच की जाती है तथा इनमें से कुछ को चुन लिया जाता है। यही सामान्य स्थापना व्ययों के अतिरिक्त किसी मन्त्रालय विशेष का बजट होती है। वे सब योजनाएँ जो नस्ती (File) में नत्थी रहती हैं सिद्धान्ततः अनुमोदित हो चुकी होती हैं। जो योजनाएँ वास्तव में बजट में सम्मिलित नहीं की जाती वे नस्ती में नत्थी रहती हैं और किसी आगामी वर्ष में या एक वर्ष में किसी भी समय उन पर विचार आरम्भ किया जा सकता है। प्रस्तावित और सिद्धान्ततः अनुमोदित होने के वर्षो बाद उनमें से कोई एक योजना अचानक ही कार्यान्वित की जा सकती हैं, भले ही उस समय तक व्यय के प्रारम्भिक अनुमान या योजना के महत्वपूर्ण तत्व पूर्णतः अनुपयोगी हो गये हों।

"वर्तमान प्रणाली यह आवश्यक कर देती है कि विभिन्न अभिकरण अनेक प्रकार की योजनाएँ प्रस्तुत करते रहें, यह जानते हुए भी कि इन योजनाओं को कार्यान्वित करने में वे सशक्त नहीं हैं। यह सब कम व्यय वाले अनुमानों तथा हीन बजट रचना का एक नमूना उपस्थित करती है, जिसके कारण वित्त मन्त्रालय का विस्त त हस्तक्षेप आवश्यक हो जाता है।"

"इसमें एक दूसरा तत्व भी होता है जिस पर अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। सभी मन्त्रालय यह जानते हैं कि वित्त मन्त्रालय उनके द्वारा माँग की जाने वाली धनराशि में कमी कर देता है, अतः वे व्यय के अनुमान प्रारम्भ से ही बढ़ा चढ़ाकर रखते हैं। ऐसा करने के लिए उन्हें प्रोत्साहन भी दिया जाता है। जब कोई विशेष मन्त्रालय कोई छोटी अनुमानित परियोजना प्रस्तुत करता है तो वित्त मन्त्रालय को यह शिकायत रहती है कि "आप हमें ऐसी कठिन स्थिति में रख देती हैं कि आपकी माँगी हुई धनराशि को घटाना हमारे लिए बहुत कठिन हो जाता है।" वास्तव में एक छोटे तथा अच्छी प्रकार बनाये गये अनुमान को प्रत्येक सम्भव उपाय से प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए, और शीघ्र ही बिना किसी हेर फेर के उसे अनुमोदित कर देना चाहिए। इसके विपरीत, ढीले–ढाले और अनिश्चित अनुमानों के सम्बन्ध में कठोर द ष्टि अपनानी चाहिए। वित्त विभाग का प्रमुख उत्तरदायित्व यह होना चाहिए कि वह सरकारी अभिकरणों में अच्छे बजट के निर्माण की प्रव त्ति को जाग्रत तथा प्रोत्साहित करे; और उसकी सारी समीक्षा ऐसे विश्लेषण पर आधारित होनी चाहिए जिससे खराब व हीन बजट की जाँच हो सके। यदि निरीक्षण के पश्चात् यह प्रकट हो कि बजट रचना अच्छी रही तो माँगी गयी राशि को तुरन्त अनुमोदित कर देना चाहिए।"

वित्त मन्त्रालय का बजट के पश्चात् नियन्त्रण

व्यय करने वाले विभिन्न मन्त्रालयों पर वित्त मन्त्रालय का नियन्त्रण संसद में बजट प्रस्तुत कर

देने के साथ ही समाप्त नहीं हो जाता वरन् निरन्तर चलता रहता है। वह भी अनुमानों के संसदीय अनुमोदन के पूर्व तथा पश्चात् प्रभावकारी रहता है। बजट के अनुमानों को निर्धारित करते समय वित्त मन्त्रालय का नियन्त्रण बहुत मोटे तौर का होता है। अतः धन के वस्तुतः व्यय किये जाने से पूर्व वित्त मन्त्रालय का नियन्त्रण आवश्यक है। संसद तो सामूहिक रुप से सरकार (प्राविधिक शब्दों में राष्ट्रपति) को अनुदान देती है, न कि व्यक्तिगत रुप से किसी मन्त्रालय विशेष को। अतः वित्त मन्त्रालय, जो सरकार की वित्त व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होता है, प्रशासकीय मन्त्रालय को व्यय की अनुमति तभी देता है जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि प्रस्तावित व्यय वांछनीय है और उस पर भली प्रकार विचार कर लिया गया है। दिन–प्रतिदिन के व्ययों पर वित्त मन्त्रालय की सहमति आवश्यक नहीं होती, किन्तु नये व्ययों के लिए तो वित्त मन्त्रालय का पूर्व अनुमोदन प्राप्त करना आवश्यक है। इसका यह अर्थ है कि नयी योजना पर होने वाले व्यय सम्बन्धी प्रस्ताव पर वित्त मन्त्रालय की सहमति बजट की प्रारम्भिक अवस्था में केवल अनुमानाश्रित होती है। अनुमान समिति ने अपने 1953-54 के नवें प्रतिवेदन में यह स्पष्ट किया था कि "वित्त मन्त्रालय के बजट सम्भाग (Budget Division) को वित्तीय वर्ष के अन्तिम एक या दो माह के दौरान मन्त्रालयों से विभिन्न प्रस्ताव एक साथ प्राप्त होते हैं। परिणामस्वरुप, बजट सम्भाग को विस्तार के साथ प्रस्तावों का परीक्षण करने तथा प्रत्येक विषय की सावधानी के साथ जाँच करने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिलता। फलस्वरुप, बजट सम्भाग द्वारा स्थूल रुप से परीक्षण किया जाता है और विभिन्न योजनाओं के लिए कुछ धन निर्धारित कर दिया जाता है और अगले वित्तीय वर्ष में स्वयं या वित्त मन्त्रालय को उन राशियों के व्यय सम्बन्धी पचड़े में नहीं डालता है। वर्तमान प्रणाली के अनुसार अनुमानों में जो कुछ भी सम्मिलित किया जाता है वह उन पर केवल सदन की स्वीकृति प्राप्त करने की द ष्टि से किया जाता है, और प्रशासकीय मन्त्रालय को व्यय करने का अधिकार तब तक नहीं होता जब तक कि वित्त मन्त्रालय व्यय का विस्त त अनुमोदन प्राप्त नहीं कर लेता।"

नये व्ययों को कार्यान्वित करने से पूर्व वित्त मन्त्रालय का अनुमोदन प्राप्त कर लेने से भारत में अंग्रेजी सरकार को, जिसके कार्य अति सीमित थे, अत्यन्त लाभ हुआ था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कुछ समय पूर्व तक प्रशासकीय मन्त्रालयों तथा अधीनस्थ प्राधिकारियों के अधिकार इतने सीमित क्यों थे। कुछ भी हो, यह व्यवस्था प्रसारोन्मुख सरकार के लिए उपयुक्त नहीं है जिसका उद्देश्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना और शीघ्रातिशीघ्र सामाजिक एवं आर्थिक विकास करना है। इस स्थिति के कारण पॉल ऐपल्वी ने स्पष्ट रूप से कहा कि अधिकारों के प्रदत्तीकरण (Delegation of Power) की आवश्यकता ही भारतीय प्रशासन की सबसे बड़ी कमी थी। प्रशासकीय मन्त्रालयों तथा अधीनस्थ प्राधिकारियों को विस्त त प्रदत्तीकरण किये जाने की तीव्र आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार वित्तीय नियन्त्रण को उदार बनाती रही है और उससे व्यय करने वाले मन्त्रालयों को काफी वित्तीय अधिकार प्रदान कर दिये हैं। स्थायी तथा अस्थायी पदों की रचना तथा आकस्मिक और विविध व्यय करने के सम्बन्ध में प्रशासकीय मन्त्रालयों की शक्ति में पर्याप्त व द्धि कर दी गयी है। पूर्वोल्लेखानुसार प्रदत्तीकरण की कुछ सामान्य सीमाएँ इस प्रकार हैं :

(क) लोक राजस्व उचित प्रयोजनों पर ही व्यय किया जाना चाहिए;

(ख) अधीनस्थ प्राधिकारी व्यय का अनुमोदन उन्हीं दशाओं में कर सकता है जिनका उसे अधिकार प्राप्त है;

(ग) यदि किसी व्यय में कोई ऐसा नवीन सिद्धान्त या कार्यविधि सन्निहित हो जिससे भविष्य में व्यापार बढ़ने की सम्भावना हो, तो उसे वित्त मन्त्रालय को भेजना चाहिए; तथा

(घ) अधीनस्थ प्राधिकारी के अनुमोदन करने की शक्ति प्रदत्तीकरण करने वाले प्राधिकारी द्वारा जारी किये गये विशेष या सामान्य अनुदेश के अधीन होनी चाहिए।

अधिकारों के प्रदत्तीकरण की इस योजना के एक भाग के रुप में प्रत्येक प्रशासकीय मन्त्रालय के पास एक वित्तीय शाखा होती है जिसमें वित्तीय परामर्शदाता, उपवित्तीय परामर्शदाता या सहायक वित्तीय परामर्शदाता होते हैं। इन कर्मचारियों का सम्बन्ध केवल वित्त तथा बजट के कार्य से होता है, और यह बजट में सम्मिलित किये जाने वाले प्रस्तावों के नियमन से सम्बद्ध होता है। उन सभी वित्तीय मामलों में, जिनमें प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग अन्तर्निहित है, या उन विषयों में, जिन्हें वित्त मन्त्रालय को भेजने की आवश्यकता होती है, इन कर्मचारियों से परामर्श करना आवश्यक होता है। यह विनियोजन के विपरीत व्यय को नियन्त्रित करने में मन्त्रालय की सहायता करते हैं। यह व्यवस्था है कि जिन विषयों में मन्त्रालय के वित्तीय परामर्शदाता का परामर्श स्वीकार नहीं किया जाता, उन्हें मन्त्रालय के सचिव को आदेशों के लिए निदेशित किया जाना चाहिए और यदि सचिव का मत उस परामर्श से भिन्न हो तो उस विषय को मन्त्री के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए। ये वित्तीय परामर्शदाता विभागीय सचिव के नियन्त्रण में काम करते हैं। अब विभागीय सचिव को अपने मन्त्रालय के ऐसे व्यक्तियों से, जिनका वित्तीय ज्ञान काफी गम्भीर होता है और जो प्रवर्तन सम्बन्धी मन्त्रालय की प्रशासकीय कठिनाइयों से भी परिचित होते हैं, सूचना सम्बन्धी तथा रचनात्मक आलोचना प्राप्त होती रहती है। यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि प्रदत्तीकरण प्राधिकारी का उत्तरदायित्व प्रदत्तीकरण के अन्तर्गत कम नहीं होता बल्कि प्रायः बढ़ जाता है, क्योंकि उसे अवलोकन के उपयुक्त नियमों का निर्माण करना पड़ता है और समय–समय पर उनकी समीक्षा भी करनी पड़ती है।

पुनरावलोकनार्थ, वित्त मन्त्रालय को जनता के पैसे पर काफी नियन्त्रण रखना चाहिए और इस मामले में सस्ती लोकप्रियता का रास्ता नहीं चुनना चाहिए। व्यय करने वाले विभागों की एक तरह से यह अनुत्तरदायित्वपूर्ण परिपाटी ही हो गयी है जिसमें उनके व्यवहारों को देखा जा सकता है। जनता के पैसों के व्यय में हमेशा यह खतरा रहता है कि विशाल पैमाने पर उसका गलत हस्तान्तरण होता है और पैसों की बरबादी ही होती है। बजट में किसी मद में रुपये का प्रावधान यह अर्थ नहीं रखता कि वह रकम सम्पूर्णतया मान्य है। लोकसभा के द्वारा बजट के अनुमोदन के पश्चात् भी इतना आवश्यक है कि वित्त की द ष्टि से तथा अन्यान्य साधनों द्वारा उस खर्च की मद को जाँचना आवश्यक हो जाता है। यह कार्य वित्त मन्त्रालय और वित्तीय सलाहकारों द्वारा किया जाता है।

"You have mentioned the inevitable tendency of spending Departments to be somewhat irresponsible. It is obviously necessary for some check to be applied to this tendency. The difficulty, I suppose, is that the more the check, the more the tendencey for irresponsibility in the particular spending Department. In a small measure, that might be compared to the whole business of self-government. Too much control at the top breeds lack of responsbility below. At the same time, and more especially in regard to expenditure of public funds, we cannot take the risk of large-scale wastage or mis-application of funds in an attempt to develop that sense of responsibility. Therefore, some middle way has to be found which leads to the development of that feeling of responsibility in the Ministry concerned and, at the same time, provides effective checks against any real mistake being made.

I agree with you that mere allocation of money in a budget cannot be considered as adequate sanction. The scheme has to be examined from the financial, as from the other points of view. That examination and scrutiny will take place, of course, by the Financial Adviser and his staff. The question is whether this is enough or whether this has further to be examined in the Finance Ministry.

In the event of the Financial Adviser (I presume, he is a senior and experienced man) being satisfied after his scrutiny or his advice has been accepted by the Ministry concerned, is it necessary for the whole matter to be reviewed by the Finance Ministry? In the event of there being a difference of opinion on some major issue, between the Financial Adviser and the Ministry concerned, then someone has to decide the matter. The Finance Ministry might well consider it more fully and ultimately the two Ministers may discuss it.

I am putting forward to you some thoughts that strike me immediately. They are not exactly suggestions because I am not fully conversant with the procedures.

Would it be possible to isolate rather major items of expenditure for a more detailed scrutiny by the Finance Ministry than need be applied to the relatively minor items? To some extent this might be so already, though I have had instances of small things being delayed. Thus, in regard to what I call the relatively minor items, the concurrence of the Financial Adviser should be adequate and no further reference need be made to the Finance Ministry. The major schemes should certainly be fully examined.

The general impression I have got is that far too many of the smaller items take up the time of the Finance Ministry and lead to delay. This delay may be very costly if it means, perhaps, hanging up some major scheme which is already functioning. In the case, let us say, of a river valley scheme, large sums are involved and the fullest scrutiny is necessary. But sometimes some petty proposal cannot be finalized on the spot and has to be referred to headquarters here. It goes backwards and forwards between the Ministry concerned and the Finance Ministry and probably takes a considerable time before it is finalized. It may well be that delay has been very costly in the long run and some important work has been hung up. Some procedure might be evolved for responsible men to decide it on spot without reference to the Ministries here. I am referring, of course, to matters nor involving heavy expenditure. This may be some petty appointment or some petty purchase.

The other day I saw a letter from the Chief Minister of Orissa. He said that the Advisory or Control Board of the Hirakund Project, of which he was a Member, could make little or no progress because every minor matter had to be referred for sanction to New Delhi. The Financial Adviser attached appeared to be a little nervous of giving sanctions without reference to Delhi. The delayed matters and produced some sense of frustration. On the one hand we are working almost round the clock in these major schemes with three shifts. On the other hand, some petty appointment holds up work.

People on the spot become more and more afraid of shouldering responsibility lest they might get into trouble. That is unhealthy development. The American Chief Engineers or Special Experts fume and fret because they are used to quick decisions.

Ultimately, it seems a question of giving greater responsibility to the Financial Adviser on the spot, presuming he is good, and of making some division between major items and minor items.

The instance you give about the Education Ministry is certainly a case in which the Finance Ministry appears to have been completely right.

As I said in my previous letter, two things worry me the growth of financial irresponsibility in the Ministries and their feeling that they have nothing to do with this matter as Finance is looking after it and, secondly, the problem of delay which is costly and produces frustration."

एकीकृत वित्तीय परामर्शदाताओं सम्बन्धी योजना

केन्द्रीय शासन के सभी मन्त्रालयों में 1976 से एकीकृत वित्तीय परामर्शदाताओं (Integrated Financial Advisers) की योजना का सूत्रपात हुआ है। इस योजना के अन्तर्गत वित्तीय परामर्शदाताओं की, जिनका पद अतिरिक्त सचिव या संयुक्त सचिव के स्तर का है, इन पदों पर नियुक्ति की गयी। वित्तीय परामर्शदाता उस मन्त्रालय के प्रति जिसमें उसकी नियुक्ति की जाती है तथा वित्त मन्त्रालय के प्रति उत्तरदायी होता है। दूसरों शब्दों में, यह पदाधिकारी दोनों मन्त्रालयों के प्रति उत्तरदायी रहता है। वित्तीय सुधारों के प्रतिफलस्वरूप सभी मन्त्रालयों को व्यापक वित्तीय शक्तियाँ प्रदान की गयी हैं। वित्तीय परामर्शदाता बजट निर्माण परियोजनाओं और कार्यक्रमों की समीक्षा में योग देता है। वह बजट के पारित होने के बाद उसका निरीक्षण भी करता है, और यह देखता है कि व्यय में कहीं बहुत कमी न हो जाये और न अधिक व्यय ही हो जाये। एकीकृत वित्तीय परामर्शदाता व्यय सम्बन्धी सभी योजनाओं के निर्माण एवं क्रियान्वयन से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध होता है। इसके अतिरिक्त, वह मन्त्रालय के निष्पादक बजट (Performance Budget) के निर्माण में और विभिन्न योजनाओं के विकास में मार्गदर्शन करता है। ऐसे मामलों में, जो प्रचलित बजट एवं लेखांकन पद्धति से भिन्न होते हैं, वित्तीय परामर्शदाता को अनिवार्यतः वित्त मन्त्रालय के 'आर्थिक मामलों सम्बन्धी विभाग' से परामर्श करना आवश्यक है। इसी प्रकार, सम्बन्धित मन्त्रालय को विकास योजना के निर्माण के समय वित्त विभाग के 'योजना वित्तीय सम्भाग' से परामर्श करना आवश्यक है।

अन्य वित्तीय सुधार

केन्द्रीय शासन द्वारा 1976 में वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में अनेक सुधार किये गये। तभी से किसी मन्त्रालय का सचिव मुख्य लेखाकंन अधिकारी (Chief Accounting Authority) होता है। वही विनियोग लेखों (appropriation accounts) पर हस्ताक्षर करता है और अपने मन्त्रालय के वित्तीय लेखे तैयार करता है। एकीकृत वित्तीय परामर्शदाता अन्य कार्यो के अतिरिक्त ऋण और भविष्य निधि (provident fund) का विवरण रखने के लिए उत्तरदायी होता है। उस मन्त्रालय के व त्त (circle) और वेतन अधिकारी इस कार्य में उसकी सहायता करते हैं। वह सभी बिलों की जाँच करता है और चैक द्वारा देनदारी के आदेश देता है। देनदारी का लेखांकन, बैंक के हिसाब की जाँच और अन्तिम रुप से लेखा तैयार करना संबंधित मंत्रालय का कार्य होता है न कि लेखा–परीक्षण अधिकारी का। इन वित्तीय सुधारों के सफल क्रियान्वयन के लिए प्रत्येक मन्त्रालय में एक वरिष्ठ अधिकारी की नियुक्ति की जाती है जो लेखांकन का विशेषज्ञ तथा तत्संबंधी नियमों का ज्ञाता होता है।

नवीन लेखांकन व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न मन्त्रालयों को मिलाकर उनके कार्य की प्रकृति तथा सीमा के आधार पर उपयुक्त व त्तों का निर्माण किया जाता है। प्रत्येक व त्त में एक या दो या अधिक वेतन अधिकारी होते हैं जो सभी माँगों की जाँच करते हैं, और चैक या ड्राफ्ट द्वारा भुगतान करते हैं। उनके द्वारा मासिक लेखे तैयार किये जाते हैं जो विभिन्न मन्त्रालयों के एकीकृत वित्तीय परामर्शदाताओं को प्रेषित किये जाते हैं। हर मन्त्रालय की अपनी लेखा–परीक्षण इकाई होती

है। यद्यपि यह इकाई संगठन की द ष्टि से एकीकृत वित्तीय परामर्शदाता के कार्यालय का भाग होती है लेकिन यह मन्त्रालय के सीधे नियन्त्रण में होती है। इन आन्तरिक लेखा इकाइयों के अधीन लेखा व त्त होते हैं। हर मन्त्रालय महालेखापरीक्षक के परामर्श से लेखांकन विधि का निश्चय करता है और लेखे का विवरण लेखा–नियन्त्रक एवं महालेखापरीक्षक को प्रस्तुत करता है। मन्त्रालयों के द्वारा उचित पद्धति का निर्माण किया जाता है, जिससे कार्य सम्बन्धी बजट और कार्य के मूल्यांकन का लेखे से सम्बन्ध स्थापित किया जा सके।

वित्त मन्त्रालय की विशेष स्थिति बजटोत्तर काल में एक अन्य ढंग से भी प्रकट हो जाती है। वित्त मन्त्रालय विभिन्न व्ययकर्ता विभागों के व्ययों पर मासिक व्यय विवरणों, सामयिक प्रतिवेदनों तथा आवश्यकतानुसार चेतावनी द्वारा निगरानी रखता है। इसके अतिरिक्त, यह देखना भी वित्त मन्त्रालय का कार्य है कि जिन व्यय राशियों को सम्बन्धित मन्त्रालयों द्वारा वित्तीय वर्ष के समाप्त होने से पूर्व व्यय नहीं किया गया है उन्हें शीघ्रातिशीघ्र वापस कर देना चाहिए। यह व्यय करने वाले मन्त्रालयों को वित्तीय मन्त्रणा देता है तथा उनका मार्गदर्शन करता है।

बजट के क्रियान्वयन काल में व्यय पर वित्त मन्त्रालय के नियन्त्रण की बड़ी आलोचना हुई है। सही रास्ता तो यह है कि प्रशासकीय मन्त्रालय को आरम्भ से ही पूर्ण विवरण सहित योजनाओं का निर्माण कर लेना चाहिए ताकि वित्त मन्त्रालय शीघ्र ही उनका अनुमोदन कर सके और बजटोत्तर परीक्षण तथा नियन्त्रण कम से कम हो जाये। **सर एडवर्ड ब्रिजेज** (Sir Edward Bridges) ने 1950 में स्टाम्प मेमोरियल व्याख्यानों (Stamp Memorial Lectures) में कहा था कि आज वित्त मन्त्रालय का वास्तविक कार्य यह निश्चित करना है कि द्रव्य का व्यय कतिपय घोषित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सर्वोत्तम ढंग से अर्थात् स्त्रोतों का न्यायसंगत प्रयोग होना चाहिए। योजना आयोग का अधोलिखित मत भी महत्त्वपूर्ण है :

"आर्थिक विकास की किसी भी योजना से लोक व्यय में आधारतत्व रुप से अनिवार्यतः व द्धि हो ही जाती है। मितव्ययता तथा स द ढ़ वित्तीय नियन्त्रण का महत्व– जो पहले से ही सामान्य रुप में मान्य है– राष्ट्रीय योजना की आवश्यकताओं को देखते हुए और अधिक बढ़ जाता है। वित्तीय नियन्त्रण का उद्देश्य यह निश्चित करना होता है कि (1) स्त्रोतों की बरबादी न हो, (2) सार्वजनिक धन का गलत उपयोग न हो, तथा (3) जो भी धन व्यय किया जाना है उससे उचित लाभ प्राप्त हो। प्रशासन के अधीन यह निश्चित करने का उत्तरदायित्व हो, कि इन शर्तों का पालन किया गया है अथवा नहीं। प्रशासकीय प्राधिकारियों तथा वित्त विभागों दोनों पर सामान्य रुप से है, यद्यपि वित्तीय विभागों को अपेक्षाकृत अधिक कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है। वित्तीय तथा प्रशासकीय अधिकारियों के मध्य प्रत्येक स्तर पर निकटतम सहयोग की सदा आवश्यकता रहती है, ताकि यदि कोई कठिनाई सामने आ जाये तो उसे व्यक्तिगत परामर्श द्वारा किसी प्रस्ताव के नियमन की प्रारम्भिक अवस्था में तथा निर्णय के पूर्व ही निपटाया जा सकता है। वित्तीय प्रक्रियाएँ, जो एक ओर समुचित नियन्त्रण निर्धारित करती हैं और दूसरी ओर अपने कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में अधिकाधिक हस्तक्षेप से रक्षा करती है, पंचवर्षीय योजना के कुशल निष्पादन के लिए आवश्यक है।"

लेकिन वित्त मन्त्रालय के इस नियन्त्रण को पूर्ण रूप से समाप्त करना न तो सम्भव है और न संसद के प्रति शासन के वित्तीय उत्तरदायित्व से ही मेल खाता है। प्रशासकीय मन्त्रालय को भी अपने वित्तीय उत्तरदायित्व को ठीक प्रकार समझना चाहिए।

वित्त मन्त्रालय की भूमिका का मूल्यांकन
(Evaluation of the Role of Finance Ministry)

वित्त मन्त्रालय की भूमिका का मूल्यांकन निम्न प्रकार किया जा सकता है :

1. **कार्यपालिका का नियन्त्रण (Control of Executive) :** संसदीय पद्धति के अन्तर्गत बजट पर नियन्त्रण सिद्धान्त तो संसद का माना जाता है क्योंकि बजट के अन्त में संसद की स्वीकृति मिलनी चाहिए, परन्तु व्यवहार में बजट का सारा नियन्त्रण कार्यपालिका का स्थापित हो जाता है क्योंकि कार्यपालिका को ही बजट प्रस्तावित करने का अधिकार होता है चाहे घटाने या हटाने का अधिकार भले ही संसद का है।

2. **कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका में सम्बन्धों की घनिष्ठता (Close Relations between Executive and Legislature) :** भारत में संसदीय शासन व्यवस्था अपनाई गई है जिसके फलस्वरूप कार्यपालिका और व्यवस्थापिका में घनिष्ठतम सम्बन्ध स्थापित हो गया है। संसद के प्रति अपने हर कार्य के लिए व्यक्तिगत और सामूहिक रुप से उत्तरदायी रहते हुए मंत्रीगण संसद के नेता के रूप में उभरते हैं।

3. **वित्त मंत्रालय की शक्ति में व द्धि (Increase in the Powers of the Ministry of Finance) :** संसदीय प्रशासन में कार्यपालिका की यह शक्ति अन्त में वित्त मंत्रालय की शक्ति बन जाती है क्योंकि जिस प्रकार पूरा वित्तीय प्रशासन चलता है उनमें वित्त मंत्रालय की भूमिका सर्वप्रथम और अत्यधिक महत्वपूर्ण बन जाती है। उसी के नेत त्व में सारा बजट तैयार होता है, उसी के निरीक्षण में सारा व्यय किया जाता है।

वित्त मन्त्रालय की आलोचना
(Criticism of Ministry of Finance)

आलोचकों का कथन है कि वर्तमान समय में वित्त मन्त्रालय न केवल वित्तीय पक्ष की बल्कि विकास योजनाओं तथा उद्यमों के कार्यक्रमों की तकनीकी बारीकियों की जाँच करने का प्रयास करता है जिनमें उनकी योग्यता संदिग्ध है। इसके परिणामस्वरुप न केवल अन्य विभाग परेशान होते हैं बल्कि समय नष्ट होता है। श्री अशोक चन्द्रा ने लिखा है, "अन्त में वित्त मन्त्रालय राजी हो जाता है, लेकिन बहुत सारी बहस के बाद और उसका नियन्त्रण प्रस्थापना प्रस्तावों (Establishment Proposals) पर स्थापित हो जाता है जो पूरी लागत का नगण्य अंश होते हैं, इसलिए वित्त मन्त्रालय मक्खी पर तो लड़ते हैं परन्तु फिर भी उन्हें ऊँट ही निगलना पड़ता है।"

व्यय पर व्यापक नियन्त्रण की बात की चर्चा करते हुए अमेरिकी विशेषज्ञ डी. एपलिबी (D. Appleby) ने आलोचना की थी कि, "आवश्यकता इस बात की है कि वित्त मंत्रालय बजाय इसके कि बजट बनाने के पश्चात् खर्चो पर व्यापक नियन्त्रण लगाए, उसको अपना अधिक ध्यान श्रेष्ठतर बजट निर्माण पर ही केन्द्रित करना चाहिए। वस्तुतः व्यय का गूढ़ एवं लाभप्रद नियंत्रण तो केवल कार्यक्रम योजनायें बनाने वाले अभिकरणों (Agencies) में भी किया जा सकता है। ये अभिकरण उपयुक्त ढंग के बजट कार्यक्रम प्रस्तुत करना उसी समय प्रारम्भ कर सकेंगे जबकि इस श्रेष्ठतर प्रकार से द्वितीय प्रबन्ध के बारे में उन्हें अनुभव होगा। इस प्रकार वित्त मन्त्रालय अपने उत्तरदायित्व की द ष्टि से उपयुक्त प्रकार का बजट केवल तभी प्रस्तुत कर सकता है जबकि अन्य मन्त्रालय बजट निर्माण का कार्य—उन्नत तथा विकसित ढंग से करें।"

ए.डी. गोरवाला का कथन है, "वित्तीय मामलों के सम्बन्ध में, वास्तविक रुप में, "आवश्यकता नियन्त्रण की है हस्तक्षेप की नहीं। आज जो कुछ हो रहा है वह यह है कि छोटे–छोटे मामलों में उत्तेजनात्मक हस्तक्षेप किया जा रहा है जिसके परिणामस्वरुप प्रशासकीय विभागों अर्थात् सरकार के एक बड़े भाग की शक्ति तथा समय का भारी अपव्यय होता है और उसमें निराशा पैदा होती है। यह स्थिति समाप्त की जानी चाहिए।

वित्त मन्त्रालय के सम्बन्ध में अनुमान समिति के सुझाव
(Suggestions of Estimate Committee Regarding Ministry of Finance)

अनुमान समिति ने अपने नवें प्रतिवेदन में इस बात पर जोर दिया कि वित्त मन्त्रालय तथा प्रशासकीय मन्त्रालयों के मध्य समन्वय होना चाहिए और प्रशासकीय मन्त्रालयों को आर्थिक वित्तीय प्राधिकार (Financial Authority) सौंपी जानी चाहिए। समिति की सलाह थी कि प्रशासकीय मन्त्रालयों तथा वित्त मन्त्रालयों के बीच पूर्ण सौहार्द (Cordiality) की स्थापना करने के लिए इस दिशा में सक्रिय कदम उठाए जाने चाहिए ताकि वे एक–दूसरे के पूरक बने रहें और अन्तिम उद्देश्य की प्राप्ति में एक–दूसरे के सहायक रहें।

समिति ने अपनी विस्त त प्रबन्ध के अनेक पक्षों की आलोचना के साथ–साथ निम्नांकित सिफारिशें की थीं :

(1) **योजना के कार्यान्वयन का दायित्व :** वित्त मन्त्रालय द्वारा वित्तीय द ष्टिकोण से योजना पर सहमति प्रकट किए जाने के पश्चात् योजना के व्यापक कार्यान्वयन तथा उस पर धन व्यय करने का उत्तरदायित्व संबंधित प्रशासकीय मंत्रालय का होना चाहिए जिसको यह अधिकार भी होना चाहिए कि वह योजना के उपशीर्षकों की धनराशियों में उस सीमा तक परिवर्तन कर सके जहाँ तक की योजना की कुल लागत पर उसका प्रभाव पड़े।

(2) **योजना की समुचित रुपरेखा :** किसी भी योजना का आरम्भ करने से पहले, उसकी समुचित रूप–रेखा बनाई जानी चाहिए और इस बात की भी पड़ताल की जानी चाहिए कि उस योजना के लिए आवश्यक धन उपलब्ध है या नहीं अथवा उपयुक्त समय पर वह उपलब्ध किया जा सकता है या नहीं।

अध्याय - 11
वित्तीय शक्तियों का प्रत्यायोजन
(Delegation of Financial Powers)

केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के वित्तीय नियमों के अनुसार जो वित्तीय शक्तियाँ किसी अन्य विभाग अथवा प्राधिकरण को सौंपी नहीं गई होती हैं वे वित्त मन्त्रालय/विभाग में निहित होती हैं। संविधान के अनुच्छेद 77(3) तथा 166(3) के अनुसार राष्ट्रपति तथा राज्यपालों को केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों का कामकाज चलाने के लिए शक्तियाँ प्रदान की गई हैं जो प्रशासनिक विभागों तथा अधीनस्थ प्राधिकरणों को सौंपी गई शक्तियों की पुस्तकों में मिलता है। काम काज के वर्तमान नियमों के अनुसार, कोई भी विभाग, वित्त मन्त्रालय की पूर्व अनुमति के बिना निम्न प्रकार के आदेश नहीं दे सकता :

(अ) राजस्व के परित्याग अथवा इस प्रकार के व्यय जिनका विनियोजन अधिनियम में कोई प्रावधान न किया गया हो,

(ब) किसी भूमि अथवा राजस्व का समानुदेशन (Assignment) छूट प्रदान करना, खनिज अथवा वनों का पट्टा अथवा अनुज्ञप्ति (Licence) प्रदान करना, पानी अथवा विद्युत पर अधिकार प्रदान करना अथवा इस प्रकार की छूट के सम्बन्ध में कोई विशेषाधिकार प्रदान करना,

(स) पदों की श्रेणी की संख्या, अथवा किसी सेवा की संख्या अथवा सरकारी कर्मचारियों के वेतन, भत्तों सेवा की उन शर्तो से सम्बन्धित हों जिनके आर्थिक प्रभाव हों, अथवा

(द) व्यय होने अथवा न होने पर भी जिनके वित्तीय पहलू हों।

उपर्युक्त शक्तियों के वर्णन से वित्त विभाग के नियन्त्रण का पता चलता है। विभाग के बजट के पास हो जाने के बाद भी वित्त का व्यय पर पूरा नियन्त्रण बना रहता है। इस नियन्त्रण के विरोध तथा पक्ष में बहुत से तर्क दिये जाते हैं। जो विरोध में हैं, उनका कहना है कि यह नियन्त्रण व्यर्थ में रुकावट डालता रहता है तथा इसके विकास कार्यक्रमों की गति बहुत धीमी भी पड़ जाती है जो इस नियन्त्रण के पक्ष में हैं उनका कहना है कि वित्त मन्त्रालय को धन सम्बन्धी सभी प्रबन्ध करने होते हैं, अतः वित्त मन्त्रालय/विभाग का प्रभावशाली नियन्त्रण बहुत आवश्यक है।

ब्रिटेन में सन् 1918 ई॰ में हालडेने समिति (Haldane Committee) ने वित्त मन्त्रालय के प्रभावशाली नियन्त्रण के पक्ष में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा है, "कुल मिलाकर, अनुभव से यह पता लगता है कि कर दाता के हितों को खर्च करने वाले विभागों पर नहीं छोड़ा जा सकता।" (On the Whole, experience seems to show that the interest of the taxpayers cannot be left to the spending departments.)

वित्त मन्त्रालय के इस प्रभावशाली नियन्त्रण तथा अन्य विभागों को व्यय सम्बन्धी दी गई सीमित शक्तियों के बारे में उस समय उतनी आलोचना नहीं थी जब प्रशासन का कार्य केवल कानून तथा व्यवस्था बनाये रखना तथा देश की सुरक्षा करना ही था। जैसे ही प्रशासन ने विकासशील कार्यो को अपने हाथ में लिया, वित्त मन्त्रालय के इस कठोर नियन्त्रण पर बहुत से प्रश्न चिन्ह लगने शुरु हो गये।

गोपाल स्वामी आयंगर ने अपने सरकारी तन्त्र का पुनर्गन (1949) के प्रतिवेदन में वर्तमान वित्तीय परामर्श में विलम्ब तथा कमियों को उद्घाटित करते हुए लिखा है, "इस पद्धति में इस प्रकार के सुधार लाने की आवश्यकता है जिससे व्यक्तिगत मन्त्रालयों के उत्तरदायित्व बढ़े तथा उनमें नैराश्य (Frustration) की भावना को दूर करें।" ए० डी० गोरवाल (A.D. Gorwala) ने सुझाव दिया है, "वित्तीय मामलों में नियन्त्रण की आवश्यकता है न कि छोटे–छोटे मामलों में हस्तक्षेप। इस हस्तक्षेप से प्रशासकीय विभागों में जो कि सरकार का बहुत बड़ा भाग होते हैं, समय और शक्ति का बहुत नाश होता है तथा नैराश्य बढ़ता है। इसे दूर किया जाना चाहिए।" इसी सम्बन्ध में भारत के प्रसिद्ध भूतपूर्व नियन्त्रक तथा महालेखाकार, अशोक चन्द्रा ने कहा है,"नियन्त्रण की वर्तमान अवधारणा में तकनीकी ब्यौरा भी शामिल है, यद्यपि वित्त विभाग इस प्रयोजन के लिए पूर्ण रूप से सज्जित (Equipped) नहीं होता। परिणाम स्वरूप जो आक्षेप (Objections) उठाई जाती हैं, वे प्रायः प्रारम्भिक तथा अज्ञानी स्वरूप की होती हैं। इससे न केवल गुस्सा ही बढ़ता है, बल्कि समय भी नष्ट होता है। अन्ततः ये आपत्तियां प्रायः हट ही जाती हैं, यह अन्तहीन बहस के बाद होता है, नियन्त्रण केवल स्थापना के ही प्रस्तावों पर प्रभावी होता है जो पूर्ण रूप व्यय का एक तुच्छ भाग होता है।"

अमेरिकी विद्वान डॉ॰ पाल एपल्बी (Paul Appleby) भारतीय प्रशासन के अत्याधिक केन्द्रित स्वरूप से विस्मित हो गये थे। बहुत मामूली सी बातों को भी उच्चाधिकारी के लिए भेजना उन्हें भारतीय प्रशासन की एक बड़ी कमजोरी लगीं। उन्हीं के शब्दों में "बजट एक श्रेष्ठ उदाहरण है। वास्तव में जब इसे पारित किया जाता है, तब इसका निर्धारण नहीं किया जाता, किन्तु इसे वर्ष भर में दिन प्रति दिन बनाया जाता है। सामान्य निर्धारण के बाद भी विस्त त नियन्त्रण से विलम्ब, नैराश्य, यहाँ तक कि सबसे उच्च स्तर पर लिए गए निर्णय भी मलियामेट हो जाते हैं।"

लोक सभा की अनुमान समिति ने अपने नवें प्रतिवेदन। (1953-54) में टिप्पणी करते हुए कहा है कि वर्तमान वित्तीय नियन्त्रण पद्धति योजनाओं के शीघ्र क्रियान्वयन में परेशान करने का एक स्त्रोत है। समिति के अनुसार पुरानी पद्धति की जटिल तथा बोझिल प्रक्रियायें राष्ट्रीय निर्माण के कार्यो में वांछित प्रगति प्राप्त करने में बहुत बाधक हैं। पुरानी पद्धति से प्रतिबन्धित (Conditioned) होने के कारण प्रशासनिक विभाग वित्त मन्त्रालय को एक ऐसे संगठन के रूप में देखते हैं जिसे उनके लिए निर्णय लेने चाहिए। वित्त मन्त्रालय भी प्रशासनिक विभागों से आए हुए प्रस्तावों के महत्व अथवा आवश्यकता को ध्यान न देते हुए उनकी छानबीन तथा आलोचना करने में आभार अनुभव करता है। समिति ने यह भी अनुभव किया कि वह बीमारी इतनी पुरानी हो गई है कि जिन मामलों का निपटारा करने की अंतिम शक्तियाँ प्रशासनिक विभागों को दे दी गई हैं, उनमें भी वे उत्तरदायित्व से बचने के लिए वित्त मन्त्रालय से परमर्श लेते हैं। अतः प्रशासनिक विभागों को अधिक अधिकार देने की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में लोक सभा की अनुमान समिति ने नवें प्रतिवेदन (1953-54) में "वित्तीय, प्रशासनिक तथा सुधार" में प्रशासनिक तथा वित्तीय विभागों में समन्वय की आवश्यकता पर जोर डाला तथा प्रशासनिक विभाग को और अधिक वित्तीय शक्तियाँ देने की बात कही। अनुमान समिति के निम्न सुझाव उल्लेखनीय हैं :

(अ) किसी भी योजना के प्रारम्भ करने से पहले उस पर अच्छी तरह से विचार विमर्श किया जाना चाहिये। इस बात का निश्चय कर लेना चाहिए कि इसके लिए आवश्यक धन उपलब्ध है तथा उचित समय पर मिल सकता है। विस्त त विवरण तथा अनुमान बनाए जाने चाहिए ताकि वित्त मन्त्रालय उस योजना की स्वीकृति दे सके तथा वित्तीय सहमति प्रदान कर सके।

(द) वित्त मन्त्रालय के द्वारा वित्तीय पहलु के अनुसार योजना पर सहमति प्राप्त हो जाने के पश्चात योजना का विस्त त क्रियान्वयन तथा इस पर व्यय करना प्रशासनिक विभाग का उत्तरदायित्व होना चाहिए। प्रशासनिक विभाग को योजना के उप–शीर्षों में, पूर्ण परिव्यय (Outlay) को प्रभावित किए बिना परिवर्तन करने की शक्ति होनी चाहिए।

वित्त मन्त्रालय तथा प्रशासनिक विभागों में और अधिक अच्छे समन्वय की दुराग्रही (Pressing) आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने प्रशासनिक मन्त्रालयों/विभागों को और अधिक वित्तीय शक्तियों के प्रत्यायोजन पर सन् 1955 ई० में विचार किया। सन् 1957 में केबिनेट सचिवालय के संगठन एवं प्रणाली संभाग (Organisation and Method Division) ने "मन्त्रालयों तथा विभागाध्यक्षों को प्रत्यायोजित वित्तीय तथा अन्य सम्बन्धित शक्तियों" शीर्षक की एक पुस्तिका प्रकाशित की जिसमें उन्हें दी गई शक्तियों का वर्णन था।

भारत सरकार ने दिसम्बर 1958 ई० में "शक्तियों के प्रत्यायोजन के नियम, 1959" (Delegation of Powers, Rule 1959) बनाए। इन नियमों के अनुसार कुछ सामान्य सीमाओं के अन्तर्गत प्रशासकीय मन्त्रालयों को विस्त त अधिकार दिए गए। पुनर्विनियोजन सम्बन्धी बहुत अधिकार दिए गए। इसमें यह शर्त थी कि पुनर्विनियोजन करते समय व्यय अनुदान क्षेत्र के भीतर ही होना चाहिए। केन्द्रीय सरकार के विभाग को 50 लाख रुपए तक के सामान को खरीदने का अनुबन्ध करने का अधिकार प्रदान किया। स्थायी और अस्थायी पदों की रचना तथा आकस्मिक और विविध व्यय करने के सम्बन्ध में प्रशासकीय विभागों को पर्याप्त शक्तियाँ दी गईं।

भारत सरकार ने 1 जून, 1962 से प्रशासकीय मन्त्रालय/विभागों को और अधिक शक्तियाँ दीं। इसकी मुख्य विशेषताओं का वर्णन हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं :

(अ) वित्त मन्त्रालय को प्रशासकीय मन्त्रालयों द्वारा बनाई गई योजनाओं को बजट में सम्मिलित करने से पहले उचित छानबीन करनी चाहिए। इसलिए प्रशासकीय मन्त्रालयों की अपनी योजनाओं को जहाँ तक सम्भव हो सके विस्त त तथा सूक्ष्म रूप में बनाकर बहुत महीने पहले जुलाई मास के आरम्भ में वित्त मन्त्रालय के पास पहुँचा देना चाहिए।

(ब) महालेखाकार से प्रशासकीय विभागों को नियमित तथा समय पर लेखा सम्बन्धी आँकड़े पहुँचाने के प्रबन्ध किए गए ताकि वे विनियोजन सम्बन्ध में हुए व्यय को जान सकें।

(स) जो योजनायें विस्त त रूप से तैयार न हों उनके बारे में भी एक मुश्त प्रावधान किया जा सकता है। परन्तु उन प्रावधानों के सम्बन्ध में स्वीकृति वित्त विभाग द्वारा स्वीकृति के पश्चात् ही मिल सकती है।

(द) प्रशासनिक मन्त्रालयों को प्रारम्भिक इकाइयों में पुनर्विनियोजन की शक्तियाँ दी गई।

(ज) प्रशासनिक मन्त्रालयों को 3000 रुपए प्रतिमास तक के वेतनमानों के पदों को स जन करने का अधिकार दिया गया।

(च) प्रशासनिक मन्त्रालयों को विशेष परिस्थितियों में किसी योजना पर दस प्रतिशत या एक करोड़ रुपए जो भी कम हो खर्च करने का अधिकार दिया गया।

1962 ई० के चीनी आक्रमण के कारण इन शक्तियों पर निम्न दो अंकुश लगाए गए—

(अ) सुरक्षा तथा योजना के उद्देश्यों के लिए आवश्यक पदों के अतिरिक्त बाकी सभी पदों का सजन गह मन्त्रालय तथा वित्त मन्त्रालय की सहमति से ही हो सकता है।

(ब) नए निर्माण के लिए प्रस्ताव भले ही बजट द्वारा स्वीकृत हो, केवल वित्त मन्त्रालय की सहमति से ही स्वीकृत हो सकते हैं।

जून 1962 ई० की प्रत्यायोजन योजना (Delegation Scheme) की 1967 ई० में समीक्षा की गई। इस समीक्षा के आधार पर अक्तूबर, 1968 से एक नई योजना प्रारम्भ की गई। इसमें भी ऐसे प्रबन्ध किए गए कि वित्त मन्त्रालय नई योजनाओं को बजट में सम्मिलित करने से पहले अच्छी तरह से छानबीन कर ले। प्रशासनिक मन्त्रालयों को अनुदान के भीतर पुनर्विनियोजन की पूर्ण शक्तियाँ प्रदान की गई किन्तु योजना के लिए निश्चित धन को गैर योजना कार्यों के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। प्रशासकीय व्ययों (वेतन, भत्तों तथा अन्य प्रभारों) में एक ही अनुदान के अधीन वद्धि नहीं की जा सकती। प्रशासकीय मन्त्रालयों को वित्तीय परामर्श के प्रबन्ध किए जाने चाहिए। मन्त्रालयों को वित्त मन्त्रालय की परामर्श से बनाए गए नियमों के अनुसार अनुदान तथा ऋण देने की पूर्ण शक्तियाँ प्रदान की गईं।

सन् 1968 ई० की वित्तीय शक्तियों के प्रत्यायोजन की योजना 1962 ई० की योजना पर निश्चित रूप से एक सुधार थी। सन् 1973 ई० में इस योजना पर पुनर्विचार किया गया तथा अप्रैल 1975 में एक और नई योजना बनाई गई जिसकी मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

(अ) मन्त्रालयों को अपने अधीनस्थ प्राधिकरणों के पदों के सजन घाटों को बट्टे खाते में डालने (Write off) तथा मौलिक बजट के प्रावधानों के 10% से अधिक राशि के लिए पुनर्विनियोजन की शक्ति के सिवा अपनी सभी शक्तियों का पुनः प्रत्यायोजन कर सकते हैं।

(ब) मन्त्रालय किसी भी अधिकारी को जो निर्धारित मानदण्ड के अनुसार हो, विभागाध्यक्ष घोषित कर सकते हैं।

(स) ये बढ़ी हुई शक्तियाँ सरकार द्वारा समय—समय पर निर्धारित प्रक्रियाओं तथा मितव्ययता सम्बन्धी दिए गए निर्देशों से नियन्त्रित होती रहेगी।

वित्तीय शक्तियों के प्रत्यायोजन की समस्याएँ
(Problems of Delegation of Financial Powers)

प्रशासनिक मन्त्रालयों/विभागों को वित्तीय शक्तियाँ के प्रत्यायोजन के सम्बन्ध में बहुत सी समस्याओं का उल्लेख किया जाता है। कुछ विद्वानों का विचार है कि प्रशासनिक विभागों में वित्तीय मामलों को समझने की तकनीकी योग्यता नहीं होती। कुछेक के अनुसार करदाता के हितों की खर्च करने वाले मन्त्रालयों/विभागों के हाथों सुरक्षा नहीं हो सकती। अतः वित्तीय मामलों में वित्तीय मन्त्रालय/विभाग को प्रभावशाली शक्तियाँ तथा नियन्त्रण दिये जाने की आवश्यकता है।

बहुत बार ऊपर से हस्तक्षेप तथा दबाव के कारण प्रत्यायोजित शक्तियों का प्रयोग करना बहुत कठिन हो जाता है। उच्चाधिकारियों द्वारा मौखिक रुप से दी गई हिदायतें भी प्रत्यायोजन को निष्प्रभाव कर देती हैं।

बहुत बार अधिकारियों को उचित प्रशिक्षण तथा अभिविन्यास (Orientation) के बिना ही शक्तियों का प्रत्यायोजन कर दिया जाता है। बहुत बार आवश्यक प्रशासनिक सुविधाओं तथा लेखा सम्बन्धी सहायता के बिना भी प्रत्यायोजन कर दिया जाता है।

भारतीय प्रशासन में नियमों तथा अधिनियमों का ढेर लगाने की आदत के साथ–साथ इन नियमों को नियमबद्ध करने तथा एक सुनिश्चित ढंग से नवीनतम नियमों को न रखने की आदत है। इससे प्रत्यायोजन में कठिनाई होती है।

लोक सभा की अनुमान समिति ने अपने 98 वें प्रतिवेदन में निम्न सुझाव दिए हैं :

(अ) विकास के कार्यो में मितव्ययता तथा कार्यकुशलता बढ़ाए जाने के लिए वैज्ञानिक मानदण्ड बनाए जाने चाहिए। इसके साथ–साथ लक्ष्य निर्धारित करने तथा कार्य सम्पादन को मापने के प्रयत्न भी किए जाने चाहिए।

(ब) समन्वित वित्त परामर्शदाताओं (Integrated Financial Adviser) की नियुक्ति की जानी चाहिए। इससे मन्त्रालयों/विभागों को आवश्यक भण्डार, मशीनों के लिए अतिरिक्त भागों तथा विभिन्न सामग्री को लोक हित में शीघ्रातिशीघ्र खरीदने की प्रक्रिया का पता चल सकता है।

(स) इस बात से आश्वस्त होने की बहुत आवश्यकता है कि बहुत से मन्त्रालय/विभाग तथा अधिकारी प्रत्यायोजित शक्तियों का उपयोग करें। अधिकारियों की, उत्तरदायित्व को न लेने तथा उन मामलों में जिनमें वे स्वयं भी सक्षम है को ऊपर भेजने की आदत को हतोत्साहित किया जाना चाहिए। अधिकारियों में स्वयं निर्णय लेने की आदत का विकास करना चाहिए।

वित्तीय परामर्श की पद्धति
(The System of Financial Advice)

बजट तथा वित्तीय नियन्त्रण सम्बन्धी बहुत से सुधारों की योजनाओं में मुख्य बात यही कही गई है कि वित्त मन्त्रालय/विभाग को मोटे तौर पर वित्तीय नियन्त्रण करना चाहिए। दिन प्रतिदिन के सूक्ष्म कार्य तथा मामले सम्बन्धित मन्त्रालयों पर ही छोड़ दिए जाने चाहिए। इससे प्रशासनिक मन्त्रालयों/विभागों को वित्तीय शक्तियों के प्रत्यायोजन की आवश्यकता है। इन प्रत्यायोजित शक्तियों का वित्तीय विभाग तभी उपयोग कर सकते हैं यदि उन्हें उचित वित्तीय परामर्श उपलब्ध हो।

मितव्ययता समिति (Economic Committee) जिसने सन् 1949 ई० में प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन में वित्त मन्त्रालय द्वारा किए गए नियन्त्रण को बुद्धिमत्ता पूर्ण तथा प्रगतिशील होने के स्थान पर केवल रस्मी (ritualistic) तथा अप्रभावी बताया। समिति ने सुझाव दिया कि वित्त मन्त्रालय की भूमिका अवरोधात्मक के स्थान पर रचनात्मक होनी चाहिए। नवम्बर, 1949 में एन० गोपालास्वामी आयंगर (N. Gopalaswamy Aoangar) ने भी प्रशासनिक मन्त्रालयों में स्थाई वित्तीय परामर्शदायी संगठन की वकालत की।

लोक लेखा समिति की प्रार्थना पर तत्कालीन भारत के नियन्त्रक एवं महालेखाकार, अशोक चन्दा ने प्रशासनिक मन्त्रालयों के लिए आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाताओं (Internal Financial Advisers) की पद्धति प्रारम्भ करने का सुझाव दिया। इस पद्धति के अनुसार हर मन्त्रालय में भारत सरकार के उप सचिव के पद के अधिकारी की नियुक्ति का सुझाव दिया गया। इसका मुख्य कार्य मन्त्रालय में व्यय की सही प्रगति के साथ–साथ यह देखना भी था कि मन्त्रालय विभिन्न कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में वांछित प्रगति प्राप्त करें।

सन् 1957 ई० में तत्कालीन वित्त मन्त्री टी० टी० कृष्णमाचारी ने आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाता पद्धति के स्थान पर संलग्न वित्तीय परामर्शदाता (Attached Financial Advisers) पद्धति को प्रारम्भ किया। इसके अनुसार वित्त मंत्रालय में नियुक्त पदाधिकारियों को प्रशासनिक मन्त्रालयों में प्रतिदिन के वित्त सम्बन्धी कार्यों तथा विभिन्न योजनओं को प्रारम्भ से लेकर अन्त तक निर्माण करने में परामर्श देने का काम सौंपा गया। ये पदाधिकारी, काम के भार के अनुसार अवर सचिव अथवा उप–सचिव के पद के होते थे। संलग्न वित्तीय परामर्शदाता वित्त विभाग के पदाधिकारी होने के कारण प्रशासनिक विभागों को वांछित उचित परामर्श न दे सके। अतः यह योजना असफल हो गई।

अशोक चन्दा के सुझावों पर आधारित लोक लेखा समिति की सिफारिशों के अनुसार भारत सरकार ने वित्तीय शक्तियों के प्रत्यायोजन की एक नई योजना को प्रारम्भ किया जिसे बजट निर्माण व क्रियान्वयन तथा वित्तीय नियन्त्रण के इतिहास में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर कहा जा सकता है। नई योजना 20 अगस्त 1958 को प्रारम्भ की गई। नई योजना के अनुसार हर मन्त्रालय में उचित स्तर के वित्तीय अधिकारियों की नियुक्ति की गई। इन अधिकारियों को जिनके वित्तीय परामर्शदाता, उप–वित्तीय परामर्शदाता व सहायक वित्तीय परामर्शदाता व सहायक वित्तीय परामर्शदाता नाम के पद थे। प्रशासनिक विभागों में आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाता का काम सौंपा गया। ये अधिकारी संबंधित मन्त्रालय के ही अधिकारी थे। इन्हें वेतन भी सम्बन्धित मन्त्रालय से मिलता था। इन अधिकारियों का काम सम्बन्धित मन्त्रालय के बजट सम्बन्धी मामलों, वित्तीय मामलों तथा विनियोजनाओं के सम्बन्ध में उचित नियन्त्रण में सहायता करना था। आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाता को मन्त्रालय के अधीन रखा गया। प्रशासनिक मन्त्रालयों के लिए आन्तरिक परामर्शदाता से नई प्रत्यायोजित शक्तियों के सम्बन्ध में परामर्श लेना अनिवार्य (Mandatory) कर दिया गया। जिन मामलों में आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाता की परामर्श को माना न गया हो। उन मामलों को वित्त मन्त्रालय तथा भारत के नियन्त्रक एवं महालेखाकार के ध्यान में लाने का प्रावधान किया गया।

सन् 1962 ई० में आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाता की योजना में कुछ परिवर्तन किए गए। प्रशासनिक मन्त्रालय के सचिव को किसी मामले के बारे में निर्णय लेने का अन्तिम अधिकार दिया गया। आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाता से मतभेद होने पर भी मन्त्रालय की राय सर्वोपरि मानी गई। मतभेद की दशा में अब कोई भी मामला वित्त मन्त्रालय तथा भारत के नियन्त्रक एवं महालेखाकार को न भेजने का प्रावधान किया गया।

सन् 1968 ई० में आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाता योजना में कुछ और सुधार किये गये। प्रशासनिक मन्त्रालयों में योग्य आन्तरिक वित्तीय परामर्श के महत्व पर और अधिक दबाव डाला गया। इन परामर्शदाताओं के कार्य क्षेत्र की व द्धि की गई। इन परामर्शदाताओं के चुनावों की शक्ति प्रशासनिक विभागों को दे दी गई आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाताओं के उचित प्रशिक्षण पर भी दबाव डाला गया।

प्रशासनिक सुधार आयोग ने भी वित्तीय परामर्श के प्रश्न पर विचार किया। प्रशासनिक सुधार आयोग के वित्तीय प्रशासन अध्ययन दल ने निम्नलिखित सुझाव दिये :

(अ) आन्तरिक वित्तीय परामर्शदाता की नियुक्ति सभी मन्त्रालयों के लिए अनिवार्य (Obligatory) होनी चाहिए। इन अधिकारियों को विभाग के वित्त तथा बजट कोष्ठ (Cell) का प्रभारी होना चाहिए। ये मन्त्रालय के अधिकार क्षेत्र में वित्तीय प्रबन्ध तथा नियन्त्रण के लिए उत्तरदायी होने चाहिए।

(ब) वित्तीय परामर्शदाताओं से परामर्श की प्रक्रिया विभिन्न मन्त्रालयों की अपनी इच्छा पर न छोड़ी जाए। इस सम्बन्ध में प्रशासनिक मन्त्रालयों के पथ प्रदर्शन के लिए आदर्श नियम बनाये जाने चाहिए।

(स) प्रशासनिक विभागों की वित्तीय एवं लेखा शाखाएँ अच्छी तरह से सशक्त बनाई जानी चाहिए। इनमें अच्छी तरह से शिक्षित तथा प्रशिक्षित कर्मचारियों की नियुक्ति की जानी चाहिए।

(द) वित्तीय परामर्शदाताओं को अपने साथ प्रशासनिक अनुभव लाना चाहिए। इस अनुभव में वित्तीय प्रशासन की योग्यता बढ़ाए जाने के लिए भी प्रयत्न किए जाने चाहिए।

(ज) वित्तीय शाखाओं तथा प्रशासन की शाखाओं के मध्य अधिकारियों का फेर बदल किए जाने का प्रावधान होना चाहिए।

अनुमान समिति के सुझावों के अनुसार सन् 1975-76 में समन्वित वित्तीय परामर्शदाता (Integrated Financial Advisor) योजना को अपनाया गया। इस नई योजना के अनुसार समन्वित वित्तीय परामर्शदाता की नियुक्ति प्रशासनिक मन्त्रालय तथा वित्तीय मन्त्रालय द्वारा संयुक्त रूप में करने की व्यवस्था है। समन्वित वित्तीय परामर्शदाता संयुक्त सचिव के पद का अधिकारी है। यह वित्त मन्त्रालय तथा प्रशासनिक मन्त्रालय दोनों के प्रति उत्तरदायी है। इसकी वार्षिक गुप्त रिपोर्ट का वित्त मन्त्रालय तथा प्रशासनिक मन्त्रालय दोनों मिलकर लिखते हैं। इसका कर्तव्य प्रशासनिक मन्त्रालयों को दी गई परिवर्धित वित्तीय प्रत्यायोजित शक्तियों के प्रयोग में प्रशासनिक मन्त्रालयों की सहायता करना है। यह वित्त मन्त्रालय के निर्देशन के अनुसार भी कार्य करता है। मन्त्रालय का सचिव इसकी परामर्श को लिखित रुप में अमान्य कर सकता है। यह बजट बनाने तथा बजट पर खर्च करने में प्रशासनिक मन्त्रालयों की सहायता करता है।

निष्पादन बजट तथा शून्य बजट के प्रारम्भ होने पर तो समन्वित वित्तीय परामर्शदाता के उत्तरदायित्व में और व द्धि हो गई है। समन्वित वित्तीय परामर्शदाता की योजना पहली सभी योजनाओं से अधिक अच्छी है। किन्तु फिर भी इसमें और सुधार की आवश्यकता है। इनके कार्यो तथा कार्यविधियों को और अधिक स्पष्ट करके लिखने की आवश्यकता है। समन्वित वित्तीय परामर्शदाता की स्थिति के बारे में प्रो॰ थावराज ने ठीक ही लिखा है, "वह निषेधाधिकार रखने वाला नहीं है, और न ही वह लेखा के सम्बन्ध में आपत्ति उठाने वाला है। वह भी प्रबन्ध का वैसा ही भाग है जैसे उसके दूसरी शाखाओं में काम करने वाले साथी हैं।"

अध्याय - 12
वित्त आयोग : गठन, कार्य और भूमिका
(Finance Commission : Composition, Functions and Role)

भारतीय संविधान की धारा 280 के अन्तर्गत राष्ट्रपति को संविधान लागू होने की तिथि के दो वर्ष के भीतर तदुपरान्त प्रति पांच वर्ष बाद वित्त आयोग की नियुक्ति का अधिकार दिया गया है। संविधान में वित्त आयोग के चार कार्य निश्चित किये गये :

(1) केन्द्र और राज्यों के बीच तथा विभिन्न राज्यों के बीच वितरित होने वाली आय के विभाजन का आधार निश्चित करना।

(2) भारत की संचित निधि में से राज्यों को दिए जाने वाले सहायता अनुमानों के संबंध में सिद्धान्त निश्चित करना।

(3) केन्द्र और राज्य के बीच होने वाले वित्तीय समझौते को जारी रखने या उसमें परिवर्तन और संशोधन की सिफारिश करना।

(4) राष्ट्र के वित्तीय हित में राष्ट्रपति द्वारा सूचित किए जाने पर किसी अन्य विषय पर विचार करना।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत में वित्त आयोग की नियुक्ति

भारत के संघीय वित्त-व्यवस्था के नियमित पुनर्निरीक्षण तथा उसमें आवश्यक संशोधन के लिए प्रति पांच वर्ष के बाद वित्त-आयोग के गठन की व्यवस्था की गई है। केन्द्र के राज्यों की ओर वित्तीय साधनों के हस्तांतरण के संदर्भ में वित्त-आयोग को निर्णायक स्थान प्राप्त है। राज्यों को संघीय उत्पादन-शुल्कों और आय-कर की प्राप्ति में हिस्सा तथा गैर-योजना कार्यों के लिए सहायक अनुमानों का निर्धारण वित्त-आयोग की सिफारिशों द्वारा ही होता है। इस प्रकार संवैधानिक द ष्टि से वित्त आयोग केन्द्र और राज्यों के वित्तीय संबंधों का एकमात्र तथा वास्तविक निर्धारक है। भारतीय संविधान के अनुसार, वित्त-आयोग के प्रमुख चार कार्य हैं - (i) एक ओर, केन्द्र एवं राज्यों के बीच तथा दूसरी ओर, विभिन्न राज्यों के बीच विभाज्य करों की प्राप्तियों के वितरण का आधार निर्धारित करना (ii) उन सिद्धान्तों का निर्धारण करना, जिनके अनुसार भारत की संचित निधि से राज्यों को योजना-स्तर कार्यों के लिए सहायक-अनुदान दिए जाने चाहिएं। (iii) संघ सरकार तथा राज्य सरकारों के बीच होने वाले वित्तीय समझौतों को जारी रखने अथवा उनमें परिवर्तन और संशोधन की सिफारिश करना (iv) देश के वित्तीय हित में तथा राष्ट्रपति द्वारा सूचित किए जाने पर किसी अन्य विषय पर विचार करना भी वित्त आयोग का कार्य है।

वित्त आयोग का गठन
(Composition of Finance Commission)

वित्त-आयोग की संरचना निम्न प्रकार की होती है :

(क) 1 अध्यक्ष (Chairman)

(ख) 4 अन्य सदस्य (Other members)

वित्त आयोग के अध्यक्ष का चयन ऐसे व्यक्यिों में से किया जाना चाहिए जिसे लोक कार्यों का पर्याप्त अनुभव हो और अन्य सदस्यों का चयन भी उन व्यक्तियों में से किया जाना चाहिए जिनमें इस प्रकार के गुण पाये जाते हों।

दूसरे शब्दों में, अध्यक्ष को लोक क्रियाओं का पूरा ज्ञान होना चाहिए और उसे लोक आवश्यकताओं की जानकारी होनी चाहिए जनता उसके बारे में जानती हो अथवा वह जनता का प्रतिनिधित्व करता हो।

अन्य चार सदस्य-उच्च न्यायालय (High Court) के न्यायाधीश होने चाहिए। इनको लोक प्रशासन और वित्तीय प्रशासन का गहरा ज्ञान होना चाहिए। वित्त के बारे में जानकारी होनी चाहिए। इनका ज्ञान अर्थशास्त्र विषय में बहुत ज्यादा होना चाहिए। इन्हें सरकारी खातों और वित्त के क्षेत्र में भी अच्छा ज्ञान होना चाहिए।

आयोग को अपने कार्य की प्रक्रिया का निर्धारण करने की पूरी शक्ति दी जाती है तथा इसे किसी भी न्यायालय अथवा दफ्तर के दस्तावेजों, सार्वजनिक रिकार्डों, गवाहों को बुलाने, जांचने आदि के मामलों में सिविल कोर्ट के पूरे अधिकार प्राप्त होते हैं।

वित्त आयोग ऐसी सूचना जो आयोग की द ष्टि से उपयोगी हो, की जानकारी के लिए किसी भी व्यक्ति को बुलाने की शक्ति रखता है। भारत में किसी भी कोने में स्थित व्यक्ति को आयोग गवाही अथवा जानकारी के लिए बुला सकता है।

भारत में वित्त आयोग की नियुक्ति इस अर्थ में महत्वपूर्ण होती है कि यह परिवर्तित आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों के अनुसार केन्द्र एवं राज्यों के बीच वित्तीय संबंधों में परिवर्तन लाता हैं। वित्त आयोग की व्यवस्था से केन्द्र और राज्यों के वित्तीय संबंध लोचपूर्ण बने रहते हैं। संविधान लागू होने के पश्चात् भारत में अब तक ग्यारह वित्त आयोग नियुक्त हो चुके हैं। श्री जे. पी. नियोगी की अध्यक्षता में पहला वित्त आयोग सन् 1951 में, श्री के. सन्थानम की अध्यक्षता में दूसरा वित्त आयोग, सन् 1956 में, श्री ए. के. चांदा की अध्यक्षता में तीसरा वित्त आयोग सन् 1960 में न्यायमूर्ति पी. वी. राजामन्नार की अध्यक्षता में चौथा वित्त आयोग 1964 में, श्री महावीर त्यागी की अध्यक्षता से पांचवा वित्त आयोग सन् 1968 में, श्री ब्रह्मानन्द रेड्डी की अध्यक्षता में छठा वित्त आयोग सन् 1972 में, श्री जे. एम. सीलट की अध्यक्षता में सातवां वित्त आयोग, सन् 1977 में श्री वाई. वी. चाह्वाण की अध्यक्षता में, आठवां वित्त आयोग सन् 1982 में, श्री साल्वे की अध्यक्षता में नवां वित्त आयोग, सन् 1987 में, तथा दसवां वित्त आयोग 1995 में श्री के.सी. पंत की अध्यक्षता में अपनी सिफारिशें प्रस्तुत कर चुके हैं। वित्त आयोग सामान्यतया अपनी सिफारिशें एक दो विशिष्ट मुद्दों अथवा ऐसे को अपनी राय देता है जिन पर राष्ट्रपति द्वारा ठोस वित्त के द ष्टिकोण से विशिष्ट मुद्दों पर आयोग से राय मांगी जाती है।

आयोग के कार्य
(Functions of the Commission)

आयोग का कार्य निम्नलिखित के बारे में राष्ट्रपति को सिफारिश करना होगा :

(क) संघ तथा राज्यों के बीच उन करों की निबल या शुद्ध प्राप्तियों का वितरण जोकि उनके बीच बांटे जाने हैं और ऐसी प्राप्तियों में प्रत्येक राज्य के हिस्से का निर्धारण।

(ख) उन सिद्धान्तों का निर्धारण, जिसके आधार पर भारत की संचित निधि में से राज्यों को सहायक अनुदान दिए जा सके।

(ग) भारत सरकार तथा धारा 306 अथवा 278 के उपबन्ध 1 की प्रथम अनुसूची के भाग 'ख' में उल्लिखित किसी भी राज्य के बीच हुए किसी समझौते की शर्तों में संशोधन अथवा उनका यथापूर्व जारी रहना।

(घ) अन्य कोई भी मामला जो देश की सुचारू वित्त व्यवस्था के हित में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को सौंपा जाये।

इस प्रकार, वित्त आयोग निम्न मामलों के संबंध में राष्ट्रपति को अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करेगा :

(1) उन करों की निबल या शुद्ध प्राप्तियों का प्रतिशत, जोकि संघ तथा राज्यों के बीच बॉटे जाने हैं।

(2) ऐसे करों की प्राप्तियों में प्रत्येक राज्य के हिस्से का बंटवारा प्रतिशत में।

(3) जनजाति अथवा कबीले क्षेत्रों (tribal areas) के लिए सहायक अनुदान।

(4) आंतरिक सीमा-शुल्कों को लगाने के संबंध में भारत सरकार द्वारा भाग 'ख' के किसी भी राज्य के साथ हुये समझौते की शर्तों का संशोधन करना अथवा उसका यथापूर्व जारी रहना।

(5) उन सिद्धान्तों का निर्धारण जिनके आधार पर भारत की संचित निधि में से राज्यों को सहायक अनुदान दिए जा सकें।

(6) किसी राज्य-विशेष के लिए विशिष्ट अनुदान।

आयोग अपनी कार्य-पद्धति का स्वयं निर्धारण करेगा और उसे अपने कार्यों के सम्पादन में ऐसी शक्तियां प्राप्त होगीं जोकि संसद कानून बना कर उसे देगी।

राष्ट्रपति आयोग द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश को उस पर की जाने वाली कार्यवाही की व्याख्यात्मक टिप्पणी के साथ संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष प्रस्तुत करेंगे।

निम्नलिखित कार्य वित्त आयोग के अनिवार्य कार्य घोषित किए गए - (1) संघ तथा राज्य के बीच उन करों की निबल प्राप्तियों का वितरण, जोकिं उनके बीच बांटे जाने हों, (2) उन सिद्धान्तों का निर्धारण, जिनके आधार पर भारत की संचित निधि में से राज्यों को सहायक अनुदान दिए जा सकें। आय-कर एकमात्र ऐसा कर है जिसको अनिवार्य रूप से बांटा जाता है जबकि उत्पादन शुल्कों के बंटवारे को ऐच्छिक कहा जा सकता है।

सिफारिशों का कार्यान्वयन
(Implemenation of the Recommendations)

आय-करों का बंटवारा वित्त आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के बाद राष्ट्रपति के आदेश से होता है। यह परम्परा सी बन गई है कि भारत सरकार इस संबंध में आयोग की सिफारिशें स्वीकार कर लेती है कि विभाज्य करों का कितना प्रतिशत राज्यों को दिया जाना है और यह कि यह प्रतिशत राज्यों में किस प्रकार बांटा जाना है। राज्यों के हिस्से को संघ की संचित निधि

का भाग नहीं बनाया जाता बल्कि उन्हें सीधे राज्यों की संचित निधियों (Consolidated Funds) में डाल दिया जाता है।

संविधान की धारा 272 के अनुसार, वित्त आयोग की सिफारिशें केवल संस्तुति मात्र ही होती हैं और संघ सरकार को इस बात की छूट होती है कि उत्पादन शुल्कों (Excise Duties) के संबंध में वह वित्त आयोग की सिफारिशों की उपेक्षा कर सके। यदि वह सिफारिश न होने के बावजूद उत्पादन शुल्कों का कोई भाग राज्यों को देना चाहती है तो वह इच्छानुसार इसके लिए कानून बना सकती है। परन्तु व्यवहार में संघ सरकार उत्पादन शुल्कों के संबंध में वित्त आयोग की सिफारिशों को उस कानून के आधार के रूप में स्वीकार कर लेती है जिसे कि वह उत्पादन शुल्कों के बंटवारे के लिए संसद के समक्ष रखती है।

संवैधानिक स्थिति
(Consitutional Position)

अतः इस संबंध में संवैधानिक स्थिति इस प्रकार है :

(1) वित्त आयोग को केवल उन सिद्धान्तों के संबंध में सिफारिशें करनी होती हैं जिनके द्वारा सहायक अनुदानों का निर्धारण होता है।

(2) तब यदि राज्यों को सहायता की आश्यकता होगी तो संसद कानून बनाकर विशिष्ट अनुदानों का निर्धारण कर सकती है।

(3) संसद ऐसा कानून बनाये तब तक के लिए राष्ट्रपति वित्त आयोग की सिफारिशों पर विचार करने के बाद ऐसे अनुदानों की विशिष्ट धनराशि का आदेश दे सकता है।

वास्तव में, यह सब भ्रम इस कारण उत्पन्न हुआ है क्योंकि वित्त आयोगों ने सिद्धान्तों के निर्माण में कुछ व्यर्थ के से प्रयास किए हैं जैसे कि वित्त आयोग ने कुछ विशिष्ट धन राशियों की सिफारिश कर दी और राष्ट्रपति के तदनुसार ही उन धनराशियों के बराबर अनुदान देने के आदेश दे दिए। संघ सरकार ने आज तक कभी यह ठीक नहीं समझा कि धारा 275 (1) के अन्तर्गत संसद से इस संबंध में कानून बनाने को कहे और न किसी वर्ष से ही संसद को इस अधिकार का प्रयोग करने के लिए कहा है।

अतः व्यवहार में, आय-व्यय के भाग, उत्पादन शुल्कों की प्राप्तियों तथा सहायक अनुदानों के वितरण के संबंध में आयोग की सिफारिशें अन्तिम होती है और वे संघ सरकार द्वारा स्वीकार कर ली जाती हैं।

वित्त आयोग की भूमिका
(Role of Finance Commission)

संघात्मक शासन व्यवस्था में केन्द्र और उसके राज्यों के बीच राजस्व वितरण, इकाइयों को अनुदान देने के संबंध में आवश्यक सिफारिशों को देने तथा उचित धरातल प्रस्तुत करने के लिए वित्त आयोग जैसी संस्था की स्थापना की जाती है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 280 के अन्तर्गत वित्त आयोग संबंधी प्रावधान किया गया है। इस आयोग की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है। प्रारम्भ में संविधान के लागू होने के दो वर्ष बाद और तत्पश्चात् प्रति पांचवें वर्ष अथवा जरूरत पड़ने पर इससे भी पूर्व वित्त आयोग की नियुक्ति की व्यवस्था है। आयोग में एक अध्यक्ष की

नियुक्ति होने से आयोग के कार्य में अविच्छिन्नता आ जाती है। प्रत्येक आयोग अपने पूर्ववर्ती आयोग के कार्य से लाभ उठाता है। अनुच्छेद 280 के अनुसार वित्त आयोग मुख्यतः निम्नलिखित विषयों पर अपना प्रतिवेदन राष्ट्रपति को प्रस्तुत करता हैं :

(क) संघ और राज्यों में विभाज्य आय के वितरण का आधार;

(ख) संघ और राज्यों के बीच होने वाले वित्तीय समझौते जारी रखना या उनमें आवश्यक परिवर्तन-संशोधन करना;

(ग) संचित निधि में से राज्यों को दिए जाने वाले अनुदान के सिद्धान्तों का निर्धारण और

(घ) देश के वित्तीय हित में राष्ट्रपति द्वारा सौंपे गए किसी अन्य विषय पर विचार करना।

समय-समय पर वित्त आयोग की नियुक्ति की उपरोक्त संवैधानिक व्यवस्था का संभवतः औचित्य यह है कि अर्थव्यवस्था में परिवर्तन होने पर संघ तथा राज्यों के वित्तीय संबंधों में परिवर्तन आना अनिवार्य है और इन परिवर्तनों को ध्यान में रखकर समायोजन किया जाना चाहिए। संघात्मक सरकार में संघ तथा राज्यों के परस्पर संबंध परिवर्तनशील हैं और जीवन की समस्याओं के समान इनकी समस्याओं को भी सदा के लिए एक ही बार हल नहीं किया जा सकता। वित्त आयोग नवीन परिवर्तनों के संदर्भ में समायोजन का श्रेष्ठ साधन है। संविधान के संदर्भ में वित्तीय आयोग का अधिनियम 1951 में पारित किया गया जो कि वित्त आयोग की निश्चितता के बारे में था। इसका अध्यक्ष उस व्यक्ति को बनाया जाता है जोकि सार्वजनिक मामलों में दिलचस्पी रखता हो तथा इसके साथ ही जिस व्यक्ति को सार्वजनिक जीवन का पर्याप्त अनुभव प्राप्त हो। दूसरे सदस्यों में से एक अन्य सदस्य ऐसा होना चाहिए जो कि न्यायालय में जज या निर्णायक के रूप में रहा हो। एक ऐसा व्यक्ति भी होना चाहिए जिसे वित्तीय क्षेत्र में पारंगतता प्राप्त हो। चौथा सदस्य ऐसा व्यक्ति होता है जिसे अर्थशास्त्र का ज्ञान हो। इस प्रकार अर्थ के ज्ञाता, गणित, न्याय एवं सार्वजनिक क्षेत्र में प्रसिद्ध व्यक्तियों का यह आयोग बनाया जाता है।

आयोग संघ एवं राज्यों के बीच राजस्व के वितरण जैसे जटिल किन्त महत्वपूर्ण प्रश्नों से संबंध रखता है। वित्त आयोग से यह अपेक्षा की जाती है कि वह एक और तो राज्यों मे परस्पर दूरी और दूसरी और केन्द्रीय और राज्यों के बीच होने वाली विवादों के निपटारे में निर्णायक भूमिका अदा करेगा। दूसरे शब्दों में, आयोग का प्रमुख कर्तव्य आयकरण के प्रमुख साधनों को वितरित करने हेतु तथा राज्यों के मध्य अपना प्रतिवेदन या फैसला प्रस्तुत करने का है। एक व्यवस्था यह भी है कि राष्ट्रपति अन्य मामलों जैसे वित्त आदि के विषय में हस्तक्षेप कर सकता है। किन्तु आयकर के संबंध में उसकी सिफारिशों का अध्ययन करने के बाद राष्ट्रपति अपने आदेश द्वारा वितरण की प्रणाली एवं प्रतिशत भाग निर्धारित करता है। इस कार्य में संसद प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लेती। वित्त आयोग एक गैर-राजनीतिक संस्था है। इसलिए धारा 280 के माध्यम से वित्त आयोग को यह अधिकार है कि वह राज्यों के बीच आयकर वितरित करे, साथ ही राज्यों को दी जाने वाली सहायता का निर्धारण करे किन्तु उल्लेखनीय यह है कि आयोग राज्यों की आय के सम्पूर्ण साधनों के संबंध में अपनी सिफारिश प्रस्तुत नहीं कर सकता। विकास कार्यों के संबंध में साधनों का वितरण केन्द्रीय सरकार योजना आयोग के परामर्श से करती है। राज्यों को विकास कार्यों के संबंध में दी जाने वाली सहायता की मात्रा निश्चित करने में योजना आयोग का अधिक हाथ रहता है। योजना आयोग के इस अधिकार के कारण वित्त आयोग को यह अधिकार है कि वह योजना आयोग द्वारा निर्धारित वित्तीय सहायता की मात्रा कम कर सकता है किन्तु व्यावहारिक द ष्टि से वह ऐसा नहीं कर पाता है। वित्त आयोग से संबंधित धारा 280 आयोग के कार्यों को

अधिक विस्त त अधिकार देती है। इसके द्वारा आयोग को यह अधिकार दिया गया हैं। कि सुद ढ़ वित्त की स्थापना के लिए वित्त आयोग समय-समय पर अपनी सिफारिशों के संबंध में पूछताछ कर सकता है।

संविधान की धारा 203 वित्त आयोग को यह अधिकार देती है कि वित्त आयोग वे सिद्धान्त निर्धारित करे जिनके आधार पर केन्द्र राज्यों को अनुदान देगा। वित्त आयोग के सामने भी महत्वपूर्ण समस्याओं में संविधान की धारा 275 के अन्तर्गत विभाजन योग्य केन्द्रीय कोष और राज्यों के दिए जाने वाले अनुदान के विभाजन के सिलसिले में नियम और सिद्धान्त तय करना था। संविधान में कर वितरण की कोई स्पष्ट व्यवस्था नहीं है, इसलिए वित्त आयोग पर वितरण के सिद्धान्त निश्चित करने का दायित्व है। यद्यपि संघीय व्यवस्था की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक संघीय इकाई की वित्तीय आवश्यकताएं संवैधानिक व्यवस्था द्वारा दूर की जानी चाहिए। यही समस्या चौथे वित्त आयोग के समक्ष रखी गई थी। जिसके अन्तर्गत यह कहा गया कि राज्यों के बीच एक वितरण के सामान्य सिद्धान्त संविधान में व्यवस्थित किए जाने चाहिए।

भारतीय संविधान में वित्त के उचित वितरण के लिए और केन्द्रीय सरकार का वित्त पर समुचित नियंत्रण बनाए रखने के लिए वित्त आयोग को बंटवारे की सिफारिश करने की शक्ति प्रदान की गई है। इस द ष्टि से वित्त आयोग का कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक दिखाई देता है, किन्तु उल्लेखनीय है कि विकास कार्यों के लिए साधनों का वितरण केन्द्रीय सरकार योजना आयोग के परामर्श से करती है। यद्यपि वित्त आयोग योजना द्वारा निर्धारित साधनों को कम कर सकता है किन्तु व्यवहार में वह ऐसा नहीं कर पाता है।

संविधान लागू करने के बाद से अब तक दस वित्त आयोग गठित किए जा चुके हैं जिनकी विविध सिफारिशों को लागू भी किया गया है। यद्यपि वित्त आयोग प्रावधानों के परिवर्तन की सिफारिश नहीं कर सकता, तथापि केन्द्र राज्य वित्तीय संबंधों के क्षेत्र में आयोग का प्रभाव बहुत अधिक है, क्योंकि संविधान केवल यह बताता है कि कौन कर लगाएगा और कौन कर उगाहेगा, लेकिन यह नहीं बताता है कि उनको किस प्रकार वितरित किया जाएगा और वितरण संबंधी सिफारिश वित्त आयोग द्वारा ही की जाती है। साधारणतया वित्त आयोग की सभी सिफारिशें स्वीकार कर ली जाती हैं।

स्पष्ट है कि वित्त आयोग का स्तर दीवानी न्यायालय जैसा है जो अपनी प्रक्रिया को स्वयं निर्धारित करता है। यह आयोग भारत सरकार और राज्य सरकारों के वित्तीय संसाधनों को नियमित, समन्वित तथा एकीकृत करने का महत्वपूर्ण संगठन है। इसकी कार्य प्रणाली की यह विशेषता रही है कि यह अपनी सिफारिशों के निर्धारण के लिए केन्द्र सरकार, योजना आयोग, राज्य सरकारों के अधिकारियों और मंत्रियों पर निर्भर रहा है। आयोगों ने अपने प्रतिवेदन नागरिकों तथा विशिष्ट संगठनों के प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के आधार पर प्रस्तुत किए हैं।

सांविधानिक द ष्टि से वित्त आयोग एक परामर्शदात्री संस्था है जिसकी सिफारिशों को मानने के लिए राष्ट्रपति बाध्य नहीं है लेकिन अब तक का इतिहास बताता है कि वित्त आयोग की सिफारिशों को अधिकांश मामलों में स्वीकार करने की परम्परा का निर्वाह हुआ है वित्त आयोग की सिफारिशों को क्रियान्वयन की द ष्टि से तीन वर्गों में रखा जा सकता हैः

(1) वे प्रस्ताव जिनका क्रियान्वयन राष्ट्रपति के आदेश के अन्तर्गत होता है;

(2) वे प्रस्ताव जो कार्यपालिका के आदेशों के संदर्भ में क्रियान्वित किए जाते है; एवं

(3) वे प्रस्ताव या सिफारिशें जिनका क्रियान्वयन संसद द्वारा निर्मित अधिनियम के आधार पर किया जाता है।

केन्द्र राज्य वित्तीय संबंधों में वित्त आयोग की व्यवस्था संविधान निर्माताओं के बड़े विवेक की परिचायक है। दोनों सरकारों के बीच जटिल वित्तीय समस्याओं को सुलझाने वाले एक सांविधानिक उपकरण के रूप में वित्त आयोग की भूमिका बहुत ही प्रमुख रही है। आज की वित्त वितरण व्यवस्था पूर्णतः वित्त आयोगों की सिफारिशों पर ही आधारित है। आयोग के कार्य का मुख्य महत्व इस बात में है कि वह संघात्मक शासन पद्धति की वित्त-व्यवस्था को स्थिर बनाने के लिए निष्पक्ष तथा तटस्थ द ष्टिकोण अपनाता है। वित्त वितरण के प्रश्न को संघ तथा राज्य के मध्य अन्य राजनीतिक विवादों से दूर रखने का श्रेय इसी को प्राप्त है। वस्तुतः वित्त आयोग राज्यों तथा संघ के मध्य एक ऐसे प्रत्यावरोध का कार्य करता है जो एक ओर निरंतर अधिक वित्त की मांग करने वाले राज्यों में राजनीतिक दबाव से संघ की रक्षा करता है, दूसरी ओर आवश्यकताग्रस्त राज्यों को यथासंभव सहायता प्रदान के लिए संघ को विवश करता है। इस प्रकार संघ के वित्त आयोग की सिफारिशों के विरूद्ध जाना असंभव सा है।

वित्त आयोगों की सिफारिशों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि संघ तथा राज्यों के वित्तीय संबधों को अत्यधिक प्रभावित करने तथा जटिल वित्तीय समस्याओं को सुलझाने वाले एक सांविधानिक अधिकरण के रूप में आयोग ने महत्वपूर्ण योगदान किया है। भारतीय संर्दभ में वित्त वितरण व्यवस्था पूर्णतः इन्हीं सिफारिशों पर आधारित है। वित्त आयोग की व्यवस्था करके भारतीय संविधान निर्माताओं ने उन कमियों को पूर्णतः दूर रखने का प्रयास किया जो अन्य संघात्मक संविधानों में वित्तीय उपबंधों के संबंध में पाई जाती हैं। वित्त आयोग के अस्तित्व में आने से संघ भोर राज्यों के संबंध परस्पर सहयोग की भावना पर आधारित रहे हैं। भारतीय वित्त आयोग ने एक और संघात्मक शासन पद्धति की वित्त व्यवस्था को स्थिर बनाने के लिए एक निष्पक्ष तथा तटस्थ द ष्टिकोण अपनाया है तो दूसरी ओर वित्त आयोग ने संघ एंव राज्यों के मध्य वित्त विवरण के प्रश्न को राजनीतिक विवादों से दूर रखने का कार्य किया है। अतः यह कहा जा सकता है कि वित्त आयोग का महत्व निर्विवाद है।

नवें वित्त आयोग की सिफारिशें

वित्त आयोग के योगदान का वर्णन नवें वित्त आयोग की सिफारिशों के वर्णन के बिना अधूरा रह जायेगा। अतः हम इन सिफारिशों के सम्बन्ध में कुछ कहना आवश्यक समझते हैं :

नवें वित्त आयोग का गठन श्री एन. के. पी. सालवे (N.K.P, Salve) की अध्यक्षता में जून, 1987 में हुआ। इस आयोग के अन्य सदस्य थे : न्यायमूर्ति अब्दुल सत्तार कुरैशी, डॉ० राजा चल्लैहा, श्री लालथारीवाला, तथा श्री महेश प्रसाद। नवें वित्त आयोग के विचार के विषय पहले सभी वित्त आयोगों की अपेक्षा अधिक विस्त त थे। इस आयोग को अतिरिक्त शुल्कों को पट्टे पर देने तथा इस शुल्क के अंश को राज्यों में वितरित करने के लिये सूत्र विकसित करने के लिये कहा गया।

पंचवर्षीय योजना से संबंधित सिफारिशों को वित्त आयोग की सिफारिशों से समान अवधि का बनाने के लिये, नवें वित्त आयोग को अपने प्रतिवेदन को दो भागों में देने के लिए कहा गया। पहले भाग में 1989-90 वर्ष के लिये सिफारिश हों। दूसरे भाग में आठवीं पंचवर्षीय योजना (1990-95) के सम्बन्ध में सिफारिशें हो। आयोग द्वारा विचारणीय विषयों में यह भी सम्मिलित किया गया कि 31 मार्च, 1989 तक राज्यों की ऋण की स्थिति को निर्धारित किया जाये तथा केन्द्र की वित्तीय आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर इस स्थिति में सुधार के पग भी सुझाये जायें।

आयोग ने अपने प्रथम प्रतिवेदन में कहा कि हम अपने राजस्व तथा व्यय की दर को इस प्रकार लक्ष्य बनायेंगे कि 1994-95 के अन्त तक राजस्व का घाटा पूरा हो जाए। इस राजस्व के घाटे को विभिन्न चरणों में पूरा किया जायेगा। इसे राजस्व व्यय के अनुपात को कम करके तथा राजस्व अनुपात में व द्धि करके पूरा किया जायेगा।

नवें वित्त आयोग ने यह सिफारिश की कि राजस्व को बढ़ाया जाना चाहिए तथा व्यय में कटौती की जानी चाहिए। राज्यों को और अधिक कर लगाने की शक्तियाँ दी जानी चाहिए। नवें वित्त आयोग ने राज्यों में करों से प्राप्त राजस्व के बंटवारे के लिए निर्धनता की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या को ध्यान में रखा। इससे पहले वाले आयोग राज्यों के अंश को निर्धारित करने के लिए राष्ट्रीय औसत से पिछड़ेपन का निर्धारण करते थे। किन्तु इस आयोग ने एक बहुत ही तर्क संगत मानदण्ड चुना है।

आयोग ने नशाबन्दी अपनाने वाले राज्यों के लिए राजस्व में आने वाली कमी के कुछ अंश को पूरा करने के लिए केन्द्र से ध्यान देने की सिफारिश भी की है।

नवें वित्त आयोग ने कहा कि विशेष योजनाओं को बनाते समय राज्यों को राजस्व बढ़ाने के निर्णय की ओर भी ध्यान देना चाहिए। आयोग ने यह बात सामाजिक सुरक्षा योजनाओं को विकसित करने के सम्बन्ध में कही है। आयोग ने कहा है कि राज्यों को अपने राजस्व को बढ़ाने के सम्बन्ध में भी पग उठाने चाहिए। उन्हें अपने बोझ को अन्य राज्यों के लोगों पर डालने के प्रयत्न नहीं करने चाहिए।

दसवें वित्त आयोग की सिफारिशें तथा ग्यारहवें वित्त आयोग का द ष्टिकोण

(Recommendations of 10th Finance Commission and Perspective of 11th Finance Commission)

तत्कालीन राष्ट्रपति ज्ञानी जैल सिंह द्वारा 17 जून, 1987 को पूर्व केन्द्रीय मंत्री एन. के. पी. सालवे की अध्यक्षता में नवें वित्त आयोग का गठन किया गया। आयोग के अन्य सदस्य न्यायमूर्ति अब्दुल सत्तार कुरेशी, योजना आयोग के सदस्य डॉ॰ राज. चेलैय्या, श्री ललथनवाला (भू.पू. मुख्यमन्त्री) और श्री महेश प्रसाद (सलाहकार, योजना आयोग) हैं। श्री महेश प्रसाद ही इसके सचिव भी थे।

आयोग को सौंपे गये कार्य

(1) **केन्द्रीय सरकार के करों का केन्द्र व राज्यों में विभाजन के संबंध में सिफारिश :** आयोग से कहा गया है कि वह केन्द्रीय सरकार के करों का केन्द्र व राज्यों में विभाजन तथा राज्यों में आपस में विभाजन के सम्बन्ध में अपनी संस्तुति करे।

(2) ऋण सम्बन्धी स्थिति का अध्ययन : आयोग को यह भी कहा गया है कि वह 31 मार्च, 1989 की स्थिति के अनुसार राज्यों की ऋण स्थिति का मूल्यांकन करे और इस स्थिति को ठीक करने के लिए ऐसे रचनात्मक उपायों का सुझाव दे जिनको केन्द्र की वित्तीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुये आवश्यक समझा जाये।

(3) **विपत्तियों से पीड़ित राज्यों की सहायता :** आयोग को यह भी कहा गया कि वह प्राकृतिक विपत्तियों से पीड़ित राज्यों द्वारा राहत कार्यों पर किये गये व्यय के सम्बन्ध में वित्त पोषण से सम्बन्धित नीति एवं प्रबन्ध की समीक्षा भी करे और अन्य जरूरी बातों के साथ अपव्यय

से बचने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए वर्तमान प्रबन्धकों में उन परिवर्तनों का सुझाव दे, जिन्हें वह उचित समझे।

नवें वित्त आयोग के द्वारा की गयी सभी सिफारिशें केन्द्रीय सरकार ने मान ली हैं। इस आयोग की प्रमुख सिफारिशें निम्न प्रकार हैं :

(1) **आयकर (Income-tax) :** आयोग ने कुल विभाजनीय कोष का 85 प्रतिशत राज्यों को देने की सिफारिश की है। आठवें आयोग का भी यही प्रतिशत था। इस प्रकार, इसमें कोई परिवर्तन आयोग ने नहीं किया है।

(2) **केन्द्रीय उत्पाद कर (Central Excise Duty) :** आयोग ने केन्द्रीय उत्पाद शुल्क से होनी वाली आय का 45 प्रतिशत राज्यों को देने की सिफारिश की है। यही सिफारिश आठवें आयोग का भी थी। इस प्रकार इसमें भी परिवर्तन नहीं किया गया है।

(3) **बिक्री कर के स्थान पर उत्पादन कर (Additional Duties of Excise in Lieu of Sales Tax) :** इस मद पर वस्त्र, चीनी व तम्बाकू से होने वाली आय को राज्यों में आयोग द्वारा निर्धारित प्रतिशत के आधार पर बांटा जायेगा और जैसे उत्तर प्रदेश को 14.657%, मध्य प्रदेश को 7.164% आदि।

(4) **रेलवे यात्री किराये पर लगाये गये कर के स्थान पर सहायता (Grants in Lieu of Tax on Railway Passanger Faires) :** रेलवे से यात्रा करने वाले यात्रियों पर लगाये गये कर से प्राप्त आय को राज्यों में आयोग द्वारा निर्धारित प्रतिशत के आधार पर बांटा जायेगा। यह प्रतिशत विभिन्न राज्यों के लिये विभिन्न है। जैसे उत्तर प्रदेश को 15.438%, मध्य प्रदेश को 6.061%, महाराष्ट्र को 22.634%।

(5) **सहायता व्यय की वित्त व्यवस्था (Financing of Relief Expenditure) :** आयोग ने सिफारिश की है कि प्रत्येक राज्य में राहत कोष गठित किये जायें जिसमें 1990-95 में प्रतिवर्ष 603 करोड़ रुपये जमा किये जायेंगे। केन्द्र गैर योजना अनुदान के रुप में इसमें 75% हिस्सा जमा करेगा। शेष 25% प्रत्येक राज्य को अपने निजी कोष संसाधनों से जुटाना होगा। यह कोष किसी राष्ट्रीयकृत बैंक में जमा होगा। इस कोष का उपयोग राज्य सरकारें अपने आपातकाल में कर सकेंगी। इसके लिये हर राज्य का वित्त सचिव उस कोष का प्रधान होगा।

(6) **राज्यों को अनुदान (Grant-in-Aid to State) :** राज्यों को गैर–योजना आगम खाते की कमी तथा कुछ योजना आगम खाते की कमी को पूरा करने के लिये आयोग द्वारा निर्धारित राशि को अनुदान के रूप में दिया जायेगा।

(7) **राज्यों को कर्ज सहायता (Debt Relief to States) :** राज्यों को कतिपय केन्द्रीय कर्जे माफ कर दिये जायेंगे। राज्यों को पिछले 5 वर्षो के ऋण तथा 31 मार्च, 1990 की बाकी को अगले 15 वर्षो में देने के लिये पुनः भुगतान तालिका बनाई जायेगी। राज्यों को दिये जाने वाले ऋण अब 15 वर्ष के स्थान पर 20 वर्ष के होंगे।

(8) **अन्य सिफारिशें (Other Recommendation) :** (i) केन्द्र सरकार के वित्त आयोग प्रभाग के लिये एक सलाहकारी समिति बनाई जानी चाहिये। (ii) केन्द्रीय सरकार को घाटे की वित्त–व्यवस्था के लिये पहले रिजर्व बैंक से सलाह कर राशि निर्धारित कर लेनी चाहिये, यदि घाटा इससे अधिक बढ़ता है तो उस पर संसद की स्वीकृति होनी चाहिये।

आयोग की रिपोर्ट

आयोग की मुख्य और अन्तिम रिपोर्ट 18 दिसम्बर, 1988 को राष्ट्रपति को प्रस्तुत की गई। यह रिपोर्ट 1990 से 1995 तक पाँच वित्तीय वर्षो से संबंधित है। इस रिपोर्ट को 12 मार्च, 1990 को लोकसभा के सामने प्रस्तुत किया गया। आयोग की कुछ प्रमुख सिफारिशें निम्न थीं :

(I) **केन्द्रीय करों एवं शुल्कों का बंटवारा :**

(1) **आयकर :** आयोग ने सिफारिश की कि आयकर के विभाजन योग्य भाग में राज्यों का भाग 85% बनाये रखना चाहिए। इसमें सबसे अधिक भाग 16.787% उत्तर प्रदेश का था।

(2) **अतिरिक्त उत्पादन शुल्क :** इसका 1.903% भाग केन्द्र शासित क्षेत्रों के लिये रखकर शेष को अन्य राज्यों में बांट देना चाहिये। सबसे अधिक उत्तर प्रदेश को 14.65% भाग मिलेगा।

(3) **केन्द्रीय उत्पादन शुल्क** : केन्द्रीय उत्पादन शुल्क की 45% राशि को प्रतिवर्ष विभिन्न राज्य सरकारों में एक निश्चित प्रतिशत में विभाजित किया जायेगा। यह प्रतिशत उत्तर प्रदेश के लिये 15.638%, बिहार के लिये 11.028% तथा मध्य प्रदेश के लिये 7.224% होगा।

(II) **राहत व्ययों की वित्त व्यवस्था :**

(1) आयोग ने सिफारिश की कि राहत व्ययों की वित्त–व्यवस्था की वर्तमान पद्धति को एक नई पद्धति द्वारा बदला जायेगा जिसमें राज्य सरकारों की अधिक स्वायत्तता और हिसाब देयता होगी।

(2) प्रत्येक राज्य में प्रतिवर्ष एक आपदा राहत कोष बनाया जायेगा जिसमें 75% राशि केन्द्र सरकार देगी और 25% राज्य अपने साधनों से देगा।

(3) आपदा राहत कोष की राशि किसी राष्ट्रीयकृत बैंक में जमा होगी और यह राज्य सरकार के सामान्य आगम से अलग होगा।

(4) उपरोक्त कोष के प्रशासन के लिये प्रत्येक राज्य में मुख्य सचिव की अध्यक्षता में एक राज्य स्तरीय समिति का गठन किया जायेगा।

(5) इस कोष में वार्षिक व द्धि और उसके ब्याज का उपयोग आपदाओं को हल करने में किया जायेगा।

(6) भोपाल में गैस पीड़ितों के पुनर्स्थापन तथा राहत कार्य पर व्यय की जाने वाली 163 करोड़ रुपये की राशि में 75% अंशदान केन्द्र सरकार द्वारा दिया जाना चाहिये और 25% राशि मध्य प्रदेश सरकार को स्वयं जुटाना चाहिये।

(III) अनुदान :

(1) सन् 1990 से 1995 की पाँच वर्ष की अवधि में गैर योजना आगम खातों के घाटे तथा कुछ मात्रा में योजना आगम खाता के घाटों की पूर्ति के लिये केन्द्र सरकार द्वारा राज्यों को 15017.18 करोड़ रुपये का अनुदान प्रदान किया जायेगा।

(2) केन्द्र आपदा राहत कोष के प्रतिवर्ष 603 करोड़ रुपये का अनुदान देगा जिसमें राजस्थान को 93 करोड़ रुपये, उत्तर प्रदेश को 67.5 करोड़ रुपये, आन्ध्र प्रदेश को

63.75 करोड़ रुपये, गुजरात को 23.75 करोड़ रुपये, मध्य प्रदेश को 22.75 करोड़ रुपये की राशि रखी गयी है।

(3) भोपाल गैस पीड़ितों की सहायता के लिये केन्द्र सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली कुल 122.5 करोड़ रुपये की राशि 5 वार्षिक किस्तों में प्रदान की जायेगी।

(IV) ऋण राहत :

(1) सन् 1990-91 से केन्द्र सरकार राज्य सरकारों को जो ऋण देगी उनकी परिपक्वता अवधि 20 वर्ष होनी चाहिये। ऋणों की आधी राशि ऐसी हो जिसमें 5 वर्ष का अनुग्रह अवधि की सुरक्षा हो।

(2) लघु बचत संग्रह के विरुद्ध केन्द्र सरकार द्वारा दिये गये ऋणों की शर्तों और दशा में कोई परिवर्तन नहीं होना चाहिये।

(3) 1986 से 1989 की अवधि में अकाल के लिये राज्य सरकारों को जो ऋण दिये गये और 31 मार्च, 1989 तक अदत्त थे; उन्हें अपलिखित कर देना चाहिये।

(4) राज्यों को पाँच वर्ष की अवधि के दौरान (1984-89) जो राज्य योजना ऋण अग्रिम के रूप में दिये गये थे और जो 31 मार्च, 1990 को अदत्त थे, उन्हें 15 वर्ष की अवधि में वापसी के लिये पुनः निर्धारित किया जाना चाहिये।

(5) भोपाल गैस दुर्घटना के संबंध में दिये गये 91.62 करोड़ रुपये के ऋण को अपलिखित कर देना चाहिये।

(V) **अतिरिक्त उत्पादन शुल्क को मूल उत्पादन शुल्क के साथ मिलाना :**

आयोग ने यह भी सुझाव दिया है कि अतिरिक्त शुल्क को मूल उत्पादन शुल्क में मिला देना चाहिये।

(VI) **विविध सिफारिशें :**

(1) सार्वजनिक ऋण में व द्धि को कम करने के उपाय किये जाने चाहिये।

(2) आगम व्यय में कमी करने के लिये तुरन्त विशेष कदम उठाया जाना चाहिये।

(3) उन लोक उपक्रमों को दिये जाने वाले ऋणों, अनुदानों और उपदानों को कम करने का विचार करना चाहिये जो लगातार हानि पर चल रहे हैं।

(4) राजकोषीय अनुशासन की द ष्टि से केन्द्र और राज्य सरकारों के साथ एक समान व्यवहार किया जाना चाहिये। इसके लिये केन्द्र सरकार रिजर्व बैंक से परामर्श करके प्रत्येक राज्य सरकार के लिये घाटे की वित्त व्यवस्था की सीमा निर्धारित करेगी।

निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि केन्द्र और राज्यों के वित्तीय संबंधों की दिशा में नवें वित्त आयोग की सिफारिशें काफी महत्वपूर्ण हैं तथा आयोग ने अपने सुझावों द्वारा राज्यों को न्याय और समानता के आधार पर सहायता देने का प्रावधान किया है।

दसवें वित्त आयोग की सिफारिशें

Recommendation of Tenth Finance Commission)

राष्ट्रपति डा. शंकर दयाल शर्मा ने जून, 1994 में श्री के॰ सी॰ पन्त की अध्यक्षता में दसवें वित्त

आयोग का गठन किया। इस आयोग ने नवम्बर 1994 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट की सिफारिशें 1 अप्रैल, 1995 से 31 मार्च, 2000 तक लागू रहेंगी। इस आयोग को आयकर, संघीय उत्पादन शुल्क, अतिरिक्त उत्पाद शुल्क, कृषि भूमि को छोड़कर सम्पदा शुल्क, पटसन निर्यात शुल्क के बदले अनुदान राशि, विपदा सहायता कोष (Calamity Relief Fund) आदि के संदर्भ में सिफारिश प्रस्तुत करनी थी। दसवें वित्त आयोग द्वारा की गयी सिफारिशों को मोटे तौर पर निम्न दो भागों में बांटा जा सकता है :

(i) कर संसाधनों के वितरण संबंधी सिफारिशें।

(ii) अनुदान संबंधी सिफारिशें।

अब हम इन सिफारिशों की व्याख्या विस्तारपूर्वक करेंगे :

(1) **कर संसाधनों के वितरण संबंधी सिफारिशें (Recommendation Regarding Distribution of Tax Resources) :**

(i) **आयकर (Income Tax) :** आयकर से प्राप्त होने वाली निबल प्राप्तियों में राज्यों का भाग प्रथम वित्त आयोग के समय 55% था जो सातवें, आठवें व नवें वित्त आयोग के समय बढ़कर 85% हो गया। दसवें वित्त आयोग ने राज्यों के अंश को घटाकर 77.5% कर दिया है। इस वित्त आयोग के अनुसार आयकर की प्राप्तियों का विभिन्न राज्यों में बंटवारा निम्न तरीके से किया जायेगा :

(क) 1971 की जनसंख्या के आधार पर 20 प्रतिशत;

(ख) 60% वितरण उच्चतम प्रति व्यक्ति आय वाले राज्य(पंजाब) से राज्य विशेष की प्रति व्यक्ति आय अन्तर के आधार पर होगा।

(ग) राज्य के क्षेत्र के आधार पर 5% ;

(घ) दसवें वित्त आयोग द्वारा तैयार संरचना के सूचकांक (index of infrastructure) के आधार पर 5% ; और

(ङ) राज्य द्वारा कर के लिए किये गये प्रयास के आधार पर 10% वितरण किया जायेगा। इस कर प्रयास की माप राज्य की प्रति व्यक्ति आय और राज्य का प्रति व्यक्ति कर आगम के अनुपात के आधार पर की जायेगी।

(ii) **संघीय उत्पाद शुल्क (Union Excise Duties) :** आठवें व नवें वित्त आयोगों ने संघीय उत्पाद शुल्क में राज्यों का अंश 45% रखा था जिसे दसवें वित्त आयोग ने बढ़ाकर 47.5% कर दिया। ऐसा आयकर में राज्यों के अंश में कमी के कारण क्षतिपूर्ति करने के लिए किया गया। इस 47.5% अंश में से 7.5% भाग का बंटवारा 'घाटे वाले राज्यों' (dcficit statcs) में किया जायेगा। संघीय उत्पाद शुल्क की निवल प्राप्तियों के 40% भाग का बंटवारा उसी आधार पर किया जायेगा जिस आधार पर आयकर की निबल प्राप्तियों का किया जाता है।

(iii) **अतिरिक्त उत्पाद शुल्क (Additional Dutics of Excise) :** दिसम्बर 1956 में राष्ट्रीय विकास परिषद में हुए समझौते के आधार पर ही केन्द्रीय सरकार इन शुल्कों को लगाती है। इस समझौते के अनुसार कपड़ा, तंबाकू और चीनी पर बिक्री कर के स्थान पर संघीय उत्पाद शुल्क पर अधिभार (सरचार्ज) लगाया जायेगा और इससे प्राप्त राशि का विभिन्न राज्यों में वितरण राज्य में इन वस्तुओं के उपभोग के आधार

पर किया जायेगा। परन्तु बाद में विभिन्न वित्त आयोगों ने वितरण के इस आधार को बदल दिया। दसवें वित्त आयोग के अनुसार अतिरिक्त उत्पाद शुल्कों से प्राप्त होने वाली निबल प्राप्तियों का 50% भाग वर्ष 1991 में राज्य की जनसंख्या की जनगणना के आधार पर, अन्तिम तीन वर्षो (1987-88 से 1989-90) जिनके राज्य के घरेलू उत्पाद के आँकड़े उपलब्ध हैं, के औसत के आधार पर 40% भाग का वितरण तथा अन्तिम तीन वर्षो (1990-91 से 1992-93) में औसतन संग्रहित राज्य बिक्री कर के आधार पर 10% भाग का वितरण किया जायेगा। केन्द्र सरकार द्वारा 2.203% भाग संघीय क्षेत्रों के लिए अपने पास रखा जायेगा।

(iv) **सम्पदा शुल्क** (**Estate Duty**) **:** जहाँ तक शुल्क से प्राप्त आगम का राज्यों के बीच वितरण का संबंध है, नवें तथा दसवें वित्त आयोग ने इस संदर्भ में कोई सिफारिश नहीं की है। राज्यों के बीच आगम का वितरण पूर्ववत् किया जाता रहेगा।

(2) **अनुदान संबंधी सिफारिशें** (**Recommendations Regarding Grants-in-aid**) **:** संविधान की धारा 275 और 282 में अनुदान के बारे में कहा गया है। धारा 275 के अनुसार राज्यों को उनकी जरूरत के समय अनुदान दिया जायेगा और इसकी मात्रा का निर्धारण वित्त आयोगों द्वारा किया जायेगा। इसके विपरीत धारा 282 में किसी भी सार्वजनिक उद्देश्य के लिए अनुदान दिया जा सकता है तथा इसकी मात्रा का निर्धारण संघ सरकार अपनी स्वेच्छा से करेगी।

जहाँ तक धारा 275 के अन्तर्गत अनुदान के वितरण का संबंध है, प्रथम वित्त आयोग ने राज्यों को अनुदान दिये जाने के कुछ सिद्धान्तों का उल्लेख किया जो बजटीय आवश्यकता, कर प्रयास, व्यय में मितव्ययिता, विशिष्ट सेवाओं में मानक स्तर, विशिष्ट जिम्मेदारी और राष्ट्रीय महत्व के आधारभूत उद्देश्य आदि हैं। लेकिन व्यवहार में वित्त आयोग राज्यों की बजटीय आवश्यकता के आधार पर ही संसाधनों का हस्तांतरण करता रहा है। बाद में लगभग सभी वित्त आयोगों ने इसे काफी महत्व दिया है। दसवें वित्त आयोग ने राज्यों को आय कर व संघीय उत्पाद शुल्क से प्राप्त होने वाली धनराशि तथा अतिरिक्त उत्पाद शुल्क व रेलवे यात्री कर के बदले में मिलने वाले अनुमान के पश्चात् राज्यों को गैर–योजना आगम के कारण होने वाले घाटे की मात्रा का अनुमान लगाया है। आयोग के अनुसार सभी राज्यों का 1995-2000 की पंचवर्षीय अवधि में कुल घाटा 7582.68 करोड़ रुपये होगा।

आयोग ने धारा 275(1) के अन्तर्गत घाटे की मात्रा के समान ही अनुदान देने की सिफारिश की है। गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु व पंजाब को कोई अनुदान नहीं दिया जायेगा। जिन 16 राज्यों को यह अनुदान प्राप्त होता है, सबसे अधिक धनराशि जम्मू व कश्मीर (1184.83 करोड़ रु.), उत्तर प्रदेश (982 करोड़ रुपये), हिमाचल प्रदेश (772.18 करोड़ रु.) व असम (712.03 करोड़ रु.) को प्राप्त होगी। दसवें वित्त आयोग ने यह सिफारिश भी की है कि उपरोक्त राशि के अलावा राज्यों को 2608.50 करोड़ रु. प्रशासन के स्तर में सुधार व विशिष्ट समस्याओं के लिए, 4728.19 करोड़ रु. की धनराशि विपदा सहायता का व्यय वहन करने के लिए तथा संविधान के 73 व 74वें संशोधन के आधार पर स्थानीय निकायों का 5380.93 करोड़ रु. दिया जायेगा।

दसवें वित्त आयोग के अनुसार केन्द्र से राज्यों को 1995 से 2000 की अवधि में 226643.30 करोड़ रुपये हस्तांतरित किये जायेंगे जिनमें से 206343 करोड़ रुपये करों से प्राप्तियों के रूप में तथा 20300.30 करोड़ रुपये अनुदान के रूप में दिये जायेंगे।

यद्यपि आयोग ने प्रयास किया है कि राज्यों, विशेषकर पिछड़े व घाटे वाले राज्यों को अधिक वित्तीय राशि का वितरण हो, परन्तु ऐसा नहीं हो सकता है। आयकर की प्राप्तियों का विभिन्न राज्यों में जो वितरण किया गया है, उसका ज्यादा लाभ औद्योगिक रूप से विकसित राज्यों को हुआ है। दसवें वित्त आयोग के अनुसार महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु व पश्चिमी बंगाल को आयकर प्राप्तियों में से 24% भाग प्राप्त होगा।

लगभग सभी वित्त आयोगों ने अनुदान की मात्रा निश्चित करते समय बजटीय घाटे को बहुत अधिक महत्व दिया है। यह देखने में आया है कि विकसित राज्य जानबूझकर बजट घाटा अधिक रखते हैं और फलस्वरूप अधिक अनुदान प्राप्त करते हैं। इस प्रकार गरीब राज्यों की तुलना में अमीर राज्यों को अधिक अनुदान राशि प्राप्त हो जाती है।

केन्द्र सरकार द्वारा विवेकाधीन कोटे से जो अनुदान राशि राज्यों को दी जाती है वह उनकी गरीबी के आधार पर नहीं दी जाती। यह केवल राजनीतिक महत्व के आधार पर दी जाती है। विवेकाधीन कोटे से दी जाने वाली अनुदान राशि से गरीब राज्यों को अमीर राज्यों की तुलना में कोई लाभ नहीं हो पाया है।

ग्यारहवां वित्त आयोग
(Eleventh Finance Commision)

2000-2005 अवधि के लिए प्रो. ए. एम. खुसरो की अध्यक्षता वाले 11वें वित्त आयोग ने तीन चरणों में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, अंतरिम रिपोर्ट 15 जनवरी, 2000 को, अन्तिम रिपोर्ट 7 जुलाई, 2000 को एवं पूरक रिपोर्ट 31 अगस्त, 2000 को आयोग द्वारा राष्ट्रपति को प्रस्तुत की गई।

7 जुलाई, 2000 आयोग द्वारा प्रस्तुत रिपोर्ट की सिफारिशें सरकार द्वारा संसद में 27 जुलाई, 2000 को प्रस्तुत की गई।

आयोग की प्रमुख सिफारिशें निम्नलिखित हैं :

- 2000-2001 से 2004-2005 की अवधि में निबल केन्द्रीय कर राजस्व के 29.5 प्रतिशल भाग का राज्यों को हस्तान्तरण।
- राज्यों को हस्तान्तरित की जाने वाली राजस्व राशि की अधिकतम सीमा केन्द्र के सकल कर एवं गैर-कर राजस्व का 37.5 प्रतिशत।
- स्थानीय निकायों के लिए प्रतिवर्ष 2000 करोड़ रूपए का केन्द्रीय अनुमान जिसमें 1600 करोड़ रूपये ग्रामीण निकायों के लिए व 400 करोड़ रूपये शहरी निकायों के लिए।
- आतंकवादी गतिविधियों से निपटने के लिए पंजाब को दिए गए विशेष ऋणों का पुनर्भुगतान 2005 तक निलम्बित।
- सेवाओं को व्यापक तौर पर कर के दायरे में लाने के साथ-साथ सेवा कर को समवर्ती सूची में शामिल करने का सुझाव।
- राजकोष पर पेंशन का भार कम करने के उपाय तलाशने का सुझाव। इस संबंध में सेनाओं

से सेनानिव त्त लोगों को अन्य सरकारी विभागों में नियुक्त करने का सुझाव (क्योंकि पेंशन राशि का एक बड़ा भाग रक्षा क्षेत्र पर व्यय होता है।)

- राजकोषीय घाटों को सीमित रखने के लिए बजटीय प्रणाली व बजट पर नियंत्रण का सुझाव।
- नेशनल फंड फॉर कैलेमिटी रिलीफ (NECR) के स्थान पर एक नये नेशनल कैलेमिटी कंटिजैंसी फंड (NCCF) की स्थापना का सुझाव।

केन्द्रीय करों के राजस्व का राज्यों को हस्तांतरण के संदर्भ में आयोग का कहना है कि विभाजनीय केन्द्रीय करों एंव शुल्कों के शुद्ध राजस्व का 28% राज्यों को हस्तांतरित किया जाए और चीनी, तंबाकू एंव टैक्सटाइल पर राज्यों द्वारा बिक्री कर न लगाए जाने के एवज में केन्द्रीय कर राजस्व का एक 1.5% भाग (इस प्रकार कुल 29.5% भाग) राज्यों को हस्तांतरित किया जाए।

राजस्व के अन्तर्राज्यीय विभाजन के लिए निर्धारित किए गए फॉर्मूले में विभिन्न घंटकों का भारांश निम्नवत् है।

जनसंख्या	10%
औसत प्रति व्यक्ति आय से विचलन	62.5%
क्षेत्रफल	7.5%
आधारित सरंचना सूचकांक	7.5%
कर प्रयास	5.0%
राजकोषीय अनुशासन	7.5%
जोड़	100%

अध्याय - 13
योजना आयोग की भूमिका तथा कार्य
(Role and Functions of Planning Commission)

विख्यात इन्जीनियर एम. विश्वेश्वरैया ने सन् 1934 में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **'प्लाण्ड इकॉनामी फॉर इण्डिया'** में एक ऐसी योजना का रूप रखा था, जिसका उद्देश्य दस वर्ष में देश की राष्ट्रीय आय को दुगुना कराना था। इसके बाद कांग्रेस ने भी श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक 'राष्ट्रीय योजना समिति' का गठन किया। इस समिति ने प्रो. के.टी. शाह को अवैतनिक मन्त्री चुना। समिति ने अपना कार्य आरम्भ करने के लिए 26 उपसमितियां बनाईं, जिनमें से 25 उपसमितियों ने अपनी रिपोर्ट पेश की। लेकिन तत्कालीन विदेशी सरकार व कांग्रेस में संघर्ष व द्वितीय महायुद्ध के कारण यह समिति अपना कार्य पूरा करने में असमर्थ रही। सन् 1994 में भारत सरकार ने भी एक 'नियोजन एवं विकास विभाग' का गठन किया। सन् 1946 में एक 'परामर्शदाता नियोजन बोर्ड' भी गठित किया गया। सन् 1946 में 'नियोगी समिति' ने सिफारिश की थी कि आर्थिक नियोजन के कार्य की प्रकृति ही ऐसी है कि "एक ऐसे एकीकृत शक्तिशाली तथा मन्त्रिपरिषद् के प्रति प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी संगठन की केन्द्र में स्थापना आवश्यक है जो भारत के आर्थिक पुनर्निर्माण के सम्पूर्ण क्षेत्र पर दत्तचित्त होकर स्थायी रूप से कार्य कर सके।"

भारत में योजना आयोग

भारत में योजना आयोग की स्थापना 15 मार्च, 1950 को हुई जिसके बारे में केन्द्रीय मन्त्रिमण्डल ने संकल्प पारित किया था। प्रो. ए. एच. हैन्सन के विचार से मन्त्रिमण्डल ने योजना आयोग को एक ऐसा अंग माना था जिसका कार्य केवल सलाह देना था। मन्त्रिमण्डल के संकल्प (संख्या पी. (सी.) 50, भारत का राज्यपत्र, 15 मार्च, 1950) में कहा गया था कि वास्तविक संसाधनों को ध्यान में रखते हुए तथा सभी संगत आर्थिक पहलुओं का निष्पक्ष विश्लेषण करते हुए व्यापक योजना बनाने की आवश्यकता है और इस कार्य के लिए एक ऐसे संगठन की आवश्यकता है जो दैनिक प्रशासनिक कार्यकलापों से मुक्त हो किन्तु जिसका सरकार से उच्चतम स्तर पर सम्पर्क हो। योजना आयोग इस उद्देश्य से स्थापित किया गया, जिसके मूल निर्देश पद सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन, सामूहिक हित में सम्पत्ति का बंटवारा और अर्थव्यवस्था का हितकारी विकेन्द्रीकरण राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्तों पर आधारित थे। अतः योजना आयोग के निम्न सात दायित्व थे -

(1) देश के भौतिक संसाधनों और जनशक्ति (तकनीकी व्यक्तियों सहित) का अनुमान लगाना तथा राष्ट्र की आवश्यकता के अनुसार उन संसाधनों की व द्धि सम्भावनाओं का पता लगाना।

(2) देश के संसाधनों के सन्तुलित उपयोग के लिए अत्यन्त प्रभावकारी योजना बनाना।

(3) योजना की क्रियान्विति के चरणों का निर्धारण तथा उनके लिए संसाधनों का नियमन करना।

(4) आर्थिक विकास में आने वाली बाधाओं की ओर संकेत करना तथा योजना की सफल क्रियान्विति के लिए परिस्थिति निर्धारित करना।

(5) योजना के प्रत्येक चरण की सफल क्रियान्विति के लिए आवश्यक तन्त्र का स्वरूप निश्चित करना।

(6) समय-समय पर योजना की चरणवार प्रगति का अवलोकन तथा इस बारे में आवश्यक उपायों की सिफारिश करना।

(7) आयोग के कार्यकलापों को सुविधाजनक बनाने अथवा वर्तमान परिस्थिति और विकास कार्यक्रम को ध्यान में रखते हुए अन्तिम सिफारिश करना अथवा केन्द्र या राज्यों की समस्याओं का समाधान करने के लिए परामर्श देना।

योजना आयोग का संगठन

योजना आयोग का संविधान में कोई उल्लेख नहीं है, अतः इसका संगठन परामर्शदात्री व विशेषज्ञ संस्था के रूप में सरकार के एक प्रलेख द्वारा हुआ। फलस्वरूप इसके स्वरूप एवं संगठन में विविध सरकारों द्वारा समय-समय पर परिवर्तन किया जाता रहा।

प्रथम योजना आयोग का अध्यक्ष तत्कालीन प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू को बनाया गया और पांच पूर्णकालिक सदस्य - वी. टी. कृष्णामाचारी, जी. एल. मेहता, एस. के. पाटिल, गुलजारी लाल नन्दा एवं सी. डी. देशमुख मनोनीत किये गए। गुलजारी लाल नन्दा तथा सी०डी० देशमुख मन्त्री होते हुए भी इसके सदस्य बने रहे। समय-समय पर इसमें अन्य मन्त्री एवं विद्वानों को मनोनीत किया जाता रहा तथा प्रधानमन्त्री इसके पदेन अध्यक्ष बने रहे। 1967 में योजना आयोग के संगठन को लेकर विवाद हुआ। प्रधानमन्त्री तथा वित्तमन्त्री के योजना आयोग के पदेन अध्यक्ष एवं सदस्य होने पर आपत्ति उठाई गई तथा इसे गैर-राजनीतिक संस्था बनाने पर बल दिया गया। लेकिन प्रधानमन्त्री इसके पदेन अध्यक्ष बने रहे। 1971 में प्रधानमन्त्री योजना आयोग के पदेन अध्यक्ष एवं नियोजन मन्त्री पदेन उपाध्यक्ष बनाए गए तथा अधिकांश योजना का कार्य नियोजन मन्त्रालय को सौंपा गया। जनता सरकार ने इसमें प्रधानमन्त्री के पदेन अध्यक्ष, एक उपाध्यक्ष (मन्त्री होना आवश्यक नहीं) तथा तीन कैबिनेट मन्त्री-वित्त, ग ह एवं रक्षा को अंशकालिक पदेन सदस्य तथा तीन पूर्णकालिक सदस्यों को रखा। इसके सदस्यों एवं उपाध्यक्ष का कोई निश्चित कार्यकाल नहीं होता। सदस्यों के लिए कोई निश्चित योग्यता नहीं है। प्रधानमन्त्री की इच्छा से सदस्य नियुक्त होते हैं। व्यवहार में सरकार के बदलते ही योजना आयोग का पुनर्गठन हो जाता है। इसके सदस्यों की संख्या सरकार की इच्छानुसार परिवर्तित होती रहती है।

योजना आयोग की रचना करते समय इस उद्देश्य को सामने रखा गया कि आयोग तथा मन्त्रिपरिषद् में निकटतम सम्बन्ध रहे। इसीलिए आयोग में विशेषज्ञों के साथ-साथ राजनीतिक प्रभाव वाले व्यक्ति (मन्त्रीगण) शामिल किए जाते रहे हैं। पूर्णकालीन सदस्यों को आर्थिक मामलों या प्रशासन के क्षेत्र में अपनी विशिष्ट ख्याति के आधार पर नियुक्त किया जाता रहा है। आयोग के सदस्यों के लिए औपचारिक योग्यताएं निर्धारित नहीं की गई हैं। उनकी नियुक्ति करते समय विभिन्न क्षेत्रों में उनके सार्वजनिक कार्यों तथा अनुभव पर विशेष बल दिया जाता है। मन्त्रिमण्डल के सांख्यिकीय सलाहकार भी आयोग की बैठकों में सम्मिलित होते हैं।

योजना आयोग के सदस्यों को वही वेतन, भत्ता एवं दर्जा दिया जाता है जो कि राज्य मन्त्रियों को उपलब्ध है। आयोग के सभी सदस्य एक निकाय के रूप में कार्य करते हैं किन्तु सुविधा के लिए प्रत्येक सदस्य को एक या एक से अधिक विषयों का प्रभारी बना दिया जाता है।

क्या मन्त्रियों को आयोग का सदस्य नियुक्त किया जाना चाहिए? - भारत में योजना आयोग की संरचना, भूमिका व स्थिति अत्यधिक विवाद का विषय रही है। इस प्रश्न पर काफी विवाद हो चुका है कि क्या मन्त्रियों को आयोग का सदस्य बनाना उचित है? कुछ विद्वानों के अनुसार योजना आयोग एक पूर्णतया स्वतन्त्र संगठन होना चाहिए, इसका कार्य देश की प्रमुख आर्थिक समस्याओं पर सरकार को परामर्श देना है इसलिए इसके सदस्य ख्याति-प्राप्त विशेषज्ञ होना चाहिए तथा उन्हें स्वायत्त रूप से कार्य करने का अधिकार मिलना चाहिए। **प्रो. डी. आर. गाडगिल** ने लिखा है, "योजना आयोग द्वारा अपने प्रमुख कार्यों की उपेक्षा का एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि यह एक विशाल शक्ति संगठन बन गया है तथा इसके सदस्यों में भी मन्त्रियों की भांति शक्ति व संरक्षण का प्रयोग तथा प्रदर्शन करने की एक स्वाभाविक इच्छा है। आयोग के अपने निर्धारित मार्ग से हटकर गलत मार्ग पर चलने की प्रव त्ति को इस तथ्य से और भी सहायता मिली है कि स्वयं वित्तमन्त्री और प्रधानमन्त्री इसके सदस्य हैं।" भारत के प्रशासनिक सुधार आयोग की द ष्टि में, "आयोग को एक पूर्णतः तकनीकी परिषद् बनाया जाए और मन्त्री सदस्यों को उससे प थक् रखा जाए।" उसका यह भी सुझाव था कि प्रधानमन्त्री को भी उससे दूर रखा जाए जो कि प्रारम्भ से ही इसका अध्यक्ष रहा है। वस्तुतः दिसम्बर 1946 में नियुक्त परामर्शदाता नियोजन बोर्ड के अनुसार मौलिक रूप से योजना आयोग को एक समय गैर राजनीतिक परामर्शदात्री परिषद् होना था।

प्रो. अरविन्द शर्मा के अनुसार योजना आयोग की मन्त्रीय सदस्यता से जो जटिलता उत्पन्न होती है वह यह कि आयोग के निर्णय राजनीतिक द ष्टि से अत्यधिक प्रभावित होते हैं और तकनीकी-आर्थिक द ष्टि से उनकी उपेक्षा होती है। इसका समाधान यही है कि विशेषज्ञों की एक विशुद्ध विशेषज्ञ एवं राजनीतिज्ञों के संयुक्त आयोग की स्थापना की जाए जो राजनीतिज्ञों के प्रभाव को सीमित करेगा और विशेषज्ञों को उनका उचित स्थान दे सकेगा।

वस्तुतः योजना आयोग के साथ प्रधानमन्त्री तथा कतिपय अन्य मन्त्रियों का सम्बन्ध होना नितान्त उपयुक्त है। मन्त्रियों के अभाव में आयोग के विशेषज्ञ सदस्यों के पास सामाजिक राजनीतिक यथार्थवाद की द ष्टि का अभाव बना रहेगा। प्रधानमन्त्री व प्रभावशाली केन्द्रीय मन्त्रियों के आयोग में रहने से आयोग के निर्णयों को एक विशिष्ट प्रतिष्ठा व बल मिल जाता है। प्रधानमन्त्री और मन्त्रीगण न केवल केन्द्रीय सरकार व आयोग के मध्य सम्पर्क सूत्र का कार्य करते हैं अपितु आयोग और संसद के मध्य भी सम्पर्क स्थापित करते हैं।

भारत में नियोजन प्रक्रिया के विभिन्न चरण

(1) सर्वप्रथम योजना आयोग देश के सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर एक दीर्घकालीन योजना (Perspective Plan) बनाती है।

(2) दीर्घकालीन योजना के अन्तर्निहित उद्देश्यों की प ष्ठभूमि में पांच वर्ष के लिए उद्देश्य प्राथमिकताओं के आधार पर तय किये जाते हैं - इसे पंचवर्षीय योजना का नाम दिया जाता है।

(3) योजना के क्रियान्वयन के लिए उपयुक्त विकास मॉडल का चयन किया जाता है।

(4) योजना के विस्त त रूपरेखा एवं प्रारूप कार्यकारी दल द्वारा बनाई जाती है जिसमें देश के संगठनों, राज्यों एवं व्यक्तिगत सुझावों पर उचित ध्यान दिया जाता है।

(5) यह प्रारूप राष्ट्रीय विकास परिषद् (NDC) के समक्ष अनुमोदन हेतु प्रेषित होता है।

(6) NDC की अनुमति के बाद यह संसद में प्रस्तुत होता है।

(7) संसद के अनुमोदन के बाद यह प्रारूप योजना का रूप ले लेता है।

योजना आयोग का प्रशासनिक संगठन

योजना आयोग योजना मन्त्रालय के अन्तर्गत आता है। आयोग अनेक तकनीकी/विषय प्रभागों के जरिए कार्य करता है। प्रत्येक भाग का अध्यक्ष प्रधान सलाहकार/सलाहकार/अतिरिक्त सलाहकार/मुख्य/संयुक्त सचिव/संयुक्त सलाहकार के पदनामित एक वरिष्ठ अधिकारी होता है तथा जो सचिव, योजना आयोग के पूर्ण पर्यवेक्षण एवं मार्ग-निर्देशन में कार्य करता है।

योजना आयोग के उपाध्यक्ष तथा पूर्णकालिक सदस्य विस्त त योजना निरूपण के मामले में एक संयुक्त संस्था के रूप में कार्य करते हैं। वे योजना आयोग में विषय से सम्बन्धित प्रभागों को योजना द ष्टिकोण की तैयारी, पंचवर्षीय योजना तथा वार्षिक योजना के लिए अपनाए गए विभिन्न कार्य-निष्पादनों में दक्ष परामर्श तथा मार्गदर्शन प्रदान करते हैं। उनका दक्ष मार्गदर्शन योजना कार्यक्रमों, परियोजनाओं तथा स्कीमों की निगरानी तथा मूल्यांकन के लिए विषय-सम्बन्धित प्रभागों को भी उपलब्ध है।

योजना विभाग में निम्नलिखित संगठन शामिल हैं -

(क) योजना आयोग, (ख) राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र, (ग) कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन, (घ) जनशक्ति अनुसंधान संस्थान।

योजना आयोग का **'भावी योजना प्रभाग'** परिव्यय/निवेश अनुमानों तथा तदनुरूप सकल उत्पादन अनुमानों के रूप में योजना के दीर्घावधिक तथा मध्यावधिक उद्देश्यों, प्राथमिकताओं तथा संव द्धि दरों के बारे में परिमाणात्मक आकारों को प्रदान करता है। यह प्रभाग अर्थव्यवस्था के बारे में अल्पावधिक अनुमानों का भी पता लगाता है। **'राज्य योजना प्रभाग'** राज्य योजनाओं के निरूपण तथा इन्हें अन्तिम रूप देने के बारे में समन्वय कार्य करता है। योजना आयोग के अन्तर्गत कार्य के समग्र समन्वय की जिम्मेदारी **'योजना समन्वय प्रभाग'** की है।

योजना आयोग के विभिन्न विभागों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जाता है -

(क) **सामान्य विभाग (General Divisions)** – योजना आयोग में कार्यरत सामान्य विभाग निम्नलिखित हैं-

• कम्प्यूटर सेवा प्रभाग, • वित्तीय संसाधन प्रभाग, • विकास नीति प्रभाग, • अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था प्रभाग, • सामाजिक-आर्थिक अनुसंधान एकक, • भावी योजना प्रभाग, • श्रम, रोजगार तथा जनशक्ति प्रभाग, • सांख्यिकी तथा सर्वेक्षण प्रभाग, • राज्य योजना प्रभाग, इसमें बहुउद्देशीय योजना, सीमा कार्यक्रम, पर्वतीय क्षेत्र विकास तथा पूर्वोत्तर प्रभाग शामिल हैं, • परियोजना मूल्यांकन प्रभाग, • प्रबोधन तथा सूचना प्रभाग, • योजना समन्वय प्रभाग।

(ख) **विषय विभाग (Subject Divisions)** – योजना आयोग में कार्यरत 'विषय विभाग निम्नलिखित हैं-

(1) **कृषि विभाग** (Agriculture Division)

(2) **पिछड़े वर्ग विभाग** (Backward Classes Division)

(3) **संचार एवं सूचना विभाग** (Communication and Information Division)

(4) **शिक्षा विभाग** (Education Division)

(5) **ऊर्जा नीति विभाग** (Energy Policy Division)

(6) **स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग** (Health and Family Welfare Division)

(7) **आवास, शहरी विकास तथा जल-आपूर्ति विभाग** (Housing, Urban Development and Water Supply Division)

(8) **भारत-जापान समिति** (Indo-Japan Committee)

(9) **उद्योग एवं खनिज विभाग** (Industry and Minerals Division)

(10) **सिंचाई एवं कमाण्ड एरिया विकास विभाग** (Irrigation & Command Area Development Division)

(11) **विद्युत् एवं ऊर्जा विभाग** (Power & Energy Division)

(12) **ग्रामीण विकास विभाग** (Rural Development Division)

(13) **ग्रामीण ऊर्जा विभाग** (Rural Energy Division)

(14) **विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग** (Science and Technology Division)

(15) **समाज कल्याण एवं पोषाहार विभाग** (Social Welfare and Nutrition Division)

(16) **परिवहन विभाग** (Transport Division)

(17) **ग्रामीण एवं लघु उद्योग विभाग** (Village and Small Industries Division)

(18) **पश्चिमी घाट सचिवालय** (Western Ghats Secretariat)

(19) **पर्यावरण एवं वन प्रभाग** (Environment and Forest Division)

अन्य संस्थाएं
(Other Bodies)

योजना आयोग तथा उसके विभिन्न विभागों एवं उपविभागों के अतिरिक्त अनेक अन्य संस्थाएं भी हैं जो योजनाओं के निर्माण और उनके कार्यान्वयन से सम्बद्ध हैं, जिनकी संक्षिपत व्याख्या निम्नलिखित है -

(1) **राष्ट्रीय आयोजन परिषद् (National Planning Council) –** योजना आयोग प्रत्येक योजना के निर्माण के समय एक राष्ट्रीय आयोजन परिषद् का संगठन करता है जो आयोग को योजना सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन करके परामर्श देती है। इस परिषद् में वैज्ञानिक, इन्जीनियर, अर्थशास्त्री तथा अन्य विशेषज्ञ होते हैं जो अपने-अपने क्षेत्र से सम्बद्ध समस्याओं का अध्ययन करके योजना आयोग को रिपोर्ट पेश करते हैं, जिन पर विवेचना भी होती है।

(2) **अनुसन्धान कार्यक्रम समिति (Research Programes Committee) –** योजना आयोग ने प्रथम पंचवर्षीय योजना में आयोग के उपाध्यक्ष के अधीन अनुसन्धान कार्यक्रम समिति की स्थापना की जो योजना-निर्माण में महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। समय-समय पर इस समिति में देश के विशिष्ट एवं प्रसिद्ध वैज्ञानिक, शोधकर्ता, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, आदि नियुक्त किए जाते हैं जिनका सम्बन्ध विश्वविद्यालयों एवं शोध अनुसन्धान संस्थाओं से होता है। यह समिति विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा अनुसन्धान संस्थाओं को विकास के प्रशासनिक, सामाजिक एवं आर्थिक पहलुओं से सम्बन्धित शोध के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त, भारतीय सांख्यिकीय संस्थान (Indian Statistical Institute), राष्ट्रीय व्यावहारिक आर्थिक अनुसन्धान परिषद् (National Council of Applied Economic Research), भारतीय आर्थिक व द्धि संस्थान (Indian Institute of Economic Growth), आदि

अनुसन्धान संस्थाओं द्वारा भी देश की महत्वपूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं के शोध कार्यों के लिए सहायता प्रदान करती है।

(3) **मन्त्रणा दल (Advisory Bodies)** – योजना आयोग को सलाह देने के लिए विभिन्न परियोजनाओं से सम्बन्धित मन्त्रणा दल या विशेषज्ञों की नामिका (panel) बनाई जाती है जो वर्ष में दो-तीन बार बैठकें करके विभिन्न नीतियों एवं प्रोग्रामों में अपनी सलाह देते हैं। ऐसे मन्त्रणा दल सिंचाई, बाढ़ नियन्त्रण और विद्युत् परियोजनाओं के लिए; जन सहयोग के लिए कमेटी; कृषि, भूमि सुधार, स्वास्थ्य, शिक्षा, निवास और प्रादेशिक विकास, आदि के लिए भी हैं। इनके अतिरिक्त, संसद के सदस्यों से परामर्श करने के लिए 'योजना आयोग के लिए संसद के सदस्यों की सलाहकार कमेटी' (Consultative Committee of Members of Parliament for the Planning Commission) तथा 'प्रधानमन्त्री आयोजन के लिए अनौपचारिक सलाहकार समिति' (Prime Minister's Informal Consultative Committee for Planning) भी है। योजना आयोग योजना-निर्माण से पहले और बाद में निजी क्षेत्र की वाणिज्य एवं उद्योगों से सम्बद्ध अनेक संस्थाओं के प्रतिनिधियों से भी परामर्श करता है; जैसे, Federation of Indian Chambers of Commerce and Industry, The Associated Chambers of Commerce of India, All India Manufacturers' Organization, इत्यादि।

(4) **सम्बद्ध दल (Associated Bodies)** – योजना के निर्माण में कुछ सम्बद्ध दल भी सहायता करते हैं; जैसे, विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रालय, भारतीय रिजर्व बैंक का अर्थशास्त्र विभाग, केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन (Central Statistical Organization)। इन संस्थाओं के द्वारा योजना आयोग विभिन्न विषयों से सम्बन्धित अध्ययन करवाता है तथा केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन विस्त त आंकड़े एकत्र करके योजना के निर्माण तथा मूल्यांकन के लिए आयोग की सहायता करता है।

(5) **कार्यकारी दल (Working Groups)** – योजना निर्माण के समय आयोग अनेक कार्यकारी दल नियुक्त करता है जिन पर विभिन्न समस्याओं से सम्बद्ध विशेषज्ञ होते हैं। ये दल योजना-निर्माण के लिए विभिन्न विषयों पर अपनी रिपोर्ट देते हैं जिनके आधार पर योजना बनाई जाती है। उदाहरणार्थ, त तीय योजना के निर्माण के समय 22 कार्यकारी दल बनाए गए जबकि छठी योजना के लिये 21 कार्यकारी दल थे। ये संसाधनों, कृषि, इस्पात, मशीनरी, ईंधन, शिक्षा, आदि से सम्बद्ध थे।

(6) **मूल्यांकन समितियां (Evaluation Committees)** – योजना के संचालन का मूल्यांकन करते हेतु आयोग ने मूल्यांकन समितियां स्थापित की हुई हैं; जैसे, 'योजना परियोजनाओं पर समिति' (Committee on Plan Projects) तथा 'कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन' (Programme Evaluation Organization)। पहली समिति परियोजनाओं के प्रबन्ध, प्रशासन और निर्माण-लागतों की किफायतों से सम्बद्ध समस्याओं का मूल्यांकन करती है। जबकि कार्यक्रम मूल्यांकन, संगठन मुख्य तौर से सामुदायिक विकास कार्यक्रम के मूल्यांकन के लिए बनाया गया था परन्तु अब यह कार्यक्रम विकास से सम्बद्ध कार्यक्रमों का मूल्यांकन करता है।

(7) **राष्ट्रीय विकास परिषद् (National Development Council)** – केन्द्र और राज्यों में शक्तियों के विभाजन को ध्यान में रखते हुए योजना तैयार करने में राज्यों का भाग लेना भी उतना ही अनिवार्य है जितना केन्द्र का। इसीलिए राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्थापना करनी

पड़ी जो संवैधानिक निकाय नहीं थी और मुख्यमन्त्री जिनके पदेन सदस्य थे। **प्रो. सी. पी. भाम्भरी** के अनुसार, "योजना सम्बन्धी मामलों में केन्द्र तथा राज्यों के मध्य समायोजना की स्थापना के लिए राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्थापना की गई है।"

पंचवर्षीय योजना के निर्माण में राष्ट्रीय विकास परिषद् की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। जब तक योजना पर राष्ट्रीय विकास परिषद् की स्वीकृति नहीं मिल जाती तब तक योजना प्रारूप योजना का अन्तिम रूप धारण नहीं करता। राष्ट्रीय विकास परिषद् में राज्यों के मुख्यमन्त्रियों की सदस्यता तथा योजना आयोग द्वारा निर्धारित कार्यक्रमों पर उनकी स्वीकृति के कारण योजना को राज्यों की ओर से एक प्रकार की पूर्ण स्वीकृति प्राप्त हो जाती है। माइकेल ब्रेचर के अनुसार, "राष्ट्रीय विकास परिषद् ने योजनाओं के निर्धारण में द ष्टिकोण की एकरूपता एवं कार्य-संचालन मे समानता उत्पन्न की है। परिषद् के सदस्य सत्ताधारी नीति के निर्माता हैं, उनके मत की योजना आयोग तथा मन्त्रिमण्डल किसी भी स्थिति में उपेक्षा नहीं कर सकते हैं।"

राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा 23-24 दिसम्बर, 1991 की बैठक में आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) के उद्देश्य दस्तावेज को मंजूरी दी गई तथा मई 1992 की बैठक में आठवीं पंचवर्षीय योजना के प्रारूप दस्तावेज को स्वीकृति प्रदान की।

(8) **राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र** – राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र योजना आयोग के अधीन भारत सरकार का नोडल वैज्ञानिक व तकनीकी संगठन है। यह केन्द्र अपने उपग्रह पर आधारित कम्प्यूटर संचार नेटवर्क 'निकनेट' के माध्यम से केन्द्र सरकार के 60 विभागों, 32 राज्यों/संघ शासित क्षेत्र प्रशासनों और 450 जिला प्रशासनों के प्रबन्धन में सहायता देने की प्रणाली के लिए सूचना प्रौद्योगिकी डाटा बेस माडललेस और सूचना आधार का विकास करने हेतु उत्तरदायी है।

सरकारिया कमीशन के सुझाव

सरकारिया आयोग (नवम्बर 1987) इस बात के पक्ष में नहीं है कि योजना आयोग को स्वायत्त संस्था बना दिया जाए। आयोग ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि ऐसे स्वायत्त संगठन का कामकाज कानूनी पचड़ों, अड़ियल रूख और पेचीदगियों से ग्रस्त होगा। आयोग का यह भी मानना है कि योजना आयोग को केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण से बाहर नहीं होना चाहिए।

सरकारिया आयोग का सुझाव है कि योजना आयोग का उपाध्यक्ष ख्याति प्राप्त विशेषज्ञ हो, तो अपनी वस्तुनिष्ठता और प्रसिद्धि से केन्द्र के साथ ही राज्य सरकारों का भी विश्वास प्राप्त कर सके। आयोग का कहना है कि उपाध्यक्ष की नियुक्ति राजनीतिक आधारों पर नहीं की जानी चाहिए।

अध्याय - 14
सार्वजनिक वित्त पर संसदीय नियन्त्रण
(Parliamentary Control over Public Finance)

प्रस्तावना

किसी भी देश का वित्तीय प्रशासन क) विधानमंडल, ख) कार्यपलिका, ग) वित्त विभाग, घ) लेखा परीक्षा, ङ) संसदीय समितियों द्वारा निष्पादित किया जाता है। लोकतंत्र में विधान मंडल ही एक सक्षम अंग है जो सरकार को टैक्स एकत्र करने का प्राधिकार प्रदान करता है। विधायी स्वीक ति के बिना न तो धन का विनियोजन किया जाता है और न ही टैक्स इकट्ठा किया जा सकता है। यह करों को लगा भी सकता है, कम भी कर सकता है और उन्हें हटा भी सकता है। सिद्धांत में कार्यपालिका मांग करती है और विधान मंडल स्वीकृति देता है। इसलिए सरकार को अपनी बजट योजना पर कार्य करने से पहले इसे संसद द्वारा पारित करवाना होता है। इसे बजट का अधिनियम कहा जाता है।

संसद में बजट पर बहस सदस्यों को विभिन्न विभागों तथा मंत्रालयों की कार्यप्रणाली की समीक्षा करने का अवसर देती है। यह उन्हें सरकार द्वारा शुरू किए गए विभिन्न कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में हुई उन्नति की जानकारी प्राप्त करने का अधिकार देती है। सदस्यों को बजट में शामिल नए व्यय प्रस्तावों के आर्थिक तथा सामाजिक निहितार्थों तथा औचित्य एवं परीक्षण का अवसर मिलता है।

बजट के अनुमोदन के बाद संसद द्वारा विनियोजन अधिनियम पारित किया जाता है जिसमें कार्यपालिका को विभिन्न अनुदानों में सम्मिलित आवंटनों के व्यय का प्राधिकार प्राप्त होता है। वित्त मंत्रालय, वित्तीय शक्तियों के प्रत्यायोजन द्वारा बजट के कार्यान्वयन के दौरान वित्तीय नियंत्रण के अपने दायित्वों को प्रशासनिक मंत्रालयों के साथ बांट लेता है। विधायी ---- आश्वासन समिति जैसी संसदीय समितियों के कार्यों के द्वारा किया जाता है।

भारत का लेखा नियंत्रक तक महालेखा परीक्षक जो संविधान के अनुसार एक सांविधिक प्राधिकरण है - संसद के सजग प्रहरी की तरह कार्य करता है और यह देखने के लिए लेखा-परीक्षा करता है कि कार्यपालिका द्वारा किए गए व्यय संसद के द्वारा बहुमत से स्वीकृत अनुदान के अनुसार ही हैं। भारत का लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक वित्तीय औचित्य की अवहेलना, धन का गबन जैसी वित्तीय अनियमितताओं तथा व्यतिक्रम संबंधी मामलों का विवरण लोकलेखा समिति को देता है ताकि वह आवश्यकतानुसार कार्रवाई कर सके। लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक द्वारा किए गए लेखा विनियोजन तथा विवरण की जाँच करते समय समिति जाँच की विस्त त पद्धति का आचरण करती है। लोकलेखा समिति के द्वारा लेखा रिपोर्ट का पुनरीक्षण कार्यपालिका के विनियोजित अनुदानों पर संसद के वित्तीय नियंत्रण के चक्र को पूरा करता है।

संपूर्ण प्रशासनिक कार्यप्रणाली विधानमंडल के प्रभावी नियंत्रण के अंतर्गत आती है। ऐसा इसलिए

है क्योंकि प्रत्येक कार्रवाई पर प्रश्न, प्रत्येक प्रश्न पर एक स्थगन बहस और प्रत्येक स्थगन बहस पर एक सविस्तार बहस हो सकती है। इसके अतिरिक्त संसदीय समितियाँ भी सरकार पर नियंत्रण रख सकती हैं।

विधायी नियंत्रण
(Legislative Control)

संसद राजस्व, व्यय, ऋणदान तथा लेखे-जोखे पर नियंत्रण कर सकती है। ऋणों को बढ़ाने, लोक व्यय के लिए संचित निधि में से धन निकालने, मौजूदा टैक्सों की दरों में व द्धि तथा नए करों को लगाने के लिए विधायी स्वीकृति की आवश्यकता होती है। सार्वजतिक खातों की लोक लेखा समिति द्धारा जाँच की जाती है और एक सांविधिक प्राधिकरण द्वारा लेखा परीक्षण किया जाता है जो कि कार्यपालिका से स्वतंत्र होता है। भारतीय संदर्भ में, वित्तीय नियंत्रण के निम्न चार नियमों का अनुसरण किया जाता है :

(i) मंत्रियों के रूप में कार्य करती हुई कार्यपालिका संसद के प्राधिकार के बिना ऋणदान, कराधान के द्वारा या दूसरे किसी उपाय से धन का जुगाड़ नहीं कर सकती, व्ययों के प्रस्ताव, जिनके लिए अतिरिक्त धन की आवश्यकता होती है केवल मंत्रीमंडल द्वारा ही पेश किए जाने चाहिए।

(ii) दूसरा नियम धन विधेयकों पर लोकसभा का एकमात्र नियंत्रण है। इसे पहले लोकसभा में पेश किया जाता है और लोकसभा के पास ही यह अधिकार है कि वह व्यय को प्राधिक त करने के लिए ऋणों अथवा करों के रूप में धन की स्वीकृति दे सकती है। राज्यसभा अनुदान को अस्वीकार तो कर सकती है परन्तु इसे लागू नहीं करवा सकती हैं।

(iii) अनुदान की मांग सरकार द्वारा की जानी चाहिए। सरकार द्वारा अनुदान की मांग के अतिरिक्त किसी अनुदान को न तो राज्यसभा और न ही लोकसभा स्वीकृत कर सकती है।

(iv) इसी तरह, किसी भी नए कर अथवा मौजूदा कर में व द्धि के प्रस्तावों का भी सरकार द्वारा पेश किया जाना आवश्यक है।

भारत में प्रश्न, कार्य स्थगन प्रस्ताव, संकल्प, वोट, बजट तथा विधायी समिति लोक लेखा, आकलन, अधीनस्थ विधान, और आश्वासन समिति विधायी नियंत्रण के साधन हैं। विधायी नियत्रंण के इन तरीकों का वर्णन यहां सक्षेप में किया गया है:

1. **प्रश्न अवधि :** प्रत्येक संसदीय दिवस का पहला घंटा प्रश्नों के लिए रखा गया है जिसमें नियत्रंण प्रभावी हो जाता है। पूछे गए प्रश्न समूचे प्रशासन को सावधान कर सकते हैं। प्रश्न प्रशासन की नीतियों तथा गतिविधियों के विभिन्न पहलुओं पर जनता के ध्याान को प्रभावशाली ढंग से संकेन्द्रित करने का सफल साधन है। किसी भी प्रशासनिक कार्रवाई पर प्रश्न किया जा सकता है हांलाकि सदस्य मंत्री को उत्तर देने के लिए विवश नहीं कर सकते। अध्यक्ष भी कुछ प्रश्नों को पूछने की अनुमती नहीं देता। आमतौर पर प्रश्न तथाकथित कमजोर मुद्दों पर सरकार पर प्रहार करने के लिए अथवा किसी विषय पर मंत्री की राय तथा सूचना प्राप्त करने के उद्देश्य से पूछे जाते हैं। बहुत से प्रश्न हल्के फुल्के हो सकते हैं। मगर कुछ सरकार को जबरदस्त हानि पहुंचाते हैं जैसे 1956 का जीवन बीमा निगम का विवाद केवल एक ही प्रश्न के उत्तर से शुरू हुआ था जिससे वित्तमंत्री को त्याग पत्र देना पड़ा था।

   यह उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करने वाली सर्वप्रिय, सर्वविदित सामान्यतः प्रयोग में लाई

जाने वाली विधि है। समय-समय पर सदस्य अपने प्रश्नों के द्वारा महत्वपूर्ण विषयों को उठाते रहे हैं।

2. **कार्य स्थगन वादविवाद :** यह एक दैनिक नियंत्रण का साधन है तथा सार्वजनिक हित के विशिष्ट तथा किसी भी अनिवार्य प्रश्न को सदन में बहस के लिए रखा जा सकता है। अगर पीठासीन अधिकारी की अनुमति हो तो उठाए गए विषय पर तत्काल बहस शुरू हो जाती है, इस प्रकार सदन के नियमित कार्य को स्थगित कर दिया जाता है। व्यवहार में, यह देखा गया है कि अध्यक्ष "तुरंत प्रक ति तथा जनहित" शब्द को व्याख्यायित करने की कोशिश नहीं करता है।

3. **अधिनियम के संशोधन तथा अधिनियमन पर वाद-विवाद :** किसी भी विधेयक के बार-बार पढ़ने से संसद के सदस्यों को विधेयक की संपूर्ण नीति की आलोचना करने में सहायता मिलती है। आलोचना से सरकार के हृदय में परिवर्तन भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, सरकार ने 1957 में अत्यधिक विवादास्पद हिन्दी कोड विधेयक को वापिस ले लिया था। इसी तरह जब कभी भी अधिनियम में संशोधन के लिए संसद में प्रस्ताव पेश किया जाता है तो सदस्यों को एक बार फिर से उस पर चर्चा करने का अवसर मिलता है।

4. **बजट परिचर्चा :** लेखे (हिसाब) पर बजट के विषय प्रवेश (परिचय) से संसद को बजट-प्रस्तावों पर बहस करने के अनेक अवसर मिलते हैं। संसद सदस्यों को बजट पर चर्चा करने के लिए भिन्न स्थितियों में निम्न अवसर मिलते हैं :

   (क) बजट के प्रस्तुतीकरण के बाद आम चर्चा होती है। इस अवसर पर चर्चा समूचे बजट अथवा उसके सिद्धान्तों के किसी भी प्रश्न से संबधित होती है।

   (ख) अनुदानों पर मतदान के समय दूसरा अवसर मिलता है। मागं की प्रत्येक मद पर चर्चा होती है। अगर उसमें उठाए गए विशिष्ट मद पर कटौती प्रस्ताव रखा जाता है तो चर्चा अत्यधिक तर्कसंगत है और इसे विशिष्ट विषय पर संकेन्द्रित किया जा सकता है।

   (ग) वित्त विधेयक पर परिचर्चा से समूचे प्रशासन की चर्चा करने के अनेक अवसर मिलते हैं। जी. बी. मावलंकर के शब्दों में "यह एक स्वीक त सिद्धान्त है कि वित्त विधेयक में किसी भी विषय पर बहस की जा सकती है और किसी भी शिकायत पर खुले आम विचार-विमर्श किया जा सकता है। नियम यह है कि किसी भी नागरिक को अपने शिकायतों तथा विचारों का प्रतिनिधित्व करने के लिए नहीं बुलाया जाना चाहिए जब तक संसद उसे इस बात कि पूर्ण छूट न दे दे।"

5. **राष्ट्रपति का भाषण :** बजट सत्र के शुरू होने पर राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों को एक साथ संबोधित करता है। भाषण सरकार द्वारा तय किया जाता है और प्रत्येक मंत्रालय उससे संबधित मांग के लिए उत्तरदायी होता है। राष्ट्रपति अपने भाषण में उन प्रमुख नीतियों तथा गतिविधियों की विस्त त जानकारी देता है जिन्हें कार्यपालिका निकट भविष्य में कार्यान्वित करने के लिए पूर्वाधिकृत कर चुकी होगी। संसद सदस्यों को प्रशासन के समूचित क्षेत्र की उसकी भूलचूक के तथाकथित कार्यों की समीक्षा करने का अवसर मिलता है।

6. **संसदीय समितियाँ :** संसदीय समितियाँ-लोक लेखा समिति, आकलन समिति, लोक उपक्रम समिति, अधीनस्थ विधान समिति तथा आश्वासन समिति प्रशासन पर नियंत्रण के साधन हैं। पहली तीन समितियां तो वास्तविक तथा विस्त त नियंत्रण करती हैं और आश्वासन समिति मंत्रियों द्वारा समय-समय पर सदन में दिए गए आश्वासनों तथा वचनों की छानबीन

करती है और निम्न विषयों की जानकारी देती है- i) ऐसे वायदों तथा आश्वासनों को किस सीमा तक पूरा किया गया है, ii) कहाँ पूरा किया गया है, क्या ऐसे कार्यान्वयन को कम से कम समय में पूरा किया गया है। ऐसी समितियाँ मंत्रियों को अपने वायदों को पूरा करने के लिए सतर्क करती हैं।

7. **लेखा-परीक्षण :** संसद लेखानियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक के द्वारा सरकारी व्ययों पर नियत्रंण करती है जो सभी सरकारी लेखों का हिसाब-किताब रखता है ताकि सुनिश्चित कर सके कि संसद द्वारा स्वीक त धन को बिना अनुपूरक वोट के बढ़ाया नहीं गया और धन का व्यय नियमों के अनुसार ही किया गया है। इस प्रकार वित्तीय प्रशासन के क्षेत्र में संसद के प्रति सरकार का उत्तरदायित्व लेखानियंत्रक तथा लेखामहापरीक्षक की रिपोर्टों से प्राप्त किया जाता है जिसे ठीक ही संसद का "मार्गदर्शक, मित्र तथा तत्वज्ञ" माना गया है।

विधायी नियंत्रण की ऐतिहासिक प ष्ठभूमि

हांलाकि बजट पर पूर्ण नियंत्रण इसी सदी की संकल्पना है मगर इसका विकास मध्ययुग के अंत में शुरू हुआ था जबकि राजा के अधिकार क्षेत्र में राजस्व एकत्र करना शामिल होता था। इस प्रकार बजट राजस्व तथा व्यय का एक विवरण था। युद्ध तथा अन्य आपात स्थितियों के दौरान जब राजा को राज्य के कार्यो के लिए अत्यधिक धन की आवश्यकता होती थी तो उसे कुलीन वर्ग की राय जानने के लिए उनसे परामर्श करना पड़ता था। अभी तक व्यय राजा का ही विशेषाधिकार था। 1688 की क्रांति के बाद "प्रतिनिधित्व के बिना राजस्व नहीं" नियम की स्थापना हुई। अभी भी व्यय नियत्रंण पर विधायी स्वीकृति की परम्परा शुरू हुई थी।

लोक वित्त पर विधायी नियंत्रण की प्रथा सर्वप्रथम इंग्लैंड में शुरू हुई और लगातार विकसित होती गई। इस दिशा में किंग जॉन के शासन में उठाया गया पहला प्रयास व्यय की अपेक्षा राजस्व तथा प्राप्तियों (आय) पर नियंत्रण था। स्टुअर्ट की निरकुंशता ने सभासदों को और अधिक आग्रही बना दिया और वे सरकारी व्यय पर नियत्रंण में भागीदारी का दावा करने लगे। मगर ऐसा अचानक नहीं हुआ अथवा किसी संगठित योजना रूपरेखा के अनुसार यह कार्यान्वित नहीं हुआ था या यह कोई नियोजित प्रयास नहीं था जो धीरे-धीरे विकसित हुआ हो।

1987 में लेखाकरण तथा विवरण पद्धति की स्थापना 1866 के राजकोष तथा लेखा परीक्षण विभाग अधिनियम के अर्न्तगत लेखा परीक्षण प्रथा और 1866 में हाउस ऑफ कॉमंस में लोकलेखों की स्थायी समिति का संविधान विधायी नियंत्रण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण ऐतिहासिक विकास थे।

इस प्रकार लेखा परीक्षण तथा विवरण की आधुनिक तथा विवरण की आधुनिक प्रणाली का निर्माण हुआ जिसके अनुसार विधान मंडल राज्य की वित्त व्यवस्था पर नियंत्रण करते थे। भारत में विधायी निंयत्रण की प्रणाली लगभग इंग्लैंड में प्रचलित प्रणाली पर आधारित है।

सवैंधानिक उपबन्ध, 1950

भारतीय संविधान अपने विभिन्न अनुच्छेदों में वित्तीय मामलों में विधायी प्रक्रिया की व्याख्या करता है। भारतीय संविधान के मुख्य उपबंध नीचे दिए गए हैं :

अनुच्छेद 107 (i) के अनुसार अनुच्छेद 109 तथा 117 के उपबंधों के अधीन धन विधेयक और अन्य वित्तीय विधेयकों के विषय में, एक विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रारंभ किया जा सकता है और अनुच्छेद 108 तथा 109 के उपबंध के अधीन कोई भी विधेयक संसद के एक सदन द्वारा पारित हुआ नहीं माना जाएगा जब तक दोनों सदन इससे सहमत न हो जाएँ, चाहे यह संशोधनों सहित अथवा ऐसे संशोधनों के बिना हो, मगर दोनों सदनों की सहमति जरूरी है।

अनुच्छेद 109 (i) के अनुसार एक धन विधेयक राज्यसभा में प्रारंभ नहीं किया जाएगा। अनुच्छेद 109 (ii) लोकसभा द्वारा पारित धन विधेयक को राज्यसभा में उसके सुझावों के लिए भेजा जाता है और राज्यसभा को इस विधेयक की प्राप्ति की तिथि के पन्द्रह दिनों के अंर्तगत अपनी सिफारिशों सहित लोकसभा को वापिस भेजना होता है और लोकसभा राज्यसभा की सभी अथवा कुछ सिफारिशों को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत कर सकती है। अनुच्छेद 109 (iii) के अनुसार अगर लोकसभा राज्यसभा की सिफारिशों में से किसी को स्वीकार करती है तो विधेयक राज्यसभा द्वारा बताए गए संशोधनों सहित दोनों सदनों द्वारा माना जाएगा।

अनुच्छेद 112 (i) से स्पष्ट है कि राष्ट्रपति को प्रत्येक वित्तीय वर्ष के विषय में भारत सरकार के वर्ष भर के आकल्लित व्ययों तथा आय का विवरण संसद के दोनों सदनों के समक्ष रखना होता है। ऐसे विवरण को "वार्षिक वित्तीय विवरण" कहा गया है।

अनुच्छेद 113 (i) के अनुसार भारत की संचित निधि पर प्रभावित व्यय से सबंधित काफी अनुमानों को संसद की स्वीक त के लिए प्रस्तुत नहीं किया जाएगा। मगर इस धारा में उन अनुमानों में से किसी पर भी संसद के किसी भी सदन में परिचर्चा को रोकने का प्रावधान नहीं हैं।

अनुच्छेद 114 (i) के अनुसार ज्यों ही अनुच्छेद 113 के अधीन अनुदान लोकसभा द्वारा पेश हो जाएंगे त्यों ही सभी धन संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भारत की संचित निधि में से विनियोजन के लिए विधेयक प्रारंभ किया जाएगा :

(क) लोकसभा द्वारा किए गए अनुदान

(ख) भारत की संचित निधि पर प्रभारित व्ययः मगर संसद के समक्ष पहले से रखे गए विवरण में दिखाए गए धन में किसी भी प्रकार से व द्धि नहीं हो।

अनुच्छेद 116 (i) के अनुसार लोकसभा के पास निम्न शक्तियाँ होंगी :

(क) उस व्यय के विषय में अनुच्छेद 114 के उपबंधों के अनुसार कानून को पारित करना और ऐसे अनुदान की स्वीकृति के लिए अनुच्छेद 113 में निर्धारित प्रक्रिया की निष्पत्ति के विचाराधीन किसी वित्तीय वर्ष के अनुमानित व्यय के एक भाग के विषय में पहले से ही अनुदान बनाना।

(ख) जब सेवा के अनिश्चित स्वरूप अथवा विस्तार के कारण मांग वार्षिक वित्तीय विवरण में साधारणतया दिए गए ब्यौरे से निश्चित नहीं किये जा सकते तो भारत के संसाधनों पर आकस्मिक मांग को पूरा करने के लिए अनुदान करना।

(ग) एक विशिष्ट अनुदान बनाना, जो किसी वित्तीय वर्ष की सामायिक सेवा का हिस्सा नहीं होती और संसद के पास उन कार्यों जिनके लिए उक्त अनुदान किए गए हैं, भारत की संचित निधि में से धन निकालने का कानूनन अधिकार है।

अनुच्छेद 117 (i) के अनुसार अनुच्छेद् 110 के अधीन निर्दिष्ट मामलों में से किसी एक के लिए प्रावधान करने वाले सशोधन अथवा विधेयक को राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना शुरू नहीं किया जाएगा और ऐसे प्रावधान करने वाले विधेयक को राज्यसभा में शुरू नहीं किया जाएगा। किसी कर के उन्मूलन अथवा कटौती के लिए प्रावधान करने वाले संशोधन को प्रस्तुत करने के लिए ऐसी सिफारिश की आवश्यकता नहीं होगी। अनुच्छेद 117(ख) यह जानकारी देता है कि एक विधेयक, जो अगर कानून बन गया है और उसका कार्यान्वयन शुरू हो चुका है, भारत की संचित निधि में से व्यय को पूरा करेगा और तब तक संसद के किसी भी सदन द्वारा पारित नहीं होगा जब तक राष्ट्रपति उस सदन को विधेयक के महत्व की सिफारिश न करे।

कराधान पर नियंत्रण

बजट का निर्माण तब तक पूरा नहीं माना जाता जब तक लोगों से आपेक्षित धन को इकट्ठा करने की पूर्वयोजना नहीं बन जाती। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सदन के समक्ष एक वित्त विधेयक रखा जाता है जिसमें वित्तीय वर्ष के लिए राजस्व प्रस्ताव अथवा कराधान को प्रस्तुत किया जाता है और इसमें वर्तमान कराधान योजनाओं को कुछ परिवर्तन के साथ अथवा वैसे का वैसा शामिल किया जाता है।

यह प्रक्रिया लोकतंत्र के सुप्रसिद्ध सिद्धांत के अनुरूप है कि विधि के प्राधिकरण के अतिरिक्त किसी भी अन्य के द्वारा न तो कोई कर लगाया जा सकेगा अथवा इकट्ठा किया जा सकेगा जैसा कि हमारे संविधान के अनुच्छेद 265 में स्पष्ट प्रस्तुत किया गया है। अतः जबकि विनियोजन विधेयक सरकार को संचित निधि में से धन का विनियोजन करने का अधिकार देता है तो वित्त विधेयक इस करों को एकत्र करने का अधिकार देता हैं।

वित्त विधेयक में आगामी वित्तीय वर्ष के लिए सरकार के वित्तीय (कराधान) प्रस्तावों को शामिल किया जाता है जिन्हें प्रति वर्ष संसद को पारित करना होता है। इसमें खुली बहस की जाती है। संशोधनों द्वारा किसी भी कर में कटौती अथवा उसके उन्मूलन का प्रस्ताव किया जा सकता है मगर हो सकता है नए करों अथवा मौजूदा करों की दर में कोई व द्धि का प्रस्वाव न हो। संशोधित विधेयक लोकसभा द्वारा पारित किया जाता है और राज्यसभा द्वारा विचार विमर्श के बाद यह राष्ट्रपति के पास उसके हस्ताक्षर के लिए जाता है, जिसके बाद विधेयक अधिनियम बन जाता हैं।

धन विधेयक का संबंध कराधान, ऋणदान अथवा व्ययों से होता है। बजट सत्र के शुरू होते ही बजट प्रस्ताव संसद के दोनों सदनो के समक्ष रखे जा सकते हैं। धन विधेयकों के लिए प्राधिकरण लोकसभा के पास ही है तथा इसीलिए लोकसभा ही विधेयक की आगे की कार्यवाई करती है। वित्त मंत्री लोकसभा के सामने वार्षिक वित्तीय विवरण प्रस्तुत करता है और उस प्रस्तुतीकरण के बाद दोनों सदनों में अलग-अलग समूचे वित्तीय वितरण पर आम चर्चा की जाती है। व्यय के किसी भी मद को आम बहस में छोड़ा नहीं जाता। मगर बहस केवल नीति से संबधित सामान्य स्वरूप पर ही होनी चाहिए जिसमें सम्बद्ध विभागों के प्रशासन की समीक्षा तथा पुनरीक्षण हो तथा शायद सदस्य लोगों की शिकायतों को भी अभिव्यक्त करें।

एक धन विधेयक किसी भी तरह निम्न संदर्भों में वित्त विधेयक से भिन्न होता है :

(क) एक धन विधेयक केवल कराधान, ऋणदान अथवा व्यय से संबंध होता हैं। जबकि वित्त विधेयक का क्षेत्र विस्त त होता है जिसमें यह उपरोक्त के अलावा अन्य मामलों पर भी विचार करता है।

(ख) धन विधेयक ऐसा विधेयक है जिसे लोकसभा के अध्यक्ष द्वारा प्रमाणित किया जाना होता है जबकि वित्त विधेयक के लिए ऐसा प्रमाण आवश्यक नहीं है।

(ग) एक धन विधेयक को राज्यसभा को इसकी प्राप्ति के 14 दिनों के अर्न्तगत अपनी सिफारिशों सहित, अगर है तो, जिन्हें मानना लोकसभा के लिए जरूरी नहीं होता, लोकसभा को लौटाना जरूरी होता है। एक वित्त विधेयक पर मतभेद को किसी भी तरह संयुक्त बैठक में उपस्थित सदस्यों की कुल संख्या के बहुमत द्वारा दूर किया जा सकता है।

लोक व्यय पर नियंत्रण-एक मूल्यांकन

विधान मंडल का कार्य लोक व्यय के लिए अनुदान पर मतदान से समाप्त नहीं होता। इसे यह

भी देखना होता है कि दी गई नीधि (धन) का उपयोग दिए गए निर्देशों के अनुसार निष्ठापूर्वक तथा किफायत से किया गया है। ससंद को अपने संदेहों को भी दूर करना होता है कि (1) निधि को अनुमोदित उद्देश्यों के लिए ही प्रयुक्त किया गया है, (2) विनियुक्त राशि के अर्न्तगत ही, (3) व्यर्थ तथा बेतुके खर्चों से बचा गया है आदि। इस कार्य के लिए भारत के महानियंत्रक तथा लेखा महापरीक्षक के द्वारा सभी विभागीय खातों का अलग-अलग लेखा जोखा रखा जाता है जिसकी रिपोर्ट का परीक्षण किसी भी संसदीय समिति द्वारा होता है।

संसद के प्रति राजनैतिक कार्यपालक का संयुक्त दायित्व ससंदीय लोकतंत्र का आवश्यक गुण है। संसद द्वारा कार्यपालक पर किया जाने वाला सबसे महत्वपूर्ण नियंत्रण बटुए की डोरी पर नियंत्रण है। कार्यपालक संसद की स्वीकृति के बिना धन का व्यय नहीं कर सकता।

भारतीय लेखा नियंत्रक तथा लेखा महापरीक्षक द्वारा लेखा परीक्षण

व्यय पर संसद का नियंत्रण तभी पूर्ण है जब यह स्वयं निश्चित कर सके कि कार्यपालिका द्वारा किए गए खर्चे उन्हीं कार्यो के लिए किए गए हैं जिनकी अनुमति दी गई थी। ऐसा एक स्वतंत्र प्राधिकरण भारत का लेखा नियंत्रक तथा लेखा महापरीक्षक द्वारा लेखों के परीक्षण के प्रावधान द्वारा निश्चित किया गया है। वह संघ तथा राज्यों के सभी व्ययों का परीक्षण करता है तथा पता लगाता है कि खातों में दिखाया गया व्यय हुआ धन उन कार्यों, जिनके लिए उसका प्रयोग किया गया है, कानूनन उपयुक्त तथा उपलब्ध था। वह राज्यों तथा केन्द्र के अन्य सभी लेखों का भी परीक्षण करता है। वह लेखा परीक्षण की अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति तथा गवर्नरों को भेजता है ताकि उसे राज्य विधानमंडलों तथा राष्ट्रपति के समक्ष रखा जा सके। वह किसी भी फजूलखर्च तथा अयोग्यता की सूचना देता है। वह लेखाकरण अथवा वित्तीय सिद्धान्त जिनमें विवाद हो, ऐसे लेनदेन व्यवहारों जिनमें भारी हानि हुई हो अथवा हो सकती हो, नई सेवाओं पर व्यय और निर्धारित कार्य प्रणाली तथा पूर्वनिर्णयों से विचलन संबंधी मामलों पर स्पष्ट टीका टिप्पणी करता है। संसद को पूरी रिपोर्ट तथा सम्पूर्ण लेखा-परीक्षण की जानकारी देने के लिए संविधान द्वारा लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक को स्वतंत्र पद दिया गया है।

चूंकि संसद लेखा नियंत्रण तथा महालेखा परीक्षक की रिपोर्टों पर गंभीर कानूनी चर्चा करने के लिए एक अत्यधिक दुष्प्रयोजनीय निकाय है, यह रिपोर्टों को विस्त त परीक्षण के लिए संसद की विशेष समितियों को अत्यधिक भेजती है। इस प्रकार की कुछ महत्वपूर्ण समितियों की नीचे चर्चा की गई है।

लोक लेखा समिति

लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक की लेखा परीक्षण रिपोर्ट को संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। लेखा परीक्षण रिपोर्ट का परीक्षण कार्य संसद की विशेष समिति को सौंपा जाता है जिसे लोक लेखा समिति के नाम से जाना जाता है।

लोक लेखों पर समिति के नियंत्रण संबंधी नियम 143 से पता चलता है :

1. लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक की रिपोर्ट तथा भारत सरकार के विनियोजन लेखों की जाँच के बाद लोक लेखा समिति का कर्त्तव्य होगा कि अपने संदेहों को खत्म करें :

    क) कि वितरित किया गया जो धन खाते में दिखाया गया था, सेवा अथवा कार्य जिसके लिए भी प्रयोग में लाया जाना था अथवा जिसके खर्चे में लिखा गया था, कानूनन उपलब्ध तथा उपयुक्त था।

(ख) कि व्यय उस प्राधिकरण के अनुसार किया गया जो इस पर नियंत्रण रखता है, तथा

(ग) कि प्रत्येक पुर्नविनियोजन विनियोजन अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार किया गया है, अथवा उक्त अधिनियम के प्रावधानों के अर्न्तगत सक्षम प्राधिकरण के द्वारा नियमों को बनाया गया है।

2. लोक लेखों पर समिति का कर्त्तव्य होगा कि :

क) ऐसे लेन-देन, निर्माण और लाभ तथा हानि के खातों और बैलेंस शीट (तुलन पत्र) का परीक्षण करें। क्योंकि लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक की रिपोर्टों के पश्चात् राष्ट्रपति को इसकी आवश्यकता हो।

(ख) लेखा नियंत्रक तथा लेखा महापरीक्षक की रिपोर्ट के उन मामलों पर विचार करें जिनमें राष्ट्रपति को आय (प्राप्ति) का लेखा-जोखा रखने अथवा माल तथा भंडार के लेखे-जोखे का परीक्षण करने के लिए उसकी जरूरत पड़े।

लेखा नियंत्रक तथा महालेखा परीक्षक की लेखा परीक्षण रिपोर्ट पर लोक लेखा समिति के निष्कर्ष सरकार द्वारा आवश्यकतानुसार सिफारिशों सहित कार्रवाई के लिए संसद के समक्ष रखे जाते हैं। इस प्रकार लोक लेखा समिति संसद द्वारा स्वीकृत व्यय के विषय में कार्यपालक के उत्तरदायित्व को सुद ढ़ बनाने की प्रक्रिया है।

आकल्लन समिति

लोक लेखा समिति की प्रक्रिया के द्वारा ससंद अपने द्वारा स्वीक त व्यय के विषय में कार्यपालक के उत्तरदायित्व को सुद ढ़ बनाने के योग्य रही है। आकल्न समिति की प्रक्रिया ही संसद के सामने विचारार्थ रखे जाने से पहले वित्त मंत्रालय के अनुमानों को ब्यौरेवार जाँच का विषय बनाती है।

समिति के कार्य हैं :

1. यह विवरण देना है कि संगठनात्मक कार्यक्षमता में व द्धि अथवा अधीनस्थ नीति के अनुकूल प्रशासनिक सुधार, दोनों में से क्या ज्यादा लाभकारी है।
2. प्रशासन में व्यवस्था तथा कार्यदक्षता के लिए विकल्प नीतियों को सुझाना।
3. आकल्नों में अन्तर्निहित नीति की सीमाओं के अंतर्गत ही धन के व्यय का परीक्षण करना।
4. ऐसे ढंग सुझाना जिनके द्वारा संसद के सामने आकल्न पेश किए जा सकें।

समिति प्रतिवर्ष कुछ विभागों का चयन करती है उसकी कार्यप्रणाली की विस्त त जाँच करती है तथा उसकी अर्थनीतियों, संगठनों, नीति संबंधी मामलों आदि पर सुझाव देती है।

सरकारी उपक्रमों की जांच

समिति द्वारा सरकारी उपक्रमों की जाँच उनके कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन ही है जिसमें नीतियों का कार्यान्वयन, कार्यक्रम, व्यवस्था, वित्तीय सफलता जैसे महत्वपूर्ण पहलू आते हैं। समिति लेखा निंयत्रक तथा लेखा महापरीक्षक की सरकारी उपक्रमों की रिपोर्ट के उस भाग पर विचार करती है जो उसे भेजा जाता है।

रिपोर्ट की जाँच के बाद, सरकारी उपक्रम समिति अपने सुझावों सहित इसे संसद में भेजती है।

इस समिति की रिपोर्ट के साथ-साथ लेखा नियंत्रक तथा लेखा महा परीक्षक की रिपोर्ट लोक व्यय पर संसद के नियंत्रण का उपयोगी साधन होती है।

संसद का प्रत्यक्ष नियंत्रण

संसद आकल्लन समिति और लोक लेखा समिति की रिपोर्टों की जाँच के द्वारा लोक व्यय पर प्रत्यक्ष नियंत्रण करती है। महालेखा परीक्षक तथा समितियों द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्टों पर आम बहस की जाती है। सरकार को, अगर कोई आरोप लगाए गए हों, तो उनका उत्तर देना होता है।

अतः पूर्ववर्ती चर्चा से यह स्पष्ट है कि संसद सरकार के व्यय के लिए धन की स्वीक ति देती है मगर यह निम्न बातों का पता लगाने के लिए समुचित कदम उठाती हैं :

(क) व्यय निर्धारित नियमों के अनुसार हुआ है।

(ख) व्यय में किफायत (मितव्ययता) का ध्यान रखा गया है।

(ग) कोई धोखाधड़ी, गबन और दुष्प्रयोजन तो नहीं किया गया।

सारांश

सुचारू (सही) प्रशासन की आवश्यकता अनिवार्य हो गई है क्योंकि सरकार के व्यय अत्यधिक बढ़ गए हैं। वित्तीय प्रशासन दिन-प्रतिदिन जटिल होता जा रहा है। इसमें कर-दाताओं से इकट्ठा किए जाने वाले धन का लेखा-जोखा, व्यय तथा उत्थापन आते हैं। निधि की आवश्यकता कार्यपालक को होती है, विधान मंडल द्वारा स्वीक ति, प्रशासनिक मंत्रालयों द्वारा व्यय तथा लेखा निंयत्रक तथा महालेखा परीक्षक द्वारा लेखा परीक्षण होता है।

लोकतांत्रिक सिद्धान्तों के अनुसार संसद की पूर्वसहमति को छोड़कर सरकार के द्वारा कोई भी कर न तो लगाया जा सकता है और न ही एकत्र किया जा सकता है और न ही कोई व्यय किया जा सकता है। प्रायः यह तर्क दिया गया है कि ससंद का वित्तीय प्रशासन पर नियंत्रण ज्यादा नाममात्र है। अनुदान के लिए अनुरोधों को बदला नहीं जा सकता क्योंकि उन्हें कार्यपालक द्वारा पेश किया जाता है जो कि संसद के बहुमत का प्रतिनिधित्व करता है। तथापि, सरकार की बजट प्रस्तावों में परिवर्तन करने की शक्ति को पूर्ण रूप से समझना जरूरी है जिसका सरकार संभवतः प्रयोग नहीं करती मगर यह सच्चाई कि ससंद के पास यह अधिकार है ही कार्यपालक पर अत्यधिक प्राधिकार प्रस्तुत करता है।

सरकार के बजट प्रस्तावों में आमतौर पर ससंद परिवर्तन नहीं करती परन्तु बजटीय प्रक्रिया सदस्यों को सरकार की नीति की समीक्षा करने के कई अवसर प्रदान करती है। बजट पर आम बहस के दौरान सदस्य सरकार की सामान्य नीति की आलोचना कर सकते हैं और विकल्प भी प्रस्तुत कर सकते हैं। विभिन्न विभागों के अनुदानों पर बहस के दौरान संसद विशिष्ट विभागों की कार्य प्रणाली की विस्त त जाँच कर सकती है और उसे सुधारने के लिए सुझाव भी दे सकती है। इसी तरह, वित्त विधेयक तथा विनियोजन विधेयक पर बहस के अवसर भी दिए गए हैं।

अध्याय - 15

अनुमान समिति, सार्वजनिक लेखा समिति एवं सार्वजनिक उद्यम समिति

(Estimates Committee, Public Accounts Committee and Public Undertaking Committee)

(A) अनुमान समिति
(Estimates Committee)

भारतीय लोक लेखा समिति के एक सदस्य ऐरा सेजीयन (Era Sezhiyan) ने समिति के 40 वें प्रतिवेदन पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि प्रतिवेदनों में बीती घटनाओं से संबंधित आलोचनाओं की बुद्धिमत्ता इस द ष्टि से परखी जानी चाहिए कि इनके द्वारा व्यवस्था की वास्तविक कमजोरियों को उदघा्टित करके राष्ट्रीय हित के बड़े मुद्दों के प्रति ध्यान आकर्षित किया जाता है। भारत में लोक लेखा समिति की करीब 90% सिफारिशों को सरकार द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है। फलतः हर अगले वर्ष वित्तीय शासन के क्षेत्र में सुधार की संभावनाएं तो बनती ही हैं।

समिति की एक आम शिकायत यह है कि सरकार उसकी सिफारिशों को गंभीरता से नहीं लेती तथा इन्हें संसदीय लोकतंत्र में पूर्ण करने योग्य औपचारिक मात्र मान लिया जाता है। जब कभी कोई अनियमितता बतलायी जाती है तो सरकार इसके लिए एक दूसरी समिति गठित कर देती है जो प्रायः विभागीय प्रकृति की होती है, न्यायिक स्वरूप वाली नहीं होती। ऐसी समितियाँ प्रायः लीपा-पोती के अलावा और कुछ नहीं करतीं तथा वे मंत्रालयों के कार्यों के औचित्य को सिद्ध करने के प्रसास में लगी रहती हैं।

लोक लेखा समिति सरकारी विभागों तथा विभिन्न निगम मंडलों के काम-काज के बारे में लेखा परीक्षक के प्रतिवेदन के आधार पर सिफारिशें करती हैं, उससे काम-काज को अधिक सुचारू करने के अलावा भ्रष्टाचार, अपव्यय और नौकरशाही के अनियन्त्रित तरीकों पर रोक लग सकती है। लेकिन अफसोस यह है कि सरकार इस बारे में ध्यान नहीं देती और न ही प्रतिवेदनों पर कार्यवाही करती है। इसके कारण मनमानी चलती है और सरकारी धन के व्यय के प्रति कोई गंभीर नहीं होता।

यद्यपि समिति के पास अपनी सिफारिशें लागू करवाने की कोई सत्ता नहीं होती तथापि इस अर्थ में उसकी सेवाएं महत्वपूर्ण हैं कि वह प्रशासन के दोषों को जनता के समक्ष प्रकट करती है तथा अधिकारियों को इस बात के लिए सचेष्ट रखती है कि उनकी लापरवाही अथवा भ्रष्ट आचरण की सूक्ष्म जांच करने वाली वैधानिक इकाई निरन्तर उनके कार्यों पर नजर रखे रहती है। इसके

अतिरिक्त इस समिति के मंच पर प्रशासनिक अधिकारी तथा राजनीतिक व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति मंच पर एकत्रित होकर जिस उच्च स्तर पर विचार-विमर्श करते हैं, उससे पूरे वित्तीय प्रशासन तंत्र में सतत् सुधार तथा निखार की संभावनाएँ बलवती बनती हैं। इस द ष्टि से लोक लेखा समिति को संसदीय वित्त नियंत्रण का एक सशक्त माध्यम माना जा सकता है। इसमें विशेषज्ञ भले ही न हों, उसके विचार-विमर्श में चाहे राजनीतिक रंगत ही क्यों न दिखायी दे तथापि यह संसदीय तंत्र का एक ऐसा अंग है जो प्रशासन तंत्र को आर्थिक कुशलता की ओर अग्रसर करने के लिए दिशा स्तम्भ की भूमिका निरन्तर निभाती रहती है।

"लोक लेखा समिति में यद्यापि सभी दलों के सदस्य होते हैं किन्तु इस समिति ने सदा एक मत से प्रतिवेदन प्रस्तुत किए हैं तथा सभी मामलों पर निष्पक्षता से विचार किया है।"

"समिति द्वारा व्यय तथा प्रशासनिक त्रुटियों की जाँच पड़ताल का काफी प्रभाव पड़ता है तथा इससे सरकारी विभागों में अकार्यकुशलता, लापरवाही जैसे दोष नहीं आ पाते। सरकारी धनराशि को खर्च करते समय प्रशासन सावधानी बरतता है तथा प्रशासनिक कार्यवाही में कार्यकुशलता बनी रहती है।"

अनुमान समिति या प्राक्कलन समिति
(Estimate Committee)

ब्रिटेन में 1912 से कोई 20 से 30 सदस्यों की एक अनुमान समिति कार्य करती रही है जबकि भारत में 1937 में श्री एस. सत्यमूर्ति ने केन्द्रीय विधान मंडल में एक अल्पकालीन सूचना के माध्यम से इस समिति की स्थापना की मांग की थी। लेकिन इस समिति की स्थापना स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात 10 अप्रैल, 1950 को ही करना संभव हो सका। इस समिति की स्थापना की घोषणा करते हुए तत्कालीन लोक सभा अध्यक्ष श्री मावलंकर ने कहा था कि भारतीय संविधान की धारा 116 के प्रावधान के अनुसार, "कार्यपालिका के व्यय पर सदन के बेहतर नियंत्रण के लिए अनुमान समिति की स्थापना की आवश्यकता महसूस की जाती थी। इसलिए निम्न समिति की समिति के समान एक स्वतंत्र समिति की स्थापना की जा रही है।"

इस घोषणा के साथ प्रारम्भ में लोकसभा के 25 सदस्यों की एक समिति चुनी गयी किन्तु 1956 से इसकी सदस्य संख्या 30 कर दी गयी। यहाँ यह याद रखना उचित होगा कि अनुमान समिति में वास्तव में स्थायी वित्त समिति की प्रतिस्थापक समिति अथवा उसी का सुधरा रूप नहीं है। ये दोनों समितियाँ 1952 तक साथ-साथ काम करती रहीं। किन्तु 1952 में स्थायी वित्त तथा स्थायी सलाहकार समितियों को समाप्त कर दिया गया है।

अनुमान समिति का संगठन एवं स्वरूप
(The Nature and Organisation of Estimate Committee)

लोक लेखा की भांति अनुमान समिति भी लोकसभा की ही समिति है जिसके सदस्य एकल संक्रमणीय पद्धति के आधार पर प्रतिवर्ष चुने जाते हैं। इस समिति में लोकसभा के 30 सदस्य होते हैं। लोक लेखा समिति और सरकारी उपक्रमों संबंधी समिति के समान राज्य सभा के सदस्य इसके साथ सहयोजित नहीं किए जाते। इस समिति में भी राजनीतिक दलों को आनुपातिक प्रतिनिधित्व मिलता है। समिति के सदस्यों का चुनाव पूर्व के वर्ष की समिति के अध्यक्ष के प्रस्ताव के आधार पर लोकसभा द्वारा किया जाता है। प्रत्येक वर्ष मई माह में समिति का कार्यकाल प्रारम्भ होता है तथा अगले वर्ष 30 अप्रैल को समाप्त हो जाता है। 1956-57 से प्रचलित परम्परा के अनुरूप

प्रतिवर्ष समिति के एक-तिहाई सदस्य नये चुने जाते हैं तथा बाकी दो-तिहाई अगले वर्ष के लिए पुनः चुन लिए जाते हैं। इस परम्परा से अनुभवी सदस्यों के अनुभव का इस समिति को निरन्तर लाभ मिलता रहता है।

समिति का अध्यक्ष लोकसभा के अध्यक्ष द्वारा मानोनीत किया जाता है किन्तु यदि लोकसभा का उपाध्यक्ष इस समिति में चुना जाता है तो फिर यही समिति का अध्यक्ष भी चुना जाता है। आमतौर पर सत्तारूढ़ दल का कोई वरिष्ठ सदस्य इस पद पर चुना जाता है और व्यवहार में लोकसभा अध्यक्ष के स्थान पर सत्तारूढ़ दल के संसदीय बोर्ड अथवा संसदीय मामलों के मंत्री से दिशा-निर्देशित होता है। भारत में अनुमान समिति के अध्यक्ष की आंख प्रायः मंत्री पद पर लगी रहती है और इस कारण उसके व्यवहार में निष्पक्ष द ष्टिकोण का अभाव पाए जाने की संभावना रहती है।

अनुमान समिति के कार्य एवं अधिकार
(Functions and Powers of Estimate Committee)

अनुमान समिति के नाम से ऐसा लगता है, मानो बजट अनुमानों से कोई इसका सीधा वास्ता हो। किन्तु इसके विपरीत, अनुमान समिति सरकारी व्यय में मित्तव्ययिता लाने के लिए रचनात्मक सुझाव देने वाली एक सतत् संस्था के रूप में अधिक महत्वपूर्ण रही है। इसका कार्य सामान्य वित्तीय प्रक्रिया से बाहर है अर्थात् बजट प्रावधानों पर संसदीय मतदान के पूर्व इस समिति के द्वारा बजट अनुमानों की जाँच नहीं की जाती।

संसदीय कार्यवाही नियमन नियम संख्या 310 से 312 में अनुमान समिति के कार्यक्षेत्र का विवेचन किया जाता है। पूर्व में इस समिति को बतलाना होता था कि "अनुमानों को निर्धारित करने की नीति को ध्यान में रखते हुए इनमें क्या मितव्ययिताएं लागू की जा सकती है?" किन्तु अक्टूबर, 1956 में किए गए व्यापक संशोधनों के बाद इस समिति का कार्यक्षेत्र काफी व्यापक कर दिया गया है। नए प्रावधानों के अनुसार समिति को यह प्रतिवेदन देना होता है कि "सरकारी नीति संगतता के आधार पर तैयार किए गए अनुमानों में क्या मितव्ययिताएं संगठनात्मक सुधार, कुशलता या प्रशासनिक सुधार लागू किए जा सकते हैं, प्रशासन में मितव्ययिता तथा कुशलता लाने के लिए क्या नीति विकल्प हो सकते हैं तथा यह जांच करना कि किस हद तक नीति के अनुरूप तैयार किए गए अनुमानों के लिए मौद्रिक प्रावधान सही ढंग से किए गए हैं।"

इस संशोधित कार्य-प्रणाली नियमन के अनुसार अनुमान समिति के कार्यो का सार निम्नांकित शीर्षों में दिखाया जा सकता है :

1. सरकारी नीति के अनुरूप तैयार किए गए अनुमानों में मितव्ययिता लाने के उपाय-प्रशासनिक तथा संगठनात्मक-सुझाव;
2. संसद के समक्ष बजट अनुमानों के प्रस्तुतीकरण को बेहतर ढंग विकसित करने के लिए सुझाव देना;
3. कुशलता तथा मितव्ययिता के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये वैकल्पिक नीतियों को सुझाव देना; तथा
4. अनुमानों में सन्निहित नीति के अनुरूप मौद्रिक प्रावधानों के औचित्य की जांच।

अनुमान समिति के इन कार्यों का सूक्ष्म परीक्षण करने से ऐसा लगता है कि समिति को मितव्ययिता तथा कुशलता के मसलों पर सुझाव देने हैं जबकि नीति विषयक मुद्दों पर उसे अपनी राय जाहिर करने का सुझाव देने का अधिकार नहीं है। इस स्थिति की पेचीदगी की ओर समिति का ध्यान आकर्षित करते हुए 1959 में लोकसभा अध्यक्ष ने कहा था कि, "समिति के आधारभूत उद्देश्य प्रशासन

में कुशलता तथा मितव्ययिता लाना तथा यह आश्वस्त करना कि मौद्रिक अनुमान ठीक से तैयार किए गए हैं, होते हैं। पर सूक्ष्म जांच के बाद यदि ऐसा लगे कि किसी एक नीति के अपनाने के कारण भारी धनराशि बेकार खर्च हो रही है, तो समिति उन दोषों को भी इंगित कर सकती है।" डॉ० कश्यप के अनुसार "यह समिति 'स्थायी मितव्ययिता समिति' के रूप में कार्य करती है और इसकी आलोचना और सुझाव फिजूलखर्ची पर रोक लगाने का काम करते हैं।"

समय-समय पर अनुमान समिति के अधिकार-क्षेत्र के संदर्भ में की गयी व्याख्याओं को देखने से प्रतीत होता है कि ब्रिटेन की अपेक्षा भी भारतीय अनुमान समिति का अधिकार क्षेत्र अधिक व्यापक है। 1964 तक भारत में सभी सार्वजनिक क्षेत्र के प्रतिष्ठानों के क्रियाकलाप भी अनुमान समिति के जांच क्षेत्र में सम्मिलित थे। किन्तु 1964 में इनके लिए अलग समिति बनाए जाने के साथ ही कोई 124 सार्वजनिक इकाइयों की जांच का कार्य इस समिति द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त, संविधान के अनुच्छेद 112(3) के अन्तर्गत विभाजित मतदेय, मदों तथा गैर मतदेय मदों की बजट अनुमानों में ठीक से पालन की गयी है या नहीं, इसकी जांच भी समिति द्वारा की जाती है।

अनुमान समिति की कार्य-प्रणाली
(Working of Estimate Committee)

प्रतिवर्ष समिति द्वारा कुछेक मंत्रालयों को अपने विशिष्ट अध्ययन के लिए चुन लिया जाता है तथा जुलाई माह से जांच कार्यवाही प्रारम्भ कर दी जाती है। मंत्रालयों के चुनाव का दिशा-निर्देशन करते हुए 1958 में लोकसभा अध्यक्ष ने कहा था कि, "प्रत्येक लोकसभा के जीवन-काल में, जहां तक संभव हो, हर मंत्रालय के महत्वपूर्ण बजट अनुमानों की जांच का एक दौर पूरा किया जाना चाहिए।"

अपनी इच्छा के चयन किए गए मंत्रालयों/विभागों के बजट अनुमानों की जांच के अलावा भी लोकसभा अध्यक्ष द्वारा सुझाए किसी और विषय को भी बीच में ही अध्ययन के लिए समिति द्वारा चुना जा सकता है।

विषयों के चयन के पश्चात् समिति छोटे-छोटे अध्ययन दलों में बंटकर अलग-अलग विभागों की जांच का कार्य काफी सूक्ष्मता से प्रारम्भ करती है। अपनी जांच तथा अध्ययन के लिए वह निम्न स्त्रोतों से सामग्री एकत्रित कर सकती है :

1. प्रशासनिक स्त्रोत,
2. प्रकाशित सामग्री,
3. निजी संस्थाएं,
4. अध्ययन दल भेजकर,
5. सरकारी गवाही द्वारा,
6. मौखिक गवाही द्वारा,
7. गैर-सरकारी गवाही द्वारा।

समिति इन स्त्रोतों से तथ्यों के एकत्रीकरण पर भरपूर जोर देती है तथा तथ्यों के आधार पर जांच की कार्यवाही को आगे बढ़ाकर संबंधित मंत्रालयों के सचिवों अथवा ऊंचे अधिकारियों से वह जवाब तलब करती है। यह कार्यवाही लोक लेखा समिति द्वारा अपनाए जाने वाले ढंग के अनुरूप ही लगभग चलती है।

अपनी बैठकों में विभागीय अधिकारियों से स्पष्टीकरण प्राप्त करने के अलावा संबंधित मंत्रालयों

अथवा विभागों को समिति द्वारा तैयार कर भिजवायी गयी प्रश्नावली भी भरकर भेजनी होती है। इस परिपत्र में अपने विभाग के लिए तैयार किए गए अनुमानों के संदर्भ में मुख्यतया निम्न सूचनाएं देनी पड़ती हैं :

1. मंत्रालय तथा उससे जुड़े एवं नीचे के कार्यालयों का संगठन तथा कार्य;
2. उन आधारों का विस्त त ब्यौरा, जिन पर अनुमान की तैयारी निर्भर करती हो;
3. मंत्रालय का कोई प्रतिवेदन जो अपने कार्यों के बारे में जारी किया हो;
4. मंत्रालय में कार्य की मात्रा जो वित्तीय अनुमानों की अवधि में पूरी की जानी है तथा पिछले तीन वर्षों का तुलनात्मक विवरण;
5. योजनाएं जो मंत्रालय प्रारम्भ करने या क्रियान्वयन करने जा रहा हो;
6. पिछले तीन वर्षों के दौरान का वर्तमान अनुमानों में शामिल उप-शीर्षवार वास्तविक खर्च का ब्यौरा;
7. वर्तमान वर्ष तथा पिछले वर्ष के खर्च ब्यौरे में अन्तर के कारण।

इन समस्त सूचनाओं का समिति के सचिवालय द्वारा विश्लेषण करके विशिष्ट मुद्दे समिति के सदस्यों के पास भिजवा दिये जाते हैं ताकि समिति की पूर्ण बैठक के समय प्रत्येक सदस्य अपनी ओर से भी विशिष्ट बिन्दुओं को उठा सके। अधिकारियों के साथ विचार-विमर्श के पश्चात् कुछ खास बिन्दुओं की एक सूची बना ली जाती है जिन पर सचिव जरूरी सूचनाएं तथा स्पष्टीकरण लिखित रूप से समिति के पास भिजवाने का वादा करें।

अनुमान समिति का प्रतिवेदन
(Report of the Estimate Committee)

सर्वप्रथम समिति के उप-समूहों (Sub-groups) या अध्ययन दलों द्वारा विचार-विमर्श तथा एकत्रित सामग्री के अध्ययन के आधार पर कुछ खास बिन्दु अपनी ओर से प्रतिवेदन में शामिल करवाने के उद्देश्य से तैयार किए जाते हैं। सभी समूहों के द्वारा उभारे गए बिन्दुओं के परिप्रेक्ष्य में सचिवालय द्वारा समिति की ओर से प्रतिवेदन तैयार किया जाता है तथा अध्यक्ष की स्वीकृति के लिए पेश किया जाता है। अध्यक्ष की स्वीकृति के पश्चात् प्रतिवेदन को तथ्यात्मक पुष्टि हेतु संबंधित विभाग या मंत्रालय को गोपनीय बनाए रखते हुए भेजा जाता है। मंत्रालय से पुष्टि होने के बाद समिति का प्रतिवेदन मुख्यतया तीन भागों में विभाजित कर अन्तिम रूप से तैयार कर लिया जाता है:

1. मितव्ययिता लागू करने हेतु सुझाव;
2. संगठनात्मक तथा कार्यात्मक सुधार हेतु सुझाव;
3. अन्य सुझाव।

प्रायः समिति का प्रतिवेदन बजट अधिवेशन के समय मंत्रालय विशेष की अनुदान मांगों पर बहस के पूर्व संसद में प्रस्तुत किया जाता है। सदन में प्रस्तुत करने के पश्चात् भी अनुमान समिति अपने सचिवालय की सहायता से संबंधित मंत्रालय द्वारा समिति की सिफारिशों को लागू करने के लिए की गयी कार्यवाही की सूचना छः माह के भीतर मांगती है। मंत्रालय से प्राप्त होने वाले प्रतिवेदन को क्रियान्वयन प्रतिवेदन (Action Taken Report) कहा जाता है।

अनुमान समिति के कार्यों की समीक्षा
(Critical Appraisal of Estimate Committee's Functioning)

भारत में अनुमान समिति का कार्य बहुत व्यापक है। जहां एक ओर उसने केन्द्रीय सचिवालय

विभागों के पुनर्गठन के लिए (दूसरी रिपोर्ट) अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, वहां दूसरी तरफ दामोदर घाटी योजना, हीराकुण्ड योजना, भाखड़ा नांगल योजना तथा ककरापारा योजना जैसे बहु-उद्देशीय योजनाओं के कार्य संचालन में प्रशासनिक कमियों को उजागर करने में महती भूमिका निभाती है। (116वां प्रतिवेदन)। प्रथम 7 वर्षों में समिति द्वारा 57 प्रतिवेदन लोकसभा के समक्ष प्रस्तुत किए गए।

समिति ने अपने 26वें प्रतिवेदन में सुरक्षा मंत्रालय तथा सुरक्षा सेना के प्रमुख कार्यालय के मध्य त्वरित निर्णय प्रक्रिया लागू करने का सुझाव दिया जो कालान्तर में अत्यधिक उपयोगी साबित हुआ। सुरक्षा सेना मंत्रालयों को अधिक अधिकार देने की समिति की पैरवी वस्तुतः एक रचनात्मक दिशा-निर्देशन का प्रतीक मानी जा सकती है। इसके अलावा समिति ने भारतीय नियोजन में बढ़ते गैर-योजना व्यय को कम करने, नागरिक पायलटों के प्रशिक्षण तथा रोजगार, सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की कार्मिक सेवा नीतियों जैसे अनेक छोटे-बड़े मुद्दों पर अपने विचार दिए हैं। चाहे विदेशी विनिमय के सदुपयोग का सवाल हो या ग्रामीण ग ह निर्माण योजना को प्रभावशाली बनाने की समस्या हो या किसी विशिष्ट शोध संस्थान को सुद ढ़ करने की पेचदगी हो, अनुमान समिति निरन्तर अपने गहन अध्ययन के आधार पर महत्वपूर्ण सुझाव देती रही है।

द्वितीय लोकसभा के समय समिति का सबसे महत्वपूर्ण किन्तु विवादास्पद प्रतिवेदन 'योजना आयोग' के बाबत था। समिति ने योजना आयोग को एक सलाहकार संस्था के रूप में मानकर उसमें अनावश्यक रूप से मंत्रियों की नियुक्ति का विरोध किया। इस संस्था को योजना मूल्यांकन तथा निर्माण के पूर्णकालीन कार्य में लगाए रखने के लिए यह जरूरी है कि प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में इसका विशिष्ट आस्तित्व बना रहे। यद्यपि प्रारम्भ में सरकार ने नाराज होकर 33 में से केवल 7 सिफारिशें मानी, किन्तु समिति के इस प्रतिवेदन से भारतीय नियोजन को एक नयी दिशा मिली इसमें कोई शक नहीं है।

वर्ष 1950-51 में अनुमान समिति ने भारत सरकार के सचिवालय और विभागों के पुनर्गठन के बारे में प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। वर्ष 1953-54 में समिति ने प्रशासनिक, वित्तीय तथा अन्य सुधारों संबंधी प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। वर्ष 1962-63 में समिति ने सुझाव दिया था कि विद्युत चालित करघा उद्योग के विकास के लिए एक अखिल भारतीय संगठन की आवश्यकता है। वर्ष 1967-68 में 'विदेशी मुद्रा' संबंधित प्रतिवेदन में समिति ने विदेशी मुद्रा की गंभीर स्थिति के कारण योजना आयोग, वित्त मंत्रालय, वाणिज्य एवं औद्योगिक विकास मंत्रालय के बीच तालमेल की कमी बताया। 1965-66 में समिति ने कहा कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को उन विश्वविद्यालयों को अनुदान देने में सख्ती बरतनी चाहिए, जो आयोग की अनुमति के बिना स्थापित किए गए हैं। 1972-73 के अपने प्रतिवेदन में सरकारी क्षेत्र के उर्वरक कारखानों द्वारा अधिष्ठापित क्षमता से कम उत्पादन करने के लिए उनकी आलोचना करते हुए समिति ने इच्छा व्यक्त की कि सरकार को इसके कारणों का पता लगाना चाहिए।

लोक व्यय पर संसदीय नियन्त्रण के व्यापक लक्ष्य की पूर्ति के लिए अनुमान समिति द्वारा किए गए इन महत्वपूर्ण प्रयासों के बावजूद भी यह समिति कतिपय रचनात्मक आलोचनाओं से स्वयं को नहीं बचा पायी है। भारत के भूतपूर्व नियंत्रक तथा महा लेखापरीक्षक श्री अशोक चन्दा ने समिति की निम्न आधारों पर आलोचना की है :

1. समिति द्वारा प्रायः संगठनात्मक सुधार तथा कार्यों के पुनर्वितरण के लिए सुझाव दिए जाते हैं जिनका प्रचार महत्व अधिक होता है। सरकार ऐसी अधिकांश सिफारिशों को

अस्वीकृत करने को मजबूर होती है जिससे सरकार तथा समिति दोनों की इज्जत को ठेस पहुंचती है।

2. चूँकि समिति सरकारी नीतियों के मूल्यांकन तथा विभागीय पुनर्गठन के बाबत मुद्दों पर अपनी शक्ति खर्च करने लगी है, फलतः अनुमानों की जांच का उसका प्रमुख कार्य प ष्ठभूमि में रह गया लगता है।

3. समिति के कार्य करने का ढंग तथ्यों को खेजने की मंशा के अनुरूप नहीं है। "समिति संयुक्त राज्य अमेरिका में स्थित कांग्रेस की समितियों के अनुरूप व्यवहार को ग्रहण करती जा रही है और तथ्यान्वेषी तंत्र के स्थान पर छिद्रान्वेषी तंत्र बनती जा रही है।"

4. समिति स्वयं को उस भूमिका की ओर ले जा रही है जो वास्तव में संवैधानिक तौर पर लोकसभा को प्राप्त है।

ये आलोचनाएं काफी महत्वपूर्ण हैं क्योंकि समिति सामान्य व्यक्तियों का समूह मात्र है तथा इसके पास लोक लेखा समिति जैसे कोई विशेषज्ञ (CAG) की सेवाएँ उपलब्ध नहीं है। समिति की सिफारिशों में से 60% से 80% सिफारिशें संगठनात्मक सुधारों से जुड़ी हुई हैं, और इस प्रकार मितव्ययिता के मूल लक्ष्य से भटकाव का लांछन समिति पर लगाना कोई आश्चर्य की बात नहीं। उदाहरणार्थ, अपने 51%वें प्रतिवेदन में समिति ने छोटे बन्दरगाहों के निर्माण का विषय 'समवर्ती सूची' से केन्द्रीय सूची में शामिल करने की सलाह दी थी तथा अपनी 9वीं रिपोर्ट में 'इम्पीरियल बैंक' के राष्ट्रीयकरण का सुझाव दिया था। इस बातों का मितव्ययिता से कोई सीधा संबंध नहीं है। श्री मधोक कहते हैं कि, "समिति ने न केवल पूर्व तीक्ष्णता एवं जोर-शोर खो दिया है अपितु यह सरकारी व्यय नीतियों तथा अनुमानों की जांच समिति के बजाय उसकी सलाहकार समिति का रूप धारण करती जा रही है।"

इन अलोचनाओं में सत्य का अंश होते हुए भी यह कहना उचित होगा कि समिति निरन्तर मितव्ययिता बरतने योग्य क्षेत्रों की खोजबीन में लगी रहती हैं। यह अपने जांच प्रतिवेदनों के माध्यम से संसद तथा आम जनता को सरकारी क्रियाकलापों से संबद्ध महत्वपूर्ण सूचनाएं उपलब्ध कराती है। कभी-कभी ये सूचनाएं व्यापक जनमत को जाग्रत करने का इतना महत्वपूर्ण कार्य करती हैं कि सरकार को समिति की सिफारिशों के समक्ष झुकना पड़ता है। एन. जोन्सन समिति की महत्ता की चर्चा करते हुए ठीक ही कहते हैं कि, "यद्यपि खुले रूप में उपेक्षित होने के बावजूद भी अनुमान समिति के कार्य सरकारी क्रियाकलापों को स्पष्ट करने तथा उन्हें आम चर्चा का विषय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। यह वास्तव में एक स्थायी महत्व का राजनीतिक कार्य माना जा सकता है।"

यह समिति एक और मंच उपलब्ध कराती है जहां प्रशासक तथा लोक प्रतिनिधि मिलकर जनतंत्रीय शासन प्रणाली में लोक सत्ता की प्रभुता के सिद्धान्त की की महत्ता को मूर्त रूप प्रदान करते हैं और इसी अर्थ में अनुमान समिति संसदीय शासन व्यवस्था का प्रभावशाली वित्त नियंत्रण तंत्र मानी जाती है। यह संतोष की बात है कि सरकार ने समिति की 70 से 80 प्रतिशत सिफारिशें स्वीकार की हैं।

(B) लोक लेखा समिति
(Public Accounts Commitee)

विशिष्ट प्रयोजनों के लिए धन पर मतदान करने के संसद के अधिकार का तब तक कोई अर्थ नहीं

है जब तक उसे यह निश्चित करने का अधिकार न हो कि संसद द्वारा स्वीकृत धनराशि का कार्यपालिका द्वारा उन्हीं प्रयोजनों के लिए उपयोग किया जाता है जिनके लिए संसद ने उन्हें स्वीकृति किया है। यह तभी निश्चय हो सकता है जब सार्वजनिक लेखाओं का निरीक्षण किसी स्वतंत्र अधिकारी—लेखा-नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक-द्वारा किया जाये; और तदन्तर उसके प्रतिवेदन की जांच संसद की एक विशेष समिति द्वारा की जाती है जिसे लोक लेखा समिति कहते हैं। संसद की समिति का निर्माण इस द ष्टि से श्रेयस्कर है कि (1) संसद के पास इतना समय नहीं होता कि वह प्रतिवेदन का विशद् परीक्षण कर सके; (2) चूँकि परीक्षण एक विशिष्ट प्रकार का होता है, अतः वह एक समिति द्वारा ही किया जाना चाहिए; (3) समिति द्वारा परीक्षण होने पर ही वह निर्दलीय होता है, जबकि सदन द्वारा निर्दलीयता अथवा निष्पक्षता संभव नहीं है।

पिछले पैराग्राफ में प्रथम द ष्टया स्पष्ट है कि यह कार्य एक संसदीय समिति को सौंप दिया जाना चाहिए कि सार्वजनिक व्यय स्वीकृति के अनुसार ही किया गया है। लेकिन ऐसी समिति की स्थापना का विचार विलम्ब से आया है। ब्रिटिश संसद ने विनियोजनों को स्वीकार करने का अधिकार 1688 की क्रांति से प्राप्त कर लिया था, किन्तु उसे यह निश्चित करने का अधिकार कि उस द्रव्य का व्यय किस प्रकार किया जाता है, केवल 1861 में ही मिला है, जब लोकसभा ने लोक लोक लेखाओं की समिति का निर्माण किया था। "ब्रिटेन की लोक लेखा समिति अपनी सम्पूर्ण वित्तीय प्रशासन व्यवस्था के अनेक पहलुओं में से एक दिलचस्प पहलू है... और इसी व्यवस्था को श्रेय भी है जिसने शनैः-शनैः जड़ पकड़ का लोक व्यय पर वास्तविक नियंत्रण कर रखा है।" भारत में केन्द्र में लोक लेखा समिति की सर्वप्रथम स्थापना 1921 के मॉण्टफोर्ड सुधारों के फलस्वरूप 1923 में हुई थी। "अपने आरम्भ से ही केन्द्रीय लोक लेखा समिति सार्वजनिक व्यय के विधायी नियंत्रण की एक व्यापक शक्ति बन गयी थी। इसके संगठन संबंधी तथा इसकी सत्ता की सीमाओं के बावजूद इसने सरकार पर सार्वजनिक धन के व्यय में मितव्ययिता के संबंध में दबाव डाला है।" केन्द्रीय सरकार के विभागों को सर्वप्रथम अपने व्यय के औचित्य को सिद्ध करने के लिए बाध्य किया गया। लेकिन यह निकाय वास्तव में संसदीय समिति नहीं थी। वित्त सदस्य ही इसका सभापति होता था, और वित्त विभाग ही समिति के सचिवालय की व्यवस्था करता था।

1950 में संविधान लागू होने के साथ ही इस समिति में से सरकारी तत्व हट गये हैं, और यह समिति सच्ची संसदीय समिति बन गयी है। आरम्भ में इसमें 15 सदस्य थे जो सब लोकसभा के ही सदस्य होते थे। 1953 में इसके सदस्यों की संख्या बढ़कर 22 हो गयी। यह व द्वि राज्यसभा को प्रतिनिधित्व देने के लिए की गयी थी। इस समिति में उच्च सदन के सदस्यों का सम्मिलित किया जाना ब्रिटिश परम्परा के विपरीत है, क्योंकि वहां लोक लेखा समिति में लॉर्ड सभा का कोई सदस्य नहीं होता। संविधान के अनुच्छेक 151 के अन्तर्गत लोक लेखा तथा लेखा परीक्षा संबंधी प्रतिवेदन संसद के दोनों ही सदनों के समक्ष रखे जाते हैं। इस प्रकार, लोकसभा के ही ढंग पर राज्यसभा को भी यह अधिकार प्राप्त है कि वह लोक लेखाओं के परीक्षण के लिए अपनी निजी लोक लेखा समिति गठित कर ले।

लोक लेखा समिति संसद का ऐसा निकाय है जो प्रति वर्ष निर्वाचित किया जाता है। इसका निर्वाचन एकल संक्रमणीय मत (single transfcrable vote) द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर होता है, जिससे समिति में मुख्य राजनीतिक दलों को प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके और उसके सदस्यों की संख्या संसद में उनकी अपनी राजनीतिक दलीय शक्ति के अनुपात में हो। समिति का सभापति 1967 तक शासक दल का होता था। यह ब्रिटिश प्रणाली के विरुद्ध था। ब्रिटेन

में विरोधी दल का कोई प्रतिष्ठत सदस्य इस स्थान को ग्रहण करता है। भारतीय संसद के विरोधी दल को विशेषाधिकार प्राप्त नहीं था। भारत में विरोधी दलों को इस अधिकार के अभाव का कारण यह है कि यहां स्पष्ट विरोधी दल का अभाव है। 1969 से यह परम्परा पड़ी है कि विरोधी दल का ही कोई नेता लोक लेखा समिति का सभापति होता है। एम.आर. मसानी विरोधी दल के प्रथम नेता थे जो इस समिति के सभापति मनोनीत किये गये थे। लेकिन दो अवसरों पर ही केवल विरोधी दल के सदस्य अध्यक्ष चुने गये हैं।

समिति के निम्नलिखित कार्य हैं-इसके संबंध में समिति को पूर्णतः संतुष्ट कर लेना चाहिए :

(क) लेखाओं में जिन राशियों का भुगतान दिखाया गया है वे राशियां उस सेवा या प्रयोजन हेतु, जिसमें उनका प्रयोग किया गया है या जिसके लिए वे प्रभूत की गयी हैं, वैध रूप से प्राप्य या प्रयुक्त की जा सकने योग्य थीं :

(ख) व्यय नियंत्रण करने वाली सत्ता के अनुरूप है; तथा

(ग) प्रत्येक पुनर्विनियोजन (reappropriation) का अधिकार उचित सत्ता द्वारा निर्मित नियमों के अनुसार है या नहीं?

लोक लेखा समिति के निम्नलिखित कर्तव्य हैं :

(क) लेखा-नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदन के संदर्भ में उन सभी लेखा विवरणों का परीक्षण करना जिसमें राज्य उपक्रमों, व्यापार तथा निर्माण करने वाली योजनाओं तथा परियोजनाओं की आय तथा व्यय का उल्लेख किया गया हो। साथ ही, उनके ऐसे संतुलन-विवरणों (balance sheets), लाभ के विवरणों तथा हानि के लेखों का भी निरीक्षण कराना जिन्हें तैयार करना राष्ट्रपति आवश्यक समझते हों या तो किसी विशेष उपक्रम, व्यापारिक संस्था या परियोजना की वित्त-व्यवस्था को विनियमित करने वाले सांविधिक नियमों के प्रावधानों के अन्तर्गत बनाये गये हों।

(ख) उन स्वायत तथा अर्द्ध-स्वायत निकायों के आय-व्यय के लेखा विवरणों की परीक्षा करना, जिनका लेखा-परीक्षण भारत के लेखा-नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक द्वारा या राष्ट्रपति के निर्देशों या संसद द्वारा पारित किसी नियम के अन्तर्गत करना संभव हुआ हो।

(ग) लेखा-नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदन पर अवस्था में विचार करना, जब राष्ट्रपति ने किन्हीं प्राप्तियों की लेखा परीक्षा करने या भंडारों तथा स्कान्धों (stocks) के लेखाओं का परीक्षण करने की आज्ञा दी हो।

लेखा-नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदन को आधार मानकर समिति इन कार्यों को सम्पन्न करती है। एक मंत्रालय के पश्चात् दूसरे मंत्रालय के प्रतिवेदनों की जांच की जाती है, और सचिवगण लेखा परीक्षण में उठाये गये प्रश्नों को स्पष्ट करने हेतु साक्षी के रूप में उपस्थित होने के लिए बाध्य होते हैं। इस प्रकार समिति स्वयं अपने निष्कर्ष तक पहुंचने तथा अपनी सिफारिशों को अन्तिम रूप देने की क्षमता रखती है। लेखा-नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक की सेवाएं लोक लेखा समिति को स्थायी रूप से प्राप्त रहती हैं। वस्तुतः यह अधिकारी तो इस समिति का सच्चा मार्गदर्शक है। वह परीक्षण की रूपरेखा प्रस्तावित करता है। वह उन प्रश्नों को भी सुलझाता है जिनकी सरकारी साक्षियों-सचिवों-से स्पष्टीकरण की आवश्यकता होती है। सचमुच, उसके तथा समिति के पारस्परिक संबंध निकटतम तथा घनिष्टतम होते हैं। वस्तुतः वह समिति की कार्य करने वाली भुजा है। यह उसका मार्गदर्शक, दार्शनिक तथा मित्र है।' वह तथा समिति आवश्यक रूप से पूरक-कार्य सम्पन्न करते हैं। अशोक चन्दा ने जो भारत के लेखा-नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक रहे थे, यह कहा

कि "समिति की प्रभावशीलता उस पूर्णता पर आधारित होती है जिस पूर्णता के साथ लेखा-परीक्षक का कार्य संचालित किया गया है। इसी प्रकार, लेखा-परीक्षण की आलोचना का मूल्य उस समर्थन पर निर्भर करता है जो समिति से प्राप्त होता है। इन दोनों प्राधिकारियों के कार्य ही परस्पर संबंधित नहीं होते बल्कि उनके संबंध कुछ मात्रा में अन्योन्याश्रित भी होते हैं।"

समिति यह पता लगाने के लिए कि संसद द्वारा स्वीकृत धन सरकार द्वारा उसी मद में उपयोग किया गया है, लेखा-नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक के प्रतिवेदन की जांच करती है। 'मांग के क्षेत्राधीन' (within the scope of the demand) वाक्यांश का अर्थ निम्नवत् है :

(क) सार्वजनिक व्यय संसदीय पूर्वानुमोदन के अभाव में संसद द्वारा स्वीकृत विनियोजनों से अधिक नहीं होना चाहिए।

(ख) किसी मांग के अन्तर्गत जिन वस्तुओं पर व्यय किया गया है, उन्हें औचित्यपूर्ण होना चाहिए।

(ग) अनुदान उसी प्रयोजन के लिए उपयोग में लाया जाना चाहिए जिसके लिए संसद द्वारा उसका अनुमोदन किया गया हो।

समिति इस बात की भी समीक्षा करती है कि अनुमान किस प्रकार बनाये जाते हैं जिससे "मतों की संख्या कम करने की प्रव ति को रोका जा सके या बड़ी धनराशि के प्रावधानों को सम्मिलित किया जा सके; क्योंकि यह माना जाता है कि इस प्रकार के अनुमानों पर संसदीय नियंत्रण कम हो जाता है।" समिति लेखे की भी जांच करती है ताकि विभाग के अतिव्यय पर नियंत्रण किया जा सके।

यह समिति व्यक्तियों, कागजों तथा अभिलेखों को तलब कर सकती है, और इसके निष्कर्ष प्रतिवेदन के रूप में संसद के समक्ष प्रस्तुत किये जाते हैं। सूक्ष्म निरीक्षण हेतु समिति आजकल अध्ययन समूहों का गठन भी करती है। इनका संबंध प्रतिरक्षा, रेलवे आदि विशिष्ट विभागों से होता है। ये अध्ययन समूह अपना प्रतिवेदन समिति के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। समिति के अर्थ को अधिक प्रभावपूर्ण बनाने के लिए लेखा-नियंत्रक तथा महालेखापरीक्षक अन्तरिम प्रतिवेदन भी देता है। समिति उन पर विचार करती है। सदन के समक्ष प्रस्तुत अन्तिम प्रतिवेदन के संदर्भ में ही वह सरकार के समक्ष अपनी सिफारिशें प्रस्तुत करती है। समिति के कार्य की यह कहकर आलोचना की जाती है कि जब तक समिति सार्वजनिक लेखाओं की पुनरीक्षा करती है, मामले पुराने पड़ जाते हैं। उक्त व्यवस्था इस आलोचना को निस्सार कर देती है। समिति की सिफारिशों की अधिसमय या परम्परा के कारण सरकार द्वारा स्वीकार किया जाता है। फिर भी,यदि सरकार समझती है कि अमुक सिफारिश किन्हीं कारणों से स्वीकार नहीं है तो वह उस सिफारिश के पुनर्विचार के लिए प्रार्थना कर सकती है। इस प्रकार बहुत से मामले आपसी चर्चा तथा विचारों के आदान-प्रदान से तय हो जाते हैं।

लोक लेखा समिति का संबंध ऐसे लेन-देनों तथा हानियों से होता है जो हो चुके होते हैं। यह लोक लेखाओं की शव-परीक्षा (Post-mortem) के समान है। फिर भी समिति के प्रतिवेदन मार्गदर्शन तथा चेतावनी के रूप में महत्व रखते हैं। लोकसभा के प्रथम अध्यक्ष के शब्दों में, "यह प्रतीत होता है कि कोई व्यक्ति ऐसा भी है जो इस बात की जांच या समीक्षा करेगा कि क्या किया गया है, तथा यह कार्यपालिका के शैथिल्य या लापरवाही पर बहुत बड़ा प्रतिबंध लगाती है। यह परीक्षण यदि उचित ढंग से किया जाये तो प्रशासन में सामान्य क्षमता का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। समिति की जांच भावी अनुमानों तथा भावी नीतियों दोनों के लिए ही मार्गदर्शक के रूप में योग देती है।" यह स्मरणीय है कि लोक लेखा समिति निष्पादकीय निकाय नहीं है क्योंकि इसे कोई निष्पादकीय अधिकार नहीं दिये गये हैं। इसका कार्य केवल लोक-व्यय की पुनरीक्षा तक

ही सीमित है। यह सामान्य आशा है कि समिति सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण के लिए एक प्रभावशाली शक्ति सिद्ध होगी।

लोक लेखा समिति का स्वरूप तथा बनावट

भारतीय लोक लेखा समिति वस्तुतः एक संसदीय समिति कही जा सकती है। यह लोक सभा के अध्यक्ष के मार्गदर्शन में कार्य करती है तथा लोकसभा में कार्य करती है तथा लोक सभा में विभिन्न राजनीतिक दलों के प्रतिनिधित्व के अनुपात में ही इस समिति में विभिन्न राजनीतिक दलों से सदस्यों का चयन किया जाता है। इस समिति के अध्यक्ष का मनोनयन लोकसभा अध्यक्ष द्वारा किया जाता है तथा लोक सभा सचिवालय इस समिति के कार्यालय की भूमिका अदा करता है। संसदीय कार्यवाही तथा प्रक्रिया नियम 143 में किए गये 4 मई, 1951 के संशोधन के अन्तर्गत लोक लेखा समिति के स्वरूप तथा बनावट को निरूपित करने के लिए निम्न प्रावधान किए गये हैं :

(1) संसद द्वारा पारित विनियोजनों से संबंधित लेखों की जांच के लिए एक लोक लेखा समिति होगी जिसमें 15 सदस्य होंगे। समिति के सदस्यों का संसद द्वारा प्रति वर्ष अनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर एकल परिवर्तनीय मत प्रणाली (Single Transferable Vote System) की सहायता से चयन किया जाता है।

(2) यदि समिति का अध्यक्ष किसी कारण अनुपस्थित रहे तो स्वयं समिति अपने में से किसी सदस्य को अध्यक्ष नियुक्त कर सकती है।

(3) समिति का कार्यकाल एक वर्ष का होगा तथा इसमें जो रिक्त स्थान होते जायेंगे उनकी पूर्ति उपर्युक्त मतदान पद्धति से निरन्तर रूप से की जाती है। नव-निर्वाचित सदस्य तब तक अपने पद पर बना रहेगा जब तक उनका पूर्ववर्ती (person in whose place he is elected) इस पद पर बना रहेगा।

(4) कार्यवाही संचालन के लिए समिति की बैठक में कम से कम चार सदस्य उपस्थित होने चाहिए। सदस्यों में से ही लोक सभा अध्यक्ष द्वारा किसी को समिति का मुखिया (Chairman) मनोनीत किया जाता है, पर यदि लोक सभा का उपाध्यक्ष ही समिति का सदस्य चुना जाता है तो फिर वही लोक लेखा समिति (P.A.C.) का अध्यक्ष नियुक्त किया जायेगा।

(5) किसी विषय पर मतदान हो और यदि बराबर मत पड़े तो निर्णय करने के लिए समिति के मुखिया को दुबारा मत देने (Casting Vote or Second Vote) का अधिकार प्राप्त होता है।

लोक लेखा समिति का पुनर्गठन

1953 में भारतीय राज्यसभा (Upper House) की नियम समिति (Rule Committee) ने अपने अध्यक्ष से लोक लेखा समिति में राज्य सभा के सदस्यों को भी मनोनीत करने की सिफारिश की, ताकि पी.ए.सी. एक संयुक्त समिति के रूप में कार्य कर सके। लोक सभा ने 23 फरवरी, 1953 को इस प्रस्ताव को एक मत से अस्वीकार कर दिया। लेकिन तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू ने दोनों सदनों के बीच बढ़ती कटुता को रोकने हेतु लोक सभा में स्वयं एक प्रस्ताव रखकर राज्य सभा से लोक लेखा समिति के लिए सात सदस्य मनोनीत करने का अनुरोध प्रस्ताव 12 मई, 1953 को पास करवा लिया। 1954 से लोक लेखा समिति में कुल 22 सदस्य होते हैं जिनमें से 15 लोक सभा से तथा 7 राज्य सभा से चुने जाते हैं।

लोकसभा में भारी बहस के समय सदस्यों ने इस परिवर्तन को लोक सभा के वित्तीय अधिकारों पर राज्य सभा का हस्तक्षेप करार दिया था। अपनी इस भावना के अनुरूप लोक सभा इसे दोनों

सदनों की संयुक्त समिति मानने को तैयार नहीं थी। ऐसी स्थिति में तत्कालीन लोक सभा अध्यक्ष मावलंकर ने अपनी व्यवस्था देते हुए कहा था कि, "यह संयुक्त समिति नहीं है। यह लोक सभा अध्यख के नियंत्रण में लोक सभा समिति है। जहां पर विचार-विमर्श तथा मतदान का सवाल है उनका भी वही सम्माननीय स्थान (Status) होगा, वे भी तो आखिर सदस्य हैं। केवल यही अन्तर होगा कि वे लोक लेखा समिति के सदस्य के रूप में काम करेंगे तो वे लोक सभा अध्यक्ष के नियंत्रण में कार्य करेंगे।"

इस स्पष्टीकरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि लोक लेखा समिति अपने वर्तमान स्वरूप में भी एक संयुक्त समिति के रूप में कार्य नहीं करती। इसके अलावा एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि 1967 तक इस समिति का अध्यक्ष शासक दल का ही कोई सदस्य हुआ करता था, जबकि ब्रिटिश परम्परा में विरोधी दल का कोई सम्माननीय सदस्य लोक लेखा समिति का अध्यक्ष हुआ करता है। भारत में इस परम्परा का निर्वाह न होने का एक प्रमुख कारण हमारे देश में किसी स्पष्ट मान्यता प्राप्त विरोधी दल का अभाव माना जा सकता है। सन् 1969 में प्रथम बार श्री मीनू मसानी विरोधी दल के नेता बने तो उन्हें लोक लेखा समिति का अध्यक्ष भी मनोनीत कर लिया गया और इसके साथ एक स्वस्थ परम्परा की शुरूआत हमारे देश के संसदीय इतिहास में हुई ऐसा कहा जा सकता है। समिति के चुनाव प्रतिवर्ष होते हैं जबकि इसका द्वि-वार्षिक कार्यकाल होता है। इसी कारण हर समय इस समिति में कुछ अनुभवी सदस्य बने रहते हैं। फलतः समिति के अध्यक्ष के प्रभावशाली मार्गदर्शन में अधिक तत्परता, कुशलता तथा पार्टी हितों से परे हटकर यह समिति अपना कार्य करती है।

लोक लेखा समिति के अधिकार तथा कर्तव्य
(Functions and Duties of Public Accounts Committee)

लोक लेखा समिति के कार्यों की शुरूआत भारत के महालेखापरीक्षक (CAG) के प्रतिवेदन को प्राप्त करने के साथ होती है। प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के पश्चात् समिति की अनौपचारिक बैठक में महालेखापरीक्षक समिति को अपने प्रतिवेदन में उठाये गये मुख्य मुद्दों की प ष्ठभूमि तथा इनमें अन्तर्निहित गंभीर अनियमितताओं बाबत पूरी जानकारी देता है। यह समिति को विचारणीय बिन्दुओं की संक्षिप्त सूची बनाने तथा विभागों एवं मंत्रालयों के अधिकारियों के स्पष्टीकरण चाहने के लिए संभावित तर्क श्र ंखला के संदर्भ में भी अपनी राय बतलाता है। स्वयं ए.जी. अथवा उसका प्रतिनिधि समिति की बैठक के समय उपस्थित रहता है जब समिति द्वारा विभागीय अधिकारियों से जवाब तलब किया जाता है।

भारतीय संसदीय कार्यवाही नियम 143 के तहत महालेखापरीक्षक से प्राप्त जानकारी की प ष्ठभूमि में लोक लेखा समिति के कार्यों को निम्नवत् निरूपित किया गया है :

(1) भारत सरकार के विनियोजन लेखों का सूक्ष्म निरीक्षण करना;

(2) क्या व्यय उसी अधिकारी द्वारा किया गया है जो उसके लिए अधिकृत है?

(3) लेखों में दिखायी गई राशि को क्या वैध रूप से प्राप्त किया गया है तथा क्या उसे उन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए खर्च किया गया है जिनके लिए संसद ने अपने विनियोजन अधिनियम में स्वीकृति दे रखी है ;

इन आधारभूत कार्यों के अलावा लोक लेखा समिति का यह भी कर्तव्य है कि वह,

1. विभिन्न सरकारी निगमों, उत्पादक संस्थानों तथा योजनाओं (Projects) के आय-व्यय के

ब्यौरे तथा उनसे संबंधित महालेखा परीक्षक के प्रतिवेदन में दर्शायी टिप्पणियों की जांच करे ;

2. राष्ट्रपति के विशेष निर्देश द्वारा महालेखा परीक्षक की ओर से किसी भण्डार (Stores or Stocks) की जांच के लिए तैयार किए गये प्रतिवेदन पर विचार करना तथा
3. संसद अथवा राष्ट्रपति के आदेशों के अनुसार किसी स्वतंत्र निकाय अथवा निगम (Autonomous Bureau of Corportion) के लेखों के लिए महालेखापरीक्षक द्वारा तैयार अंकेक्षण प्रतिवेदनों की प ष्ठभूमि में इन इकाइयों के आय-व्यय लेखों की जांच करना।

इन कर्तव्यों के निर्वाह के अलावा नियम संख्या 308(4) के अन्तर्गत समिति को किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए संसद द्वारा स्वीकृत धनराशि से किसी वित्तीय वर्ष में अधिक राशि खर्च किए जाने की स्थिति की जांच की जिम्मेदारी भी सौंपी गयी है। नियमों में यह प्रावधान है कि समिति किसी भी ऐसे लेखों की जांच कर सकती है जो संसद के समक्ष प्रस्तुत किए गए हों। इस व्यवस्था के कारण समिति का कार्य-क्षेत्र काफी व्यापक हो जाता है फलतः वह राज्य निगमों दामोदर घाटी निगम, बन्दरगाह, न्यास, चाय बोर्ड, केन्द्रीय वैज्ञानिक तथा औद्योगिक शोध संस्थान जैसी संस्थाओं के लेखों की जांच कार्य कर अपना मन्तव्य सदन के समक्ष प्रस्तुत कर सकती है।

समिति प्रत्येक लेखे पर विचार करते समय विभागीय अधिकारियों से स्पष्टीकरण मांगती है, यदि उसे कहीं अपव्यय अथवा हानि दिखायी दे और इसी दौरान वह प्रशासनिक संयत्र के कार्य-संचालन रीति की समीक्षा करके सुधार के आवश्यक सुझाव भी देती है। यह बात स्पष्ट होनी चाहिए कि पी.ए.सी. प्रत्येक मंत्रालय अथवा विभाग के लेखों की जांच करती है। नीति संबंधी परामर्श मुद्दों पर वह अपनी राय नहीं देती। सन् 1959 में रेलवे बोर्ड ने समिति से नीति संबंधी परामर्श चाहा था तो पी.ए.सी. के अध्यक्ष ने जवाब दिया कि,"हम नीति निर्धारक संस्था नहीं है। हम केवल लेखों की जांच करने वाली संस्था हैं... नीति निर्णय तो सरकारी स्तर पर ही लिए जाने चाहिए।"अध्यक्ष के इस मन्तव्य से स्पष्ट होता है कि लोक लेखा समिति अपने अधिकार-क्षेत्र में रहकर कार्य करना अधिक तर्कसंगत मानती है, ताकि उसके लिए दलीय हितों के ऊपर उठकर कार्य करना संभव हो सके।

लोक लेखा समिति की कार्य प्रक्रिया

अपने गठन के पश्चात् समिति अपनी कार्यवाही की रूपरेखा तैयार कर सभी मंत्रालयों को तथा विभागों को सूचित कर देती है, ताकि उनके प्रतिनिधि नियत तिथि को समिति तथा महालेखा परीक्षक के समक्ष अपना स्पष्टीकरण देने को पूर्ण तैयारी के साथ उपस्थित हो सकें। आवश्यकतानुसार लोक लेखा समिति अपने को छोटे-छोटे कार्य समूहों में विभाजित करके अलग-अलग विभागों के लेखों की जांच व निरीक्षण का कार्य भी करती है। लेकिन विभागीय अधिकारियों की सुनवाई किसी अलग कार्य दल द्वारा नहीं की जा सकती है। यह तो कार्यदल द्वारा तैयार प्रतिवेदन के परिप्रेक्ष्य में पूरी समिति के समक्ष ही होती है।

आवश्यकता पड़ने पर समिति अपने सदस्यों के एक छोटे से अध्ययन दल को किसी योजना (Project) अथवा निगम के मौके पर निरीक्षण के लिए भेज सकती है।

समिति को यह पूरा अधिकार है कि वह अपनी जांच से संबंधित किसी दस्तावेज अथवा परिपत्र को मंगवाये अथवा किसी व्यक्ति को बुलवाये (यदि राष्ट्रीय सुरक्षा को इससे कोई खतरा उत्पन्न न हो।)

संसदीय लोकतंत्र व्यवस्था में लोक लेखा समिति एक ऐसा मंच है जहां सरकारी अधिकारी तथा लोक प्रतिनिधि आमने-सामने बैठकर विचार-विमर्श करते हैं तथा सचिव स्तर के अधिकारियों को विभिन्न राजनीतिक दलों के यदा-कदा गुस्सैल सदस्यों के प्रश्नों के विनम्रता से उत्तर देने की अग्नि परीक्षा से गुजरना होता है। यदि वे अपने स्पष्टीकरण से समिति को संतुष्ट नहीं कर पाते हैं तो हार कर यह आश्वासन देना पड़ता है कि भविष्य में लोक व्यय में अपव्यय अथवा ऐसी किसी भी त्र टि को टालने का प्रयास किया जाएगा। इस मौखिक स्पष्टीकरणों के साथ लिखित स्पष्टीकरण भी लिए जाते हैं तथा समिति की पूरी कार्यवाही का ब्यौरा शब्दशः रखा जाता है।

लोक लेखा समिति द्वारा कार्य निष्पादन समीक्षा

लोक लेखा समिति ने अर्थ-व्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्रों तथा सरकार की विभिन्न योजनाओं और संगठनों के बारे में सर्वांगीण कार्य निष्पादन परीक्षा की है। इसने इस बात पर भी ध्यान दिया है कि क्या सरकार द्वारा आरम्भ की गयी विभिन्न योजनाओं और परियोजनाओं से अपेक्षित परिणाम प्राप्त हुए हैं अथवा नहीं। लोक लेखा समिति का कार्य न केवल वित्तीय अनियमितताओं को प्रकट करना है बल्कि 'समग्र सामग्री निवेश' (इन-पुट) और उससे प्राप्त 'उत्पादन' में उचित समन्वय होने या न होने को भी प्रकाश में लाना है। समिति ने उक्त चुनौतीपूर्ण कार्य को बहुत हद तक पूरा किया है। इन उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए वर्ष 1967-67 में समिति ने रेलवे के कार्य निष्पादन का मूल्यांकन योजना लक्ष्यों के संदर्भ में किया और यह टिप्पणी की है कि सरकार द्वारा अपनायी गयी नीति और तरीके दोषपूर्ण और अवास्तविक थे और उनमें पूंजी निवेश आवश्यकता से अधिक किया गया जिसका अर्थ-व्यवस्था के अन्य आवश्यक क्षेत्रों पर दुष्प्रभाव पड़ा। इसकी समीक्षा की गयी और परिणामतः चौथी पंचवर्षीय योजना में रेलवे के लिए कुल परिव्यय 1.525 करोड़ रूपये से घटाकर 1.275 करोड़ रूपए कर दिया गया।

लोक लेखा समिति के कार्यों का मूल्यांकन
(Role of Public Accounts Committee : An Estimate)

लोक लेखा समिति ने अपनी सिफारिशों को लागू कराने बाबत प्रक्रिया को नियमबद्ध कर रखा है। आन्तरिक कार्य नियम 27 में कहा गया है कि, "लोक सभा सचिवालय की लोक लेखा समिति शाखा द्वारा एक पूर्ण विवरण (Up-to-date Statement) रखा जाएगा जिसमें लोक लेखा समिति की सिफारिशों को लागू करने के लिए विभिन्न मंत्रालयों द्वारा उठाये गये अथवा संभावित कदमों का ब्यौरा हो... तथा कमेटी की अगली बैठक के कम से कम एक सप्ताह पूर्व सभी सदस्यों में वितरित करने की व्यवस्था करें।"

यद्यपि सरकार के लिए समिति की हर सिफारिश मानना अनिवार्य नहीं है किन्तु व्यवहार में सरकार ऐसा प्रयास करती है कि समिति की अधिकाधिक सिफारिशों का क्रियान्वित करे। मोटे तौर पर समिति की सिफारिशें तीन शीर्षों में विभाजित की जा सकती है :

1. **प्रशासनिक मामलों में लोक लेखा समिति की सिफारिशें** – प्रशासकों के अधिकार तथा उन्हें उपयोग करने की स्वतंत्रता एवं नियमों की अवमानना से होने वाली आर्थिक क्षति के लिए जिम्मेदार अधिकारियों को दंडित करने से संबंधित अनेक अनुशंसाएं (Recommendatoins) लोक लेखा समिति द्वारा अपने विभिन्न प्रतिवेदनों में की गयी हैं।
2. **वित्तीय प्रशासन से संबंधित मुद्दों पर सुझाव देना** – जैसे समय पर लेखा तथा प्रतिवेदन

प्रस्तुत करना, बजट तथा अति-व्यय (Over expenditure) पर नियंत्रण, बिना संसदीय स्वीकृति के वित्तीय वर्ष में नयी योजनाएं प्रारम्भ करने की परिपाटी, समय-समय पर विभिन्न विभागों तथा लेखा-अधिकारियों द्वारा तैयार किए गये लेखों में समन्वय, बिना अनुमान किए योजनाओं पर व्यय करने की प्रव ति, राज्यों को दिए जाने वाले अनुदानों में अनियमितता, योजना प्रावधानों के अनुरूप विभिन्न योजनाएं पूरी न हो पाना, अंकेक्षण व्यवस्था का विस्तार कर आन्तरिक तथा प्रशासनिक अंकेक्षण प्रारम्भ करना, आदि मामलों पर समिति अपने सुझाव देती रहती है।

3. अन्य सामान्य मामलों में समिति सरकार के विभिन्न ठेकेदारी शर्तों, भण्डारण (Stores), कार्यशालाओं (Workshops) तथा सुरक्षा कारखानों में पायी जाने वाली अनियमितताओं की ओर भी सरकार का ध्यान आकर्षित करती रही है।

लोक लेखा समिति की छानबीन का सम्बन्ध पूर्ण हुये लेन-देन तथा की गयी हानि से होता है। यह लोक लेखाओं की शव-परीक्षा जैसी करता है। तथापि, समिति जो कुछ पाती है वह मार्ग दर्शन तथा चेतावनी के रूप में मूल्य रखता है। लोकसभा के प्रथम अध्यक्ष के शब्दों में, "यही मालूम होता है कि कोई व्यक्ति ऐसा भी है जो इस बात की परिनिरीक्षा करेगा कि क्या किया गया है, कार्यपालिका की ढील-ढाल या लापरवाही पर एक बहुत बड़ी रोक लगाती है। वह परीक्षा, यदि उचित रीति से कार्यान्वित की जाये तो प्रशासन को सामान्य कुशलता के मार्ग पर ले जाती है। समिति की जांच भावी अनुमानों तथा भावी नीतियों-दोनों के लिए मार्ग दर्शन के रूप में लाभकारी हो सकती है।" यह स्मरण रखना उचित होगा कि लोक लेखा समिति कोई निष्पादकीय निकाय नहीं है। इसे कोई निष्पादकीय अधिकार नहीं दिये गये हैं और इसका कार्य केवल लोक व्यय की परिनिरीक्षा तक ही सीमित है। यह आशा की जा सकती है कि समिति सार्वजनिक व्यय के नियंत्रण के कार्य में एक प्रभावशाली शक्ति सिद्ध होगी। फिर भी सरकारी उपेक्षा की नियमित पुनराव त्ति एवं परिवर्तनशीलता यह सुझाते हैं कि लोक लेखा समिति के विचार-विवेचनों का मूल्य सीमित ही है। **आस्टिन चेम्बरलेन** के अनुसार, "यह न्यायधीशों की एक समिति है, जो अपने कार्य के समय सभी दलीय विचारधाराओं को एक ओर रख देती है।"

(C) लोक उपक्रम समिति
(Committee on Public Undertakings)

संसद की तीन प्रमुख समितियों में से लोक उपक्रम समिति (Committee on Public Undertakings) एक है। यह समिति 1 मई, 1964 को अस्तित्व में आई। इस समिति में 22 सदस्य होते हैं जिसमें से 15 लोकसभा से तथा 7 सदस्य राज्य सभा के होते हैं। इस समिति के अन्य सदस्यों का चयन आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक सदस्य का एक मत होता है।

अवधि (Tenure) – इस समिति की अवधि पांच वर्ष होती है। प्रति वर्ष कुल सदस्यों का 1/5 भाग क्रम से अवकाश ग्रहण करता है।

कार्य (Functions) – समिति के प्रमुख कार्य निम्नलिखित है :

(1) ऐसे लोक उपक्रमों के खातों और प्रतिवेदनों (Reports) की जांच करना जिन्हें इस उद्देश्य के लिए समिति को आबंटित किया है।

(2) नियंत्रक और महालेखाकार ने लोक उपक्रमों पर यदि कोई प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है उसकी जांच करना।

(3) लोक उपक्रमों की स्वायत्तता और क्षमता के संदर्भ में यह जांच करना कि क्या लोक उपक्रमों का प्रबंध व्यवसायिक नियमों और वाणिज्यिक व्यवहारों के अनुरूप किया जा रहा है।

(4) इस कार्य को स्पीकर द्वारा समय-समय पर लोक लेखा समिति व अनुमान समिति की भाँति लोक उपक्रमों से संबंधित अन्य पक्षों व कार्यों की जांच का कार्य सौंपना।

सीमाएं (Limitations) – लोक उपक्रम समिति निम्नलिखित पक्षों में अपना दखल नहीं दे सकती :

(1) लोक उपक्रमों के व्यावसायिक कार्यों से अलग प्रमुख सरकारी नीतियों के संबंध में;

(2) रोजमर्रा के प्रशासनिक मामलों में; तथा

(3) जिस विशिष्ट धारा या उपबंध (Statute) के अधीन कोई विशिष्ट लोक उपक्रम स्थापित हुआ है उस उपक्रम से संबंधित मामले में।

किसी भी अन्य संसदीय समिति की भांति यह समिति किसी भी लोक उपक्रम अथवा मंत्रालय से सूचना प्राप्त करने का अधिकार रखती है। यह समिति लोक उपक्रमों से संबंधित अधिकारियों को अपने सम्मुख उपस्थित होकर लोक उपक्रमों की जांच से संबंधित प्रमाण प्रस्तुत करने का आदेश दे सकती है। यह समिति संबंधित प्रशासनिक मंत्रालय के प्रमाणों की भी जांच कर सकती है। लोक उपक्रमों की एक समिति द्वारा सामान्यतया जो जांच की जाती है, उसमें उपक्रम के निष्पादन का मूल्यांकन किया जाता है। उसमें उपक्रम के सभी पक्षों जैसे नीतियों, कार्यक्रमों, प्रबन्ध, वित्तीय-कार्यप्रणाली आदि के क्रियान्वयन को शामिल किया जाता है।

समिति की कार्य प्रणाली
(Working of the Committee)

समिति ने अपना प्रथम प्रतिवेदन (Report) अप्रैल 1965 में निकाला और तभी से यह कई प्रतिवेदनों को प्रकाशित कर चुकी है। 5वीं व 6वीं लोकसभा के दौरान इस समिति ने क्रमशः 87 व 16 प्रतिवेदन प्रस्तुत किए। इनमें से जो आधे प्रतिवेदन प्रकाशित हुए वह पहले सुझावों पर सरकार द्वारा उठाये गए कदमों से संबंधित थे। इस समिति को सत्य-अन्वेषक समिति (Fact-Finding Committee) माना जाता है और इस समिति का कार्य आवश्यक रूप से लोक उपक्रमों की कार्य प्रणाली पर होने वाले वार्षिक विवादों में संसद की सहायता करना है। अतः इस समिति का संबंध लोक उपक्रमों की कार्यप्रणाली से होता है।

जहां तक अनुमान समिति और लोक उपक्रम समिति का संबंध है अध्ययन समूह ने यह सुझाव दिया है कि बजट कार्यक्रम के निष्पादन की समीक्षा का कार्य एक समिति, जिसे निष्पादन समिति (Performance Committee) का नाम दिया जा सकता है, द्वारा ज्यादा अच्छी प्रकार किया जा सकता है। अतः अनुमान समिति और लोक उपक्रम समिति का निष्पादन समिति से प्रतिस्थापित कर देना चाहिए। निष्पादन समिति के दो खंड होने चाहिए। इस संबंध में प्रशासनिक सुधार आयोग (Aministrative Reform Committee) के सुझाव को माना नहीं गया है और स्थिति को यथावत् रखा गया है।

अध्याय - 16

लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक

(Comptroller and Auditor-General of India)

वित्तीय नियन्त्रण को लागू करना व्यवस्थापिका का महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व है। सरकारी व्ययों पर संसदीय नियन्त्रण दो स्तरों पर लगाया जाता हैः प्रथम नीति निर्माण के समय पर, तत्पश्चात् नीति कार्यान्वयन के नियन्त्रण के समय पर लागू होता है। बजट या वार्षिक वित्तीय विवरण जो कि अनुमानित प्राप्तियों एवं आगामी वित्तीय वर्ष के लिए सरकार के व्ययों को प्रदर्शित करता है, को संसद के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है एवं उस पर बहस होती है। प्रारम्भिक संसदीय वित्त नियन्त्रण आगामी वर्ष के लिए सरकार के वार्षिक बजट अनुमानों द्वारा किया जाता है जिसे संसद के समक्ष सहमति के लिए प्रस्तुत किया जाता है। नीतियों के कार्यान्वयन पर नियन्त्रण के दूसरे स्तर का प्रयोग संसद/व्यवस्थापिका द्वारा मंजूर किये गए धनराशियों का उपयोग सही उददे्श्य के लिए किया गया है या नहीं, तथा संसद/व्यवस्थापिका के इच्छानुसार उपयोग हुआ है या नहीं इन चीजों के विश्लेषण के द्वारा करती है। संसद और राज्य विधान मण्डलों में नियन्त्रण एवं महालेखा परीक्षक संसद तथा राज्य विधान मण्डलों की सहायता करता है। लेखा परीक्षण केन्द्र एवं राज्यों की व्यवस्थापिका के प्रति कार्यपालिका का वित्तीय उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करने का महत्वपूर्ण साधन है। संविधान के द्वारा लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक को केन्द्र, राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों के लेन-देन (transactions) का लेखा परीक्षण करने के लिए उत्तरदायी बनाया गया है। इस इकाई में लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के पदों की उत्पत्ति, संवैधानिक स्थिति तथा लेखों एवं लेखा परीक्षण से सम्बन्धित उसकी शक्तियों एवं कर्त्तव्यों परीक्षक की भूमिका का मूल्यांकन भी किया जायेगा।

ऐतिहासिक प ष्ठभूमि
(Historical Background)

वित्त, लेखा एवं लेखा परीक्षण इतने पुराने हैं जितना कि स्वयं इतिहास। इतिहास साक्षी है कि अच्छे लेखा एवं लेखा परीक्षण संगठन का अस्तित्व प्राचीन भारत में भी था। कौटिल्य ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "अर्थशास्त्र" में मौर्याकाल में प्रचलित लेखांकन व्यवस्था का विस्त त विवरण प्रस्तुत किया है। अर्थशास्त्र के अनुसार, "मौर्यनीति में वित्त के मामलों में अन्तिम प्राधिकार राजा का ही था जिसका कर्तव्य था कि प्राप्तियों एवं व्ययों के लेखों को देखें। प्रत्येक मन्त्री अपने विभाग की आर्थिक व्यवस्था के लिए उत्तरदायी था और प्रत्येक विभाग का अपना एक लेखाकार, खजांची एवं अन्य कर्मचारी होते थे। वित्त विभाग का अध्यक्ष **कलेक्टर जनरल** होता था। उसके नीचे प्रदेश स्तर पर विशेष आयुक्त होता था जो कि एक प्रकार का महालेखा परीक्षक होता था जिसका कार्य था जिला एवं ग्राम समूह के लेखों का निरीक्षण करना तथा साथ ही कुछ तरह के राजस्वों

को एकत्रित करने का कार्य भी करना था। लेखांकन एवं वित्त वर्ष आषाढ़ के अन्तिम दिनों में समाप्त होता था।

इसी तरह से गुप्त शासकों ने भी अपने शासन काल में लेखा एवं लेखा परीक्षण की अधिक विस्त त एवं व्यवस्थित योजना की शुरूआत की थी रामचन्द्र दिक्षित के भी अनुसार "अपने पूर्ववर्ती मौर्यों के काल के समय भी लेखा पूरी तरह व्यवस्थित होता था तथा उसकी समय-समय पर लेखा परीक्षण होता था एवं उसे संस्तुति के लिए रखा जाता था। यह हमें (पत्युपरिका) (Patyuparika) शब्द से स्पष्ट होता है। व हद रूप में जिसका अनुवाद आधुनिक "महालेखापाल" से किया जा सकता है। महालेखापाल जो लेखा विभाग की अध्यक्षता करता है अपने कार्य के लिए मन्त्रिपरिषद के प्रति उत्तरदायी था। इससे स्पष्ट होता है कि गुप्त काल में लेखांओं का विस्त त विभाग था।" इसी तरह से मध्यकालीन शासकों में सुल्तानों एवं मुगलों ने राजस्व संग्रह एवं लेखा परीक्षण पर अत्यधिक जोर दिया। मुगलों ने वित्त अधिकारी (Vasir, Dewan) को "वजीर" या "दिवान" का नाम देकर उसे अत्यधिक प्राधिकार प्रदान किया था।

यद्यपि प्राचीन एवं मध्य शासन कालों में एक सम्बद्ध लेखा एवं लेखा परीक्षण संगठन की स्थापना की गयी थी लेकिन बाद के मुगल कालों में इसका ह्रास हो गया। तत्पश्चात् अंग्रेजों ने लेखांकन एवं लेखा परीक्षण की उचित व्यवस्था की शुरूआत की। आज हमारे देश में वही व्यवस्था चली आ रही है। सन् 1858 में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी का प्रशासन ब्रिटिश क्राउन ने अपने हाथों में ले लिया तो भारत में महालेखापाल के एक पूरक पद की स्थापना की गई जो इंग्लैंड में हुए व्ययों के लिए लेखा तैयार करता था। समकाल में, क्राउन द्वारा इन लेखों के परीक्षण के लिए एक स्वतन्त्र लेखा परीक्षक की स्थापना की गयी। यह व्यवस्था हालांकि बहुत दिनों तक नहीं चली। सन् 1860 में लेखांकन एवं लेखा परीक्षण के कार्यों को एक ही में सम्मिलित कर दिया गया और यह कार्य महालेखापाल के अधीन कर दिया गया जिसे महालेखा परीक्षक के नाम से जाना जाता है।

महालेखा परीक्षक को संवैधानिक मान्यता संवैधानिक सुधारों के प्रारम्भ के साथ 1919 में, मिली। महालेखा परीक्षक को भारत सरकार के नियन्त्रण से मुक्त रखा गया था तथा उसकी नियुक्ति राज्य सचिव द्वारा की जाती थी। वह भारतीय लेखा परीक्षा विभाग में एक प्रशासकीय अध्यक्ष की तरह कार्य करता था तथा राजा के इच्छा पर्यन्त अपने पद पर बना रहता था। भारत शासन अधिनियम 1935 के अधीन उसके पद के स्तर एवं महत्ता में व द्धि हुई। बाद में उसकी नियुक्ति ब्रिटिश क्राउन के द्वारा होने लगी एवं उसकी सेवा की शर्ते भी राजा की परिषद (Majesty-in-Council) ही निश्चित करती थी। परिषद के आदेशानुसार ही उसके कर्त्तव्यों एवं शक्तियों को निर्धारित किया जाता था। उसके वेतन, भत्ता एवं पेन्शन संघ के राजस्व में से देने की व्यवस्था थी। संधीय न्यायालय के किसी जज को पदच्युत करने के लिए निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार ही उसे अपने पद से हटाया जा सकता था। भारत शासन अधिनियम 1935 तथा स्वतन्त्रता अधिनियम 1947 के अन्तर्गत महालेखा परीक्षक के प्राधिकार में व द्धि हुई तथा ब्रिटेन में भारतीय लेखों के लेखा परीक्षकों को उसके प्रशासकीय नियन्त्रण में रखा गया। बाद में रियासतों (Princely states) के भारतीय संध के संधात्मक ढांचे में एकृकीत होने पर उसके लेखा परीक्षण के उत्तरदायित्व को सम्पूर्ण भारत में बढ़ा दिया गया।

संविधान अधिनियम 1950 ने भारत के महालेखा परीक्षक का नाम बदल कर लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक कर दिया तथा सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधिशों के साथ ही उसे भी संविधान

के अनुच्छेद के अन्तर्गत यह मान्यता प्रदान की गई कि भारतीय वित्त राज्यों एवं संघ दोनों ही में लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के अधीन रहेगा।

लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की संवैधानिक स्थिति (Constitutional Position of CAG)

संविधान में लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक को एक उच्च स्वतन्त्र वैधानिक अधिकारी माना गया है। वह ऐसा अधिकारी है जो व्यवस्थापिका की ओर से यह देखता है कि व्यवस्थापिका द्वारा स्वीकृति धनराशि में व द्धि या परिवर्तन तो नहीं हुआ है या व्यय किया गया धन जिस उद्देश्य के लिए दिया गया था उसे सही ढंग से खर्च किया गया तथा वैधानिक ढंग से प्राप्त किया गया या नहीं। किसी भी विषय पर या किसी भी ढंग से लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के विवेकाधीन निर्णय को रोका नहीं जा सकता, अपने कर्तव्यों के दौरान इसकी सूचना वह व्यवस्थापिका को देता है। संविधान में निहित उसके पद की शपथ में यह कहा गया है कि उसे संविधान और विधि की मर्यादा को बनाए रखना है तथा अपने कर्तव्यों को भय, पक्षपात, प्रेम तथा बुरी भावना के बिना सम्पादित करना है।

प्रशासन की वित्तीय एकता के सर्वश्रेष्ठ स्तर को बनाए रखने के उद्देश्य एवं कर देने वालों के हितों की रक्षा तथा विधायी नियन्त्रण के उद्देश्य के लिए भी, संविधान, भारत के नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक की स्वतन्त्रता व निष्पेक्षता को निम्न विधियों से बनाए रखता है।

1) संविधान के अनुच्छेद 148 के अनुसार भारत के लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति अधिपत्र द्वारा राष्ट्रपति अपने ही हाथों एवं मुहर से करेगा। अपना पद ग्रहण करेगा वह 6 वर्ष तक या 65 वर्ष की आयु प्राप्त करने तक, इसमें जो भी पहले हो उच्चतम न्यायालय के किसी न्यायधीश की भांति तथा उसी रीति तथा उन्हीं आधारों पर उसे पद मुक्त किया जा सकता है।
2) आगे व्यवस्था है कि लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक कार्यपालिका से प्रभावित नहीं हो सकते हैं। इसके लिए संविधान के अनुच्छेद 148(3) के अनुसार लेखा नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक का वेतन तथा सेवा की अन्य शर्तें विधि द्वारा निश्चित होंगी। उसकी नियुक्ति के पश्चात् इसमें इस प्रकार परिवर्तन नहीं किया जा सकता जिससे उसकी हानि हो।
3) अनुच्छेद 148(4) के अनुसार लेखा नियन्त्रक व महालेखा परीक्षक अपने पद से हट जाने पर भारत सरकार या राज्य सरकार के किसी भी पद पर कार्य नहीं कर सकता।
4) अनुच्छेद 148(6) के अनुसार इस पद पर कार्यरत सभी व्यक्तियों के वेतन भत्ते एवं पेन्शन भारत की संचित निधि से देय होंगे।
5) लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक भारतीय लेखा परीक्षण एवं लेखा विभाग का प्रशासकीय अध्यक्ष होता है। उसकी प्रशासकीय शक्तियाँ राष्ट्रपति द्वारा बनाए गए नियमों द्वारा शासित होती है। इस तरह से संविधान लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की संवैधानिक स्वतन्त्रता को बनाए रखना है और उसे कार्यपालिका, जिसके लेन-देन का वह लेखा परीक्षण करता है, के भय तथा उसके प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार से परे रहता है।

लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्य तथा शक्तियाँ (Duties & Powers of CAG)

i) **लेखा सम्बन्धी कर्तव्य (As an Accountant) :** लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के

कर्तव्यों एवं शक्तियों का लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के (कर्तव्यों, शक्तियों एवं सेवा की शर्तें) अधिनियम 1971 में उल्लेख किया गया है जिसे संविधान के अनुच्छेद 149 में सम्मिलित किया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक का यह उत्तरदायित्व है कि भारत सरकार, राज्य सरकार एवं केन्द्र शासित क्षेत्रों के व्ययों एवं प्राप्तियों का लेखा परीक्षण करे। उसे यह भी शक्ति प्रदान की गयी है कि निकायों या प्राधिकारों (bodies or authority) जिसे आर्थिक सहायता केन्द्र या राज्य राजस्वों से, अनुदान (granturor loans) या ऋण के रूप में प्राप्त होती है, के व्ययों एवं प्राप्तियों का लेखा परीक्षण करे। लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक अधिनियम 1971 के भाग 10 के अनुसार यह लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक का उत्तरदायित्व है कि केन्द्र एवं प्रत्येक राज्य के लेखाओं का संकलन करे तथा वित्तीय लेखा (Finance Accounts) तैयार करे। यह भी लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक का कर्तव्य है कि लेखाओं से विनियोजन लेखा तैयार करे जिसमें केन्द्र, प्रत्येक राज्य एवं प्रत्येक केन्द्र शासित प्रदेश के उद्देश्य के लिए वार्षिक प्राप्तियों एवं संवितरणों को सम्बन्धी अध्यक्षों के अधीन दर्शाते हुए उसका विवरण हो। इन लेखाओं (वित्त लेखा) विनियोजन को राष्ट्रपति या राज्य के राज्यपाल या केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रशासक जैसा मामला हो, के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। वह बजटों (वार्षिक वित्तीय विवरण) की तैयारी में केन्द्र एवं राज्यों की आवश्यक सूचना देता है।

लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा के लेखा सम्बन्धी कार्य मुख्य रूप से इस प्रकार है :

1) रूपों (Form) का उल्लेख करना जिसमें केन्द्र और राज्यों के लेखाओं को रखा जाता है।
2) वित्त लेखाओं एवं विनियोजन लेखाओं को तैयार करना एवं राष्ट्रपति / राज्यपाल / केन्द्रशासित प्रदेश के प्रशासक जैसा भी मामला हो के समक्ष लेखाओं को प्रस्तुत करना।
3) वार्षिक बजट की तैयारी के लिए केन्द्र/राज्य सरकारों को सूचना देना।

ii) **लेखा – परीक्षण सम्बन्धी कर्तव्य (As an Auditor) :** लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक का वास्तविक कर्तव्य लेखा परीक्षण का है। मुख्य लेखा परीक्षण लेखाओं की यथार्थता (Accuracy) एवं पूर्णता को जाँचता है। वह यह देखता है कि सभी वित्तीय लेन-देन जैसे प्राप्तियाँ एवं भुगतान लेखाओं में पूर्ण रूप से दर्ज किए गये हैं या नहीं,सही ढंग से वर्गीकृत किया गया है या नहीं एवं सभी व्यय एवं संवितरण प्राधिकृत तथा प्रमाणित हैं या नहीं तथा समस्त शेष धनराशि को मांगों के अनुसार दर्ज किया गया है या नहीं तथा लेखाओं में रखा गया है या नहीं। वह एक रखवाला (Watchdog) की तरह कार्य करता है यह देखने के लिए कि क्या विभिन्न अधिकारियों ने वित्तीय मामलों में संविधान तथा संसद के विधियों तथा उपयुक्त विधानों नियमों एवं आदेशों के अनुसार कार्य किया है या नहीं।

लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक अधिनियम 1971 के अनुसार लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के लेखा परीक्षण सम्बन्धी कार्य इस प्रकार है :

अ) संचित निधि से हुए समस्त व्ययों एवं प्राप्तियों का लेखा परीक्षण करना तथा प्रत्येक राज्य एवं प्रत्येक केन्द्र शासित प्रदेश जिसके यहाँ विधान सभा है का लेखा परीक्षण करना तथा यह पता लगाना कि लेखाओं में प्रदर्शित धन जिसे उद्देश्य या सेवा के लिए खर्च किया गया है वैधानिक रूप से प्राप्त किया गया या नहीं।

ब) आकस्मिक निधि एवं लोक लेखाओं से सम्बन्धित केन्द्र एवं राज्यों के समस्त लेन-देन का लेखा परीक्षण करना।

स) यह समस्त व्यापारिक उत्पादन, मुनाफा एवं हानि सम्बन्धी लेखाओं तथा केन्द्र एवं राज्य के किसी भी विभाग के दूसरे पूरक लेखाओं का लेखा परीक्षण करता है। प्रत्येक मामलों में हुए खर्चों, लेन-देन पर रिपोर्ट प्रस्तुत करता है।

द) केन्द्र या राज्य राजस्वों से सहायता प्राप्त निकायों या प्राधिकारों के प्राप्तियों तथा व्ययों का लेखा परीक्षण करता है।

य) संसद के विधि के अन्तर्गत अथवा उसके द्वारा स्थापित कम्पनियों, निगमों के लेखाओं का लेखा परीक्षण करता है।

र) निकायों या प्राधिकारों के प्रार्थना पर उसके लेखाओं का लेखा परीक्षण करता है।

लेखा परीक्षण सम्बन्धी कर्तव्यों को सम्पादित करने में लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक केन्द्र या राज्य के नियन्त्रण के अन्तर्गत आने वाले किसी भी लेखाओं के कार्यालय का निरीक्षण कर सकता है जिसमें प्राथमिक या अनुपूरक लेखाओं को रखने के लिए उत्तरदायी राजकोष (Treasuries) एवं कार्यालय भी शामिल होते हैं। संक्षेप में, लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक केन्द्र तथा राज्यों तथा केन्द्रों या राज्य राजस्वों से आर्थिक सहायता प्राप्त निकायों के लेखाओं के परीक्षणा के लिए उत्तरदायी है। वह स्वायत्तता प्राप्त प्राधिकारों, निगमों एवं कम्पनियों के लेखाओं का लेखा परीक्षण करता है। विधि द्वारा उसको यह उत्तरदायित्व लोकहित को ध्यान में रखकर दिया गया है। अपने कर्तव्यों को सम्पादित करते समय उसे भारतीय लेखा परीक्षण तथा लेखा विभाग से सहायता मिलती है।

लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक के अन्य कर्तव्य
(Other Duties of CAG)

लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक केन्द्र, राज्यों तथा केन्द्र शासित प्रदेशों के लेखाओं की लेखा परीक्षण तथा रिपोर्ट तैयार करने से सम्बन्धित कर्तव्यों एवं कार्यों के अतिरिक्त वह संसद द्वारा बनाए या प्राधिकृत निकायों एवं अधिकारियों के लेखाओं से सम्बन्धित कार्यों एवं कर्तव्यों को भी सम्पादित करता है। वर्तमान समय में लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक अपने अतिरिक्त कर्तव्यों में सरकारी कम्पनियों एवं वैधानिक निगमों का लेखा परीक्षण करता है। सरकारी कम्पनियों के मामलों में लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक व्यवसायिक लेखा परीक्षकों के रिपोर्ट पर अपनी टिप्पणी देता है या उसे पूरा कर सकता है। उसका कर्तव्य यह भी है कि वह सार्वजनिक लेखा समिति के कार्यों में सहायता प्रदान करें।

लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक की भूमिका : एक मूल्यांकन (Evaluation of Role of CAG)

भारतीय संविधान ने लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक को एक स्वतन्त्र तथा महत्वपूर्ण स्थिति प्रदान की है ताकि वह अपने कर्तव्यों को बिना भय या पक्षपात के सम्पादित कर सके। संविधान ने कार्यपालिका से उसकी स्वतन्त्रता के लिए उचित अभिरक्षण (Actequate Safeguard) प्रदान किया है। लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के पद को संविधान द्वारा निर्मित किया गया है। इसका निरन्तर अस्तित्व राज्य के दूसरे संवैधानिक अंगों जैसे सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय

एवं चुनाव आयोग की तरह संविधान द्वारा स्थापित किया गया है न कि संसद द्वारा। हालाँकि वह पूर्ण रूप से संसद तथा विधान मंडलों की सेवा करता है। इस प्रकार लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक का भारतीय प्रजातंत्र में एक अनूठा स्थान है।

1) **लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की नियुक्ति कार्यकाल एवं पंद्च्युति**
(Appointment, Service Period and Impeachment of CAG)

संविधान लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की स्वतन्त्रता इस प्रकार बनाए रखता है कि उसकी नियुक्ति भारत का राष्ट्रपति अधिपत्र द्वारा अपने ही हाथों एवं मुहर से करता है उसका कार्यकाल 6 वर्ष का होता है। उसे प्रमाणित दुर्व्यवहार या "अयोग्यता" को छोड़कर अपने पद से हटाया नहीं जा सकता। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में इन संवैधानिक अधिकारियों को अपने कर्तव्यों को सही ढंग से पूरा करने के लिए पूर्णरूपेण स्वतन्त्रता की आवश्यकता होती है। ए.के. चन्दा, भूतपूर्व लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक ने स्वायत्तता के पक्ष में अपना तर्क देते हुए कहा है कि "वित्त के क्षेत्र में, कार्यपालिका के कार्यों का सही तथा बिना पक्षपात के मूल्यांकन करने के लिए उनके सम्मान, स्वतन्त्रता, द ष्टि की प थकता तथा निर्भयता को बनाए रखना अति आवश्यक है।" सर्वोच्च न्यायालय के न्यायधीश की तरह लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक को उसके पद से दो आधारों पर हटाया जा सकता है। "प्रमाणित दुर्व्यवहार" या "अयोग्यता" प्रस्ताव को उसी अधिवेशन में दोनों सदनों के समक्ष प्रस्तुत किया जाना चाहिए तथा इस प्रस्ताव को पारित करने के लिए प्रत्येक सदन में विशेष बहुमत को होना आवश्यक है। प्रस्ताव को प्रस्तुत करने की प्रक्रिया, निरीक्षणा दुर्व्यवहार का प्रमाण तथा अयोग्यता की प्रक्रिया को संसद के विधि द्वारा निश्चित किया जाता है। इस प्रकार पदच्युति प्रक्रिया अत्यन्त ही कठिन प्रक्रिया प्रतीत होती है।

2) **नियुक्ति की शर्तें**
(Conditions of Appointment)

संविधान उसके वेतन एवं सेवा की अन्य शर्तो को प्रत्याभूत करता है तथा उसकी नियुक्ति के पश्चात् उनको इस प्रकार नहीं बदला जा सकता जिससे उनको हानि हो। लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के वेतन तथा भत्ते भारत की संचित निधि से दिए जाते हैं। यदि वेतन तथा सेवा की शर्तों को कार्यपालिका के विवेकाधीन रख दिया जाए तो लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यो में हस्तक्षेप की सम्भावना पैदा हो जायेगी। लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के साथ संसदीय मतभेद या नाराजगी के मामलों में उसका वेतन, पेन्शन या सेवा निव त्ति की आयु में परिवर्तन संसद के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत नहीं होगा। तथा उसे सजा भी नहीं दी जा सकेगी।

लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक सेवा निव त्त, त्यागपत्र या पदच्युति के बाद भारत सरकार या राज्य सरकारों के अन्तर्गत कोई लाभ का पद ग्रहण नहीं कर सकता। इसका उद्देश्य यह है कि उसको कार्यपालिका से किसी प्रकार का लाभ लेने के आकर्षण से प थक रखा जाए क्योंकि यह उसे सेवानिव त्ति से पहले उसके कार्यों तथा निर्णयों को प्रभावित कर सकता है। वास्तविकता यह है कि इस प्रावधान की आत्मा को द ढ़तापूर्वक ग्रहण नहीं किया गया है। संविधान में यह प्रावधान है कि लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के वेतन भत्ते तथा प्रशासकीय व्ययों को भारत सरकार की संचित निधि से किया जाए। सरकार के दूसरे व्ययों के विपरीत उसके व्ययों को बजट से मतदान के लिए पेश नहीं किया

जा सकता। इस प्रकार उसके कार्य या व्यवहार पर संसद में बहस या मतदान नहीं हो सकता। संविधान ने इस प्रकार लेखानियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के कार्यों में संसदीय हस्तक्षेप के विरुद्ध अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सुरक्षा प्रदान की है।

3) **कर्तव्य एवं शक्तियाँ**
(Duties and Powers)

संसद ने लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के कर्तव्यों तथा शक्तियों को लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक (कर्तव्य, शक्तियों एवं सेवा की शर्तों) अधिनियम 1971 के अन्तर्गत रखा है। केन्द्र सरकार के कुछ विभागों में लेखांकन को लेखा परीक्षण से अलग कर दिया गया है। जब से लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक को खाद्य पुनर्स्थापना आपूर्ति विभागों लोक सभा एवं राज्य सभा सचिवालयों के लेखांकन सम्बन्धी दायित्वों से मुक्त कर दिया गया, तब से उनके लिए अलग लेखा कार्यालय बनाए गए हैं। सन् 1976 में भारत सरकार ने लेखांकन सम्बन्धी कार्य को अपने प्रशासकीय मन्त्रालय/विभाग में रख लिया जिसके परिणामस्वरूप केन्द्रीय सरकार में लेखांकन से लेखा परीक्षण अलग होने की प्रक्रिया पूरी हो गयी। लेकिन प्रत्येक राज्य सरकारों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों (जिसके पास विधान मंडल की व्यवस्था है) के लिए प थक वार्षिक लेखा तैयार करना तथा उसे राज्यपाल या प्रशासक को प्रस्तुत करने का उत्तरदायित्व लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षण को ही सौंपा गया है। लेखा परीक्षण कार्य को एक प्राधिकार द्वारा करना यद्यपि आर्थिक द ष्टि से उचित है लेकिन लेखा परीक्षण की स्वतन्त्रता के सिद्धान्तों के विपरीत है। यह लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक को आंशिक रूप से कार्यपालिका तथा व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी बना देता है। वह अपने लेखांकन सम्बन्धी कर्तव्यों के लिए संसद तथा व्यवस्थापिका के प्रति जवाबदेह हो जाता है जो कि कार्यपालिका का उत्तरदायित्व है। लेखांकन सम्बन्धी प्राधिकार के कारण अपनी लेखा परीक्षण रिपोर्ट में लेखांकन सम्बन्धी अनिश्चित्ता या लापरवाही जो कि इसके द्वारा संकलित लेखांकनों से होती है की मुख्य घटनाओं को प्रकाशित करने में झिझक महसूस करेंगे। इस तरह से लेखा परीक्षण पूर्ण रूप से प्रभावित होगा।

संविधान के अनुसार लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक को उन तरीकों (Forms) को निश्चित् करने का ऐसा प्राधिकार है जिसमें केन्द्र तथा राज्यों के लेखांकन को बनाए रखने का मुख्य उद्देश्य पूरा हो एवं अर्थव्यवस्था में एकरूपता को बनाए रखा जा सके। लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के तकनीकी विशेषज्ञों द्वारा केन्द्र तथा राज्यों के लेखांकन सम्बन्धी मामलों में सरकार द्वारा वार्षिक बजट की तैयारी तथा प्रस्तुति में सहायता की जाती है। इस तरह इस प्रावधान के अपने लाभ हैं। यह लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक को अत्यधिक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व सौंपता है।

1) **लेखा परीक्षण रिपोर्ट**
(Audit Report)

संविधान में लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने की प्रक्रिया निर्धारित की गई है। केन्द्र सरकार सम्बन्धी लेखाओं की रिपोर्ट को राष्ट्रपति के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है तथा राज्य सरकार के लेखाओं को राज्य के राज्यपाल के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। इसके बाद उसका उत्तरदायित्व समाप्त हो जाता है। लेकिन यह

राष्ट्रपति/राज्यपाल के लिए आवश्यक हो जाता है कि वे संसद के सदनों/विधान मंडलों के समक्ष रिपोर्ट को प्रस्तुत करें। वह तीन रिपोर्ट रखता है जैसे वित्त लेखाओं पर लेखा परीक्षण रिपोर्ट, विनियोजन लेखाओं पर लेखा परीक्षण रिपोर्ट तथा व्यवसायी एवं सार्वजनिक क्षेत्र सम्बन्धी उद्योगों पर लेखा रिपोर्ट तथा केन्द्र राज्य सरकारों के राजस्व प्राप्तियों पर क्रमानुसार रिपोर्ट।

संविधान में लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक के लेखा परीक्षण रिपोर्ट के सार (Form of guidelines) के लिए कोई रूप या निर्देशन नहीं निर्धारित किया गया है। इस तरह लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक का रिपोर्टों के रूप, सामग्री तथा सार को निश्चित करने में पूर्ण स्वतन्त्रता तथा विवेकाधीन शक्तियाँ प्रदान की गई हैं।

सीमाएँ
(Limitations)

लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक को कार्यपालिका एवं संसद से स्वतन्त्र बनाए रखने के लिए संविधान द्वारा विभिन्न अभिरक्षण (Safeguards) प्रदान करने के बावजूद भी उसकी स्वतन्त्रता चार तत्वों से सीमित होती हुई प्रतीत होती है जैसे,

अ) उसके बजट स्वायत्तता पर कार्यपालिका का नियन्त्रण,

ब) स्टाफ पर नियन्त्रण की कमी,

स) केन्द्र के वित्त मन्त्रालय के प्रति अप्रत्यक्ष, जवाबदेही तथा लेखांकन सम्बन्धी कर्तव्यों को पूरा करने के लिए राज्य सरकार के वित्त विभाग के प्रति अप्रत्यक्ष जवाबदेही,

द) महान्यायवादी के विपरीत, अपने सरकारी कार्यों के पक्ष में संसद में प्रश्न काल के दौरान प्रत्यक्ष उपस्थिति का अभाव।

संक्षेप में, इन सीमाओं के बावजूद भी लेखा नियन्त्रक तथा महालेखा परीक्षक वित्त प्रशासन के क्षेत्र में संविधान तथा विधि की मर्यादा को स्थापित कर भारतीय लोकतन्त्र में अनूठी भूमिका निभाता है। वह न तो संसद का अधिकारी है न ही सरकार कार्यकर्त्ता। वह संविधान के महत्वपूर्ण अधिकारियों में से एक है उसका कार्य उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि न्यायपालिका का है।

सारांश
(Conclusion)

जैसा कि पहले बताया जा चुका है लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक वित्तीय मामलों में कार्यपालिका पर संसदीय सर्वोच्चता बनाए रखता है। वह संविधान का अधिकारी है संसद का अधिकारी नहीं है। लेखा नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की स्वतन्त्रता को संविधान विभिन्न तरीकों से प्रत्याभूत करता है जिससे कि वह कार्यपालिका के बिना हस्तक्षेप के अपने कार्यों को सम्पादित कर सके। उसका मुख्य कर्तव्य है वित्त प्रशासन के क्षेत्र में संविधान तथा विधियों की मर्यादा को बनाये रखना।

अध्याय - 17

भारत में लेखा प्रणाली एवं लेखा परीक्षा प्रणाली

(Accounting and Auditing System in India)

चाहे व्यापारिक संगठन हो या शासन लेखा प्रबंध का एक उपकरण होता है। एक उत्पादन संगठन में प्रबंध-समिति को एक वस्तु के निर्माण में आई लागत, एक कार्य को सम्पन्न करने में लगी पूँजी, बिक्री की लागत एवं प्राप्त मुनाफा या हानि के बारे में जानकारी प्रदान करता है। इसी प्रकार एक व्यापारिक संगठन में यह लाभ अथवा हानि एवं संगठन की परिसम्पतियों एवं उत्तरदायित्वों में व द्धि अथवा कमी के बारे में जानकारी प्रदान करना है। यह बजट से सम्बन्धित चीजों के उचित नियंत्रण के लिये आंकड़ों का प्रबन्ध करता है सरकारी कामों में लेखा के प्रबंध के विभिन्न स्तरों पर योजनाओं की तैयारी एवं उचित वित्तीय नियंत्रण को लागू करने में मदद करता है। विभिन्न गतिविधियों के लिए व्यय की जाने वाली सम्पत्तियों के आंकड़े देकर पहले से ही यह निश्चित कर कि कौन से कर लगाने हैं एवं किन क्षेत्रों में व्यय पर कटौती की जा सकती है, यह बजट आयोजकों की मदद करता है। इसके अतिरिक्त यह प्रबंध समिति की मदद योजनाओं एवं परियोजनाओं के उचित अनुश्रवण और कार्यान्वयन में भी करता है। इस प्रकार लेखा-शास्त्र प्रबंध समिति के लिये एक उपयोगी सहायता है जिससे कि वह अपने विभिन्न प्रबंधकीय कार्यों को प्रभावकारी रूप से पूरा कर सके।

इस इकाई में वाणिज्य लेखा-शास्त्र एवं शासकीय लेखा-शास्त्र के अन्तर की व्याख्या की गई है। शासकीय लेखा-शास्त्र में हाल ही में हुए सुधार यानि लेखा का विभागीकरण, लेखा-शास्त्र की संशोधित संरचना एवं प्रबंध लेखा-शास्त्र की भी व्याख्या की गई है।

लेखा-शास्त्र : परिभाषा एवं महत्व

(Definition and Importance of Accounting)

लेखा शब्द का वित्तीय तात्पर्य इस प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है कि यह उन तथ्यों का विवरण देता है जो धन सम्बन्धी हैं या उन चीजों से सम्बन्धित हो जिनकी धन में मान्यता हो। वह तथ्य जिन्हें लेखा-शास्त्र के विवरण में सम्मिलित किया जाता है ''कार्यविवरण'' कहलाते हैं।

सभ्यता के प्रारम्भिक चरणों में अभिलिखित कार्यविवरण की संख्या इतनी कम थी कि हर एक व्यापारी सभी कार्यविवरण की जाँच एवं अभिलेखन स्वयं कर लेता था। परन्तु व्यापार में व द्धि के साथ व्यापारी के लिये यह जानना कठिन हो गया कि उसका अपने ग्राहकों के साथ कैसा सम्बन्ध है एवं उसका व्यापार लाभदायक है या नहीं। फलस्वरूप दोहरा लेखा के आधार पर लेखा के अनुरक्षण को बढ़ावा मिला जिससे मुनाफे और घाटे का हिसाब एवं व्यापार के तुलन-पत्र के उपक्रम में मदद मिली। वह प्रक्रिया जिसके द्वारा यह परिणाम प्रभावित होते हैं ''लेखा-शास्त्र'' कहलाती है।

लेखा-शास्त्र एक विषय है, जो आंकड़ों का अभिलेखन, वर्गीकरण एवं संक्षेपण करता है और इन्हें आसान रूप में प्रस्तुत करता है जिससे एक संगठन के प्रबंध के विभिन्न स्तरों को निर्णय लेने के कामों में मदद मिल सके। यह प्रबंधकों को उनकी बजट योजनाएं यथार्थता से बनाने में मदद करता है ताकि व्यय एवं बजट विनियोजन में ताल-मेल बैठ सके और जहां जरूरी हो शोधक कार्यवाही की जा सके। यह व्यवसाय संघ की गतिविधियों, लाभ एवं हानि एवं इसके परिसम्पत्तियों तथा उत्तरदायित्वों के बारे में आंकड़े प्रस्तुत कर तथा बाहरी व्यक्तियों जैसे अंशधारियों एवं साथ ही सरकारी की भी तथा व्यवसाय संघ की कार्यप्रणाली के बारे में भी जानकारी प्राप्त करने में मदद करता है।

शासन में लेखा-शास्त्र वार्षिक बजटों के आयोजन के लिये जानकारी प्रदान करता है। यह बजट आयोजकों को पहले से ही यह निर्धारित करने में मदद करता है कि प्रतिबद्ध व्यय को पूरा करने के लिए कौन से कर लगाने हैं अथवा जहां कहीं भी संभव हो वहां व्यय को कम करना है। यह प्रबंधकों को वेतन भत्ता, सामग्री आदि पर वार्षिक सम्बद्ध व्यय एवं योजना कार्यक्रमों पर होने वाले व्यय संबंधी जानकारी भी प्रदान करना है। यह प्रकार्यों, कार्यक्रमों, गतिविधियों पर होने वाले व्यय के बारे में जानकारी प्रदान करता है। जिससे सरकारी विभागों में बजट के निष्पादन कार्यों में तीव्र प्रगति हो सके। इसके अतिरिक्त यह उचित वित्तीय नियंत्रण का पालन करने में तथा विभिन्न अधिकारी-वर्गों द्वारा नियमों एवं अधिनियमों के अनुपालन में मदद करता है। इसका मुख्य उद्देश्य प्रबंध के विभिन्न स्तरों को समय-समय पर जानकारी देना है जिससे वह अपने कार्यक्षेत्र सम्बन्धी बातों में उचित निर्णय ले सके ताकि गतिविधियों के अनुपालन का उनके भौतिक लक्ष्यों के अनुकूल और व्यय का बजट के अनुकूल संचालन हो सके जिससे सरकार जहां आवश्यक समझे वहां संशोधित कर सके।

शासकीय लेखा-शास्त्र के सिद्धांत एवं विधियां
(Principles and Method of Government Accounting)

वाणिज्य एवं शासकीय लेखा-शास्त्र कुछ मुख्य मुद्दों पर एक दूसरे से भिन्न है। एक व्यापारिक संस्था का मुख्य कार्य वस्तुओं का उत्पादन एवं उनको बेचकर मुनाफा कमाना है। दूसरी ओर सरकार का मुख्य कार्य मुनाफा कमाना ही नहीं बल्कि देश में प्रशासन एवं विभिन्न कार्यों का संचालन भी इस प्रकार करना है जिससे कि पूरे समाज को सामान्य रूप से लाभ हो सके।

एक व्यापारिक संस्था मुख्यतः लाभ के उद्देश्य से पूंजी का प्रयोग करती है। ऐसी संस्था समयान्तराल में यह जानने में रुचि रखती है कि वह अपने देनदार एवं लेनदार के साथ किस प्रकार के सम्बन्ध में हैं। क्या उसे लाभ हो रहा है या हानि, इस लाभ एवं हानि का स्त्रोत क्या है। इन सब सवालों के तत्काल जवाबों की प्राप्ति के लिए इस संस्था को लेखा की विस्त त प्रणाली रखनी पड़ती है। हर व्यक्ति जिससे व्यापार सम्बन्ध हैं और इसकी गतिविविधयों के साथ जुड़े हर विभाग को ध्यान में रखते हुए व्यापारिक संस्था एक विशेष लेखा रखती है जिससे कि हर स्थिति में कार्यविवरण के परिणाम का अनुमान लगाया जा सके। उत्पादन, व्यापार और लाभ एवं हानि का हिसाब तथा तुलन-पत्र तैयार करने से संस्था वार्षिक उपार्जित लाभ अथवा हानि के बारे में सफल होती है।

व्यापारिक दुनिया की यह एक सामान्य स्वीकृत प्रथा है कि लेखा-बही दोहरी लेखा प्रणाली पर कायम रहती है। दोहरी लेखा प्रणाली इस वास्तविकता पर आधारित है कि हर सौदे में दो पक्ष शामिल होते हैं—एक देने वाला और एक पाने वाला। इस प्रणाली के अन्तर्गत हर सौदे के लिये

बही में दो लेखा होता है एक उस पक्ष या हिसाब के लिए जिसमें से दिया जा रहा है और दूसरा पक्ष या हिसाब के लिये जिसे दिया जा रहा है।

दूसरी ओर सरकार की गतिविधियों का निर्धारण देश की आवश्यकताओं पर निर्भर करता है। अगर आने वाले सालों में कार्यान्वित की जाने वाली गतिविधियों के बारे में पता चल जाए तो इनको पूरा करने के लिये आवश्यक निधि का निर्धारण करना आसान हो जाता है। इस प्रकार शासकीय परिकलन की अभिकल्पना सरकार को यह निर्धारित करने में मदद करती है कि अपनी गतिविधियों को कायम रखने के लिये उसे करदाता से कितना धन एकत्र करने की आवश्यकता है।

शासकीय या सरकारी (government) लेखा में कार्यविवरण का वर्गीकरण दो बातों पर निर्भर करता है—पहली, गतिविधियों का प्रशासनिक वर्गीकरण एवं दूसरी, कार्य विवरण के स्वरूप का वर्गीकरण। इस प्रकार शासकीय लेखा-शास्त्र काफी विस्त त है और एक लेखा प्रणाली पर चलता है।

लेखा का अंकेक्षण से प थक्करण
(Separation of Accounting and Auditing)

लेखा-शास्त्र एवं लेखा-परीक्षण परस्पर सम्बन्धित परन्तु स्वतन्त्र कार्य हैं। मुख्यतः आर्थिक कारणों को ध्यान में रखते हुए लेखा-शास्त्र एवं लेखा-परीक्षण को पारंपरिक तौर पर एक प्राधिकारी के संरक्षण में सम्मिलित किया गया है। फिर भी समय-समय पर लेखा को अंकेक्षण से अलग करने का प्रयास किया जा चुका है जैसा कि रेलवे, रक्षा, खाद्य, पुनर्निवास एवं आपूर्ति के विषयों में हुआ है। 1971 में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक ऐक्ट (कर्त्तव्य, अधिकार एवं सेवा शर्तों) पारित किया गया जिसने परिकलन से अंकेक्षण के वियोजन की आवश्यकता की कल्पना की थी। इस अधिनियम की धारा 10 के अन्तर्गत राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह सी.ए.जी. (CAG) से परामर्श के पश्चात् नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को सरकार के किसी भी विभाग के संकलन की जिम्मेवारी से उन्मुक्ति दे। जून 1975 में लेखा को अंकेक्षण से अलग करने की एक योजना भारत सरकार द्वारा मंजूर की गई थी। राष्ट्रपति के एक अध्यादेश जारी करने के बाद एक अधिनियम पारित हुआ जिसके अन्तर्गत 1971 के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के अधिनियम को संशोधित किया गया। इसके द्वारा नियंत्रक महालेखा परीक्षक को भारतीय सरकार के मंत्रालयों एवं विभागों के संकलन की जिम्मेवारी से उन्मुक्ति मिल गई। फिर भी वह प्रत्येक राज्य में लेखा एवं अंकेक्षण के कार्यों को पूरा करता है।

संयुक्त लेखा एवं अंकेक्षण के लाभ
(Merits of Joint Accounting)

अंकेक्षण एवं लेखा का संयुक्त रूप से एक अधिकारी के संरक्षण में जारी रहना निम्नलिखित तर्कों से समर्थित किया गया है –

क) लेखा-शास्त्र एवं लेखा-परीक्षण के कार्य परस्पर सम्बन्धित हैं। आर्थिक तत्वों एवं नियमों से सम्बन्धित दावों के भुगतान के स्वीकरण से पहले पूर्व-अंकेक्षण, इकरारनामें के दस्तावेज की जांच आदि मुख्यतः अंकेक्षण प्रक्रिया है। इस प्रकार दोनों कार्यों का संयोजन गलत नहीं है।

ख) लेखा संगठन का प्रशासन से स्वतन्त्र होना बहुत जरूरी है जिससे कि यह सुनिश्चित

हो सके कि प्रशासन आन्तरिक लेखा-शास्त्र संगठन के नियम विरुद्ध कार्यों को नजरअंदाज कर संदिग्ध दावों को मानने के लिये मजबूर न कर सके।

ग) वर्तमान पद्धति के अनुसार नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक पर कुछ लेखा-शास्त्र की जिम्मेदारियां थोपी गई हैं। फलस्वरूप केन्द्र एवं राज्य सरकारों के समस्त विभागीय हिसाब तथा संगठन एवं अर्थप्रबन्ध के लेखा के संकलन की व्यवस्था करनी पड़ेगी। समन्वयन का अभिप्राय है कि इकाई में लेखा-शास्त्र के सिद्धांत एवं प्रणालियों में एकरूपता रखनी पड़ेगी।

घ) दूसरे संघीय संविधानों से भिन्न हमारे संविधान में केवल एक ही नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की व्यवस्था है। इसलिये परिकलन एवं अंकेक्षण को नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के संरक्षण में रखना बेहतर होगा।

संयुक्त लेखा एवं अंकेक्षण से हानियां

(Demerits of Joint Accounting)

संयुक्त प्रणाली से होने वाली प्रमुख हानियां निम्न हैं –

क) यह संविधान एवं 1971 के CAG अधिनियम के प्रावधान के पीछे छिपे मूल भावना का खंडन करती है जिसके अनुसार नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक का कार्य मुख्यतः लेखा-परीक्षण से सम्बद्ध होना चाहिए।

ख) अंकेक्षण कार्यों के साथ भुगतान एवं परिकलन के कार्यों का संयोजन नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को वित्त-मंत्री के अप्रत्यक्ष नियन्त्रण में ले आता है। संसद के सदनों में CAG के लेखा-शास्त्र के कार्यों से सम्बन्धित प्रस्तावित विषयों के मामले में वित्त-मंत्री उत्तरदायी हैं।

ग) संविधान द्वारा निर्धारित संघीय ढांचे के राज्यों को स्वायत्तता है अगर राज्य लेखा वह कार्यकर्त्ता संभालता है जो कि प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी है तो लेखा-शास्त्र के कार्यों को नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक के हाथों सौंपने से राज्यों में लेखा-शास्त्र की स्वायत्तता में कमी आ सकती है।

घ) संयुक्त लेखा एवं अंकेक्षण कार्यालयों की अपने लेखा-शास्त्र कार्यों को निपटाने की गति कम होती है अर्थात् समयानुसार बकाया का भुगतान जैसे वेतन, पेंशन, निर्वाह-निधि, परिदान आदि।

ऊपरलिखित हानियां इतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं कि वह सदा अंकेक्षण एवं लेखा के विभाजन को उचित सिद्ध कर सके। मात्र यह सत्य कि रक्षा, रेलवे, लोक सभा एवं राज्य सभा सचिव और उनके कार्य, आवास, आपूर्ति के वियोजित मंत्रालय आदि के अलग-अलग संगठन कार्यकुशलता से काम कर रहे हैं—हर प्रकार के भय को दूर करता है। वास्तव में संयुक्त लेखा एवं अंकेक्षण संगठनों की हानियां उनके लाभों से कहीं अधिक हैं।

लेखा के पथक्करण अथवा विभागीकरण के लाभ

(Merits of Separated Accounting)

लेखा के विभागीकरण के कई लाभ हैं। यह निर्णय गणित विभागों पर अनुमोदित बजट में से उपगत व्यय के लिये निश्चित जिम्मेदारी स्थापित करता है, जो कोई खर्चा करता

है उसे व्यय का हिसाब देना चाहिये। परन्तु एक कार्यकारी अपने लेखा-शास्त्र कार्यप्रणाली पर बिना प्रशासनिक नियंत्रण के अपनी वित्तीय एवं लेखा-शास्त्र कार्यप्रणाली पर बिना प्रशासनिक नियंत्रण के अपनी वित्तीय एवं लेखा-शास्त्र की जिम्मेदारियां प्रभावकारी रूप से नहीं निभा पाएगा।

लेखा का प थक्करण

(Separation of Accounting)

लेखा को अंकेक्षण से अलग करने की बढ़ती हुई आवश्यकता को समझते हुए भारत सरकार ने केन्द्रीय मंत्रालयों एवं विभागों के लेखा जो भारत के 1 अप्रैल से 31 दिसम्बर 1976 के बीच नियंत्रण एवं महालेखा परीक्षक के पास था, के विभागीकरण का निर्णय लिया। भारत सरकार के सभी मंत्रालयों को जिनमें डाक एवं तार विभाग भी सम्मिलित हैं विभागीकरण की योजना के अन्तर्गत लाया गया।

लेखा का विभागीकरण
(Departmentation of Accounting)

पहली अप्रैल 1976 में लागू की गई लेखा के विभागीकरण की योजना इस सम्बन्ध में किए गए पूर्व की प्रकृति एवं पद्धति में भिन्न हैं। इस योजना के पीछे मुख्य उद्देश्य यह था कि सरकारी व्यय में बहुविध व द्धि का एवं विकास योजनाओं के प्रभावकारी रूप से कार्यान्वित करने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए प्रबन्ध लेखा-शास्त्र के प्रत्येक मंत्रालय/विभाग का अनिवार्य अंग के रूप में उचित विकास होना चाहिए। यह अनुभव किया गया कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये लेखा-शास्त्र प्रणाली के बाहरीपन को हटाना होगा एवं अनुप्रस्थ प्रशासनिक एकीकरण के साथ प्रबन्ध समिति के हर स्तर पर अनुलम्ब कार्यात्मक एकीकरण होना भी अनिवार्य है। तदनुसार लेखा के विभागीकरण में न केवल नियन्त्रक एवं महालेखा परीक्षक की लेखा संकलन की जिम्मेदारी से उन्मुक्त करना शामिल था बल्कि राजकोषों से अधिकांश भुगतान एवं प्राप्ति के कार्यों का भार व्यवस्थित करना भी सम्मिलित था।

विभागीकरण की योजना की मुख्य विशेषताओं का विस्त त वर्णन नीचे दिया गया है –

1) हर मंत्रालय प्रशासनिक रूप से एक सचिव के देख-रेख में काम करता है। इस सचिव को अपर-सचिव, सह-सचिव एवं उप-सचिव जिन्हें अधीनस्थ कर्मचारियों की मदद प्राप्त है सहयोग देते हैं। मुख्यालयों के संगठन के अतिरिक्त पूरे भारत में हर मंत्रालय अपने साथ जुड़े हुए अधीनस्थ कार्यालयों के द्वारा कार्य करता है।

2) नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक को मंत्रालयों के विभागों से सम्बन्धित कार्यविवरण के लेखा के संकलन एवं अनुरक्षण के दायित्व से कार्यमुक्त किया गया है। कोषागारों द्वारा विमुक्त किए गए भुगतान कार्यों को भी विभागों ने संभाल लिया है। पद्धति के अनुसार लेखा के विभागीकरण से पहले मुख्य मंत्रालय एवं अधीनस्थ कार्यालय कोषागार में बिल प्रस्तुत करके निधि प्राप्त करते थे। कोषागार अपने-अपने लेखापाल परमाधिकारी को लेखा देते थे और वह मासिक लेखा संकलित करते थे। प्रत्येक लेखापाल परमाधिकारी सरकारी लेखा के निश्चयीकरण एवं आयोजन के लिये दिल्ली में केन्द्रीय राजस्व के लेखापाल परमाधिकारी को केन्द्रीय सरकार के कार्य विवरण का मासिक लेखा प्रस्तुत करते थे।

3) प्रत्येक मंत्रालय के सचिव को प्रधान लेखा अधिकारी के रूप में निर्दिष्ट किया जाता है

जो मंत्रालय व उसके विभागों के सभी कार्य विवरण के लिये जिम्मेवार होता है। यह उत्तरदायित्व मंत्रालय के समाकलित वित्तीय सलाहकार के द्वारा विमुक्त होता है। लेखा एवं भुगतान के कार्य को करने की समस्त जिम्मेवारी सचिव की है और वह मासिक लेखा के प्रमाणीकरण के लिये भी उत्तरदायी होता है।

4) समाकलित वित्तीय सलाहकार प्रधानलेखा अधिकारी की ओर से निम्नलिखित कार्य करता है। उसकी जिम्मेवारियां हैं –

   क) सम्बन्धित विभागों के अध्यक्षों के समन्वयन में मंत्रालय एवं उसके विभागों के बजट को आयोजना और मंत्रालय के विभिन्न विभागों/शाखाओं के बीच बजट नियतन का वितरण। व्यय नियंत्रण भी इसकी जिम्मेवारी का एक भाग है।

   ख) कार्यालय आकस्मिक व्यय, फुटकर भुगतान एवं वेतन व भत्ता के भुगतान।

   ग) केन्द्रीय सरकार द्वारा अनुदेशों के अनुसार समस्त मंत्रालय के लेखा का द ढ़ीकरण।

   घ) मंत्रालय द्वारा नियंत्रित अनुदान के लिये उचित लेखा का आयोजन।

   ङ) एक ठोस भीतरी जांच की पद्धति का संगठन जिससे कि प्रबंध समिति के कर्त्तव्य के रूप में संचालन की कार्यकुशलता एवं लेखा-शास्त्र में यथार्थता सुनिश्चित हो सके।

   च) प्रबन्ध लेखा-शास्त्र के एक प्रभावकारी प्रणाली की प्रस्तावना जो मंत्रालय एवं उसके विभागों के कार्यात्मक कार्यों के लिये अधिक से अधिक उपयुक्त हों।

5) मंत्रालयों/विभागों से संबंधित भुगतान कार्य जो अभी तक लेखा परमाधिकारी व राज्य लेखा एवं लेखापाल करते थे अब विभागीय भुगतान एवं लेखा कार्यालय किया करेंगें।

संक्षिप्त में लेखा का विभागीकरण मुख्यतः इसलिये किया गया था कि मंत्रालय अपने व्यय पर सीधा नियंत्रण रख सके एवं एक ऐसी प्रबन्ध लेखा-शास्त्र प्रणाली को लागू कर सकें जिससे कि उचित निर्णय लेने के लिये प्रबन्ध समिति के विभिन्न स्तरों को संबद्धित जानकारी मिल सके।

लेखा-शास्त्र की संशोधित संरचना
(Modified Structure of Accounting)

अंग्रेजों द्वारा इस शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में लागू की गई लेखा-शास्त्र की प्रणाली अप्रैल 1974 तक लगभग वैसी ही रही। अंग्रेजों द्वारा लेखा-शास्त्र की प्रणाली में लागू की गई वर्गीकरण की प्रणाली मुख्यतः विधानमण्डल की ओर एवं कार्यपालिका के अन्दर वित्तीय एवं कानूनी उत्तरदायित्व को सरल बनाने के लिए तथा व्यय अभिकरण के अनुमोदन प्राधिकारों के वित्तीय एवं कानूनी उत्तरदायित्व को सरल बनाने के लिए है। इसके अतिरिक्त वर्गीकरण का उन उद्देश्यों की अपेक्षा जिने लिए धन खर्च किया गया था उस विभाग से अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध था जहां खर्च किया गया है। मूल सम्बन्ध धन द्वारा उद्देश्यों की आपूर्ति से नहीं बल्कि उस वस्तु से था जिस पर धन खर्च किया गया था। जब तक सरकार के कार्य सीमित थे यह प्रणाली लाभदायकक सिद्ध हुई। परन्तु सरकार के कार्यों में बदलाव आने के साथ, जैसे क्रमशः पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत देश के सामाजिक-आर्थिक उन्नति के लिये विकास कार्यों की शुरुआत तथा विकास प्रशासन की चुनौतियों का मुकाबला करने के लिये लेखा प्रणाली में जरूरी सुधार लाने की आवश्यकता को महसूस किया गया।

प्रशासन में सुधार लाने के लिये 1966 में सरकार द्वारा प्रशासनिक सुधार समिति का गठन किया गया। इस समिति ने लेखा की मौजूदा प्रणाली को जांचा एवं ''वित्तीय लेखा व अंकेक्षण'' पर अपनी रिपोर्ट में प्रणाली में कुछ बदलाव लाने का सुझाव दिया। यह मुख्यतः भारत में प्रबन्ध बजट की प्रस्तावना के सम्बन्ध में किया गया था। समिति ने यह सुझाव दिया कि लेखा के मुख्य विषयों के ढाँचे को नया रूप देना चाहिए जिससे सरकार के मुख्य कार्य एवं योजनाएं प्रतिबिम्बित हो सके। इसके अतिरिक्त, विभिन्न विभागों एवं संस्थाओं के कार्यक्रम, गतिविधियों व योजनाओं की स्पष्ट रूप से पहचान स्थापित करनी होगी और उपयुक्त सुधार लाने होंगे। यह सुझाव भी दिया कि योजना उद्देश्यों के लिए अपनाए गए विकास विषयों की समीक्षा इस द ष्टिकोण से की जानी चाहिए जिससे कि इन विषयों एवं लेखा के सामान्य विषयों में प्रत्यक्ष सहसम्बन्ध स्थापित हो सके। समिति ने यह भी प्रस्ताव किया कि सरकार को एक ऐसे दल का गठन करना चाहिए जिसमें कि नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, योजना आयोग, वित्त मंत्रालय एवं प्रशासनिक मंत्रालय के प्रतिनिधि शामिल हों एवं उन्हें प्रस्तावों के कार्यान्वयन के लिये योजनाओं के निर्माण का कार्य देना चाहिए।

भारत सरकार ने समिति द्वारा दिये गए सुझावों को स्वीकार कर लिया। योजना के उद्देश्य से लेखा एवं विकास विषयों की समीक्षा का कार्यभार संभालने के लिये सरकार ने एक अधिकारी दल को नियुक्त किया जिसमें कि उप-नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक, वित्त मंत्रालय के संयुक्त सचिव (बजट), और योजना आयोग के एक प्रतिनिधि शामिल थे। इस दल ने इस विषय पर दो रिपोर्टें पेश कीं। पहली रिपोर्ट जो कि अक्टूबर 1971 में पेश की गई अनुदान की मांग के ढाँचे में सुधार से सम्बन्ध रखती थी। रिपोर्ट के पहले भाग में यह सुझाव दिया गया कि प थक सेवाओं के प्रभारी के रूप में मंत्रालय/विभाग प्रत्येक मुख्य सेवाओं (Major services) के लिये अलग मांग पेश कर सकते हैं। रिपोर्ट के दूसरे भाग में लेखा के मुख्य तथा लघु विषयों के स्तर पर व्यय का विस्त त वर्णन सम्मिलित किया गया है। रिपोर्ट के तीसरे भाग में दो में लघु विषय एवं इसके अधीन गतिविधियों/योजनाओं/समस्याओं के निवेश से सम्बन्धित विषयों का विस्त त विवरण दिया गया है। इस दल ने दूसरी रिपोर्ट नवम्बर 1972 में पेश की थी जिसमें पांच स्तरीय वर्गीकरण के ढांचे का प्रस्ताव किया गया।

इस दल ने यह उल्लिखित किया था कि नया वर्गीकरण बजट, लागत और कार्यों के बीच व योजनाओं और गतिविधियों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने में मदद करेगा। यह व्यय पर मदवार (itemised) नियंत्रण को भी निश्चित करेगा। इसके अतिरिक्त वर्गीकरण निष्पादन बजट को लागू करने में भी मदद करेगा।

भारत सरकार ने लेखा तथा बजट के ढांचे में दल द्वारा पेश की गई सुधार से सम्बन्धित परामर्श को स्वीकार कर लिया।

अप्रैल 1974 से भारत सरकार ने एक संशोधित लेखा-शास्त्र की संरचना लागू की। इस योजना के अन्तर्गत पांच स्तरीय वर्गीकरण अर्थात् लेखा के क्षेत्रीय मुख्य विषय, लघु विषय, उपविषय एवं विस्त त विषयों को लागू किया गया। क्षेत्रीय वर्गीकरण ने सरकार के कार्यों को तीन खंडों अर्थात् सामान्य सेवाएं, सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाएं और आर्थिक सेवाओं में समुहित किया है। सामान्य सेवा क्षेत्र में वह सेवाएं जो राज्य के अस्तित्व के लिये अनिवार्य हैं जैसे–पुलिस, रक्षा, बाहरी मामले, अग्नि सुरक्षा आदि सम्मिलित की गई हैं। इस खण्ड मे ंराज्य के अंग (संसद) राज्य के प्रधान, न्यायपालिका, वित्तीय एवं प्रशासनिक सेवाएं और रक्षा सेवाएं शामिल हैं।

सामाजिक एवं सामुदायिक सेवा खण्ड उन योजनाओं एवं गतिविधियों को सम्मिलित करता है जो उपभोक्ता तक मूल सामाजिक सेवाएं पहुंचाने से सम्बन्ध रखती हैं जैसे कि शिक्षा, डाक्टरी राहत, आवास, सामाजिक सेवाएं पहुंचाने से सम्बन्ध कल्याण एवं सामुदायिक निर्वाह के लिये अनिवार्य सेवाएं जैसे सार्वजनिक स्वास्थ्य, शहरी विकास, प्रसारण आदि। आर्थिक सेवा खंड उत्पादन, वितरण, व्यापार अधिनियम से सम्बन्धित गतिविधियों एवं योजनाओं को सम्मिलित करती है।

लेखा की नई योजना में हर कार्य को एक मुख्य विषय सौंपा गया है एवं प्रत्येक योजना को एक लघु विषय दिया गया है। प्रत्येक लघु विषय के अधीन कार्यक्रम में शामिल गतिविधियां/योजना/संगठन से सम्बन्धित उप लघु विषय होंगे। केन्द्रीय, राज्य एवं केन्द्र शासित प्रदेशों की सरकार के लिये मुख्य एवं लघु विषयों का वर्गीकरण एक समान है। नई योजना के अन्तर्गत उद्देश्य के वर्गीकरण को अंतिम स्तर (Last-tier) पर रखा गया है। इसका उद्देश्य व्यय पर विषय-क्रम से नियंत्रण करना है और वित्तीय नियंत्रण सुनिश्चित करना है।

कार्यक्रम गतिविधियां एवं योजना के सम्बन्ध में लेखा-शास्त्र की संशोधित संरचना बजट व लेखा विषयों (अर्थात् मुख्य विषय, लघु विषय एवं उप विषय) और विकास के योजना विषयों के बीच पर्याप्त सम्बन्ध स्थापित करती हैं। यह योजना कार्यक्रमों व परियोजनाओं पर उपगत वर्तमान व्यय के बारे में जानकारी प्राप्त करने में मदद करती है। यह प्रबन्ध बजट प्रक्रिया के शीघ्र कार्यान्वयन में भी मदद करती है। इसके अतिरिक्त यह प्रबन्ध समिति के कार्य को प्रभावकारी रूप से पूरा करने के लिये बनाए गए कार्यक्रम/गतिविधियों/योजनाओं पर हुए व्यय के विश्लेषण एवं अनुश्रवण में भी मदद करती है।

शासन में प्रबन्ध लेखा
(Management Accounting in Government)

अमेरिका में लेखा-शास्त्र संस्था के अनुसार प्रबन्ध लेखा-शास्त्र एक ऐतिहासिक एवं प्रक्षेपित आर्थिक आंकड़ों के संसाधन के लिये प्रक्रियाओं एवं धारणाओं का उपयुक्त तकनीक है जिससे कि प्रबन्ध समिति को यथोचित आर्थिक उद्देश्यों के लिये योजनाएं बनाने में एवं उन उद्देश्यों के विचार से बुद्धि सम्मत निर्णय लेने में सहयोग मिले। प्रबन्ध लेखा-शास्त्र में ऐसी सारी जानकारी का एकत्रीकरण एवं प्रस्तुति शामिल है जो संस्था के लिये बजट योजनाएं बनाने में प्रबन्ध समिति के लिए मददगार साबित हो सकती है। वित्तीय व्यय एवं अनुकूल भौतिक उपलब्धियों से सम्बन्धित बजट योजना की तुलना में गतिविधियों के कार्यों के उचित अनुश्रवण एवं मूल्यांकन में भी यह सहयोग देता है। इसका उद्देश्य प्रबन्ध समिति के विभिन्न स्तरों को समय-समय पर जानकारी प्रदान करना है जिससे कि उन्हें निर्णय लेने में सरलता हो एवं वह अपने उद्देश्यों की पूर्ति लाभकारी एवं प्रभावकारी रूप से कर सकें।

प्रबन्ध लेखा-शास्त्र में वित्तीय लेखा-शास्त्र, लागत लेखा-शास्त्र एवं वित्त-व्यवस्था के सभी पहलू सम्मिलित हैं, इससे न केवल वित्त-अभिलेख से बल्कि लागत-अभिलेख से भी जानकारी का एकत्रीकरण शामिल है। प्रबन्ध लेखा-शास्त्र की प्रणाली में जानकारी संस्था के विभिन्न भीतरी एवं बाहरी स्त्रोतों से एकत्र की जाती है और प्रबन्ध समिति को निर्णय लेने के लिये प्रदान की जाती है।

एक अच्छी प्रबन्ध लेखा-शास्त्र की प्रणाली को प्रबन्ध समिति के विभिन्न स्तरों को समय पर जानकारी पहुंचानी चाहिए जिससे बजट निधि एवं आयोजित कार्यों से सम्बन्धित व्यय में व द्धि

की निरन्तर समीक्षा हो सके। इसे निष्पादन बजट के कार्यों की योजना की प्रक्रिया को सरल बनाना चाहिए।

प्रबन्ध लेखा-शास्त्र संस्था के संगठन अपने उद्देश्यों, संस्थानिक ढांचें, एवं विभिन्न स्तरों की सूचना आवश्यकताओं आदि के हिसाब से भिन्न होता है। शासन में प्रबन्ध लेखा-शास्त्र की एक सामान्य प्रणाली का निर्धारण जो सभी सरकारी विभागों के लिये उपयुक्त हो बहुत कठिन है, क्योंकि प्रत्येक विभाग के कार्य एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि एक ऐसी प्रबन्ध लेखा-शास्त्र की प्रणाली विकसित की जाए जो एक विभाग के लिये उसके उद्देश्यों संस्थानिक ढांचों, सूचना आवश्यकताओं आदि को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त साबित हों। इसके अतिरिक्त एक बार लागू की गई प्रबन्ध लेखा-शास्त्र की प्रणाली पर समय-समय पर पुनर्विचार करना चाहिए जिससे कि एक विशेष विभाग की बदलती हुई आवश्यकताओं का सामना किया जा सके।

1976 में वित्त मंत्री की अध्यक्षता में भारत सरकार द्वारा विभिन्न मंत्रालयों/विभागों की आवश्यकताओं के अनुकूल प्रबन्ध लेखा-शास्त्र की धारणाओं पर विचार एवं उनकी अनुशंसा करने के लिये एक परामर्श समिति नियुक्त की गई थी। इसके लिये आवश्यक प्रबन्ध सूचना प्रणाली के विकास से सम्बन्धित परामर्श देना भी इस समिति का काम था। परन्तु विभिन्न प्रतिबंधों के कारण इस क्षेत्र में बहुत कम उन्नति हो पाई है।

शासन में प्रबन्ध लेखा प्रणाली के विकास में प्रतिबंधों को पहचानना चाहिए। शासन लेखा नकद-आधार (न कि दोहरा लेखा आधार) पर किया जाता है जिसकी वजह से एक कार्य के सम्पूर्ण लागत के बारे में जानना कठिन हो जाता है। इसके अतिरिक्त वित्त-लेखा का मौजूदा ढांचा प्रबन्ध लेखा के उद्देश्यों की आपूर्ति में सहायक नहीं है। लेखा का मौजूदा वर्गीकरण लागत केन्द्र या दायित्व केन्द्र को खर्च नहीं बांटता जिससे कि सामान्य लागत से वास्तविक लागत का मूल्यांकन हो सके। यद्यपि कार्यों, योजनाओं, गतिविधियों से सम्बन्धित निष्पादन बजट के कार्यों के लिये विकसित वर्गीकरण का ढांचा एक योजना अथवा कार्य के व्यय के अनुश्रवण में मदद करना था फिर भी शासन के प्रबन्ध लेखा के शीघ्र विकास के लिये अभी भी वर्गीकरण का लागत केन्द्र अथवा दायित्व केन्द्र से सम्बन्ध होना अनिवार्य है।

अन्त में निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारत सरकार के हाल ही में हुए वित्तीय सुधार जैसे कि लेखा की संशोधित संरचना, लेखा का विभागीकरण, निष्पादन बजट के कार्य, वित्त परामर्श योजना आदि सभी शासन में प्रबन्ध लेखा के शीघ्र प्रारम्भ में मदद करने के लिये हुए हैं। वह सुधार जो शुरू किये जा चुके हैं उन्हें आगे बढ़ाना चाहिए ताकि एक मंत्रालय/विभाग में विकसित प्रबन्ध लेखा की प्रणाली सम्बन्ध समिति के विभिन्न स्तरों को समय-समय पर जानकारी प्रदान कर सके जिससे कि वह शीघ्र निर्णय ले सकें।

इस प्रकार इस इकाई में शासकीय लेखा-शास्त्र के क्षेत्र में इस शताब्दी के आरम्भ से अब तक हुई उन्नति की व्याख्या की गई है। प्रबन्ध लेखा-शास्त्र के महत्व एवं शासन में इसके परिसीमन की भी व्याख्या की गई है।

लेखा परीक्षा प्रणाली
(Auditing System)

लेखा परीक्षण का संबंध कागजों तथा आंकड़ों से है। यह एक प्रकार से किसी फर्म, कम्पनी

अथवा किसी सरकारी विभाग के वित्तीय सौदों तथा लेखाकरण (Accounting) उसका शव-परीक्षण (Post-mortem) है।

आधुनिक अर्थव्यवस्था में लेखा परीक्षक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। सीमित अनुग्रह वाली संयुक्त-संबंध कंपनियों में व द्धि के साथ मालिकों (अंशधारी) तथा प्रबंधकों (संचालक मंडल) के बीच एक प्रकार का "तलाक" सा हो गया है। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि कोई ऐसा निपेक्ष लेखा परीक्षक हो जो अंशधारियों की ओर से प्रबंधकीय उत्तरदायित्व के रूप में ऐसी सीमित-अनुग्रह वाली कंपनियों के वित्तीय सौदों की यथेष्ठता का परीक्षण कर सके। इसी प्रकार लेखा परीक्षक द्वारा प्रमाणित परीक्षत हिसाब-किताब के आधार पर कर अधिकारी भी इस बात पर बहुत हद तक विश्वस्त हो सकते हैं कि कर-निर्धारकों द्वारा बताये गए लाभ और हानि के आंकड़े करीब-करीब ठीक हैं। तथा उन्हें कर-निर्धारित के हिसाब-किताब की जांच की आवश्यकता नहीं है।

जहां तक सरकारी गतिविधियों का संबंध है, लेखा परीक्षण राष्ट्र के वित्तीय हितों के प्रहरी का काम करता है। सरकार की प्रशासनिक संरचना इतनी विशाल है और इसकी कार्यविधियां इतनी जटिल है कि एक सामान्य कर दाता के लिये यह जानना असंभव है कि उसके द्वारा सरकार चलाने के लिये दिये जाने वाले धन का दुरुपयोग तो नहीं हो रहा।

लेखा परीक्षण उचित स्तरों पर किये गये अनुचित निर्णयों के कारण हुई हानि, क्षय तथा क्षमता के आंशिक प्रयोग का विशेष रूप से वर्णन करने में सहायक होता है। संसद तथा राज्य विधान मंडल तो केवल अनुदान पारित करते हैं। यह जानने के लिये उनके पास कोई ऐसा साधन नहीं होता कि धनराशि उन्हीं उद्देश्यों के लिये खर्च की गई है जिनके लिय उन्हें पारित किया गया था तथा पारित अनुदान से अधिक तो खर्च नहीं किया गया है। नियंत्रण के इस महत्वपूर्ण पहलू के सुचारु प्रयोग के लिए संसद को यह सांविधानिक लेखा परीक्षण अधिकार महालेखा परीक्षक के रूप में दिया गया है ताकि सार्वजनिक हिसाब का परीक्षण किया जा सके।

इस इकाई में आप लेखा परीक्षण के महत्व एवं अर्थ तथा भारत में इसके उत्कर्ष के बारे में पढ़ेंगे। इस इकाई में आप को प्रशासन का खर्च घटाने तथा उसकी दक्षता बढ़ाने हेतु महालेखा नियंत्रक एवं लेखा परीक्षक द्वारा किये जाने वाले लेखा परीक्षण के विभिन्न तरीकों की जानकारी मिलेगी। इस इकाई में यह भी बताया जायेगा कि लोक सभा की Public Accounts Committee द्वारा लेखा परीक्षण रिपोर्टों की जांच का कितना महत्व है।

लेखा परीक्षण—परिभाषा एवं महत्व
(Definition and Importance of Auditing)

शब्द "लेखा-परीक्षण" लैटिन भाषा के शब्द "Audire" से निःस त हुआ है। पहले लेखा मंडलियां लेखा परीक्षक के सम्मुख प्रस्तुत होकर लेखे का व त्तांत सुनाती थीं। सभ्यता के प्रारंभिक चरणों में लेखा विधियां इतनी अशिष्ट होती थी और रिकार्ड करने वाले सौदों की संख्या इतनी थोड़ी होती थी कि हर व्यक्ति अपने सौदों की जांच स्वयं ही कर सकता था, परन्तु साम्राज्यों की स्थापना के साथ लेखा सौदों का हिसाब रखने तथा उनके लेखा परीक्षण की प्रणाली का भी उत्कर्ष हुआ। जिस व्यक्ति को हिसाब-किताब करने का दायित्व दिया गया वह "लेखा-परीक्षक" के नाम से जाना जाने लगा।

लेखा परीक्षण लेखा रिकार्ड की ऐसी जांच पड़ताल है जो यह सुनिश्चित करने के लिये की जाती है कि यह रिकार्ड पूर्णतया एवं सत्य रूप से उन सभी सौदों को प्रतिबिंबित करता है जिनसे यह सम्बन्धित है। इसका उद्देश्य यह देखना है कि किये गए व्यय के लिए उचित अधिकारियों की स्वीकृति ले ली गयी है या नहीं तथा धन उन्हीं कामों पर खर्च किया गया या नहीं जिसके लिये स्वीकृति प्रदान की गयी थी। धन के दुरुपयोग तथा जालसाजी के परिपेक्ष्य के रूप में यह व्यय आधार-पत्रों द्वारा प्रमाणित होना चाहिये।

लेखा परीक्षण वित्तीय नियंत्रण का एक उपकरण है। व्यापारिक सौदों से अपने संबंधों में, यह स्वामी की ओर से अपव्यय, असावधानी अथवा धन एवं दूसरी परिसंपत्ति की वसूली तथा उसके उपयोग में कर्मचारियों द्वारा की जाने वाली जालसाजी के विरुद्ध एक रक्षोपाय का काम करती है। स्वामी की ओर से यह सुनिश्चित करता है कि सुचारु तथा सही रूप से रखे गये हिसाब-किताब केवल तथ्यों को दर्शाते हैं तथा किया गया व्यय उचित नियमितता एवं औचित्य के अनुकूल है। सरकार के वित्तीय सौदों को भी इसी प्रकार देखा जाता है। इस उद्देश्य के लिये प्रयोग किया गया माध्यम स्वतंत्र होना चाहिए तथा सरकार के उन कर्मचारियों पर आश्रित नहीं होना चाहिए जिनका काम सार्वजनिक धन एवं दूसरी परिसंपत्ति की वसूली तथा उपयोग करना है। भारत में यह कार्य भारतीय लेखा परीक्षण एवं लेखा विभाग को सौंपा गया है। जहां तक इसके लेखा परीक्षण के दायित्वों का संबंध है, भारतीय लेखा परीक्षण एवं लेखा विभाग (Indian Audit and Accounts Department) की स्थिति सरकारी सौदों में बड़ी हद तक लेखा परीक्षक जैसी है। इस संदर्भ में संसद, विधान मंडलों को "सरकारी संस्था" के अंशधारी के रूप में देखा जा सकता है जिसमें "कार्यपालिका सरकार" (Executive Government) को इस संस्था का निदेशक माना जा सकता है, फिर भी इस "संस्था" का उद्देश्यय लाभ कमाना नहीं है।

लेखा परीक्षण लोकतंत्र के चार स्तंभों में से एक है। ये स्तंभ हैं (i) संसद (ii) न्यायतंत्र (iii) समाचार पत्र, तथा (iv) लेखा परीक्षण। प्रथम स्थान पर संसद लोकतंत्र का सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग है। यह व्यस्क मताधिकार के आधार पर चुने गये जनता के प्रतिनिधियों द्वारा निर्मित है। संसद में बहुमत प्राप्त दल के प्रतिनिधि सरकार का गठन करते हैं। सरकार चलाने के लिये आवश्यक सारे कानून संसद द्वारा ही पारित किये जाते हैं। संसद उन करों को स्वीकृति प्रदान करती है जिनसे सरकार प्रशासनिक मशीनरी चलाने के लिये साधन जुटाती है। दूसरे स्थान पर न्यायतंत्र एवं समाचार-पत्र यह दो स्तंभ आते हैं जो न्याय प्रशासन तथा एक स्वस्थ लोकतंत्र को संचालन के लिए आवश्यक हैं। अंत में आता है लेखा परीक्षण जो संसद को "कार्यपालिका" के ऊपर वरिष्ठता को सुनिश्चित करने तथा नियंत्रण में केवल प्रदय पारित करना तथा कर निश्चित करना ही शामिल नहीं होता है अपितु यह सुनिश्चित करना भी शामिल होता है कि अनुदान की राशि उन्हीं उद्देश्यों के लिये खर्च की गई है या नहीं जिनके लिये उसे पारित किया गया था।

लेखा परीक्षण प्रशासन को मूल्यवान प्रदान करता है। सभी देशों में लेखा परीक्षण को केवल एक आवश्यक बुराई के रूप में नहीं देखा जाता है बल्कि एक ऐसे अच्छे साथी के रूप में देखा जाता है जो कार्यविधि विषयक एवं तकनीकी अनियमितताओं तथा व्यक्तियों के दोषों को सामने लाता है चाहे वे मूल्यांकन से जुड़ी त्रुटियां हों या असावधानियां अथवा कपट के इरादे से किये गये कार्य हों। सरकारी मशीनरी को अधिक स्वस्थ बनाने की आवश्यकता होने के कारण लेखा परीक्षण तथा प्रशासन की पूरक भूमिकाओं को वास्तविक रूप में स्वीकार कर लिया गया है। अंतिम विश्लेषण के रूप में यह कहा जा सकता है कि लेखा परीक्षण और प्रशासन सरकारी

मशीनरी के संघटक हैं। अधिकतम परिणाम तभी प्राप्त किये जा सकते हैं जब इन दोनों संघटकों के कार्यों में समन्वय हो।

भारत में लेखा परीक्षण
(Auditing in India)

भारत तथा अन्य देशों में लेखा परीक्षण का उत्कर्ष एक कृत्रिम प्रक्रिया है। यह सरकारी गतिविधियों से संबंधित रही है। इसका संबंध आन्तरिक नियंत्रण तथा सरकारी विभागों की प्रबंध व्यवस्था से भी रहा है।

युद्ध से पूर्व सरकार के मुख्य काम होते थे राजस्व इकट्ठा करना, कानून और व्यवस्था बनाये रखना, देश की रक्षा करना तथा कुछ प्रकार के निर्माण कार्य को करना। बहुत कम सरकारें वाणिज्य गतिविधियों में भाग लेती थीं। ऐसी परिस्थिति में लेखा परीक्षण का काम मुख्यतः नियमित लेखा परीक्षण तथा अनुपालन लेखा परीक्षण (Compounce Audit) तक ही सीमित होता था। युद्ध से पूर्व लेखा परीक्षण के मुख्य अंश होते थे (क) बजट में किये गये प्रावधानों का लेखा परीक्षण (ख) दी गई स्वीकृतियों का लेखा परीक्षण (ग) धन के हिसाब-किताब एवं विनियोजन का लेखा परीक्षण (घ) व्यय का लेखा परीक्षण तथा (ङ) औचित्य लेखा परीक्षण। बजट में किये गये प्रावधानों तथा दी गयी स्वीकृतियों के लेखा परीक्षण को अनुपालन लेखा परीक्षण एवं नियमित लेखा परीक्षण के नाम से जाना जाता था। परंपरागत रूपरेखा के अन्दर लेखा परीक्षण का सर्वश्रेष्ठ रूप माना जाता था औचित्य लेखा परीक्षण। ऐसे सौदों पर भी जो हर प्रकार से ठीक था तथा व्यवस्था एवं नियमों के अनुरूप था, लेकिन आपत्ति केवल इस आधार पर की जा सकती थी कि यह सौदा व्यापक धारणाओं तथा नैतिक नियमों का उल्लंघन करता था।

युद्ध के बाद जन कल्याण वाले राष्ट्रों को कई ऐसी सामाजिक एवं आर्थिक, व्यापारिक एवं औद्योगिक परियोजनाएं चलानी पड़ी जिनसे विकास की गति बढ़ सके और जिनसे जनता के जीवन स्तर में सुधार लाया जा सके। लेखा परीक्षण का महत्व भी इसके अनुकूल बदल गया जिससे लेखा परीक्षक संसद को इस बारे में रिपोर्ट दे सकता था कि ये परियोजनाएं सही गतिविधियों के उद्देश्य से पूरे हुए हैं या नहीं। परिणामस्वरूप नये क्षेत्रों में लेखा परीक्षण का विस्तार किया गया और इसकी नई विधियां विकसित की गई। गतिविधियों में विस्तार के साथ ही सरकारी विभागों तथा अभिकरणों को आन्तरिक नियंत्रण के लिये अपनी-अपनी प्रणालियां विकसित करनी पड़ीं। इस प्रकार परंपरागत लेखा परीक्षण से लेकर गतिविधियों की अर्थव्यवस्था, दक्षता एवं प्रभावशीलता के लेखा परीक्षण तक का परिवर्तन संभव हुआ। लेखा परीक्षण नाम के अंतस्थ चरण द्वारा "धन का मूल्य" अर्थव्यवस्था तथा दक्षता के इन पहियों को अपनी परिधि में ले आया।

सांविधानिक लेखा परीक्षण का उद्देश्य तीन परतों (Three-Fold) वाला है। सबसे पहले यह लेखा कार्य का परीक्षण है जो इस बात की जांच करता है कि गणना से सम्बद्ध कोई गलती है या नहीं। उसे यह भी देखना है कि सारे भुगतान रसीदी परचियों द्वारा प्रमाणित है या नहीं। सार में यह निजी लेखा परीक्षकों के सीमित परीक्षण से भिन्न नहीं है। इसके उद्देश्य हैं (i) जालसाजी की खोज, (ii) तकनीकी गलतियों की खोज, तथा (iii) सिद्धांत की गलतियों की खोज। आमतौर पर यह एक निरंतर लेखा परीक्षण है किंतु सौदों के एक छोटे से प्रतिशत तक ही। दूसरी बात यह है कि यह व्यय के वर्गीकरण की जांच करने का विनियोजन लेखा परीक्षण हैं यह लेखा परीक्षण इसलिए किया जाता है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि व्यय लेखा पद्धति की

उचित इकाइयों में डाला गया है या नहीं तथा यह व्यय उस धनराशि से अधिक तो नहीं है जिसका प्रावधान किया गया हैं तीसरी बात यह है कि यह एक प्रकार का प्रशासनिक लेखा परीक्षण अथवा स्वीकृतियों का लेखा परीक्षण है जो यह जांच करने के लिये है कि व्यय निर्धारित व्यवस्था एवं नियमों के अनुसार किया गया है या नहीं तथा इस व्यय के लिये उचित अधिकारियों की स्वीकृति प्राप्त कर ली गयी है या नहीं।

सांविधानिक लेखा परीक्षण संसद को इस बात का विश्वास दिला सकता है कि उस धन-राशि का जिसका प्रावधान किया गया था व्यय व्यवस्था एवं नियमों के अनुसार निर्धारित सीमाओं के भीतर किया गया है। हिसाब-किताब की तथ्यता को प्रमाणित कर सकता है तथा धनराशि के दुरुपयोग, जालसाजी तथा गबन की जांच कर सकता है।

आन्तरिक लेखा परीक्षण
(Internal Auditing)

दूसरी ओर आन्तरिक लेखा परीक्षण किसी भी संस्था की आन्तरिक बात है। वहां लेखा परीक्षण का कार्य किसी ऐसे विभाग अथवा एजेंसी द्वारा किया जाता है जिसकी स्थापना उस संस्था के प्रबंधक करते हैं। यह संस्था का अविभाज्य अंग होता है तथा संस्था के मुख्य कार्यसंचालक के नीचे काम करता है। यह कार्यसंचालकों के पास निर्विघ्न एवं कुशल कार्य करने हेतु तथा संस्था के कार्य का अवलोकन करने तथा इसके कार्यकौशल में सुधार लाने के लिये एक आन्तरिक सेवा के रूप में होता है। आन्तरिक लेखा परीक्षण के समान उद्देश्य, अन्य बातों के साथ-साथ, इस प्रकार होते हैं –

i) आन्तरिक नियंत्रण प्रणाली की उपयुक्तता, अनुकूलता एवं स्वस्थता की जांच कर उसे ठीक करना,
ii) जालसाजी को रोकना तथा उसे खोज निकालना,
iii) हिसाब-किताब तथा रिपोर्ट बनाने की प्रणाली की पर्याप्तता एवं विश्वसनीयता की जांच करना, तथा
iv) प्रबंधकों द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के लिये चलाई गई योजनाओं, गतिविधियों का निष्पादन एवं दक्षता लेखा परीक्षण करना।

किसी भी संस्था में आन्तरिक लेखा परीक्षण को वह स्वतंत्रता उपलब्ध नहीं होती जो भारतीय लेखा पद्धति एवं लेखा परीक्षण विभाग द्वारा किये जाने वाले बाहरी लेखा परीक्षण को होती है। फिर भी आन्तरिक तथा बाहरी एवं सांविधानिक लेखा परीक्षण आन्तरिक परीक्षण के कार्य की जांच करने तक ही सीमित होता है।

लेखा परीक्षण की किस्में
(Types of Audit)

लेखा परीक्षण का व्यापक उद्देश्य करदाताओं के वित्तीय हितों की रक्षा करना तथा संसद/राज्य/संघ प्रशासित क्षेत्रों के विधान मंडलों के प्रमुखों के ऊपर वित्तीय नियंत्रण रखने में सहायता करना है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (Controller Auditor General) का यह कर्त्तव्य है कि वह सुनिश्चित करे कि संविधान में अथवा संविधान के अन्तर्गत स्थापित विभिन्न प्राधिकरण वित्तीय मामलों में संविधान द्वारा, संसद द्वारा अथवा उचित विधान मंडलों द्वारा निर्धारित या जारी किये

गये नियमों एवं आदेशों के अनुसार कार्य करें। संविधान द्वारा सौंपे गये लेखा परीक्षण संबंधी दायित्वों को निभाने के लिये नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (CAG) कई प्रकार के लेखा परीक्षण, नियमितता लेखा परीक्षण, राजस्व रसीदों का लेखा परीक्षण, वाणिज्य लेखा परीक्षण, निष्पादन/अनुष्ठान लेखा परीक्षण, संग्रह एवं भंडारों का लेखा परीक्षण इत्यादि कार्य करता है। इस व्यापक कार्य को पूरा करने में अलग-अलग मंत्रालयों में स्थित लेखा अधिकारी तथा अलग-अलग राज्यों में कार्य कर रहे मुख्य लेख अधिकारी नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की सहायता करते हैं। वित्तीय लेखा परीक्षण, नियमितता लेखा परीक्षण, राजस्व रसीदों का लेखा परीक्षण, निष्पादन/अनुष्ठान लेखा परीक्षण की कुछ विशिष्टताओं का वर्णन नीचे किया जा रहा है।

वित्तीय लेखा परीक्षण
(Financial Audit)

वित्तीय लेखा परीक्षण वह लेखा परीक्षण है जो भारतीय लेखा परीक्षण एवं लेखा कार्य विभाग को यह सुनिश्चित करने के लिये करता है कि संचालकों के प्रशासनिक कार्य केवल निर्धारित कानून, वित्तीय नियमों एवं प्रक्रियाओं के अनुरूप ही नहीं हो अपितु यह उचित हो तथा इनके फलस्वरूप कोई अपव्यय न हो। वित्तीय लेखा परीक्षण प्रशासनिक संस्थाओं एवं प्रक्रियाओं से संबंधित नहीं होता तथा प्रशासनिक लेखा परीक्षण से भिन्न होता है। व्यवस्था, नियम एवं आदेश बनाने का दायित्व अथवा कर्त्तव्य कार्यकारी सरकार का होता है तथा अधीनस्थ अधिकारियों को इन नियमों का पालन करना होता है, तथापि यदि प्रशासनिक काम के किसी विशेष पथ का परिणाम क्षय, अपव्यय अथवा अनुचित व्यय होता है तो लेखा परीक्षक का यह कर्त्तव्य बन जाता है कि वह इस प्रकार के मामलों पर विशेष ध्यान दे तथा संसद के सन्मुख रखे। उदाहरण के तौर पर, किसी नहर निर्माण परियोजना में लेखा परीक्षण का नहर के वास्तविक निर्माण के प्रशासनिक ढांचे से कोई संबंध नहीं होता है और न ही इस बात से सरोकार होता है कि नहर किसी विशेष क्षेत्र से ही गुजरे। यह प्रशासनिक मामले हैं तथा लेखा परीक्षक इन प्रक्रियाओं की जांच नहीं करेगा। परन्तु यदि यह पाया जाये कि परियोजनाओं का रेखांकन अपर्याप्त आंकड़ों के आधार पर किया गया था तथा इसके परिणामस्वरूप परियोजना में परिवर्तन करने पड़े और अतिरिक्त व्यय का भार उठाना पड़ा अथवा इसके वित्तीय परिणाम आशा के अनुरूप नहीं मिल पाये तो ऐसी स्थिति में लेखा परीक्षण का यह दायित्व बन जाता है कि वह उन परिस्थितियों की जांच करे जिनके कारण गलत रेखांकन हुआ तथा जिसके फलस्वरूप करदाता को बजटीय घाटा उठाना पड़ा। लेखा परीक्षक तभी हस्तक्षेप करता है जब किसी प्रशासनिक कार्य से गम्भीर वित्तीय उलझाव पैदा हो जाते हैं अथवा कोई कार्य निर्धारित कानून एवं वित्तीय व्यवस्था तथा नियमों के अनुरूप नहीं होता। औचित्य लेखा परीक्षण अथवा परंपरागत वित्तीय नियमों के व्यापक सिद्धांतों का परीक्षण भी इस लेखा परीक्षण में सम्मिलित है। इस प्रकार वित्तीय लेखा परीक्षण सरकारी व्यय में हो रहे क्षय को संसद के सम्मुख लाकर करदाताओं के हितों की रक्षा करता है।

नियमितता लेखा परीक्षण
(Routine Audit)

नियमितता लेखा परीक्षण का कार्य मुख्यतः इस बात की जांच करना होता है कि सारे भुगतानों के लिये उचित अधिकारियों की स्वीकृति प्राप्त कर ली गई है या नहीं तथा इनको प्रमाणित करने वाली सभी रसीदें उचित रूप में उपलब्ध हैं या नहीं। इसका मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित

करना है कि सभी भुगतान संविधान में दिये गये प्रसंगोचित प्रशासनिक वित्तीय, बजट संबंधी एवं लेखा पद्धति संबंधी व्यवस्थाओं एवं नियमों तथा संसद द्वारा बनाये गये कानूनों के अनुरूप हो।

नियमितता लेखा परीक्षण के लक्ष्य जैसा कि लेखा परीक्षण नियमावली में निर्धारित किये गये हैं अन्य बातों के साथ-साथ यह सुनिश्चित करना है कि –

i) व्यय के लिये कोष का प्रावधान है तथा यह उचित अधिकारियों द्वारा अधिकृत है;

ii) व्यय हेतु प्रदान की गयी अनुमति के अनुरूप है तथा यह व्यय अधिकृत अफसरों द्वारा ही किया गया है;

iii) भुगतान की मांगे नियमों के अनुसार तथा उचित रूप में की गई हैं;

iv) व्यय संबंधी सारी प्रारंभिक आवश्यकतायें पूरी कर ली गई हैं। उदाहरणस्वरूप सभी निर्माण कार्यों पर होने वाले व्यय के उचित अनुमान तैयार कर लिये गये हैं तथा उचित अधिकारियों की स्वीकृति प्राप्त कर ली गई है, जहां आवश्यक था वहां स्वास्थ्य सर्टीफिकेट (Health Certificate) प्राप्त कर लिया गया है एवं सरकारी कर्मचारियों को वेतन का भुगतान किया गया है।

v) सीमित अवधि के लिये स्वीकृत व्यय उस अवधि के पश्चात् बिना नई स्वीकृति प्राप्त किये लेखा परीक्षण के लिये स्वीकार न किया जाये;

vi) भुगतान करने वाले अधिकारी ने उन सारे नियमों को ध्यान में रखा है जो भुगतान के तरीकों को समंजित करते हैं;

vii) भुगतान किसी व्यक्ति को किया गया है और प्रमाण के रूप में लिखित रूप से यह मान लिया गया है कि उस आशय की सरकार से दूसरी मांग सम्भव नहीं है;

viii) सारे भुगतान मौलिक लेख पत्रों में ठीक-ठीक दर्ज कर लिये गये हैं।

कोष के प्रावधानों के लेखा परीक्षण का उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि सारा व्यय उन्हीं कार्यों पर किया गया है, जिनके लिये उसका प्रावधान किया गया था तथा व्यय विनियोजित धनराशि से अधिक नहीं है। व्यय की जांच पड़ताल के संबंध में लेखा परीक्षण को यह भी सुनिश्चित करना होता है कि व्यय के प्रत्येक विषय के लिये उचित अधिकारी की स्वीकृति प्राप्त कर ली गई है। व्यवस्था एवं नियमों का लेखा परीक्षण, नियमितता लेखा परीक्षण का एक महत्वपूर्ण पहलू है। यह इस बात को सुनिश्चित करता है कि व्यय संविधान में किये गये प्रसंगोचित प्रावधानों तथा उसके अन्तर्गत बनाये गये कानूनों एवं नियमों के अनुरूप है। व्यय का नियमितता लेखा परीक्षण अर्द्धन्यायिक प्रकृति का कार्य है जो लेखा परीक्षण अधिकारियों द्वारा किया जाता है। इसमें नियमों, आदेशों तथा संविधान की व्याख्या करना सम्मिलित है।

आय/राजस्व वसूली लेखा परीक्षण
(Revenue Collection Audit)

आय/राजस्व वसूली लेखा परीक्षण में संघीय स्तर पर आय कर, उत्पादन शुल्क तथा सीमा शुल्क की वसूली सम्मिलित है। राज्य स्तर पर बिक्री कर तथा राज्य उत्पादन शुल्क इसमें शामिल होते हैं। सन् 1905 से भारतीय लेखा परीक्षण एवं लेखा विभाग आय/राजस्व वसूली संबंधी कार्य को करता आ रहा है।

आय/राजस्व वसूली के लेखा परीक्षण में लेखा परीक्षण विभाग का काम यह सुनिश्चित करना

है कि पर्याप्त नियमों एवं प्रक्रियाओं का गठन कर लिया गया है तथा राजस्व विभाग उनका पालन कर रहा है। यह कार्य कर निर्धारण, कर वसूली तथा राजस्व के उचित आबंटन पर प्रभावशाली नियंत्रण रखने के लिये आवश्यक है, क्योंकि राजस्व विभाग में कर निर्धारण का काम अर्द्धन्यायिक प्रकृति का होता है। लेखा परीक्षण को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि स्वनिर्णय का अधिकार उचित तथा न्यायसंगत रूप में प्रयोग किया गया है।

निष्पादन/अनुष्ठान लेखा परीक्षण
(Performance Audit)

आमतौर पर व्यक्तिगत सौदों की जांच ही वित्तीय तथा नियमितता लेखा परीक्षण की परिधि में आता है। वे अपना ध्यान उन योजनाओं एवं परियोजनाओं के मूल्यांकन पर केंद्रित नहीं करते जो ऐसे सौदों से संबंधित होती है। इसलिये किसी भी संस्था के निष्पादन के मूल्यांकन के लिये यह दोनों प्रकार के लेखा परीक्षण अपर्याप्त सिद्ध हुये हैं।

जब से सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं का क्रम आरम्भ किया है, देश की सामाजिक एवं आर्थिक उन्नति को गति प्रदान करने के लिये चलाई गई विकास गतिविधियों पर भारी पूंजी निवेश हुआ है। बहुत मामलों में इस पूंजी निवेश का लाभ आशा के अनुरूप नहीं हुआ। इसलिये जनता को यह जानने का अधिकार है कि परिणाम पूंजी निवेश के अनुरूप हुये हैं या नहीं। जनता की इस चिंता के फलस्वरूप सरकार में निष्पादन/अनुष्ठान बजट की प्रथा शुरू की गई। पिछले कुछ समय में व्यय को तद्नुसार वास्तविक परिणामों से जोड़ने की आवश्यकता के बारे में सरकार के चिन्तन में आये परिवर्तन ने उसे लेखा परीक्षण के कार्यों के बारे में पुनः सोचने पर बाध्य किया है। इस बात को स्वीकार कर लिया गया है कि नियमितता लेखा परीक्षण/औचित्य लेखा परीक्षण व्यय पर संसदीय नियंत्रण के लिये आवश्यक है। परन्तु पंचवर्षीय योजनाओं पर निरन्तर बढ़ते हुये व्यय को ध्यान में रखते हुये, लेखा परीक्षण के उद्देश्य एवं लक्ष्यों के बारे में विशेष परियोजनाओं, गतिविधियों तथा योजनाओं की उपलब्धियों का निरीक्षण करना चाहिये। इस बात का आभास किया गया है कि लेखा परीक्षण के वे मामले प्रकाश में लाने चाहिये जहां साधनों का उपयोग अनुकूलतम से नीचे रहा है। परिणामस्वरूप निष्पादन/अनुष्ठान लेखा परीक्षण जिसको दक्षता का लेखा परीक्षण भी कहा जाता है, की आवश्यकता पर गंभीर रूप से विचार किया जा रहा है।

निष्पादन/अनुष्ठान लेखा परीक्षण इस बात को जानने का प्रयत्न करता है कि साधनों को अनुकूलतम तरीके से परिनियोजन कर उनका उपयोग दक्षतापूर्वक किया गया है या नहीं। यह उन सीमाओं का विशेष से वर्णन करता है जहां तक साधनों का प्रयोग उत्पादक उद्देश्यों के लिये किया गया है। यह इस बात का भी विशेष रूप से वर्णन करता है कि किस हद तक ऐसे परिनियोजन से परिभाषित लाभों की आशा की जा सकती है।

यद्यपि निष्पादन/अनुष्ठान लेखा परीक्षण की विधि स्वस्थ/मजबूत एवं लाभदायक है, परन्तु इसको वास्तविक रूप देने में बहुत सारी समस्यायें हैं। पहली बात तो यह है कि किसी भी गतिविधि का निष्पादन मूल्यांकन उन लक्ष्यों के प्रकाश में ही किया जा सकता है जिनकी पूर्ति की इन्हें आशा हो तथा लक्ष्य किसी भी गतिविधि के वांछित परिणामों को दर्शाते हों। जहां किसी गतिविधि में होने वाले निवेश को मापना सरल है वहीं उसके उत्पादन को परिभाषित करने तथा मापने के लिये गम्भीर प्रयासों की आवश्यकता पड़ती है, विशेषतः वहां जहां इस उत्पादन का सामाजिक

संदर्भ होता है। दूसरी बात यह है कि "वास्तविक जन कल्याण" की संकल्पना के अनुसार, साधनों का प्रयोग केवल उस बिन्दु तक ही सर्वाधिक नहीं होना चाहिये जिस तक उनका परिनियोजन किया गया है अपितु उन अन्य बिन्दुओं तक भी होना चाहिये जहां तक किये जाने वाले निवेश के प्रभाव पड़ते हैं। दूसरी शब्दों में निवेश के निर्णयों को सामाजिक मूल्य-लाभ विश्लेषण की विधि के अनुप्रयोग से न्यायसंगत सिद्ध करने की आवश्यकता है। तीसरी बात, पूंजी निवेश के उद्देश्य प्रायः वित्तीय एवं अवित्तीय कारणों का सम्मिलित रूप होता है।

लेखा परीक्षण के परिणाम
(Results of Audit)

भारतीय लेखा एवं परीक्षण विभाग द्वारा किये गये लेखा परीक्षण घटना घटने में जांच के रूप में होता है। कुछ विषयों में कुछ धनराशियों का भुगतान तभी किया जाता है जब मांगे लेखा परीक्षक द्वारा जांच कर पारित कर दी जाती है, परन्तु ऐसे भुगतान सरकार के पूरे खर्च (व्यय) की उपेक्षणीय प्रतिशत के रूप में होते हैं। क्योंकि लेखा परीक्षण घटना घटने के बाद किया जाता है। इसलिये अधिक भुगतान अथवा वित्तीय व्यवस्था एवं नियमों की उपेक्षा को रोका नहीं जा सकता। यदि सौदा करते समय कार्यवाहक अधिकारी कोई अनियमितता अथवा औचित्य के विपरीत कुछ करते हैं तो भी लेखा परीक्षक उनको ऐसा करने से नहीं रोक सकता। परन्तु लेखा परीक्षण की प्रभावशीलता लेखा परीक्षक के उस अधिकार पर निर्भर करती है जिसके अनुसार वह लेखा परीक्षण के परिणामों की रिपोर्ट उचित अधिकारियों को प्रस्तुत कर सकता है, चाहे वे अधिकारी विभागीय हों, स्वयं सरकार हो अथवा PAC द्वारा संसद हो। इन रिपोर्टों के आधार पर यह संस्थाएं अनियमितताओं तथा औचित्यों के उल्लंघन का सुधार कर सकती हैं।

लेखा परीक्षण के प्रमाणों की सूचना लेखा परीक्षक द्वारा संबंधित अधिकारियों को शीघ्रतम देने की आवश्यकता होती है। तब लेखा परीक्षकों द्वारा की गई आपत्तियों का समाधान करना इन प्रशासनिक अधिकारियों का दायित्व बन जाता है। प्रशासनिक अधिकारियों का यह भी दायित्व बन जाता है कि वे उस धनराशि को वापस लेने का प्रयास करें जिसका भुगतान अनुचित था। लेखा परीक्षण अधिकारी उस समय तक अपने द्वारा की गई आपत्तियों का मूल्यांकन करते रहते हैं जब तक कि प्रशासनिक अधिकारी विश्वसनीय रूप से उनका समाधान नहीं कर लेते। अन्ततः एक वर्ष के हिसाब-किताब के पूरा हो जाने पर लेखा परीक्षण के परिणामों की रिपोर्ट संबंधित सरकारों तथा विधान मंडलों को लेखा परीक्षण में रिपोर्ट के रूप में दे दी जाती है।

यद्यपि लेखा परीक्षण रिपोर्टें घटनाओं के घटने के पश्चात् प्रस्तुत की जाती हैं, फिर भी ये अनेक उद्देश्यों की पूर्ति करती हैं। यह रिपोर्टें प्रशासन/प्रबंधकों को यह निश्चित करने में सहायक होती हैं कि भविष्य में यह अनियमितताएं दोहराई न जाएं। दोष भरी परियोजनाओं को न विचारने में ये परियोजना क्रिया में सहायता करती है। चल रही परियोजनाओं के बीच में ही सुधार कर लेने के संकेत देती हैं। इन रिपोर्टों के आधार पर ही प्रशासनिक अधिकारी उन कर्मचारियों के खिलाफ उचित अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकते हैं जिनकी अवहेलना/लापरवाही के कारण सरकारी कोष को क्षय पहुंचा हो। ऐसी कार्यवाही प्रतिरोधक का काम करती है। तथापि यह रिपोर्ट सामायिक होनी चाहिये तथा सभी असफलताओं, त्रुटियों अथवा हीनताओं को शीघ्र से शीघ्र सामने लोने में सक्षम होनी चाहिए ताकि प्रशासन तुरन्त इनको सुधारने के उपाय कर सके।

नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक द्वारा लेखा परीक्षण की रिपोर्टों की प्रस्तुति की प्रक्रिया संविधान

में निर्धारित है। नियंत्रक एवं महालेखा निरीक्षक की संघीय लेखा संबंधी रिपोर्टें राष्ट्रपति को तथा राज्यों के लेखा संबंधी रिपोर्टें राज्यपाल को दी जाती हैं। इस समय तीन विभिन्न प्रकार की रिपोर्टें दी जाती हैं। (i) विनियोजित लेखा पर लेखा परीक्षण रिपोर्ट, (ii) वित्त लेखा पर रिपोर्ट, तथा (iii) संघीय तथा राज्य सरकारों द्वारा राजस्व वसूली तथा वाणिज्य एवं सार्वजनिक संस्थानों के बारे में रिपोर्ट। इन रिपोर्टों की प्रस्तुति के साथ ही नियंत्रक एवं महालेख परीक्षक का दायित्व समाप्त हो जाता है। यह रिपोर्टें मिलने पर राष्ट्रपति एवं राज्यपाल इनको क्रमशः संसद एवं राज्य के विधान मंडलों के पास भिजवाने का प्रबंध करते हैं। वास्तविक स्थिति यह है कि विभिन्न सरकारों के बारे में लेखा परीक्षण रिपोर्ट राष्ट्रपति की ओर से वित्त मंत्रालय द्वारा स्वीकार की जाती है। वित्त मंत्री इन रिपोर्टों को दोनों सदनों में प्रस्तुत करता है। राज्य की लेखा परीक्षण रिपोर्टों के बारे में भी प्रायः सही प्रक्रिया अपनाई जाती है।

संसद एवं राज्य विधान मंडल को धन की आपूर्त्ति को प्रभावशाली बनाये रखने के लिये आवश्यक है कि संसद एवं राज्य विधान मंडल अपने आप विश्वस्त कर लें कि धन उन्हीं उद्देश्यों के लिये खर्च किया गया है जिनके लिये इसकी अनुमति दी गई थी। वे यह भी सुनिश्चित कर लें कि व्यय उस सीमा के अन्दर है जिसको स्वीकृत किया गया था। इनका विस्त त उल्लेख नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की संघीय एवं राज्य सरकारों के बारे में दी गई लेखा एवं लेखा परीक्षण रिपोर्टों में मिलता है। व्यापक तथा तकनीकी प्रकृति के होने के कारण संसद तथा राज्य विधान मंडलों के लिये उनका विस्तारपूर्वक अध्ययन करना असंभव है। इन रिपोर्टों के बारे में उचित अध्ययन/निरीक्षण के आवश्यक कदम संसद नहीं जुटा पाती। इसलिये संसद (लोक सभा) तथा राज्य विधान सभाओं ने कमेटी का गठन किया है जिसको लोक लेखा समिति (Committee on Pubic Account) कहते हैं। लेखे का (विनियोजन एवं वित्त) तथा इनसे संबंधित लेखा परीक्षण के विस्तारपूर्वक अध्ययन का कार्यभार इस कमेटी को सौंपा गया है। यह सुनिश्चित करना कि सरकार ने उस धन का उपयोग जिसका अनुमोदन संसद ने किया था, मांग की परिधि के अन्दर ही खर्च किया गया है या नहीं। लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) का यह एक महत्वपूर्ण कार्य है। इसका अर्थ यह है कि अनुदान से संबंधित जो खर्च दिखाया गया है वह अनुदान राशि से अधिक नहीं होना चाहिए तथा अनुदान की राशि केवल उन्हीं उद्देश्यों पर खर्च की जानी चाहिए जो विस्त त मांगों में बताये गये हैं। तथापि कमेटी का कार्य व्यय की औपचारिकता को लांघता हुआ उसकी "बुद्धिमता, विश्वसनीयता तथा मितव्ययिता" तक फैला हुआ है। जब कोई प्रमाणित लापरवाही का उदाहरण जिसके कारण कोई क्षय अथवा अपव्यय हुआ हो, एवं जब वह कमेटी के ध्यान में लाया जाता है तो वह संबंधित मंत्रालय विभाग से यह बताने को कहती है कि उसने ऐसी चीजें दोबारा न होने देने के लिये क्या उपाय किये हैं। ऐसी परिस्थितियों में कमेटी अपना मत निंदा के रूप में रिकार्ड कर सकती है अथवा अपव्यय एवं संबंधित विभाग एवं मंत्रालय के उचित नियंत्रण के अभाव की भर्त्सना कर सकती है। व्यापक अर्थ में कमेटी का नीति संबंधी प्रश्नों से कोई सरोकार नहीं होता है।

लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) कुशल रूप से कार्य कर सके, यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसे नियंत्रक एवं महालेखा निरीक्षक तथा दूसरे अधिकारियों की पूरी सहायता मिले। मौलिक सामग्री उपलब्ध कराने के अतिरिक्त लेखा परीक्षण लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) की विभिन्न प्रकार से सहायता करता है। यह कमेटी के सदस्यों को ऐसे परिपत्र प्रस्तुत करता है जिनमें उन अनियमितताओं एवं अशुद्धि के महत्व का वर्णन होता है जिन पर लेखा परीक्षण रिपोर्ट में टिप्पणी की गई है। इसके अतिरिक्त लेखा परीक्षक कमेटी

के सदस्यों को अलिखित रूप से विषय के सारे पहलुओं का संक्षिप्त परिचय भी देता है ताकि वे मौखिक निरीक्षण के समय विभाग के गवाहों से स्पष्टीकरण एवं अतिरिक्त सूचना प्राप्त कर सकें। लेखा परीक्षक मौखिक एवं लिखित प्रमाणों की जांच के पश्चात् रिपोर्ट तैयार करने में भी कमेटी की सहायता करते हैं। वे सरकार द्वारा मान ली गयी सिफारिशों के कार्यान्वयन पर द ष्टि रखने में भी कमेटी की सहायता करते हैं। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की लेखा परीक्षण रिपोर्टों पर आधारित अपनी रिपोर्ट संसद/राज्य की लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) द्वारा मंत्रालयों/विभागों को कार्यान्वयन के लिये भेजी जाती है। मंत्रालयों के लिये यह आवश्यक होता है कि इन सिफारिशों के परिपालन के बारे में अपनी रिपोर्ट छः महीने के अन्दर कमेटी को दे दें। सरकार प्रायः कमेटी की सिफारिशों को मान लेती है। ऐसे विषयों में जहां सरकार की यह सिफारिशें मान्य नहीं होती वहां सरकार को सिफारिशें न मानने के कारण कमेटी को बताने पड़ते हैं।

सारांश
(Conclusion)

लेखा परीक्षण हिसाब-किताब के रिकार्ड की ऐसी जांच-पड़ताल है जिसका अभिप्राय यह सुनिश्चित करना है कि यह रिकार्ड उन सौदों को जिनसे मंतव्य संबंधित है पूर्णतया एवं सत्य रूप से प्रतिबिंबित करते हैं। इसका उद्देश्य यह देखना है कि व्यय उचित अधिकारियों की स्वीकृति से किया गया है। तथा उन्हीं विषयों पर किया गया है जिनके लिये स्वीकृति प्रदान की गयी थी तथा व्यय की प्रमाण परचियां उपलब्ध हैं। लेखा परीक्षण लोकतंत्र के चार स्तम्भों में से एक है। संसद का कार्यपालक पर आधिपत्य सुनिश्चित करने के लिये लेखा परीक्षण एक प्रभावशाली उपकरण है। यह प्रशासन का भी एक मूल्यवान साथी है।.

आरम्भ में लेखा परीक्षण के उत्कर्ष की क्रिया धीरे-धीरे हुई है तथा सरकार के दायित्वों में होने वाली व द्धि से मेल खाती है। प्रारंभ में लेखा परीक्षण मुख्यतया व्यय अभिमुखी था। धीरे-धीरे आय वसूली के लेखा परीक्षण का कार्य भी इसकी परिधि में ले लिया गया। सार्वजनिक संस्थानों की संख्या में व द्धि के साथ-साथ व्यापारिक लेखा-परीक्षण का भी जन्म हुआ। आधुनिक काल में लेखा परीक्षण ने संस्थानों के निष्पादन, गतिविधियों एवं परियोजनाओं के मूल्यांकन का कार्य भी अपने हाथों में ले लिया है। भारत में संघ, राज्यों एवं विधान मंडल वाले केन्द्र शासित प्रदेशों के लेखे के परीक्षण का दायित्व नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक करता है। वह नियमितता लेखा परीक्षण, आय वसूली लेखा परीक्षण, व्यापारिक लेखा परीक्षण निष्पादन/अनुष्ठान लेखा परीक्षण इत्यादि कार्य करता है। संविधान में कार्यपालक से नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए पर्याप्त सुरक्षा के उपायों का प्रावधान किया गया है। उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जाती है परन्तु केवल संसद ही उसे उसके पद से हटा सकती है। नियुक्ति के पश्चात् उसकी सेवा अवधि तथा सेवा शर्तों में कोई ऐसा परिवर्तन नहीं किया जा सकता जिससे उसका अहित होता हो। सेवा निव त्ति एवं पदच्युति के पश्चात् वह केन्द्र अथवा राज्य सरकार में कोई पदभार ग्रहण नहीं कर सकता। उसके वेतन, भत्ते, पेंशन तथा उसके स्थायी अमले के खर्चे का भुगतान भारत की संचित निधि (Consolidated Fund of India) से किया जाता है तथा संसद द्वारा इसको पारित करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

लेखा परीक्षा रिपोर्ट लेखा परीक्षण कार्य का अन्तिम गंतव्य स्थान है। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक

तीन रिपोर्टें पेश करता है। यह है—विनियोजन लेखा पर परीक्षण रिपोर्ट, वित्तीय लेखा पर परीक्षण रिपोर्ट, व्यापारिक एवं सार्वजनिक प्रतिष्ठानों पर लेखा परीक्षण रिपोर्ट तथा केन्द्र एवं राज्यों के राजस्व वसूली पर रिपोर्ट। यह रिपोर्ट राष्ट्रपति/राज्यपाल तथा विधान मंडल वाले केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रशासकों को दी जाती है जो इन रिपोर्टों को विचारार्थ क्रमशः संसद एवं राज्य विधान मंडलों में प्रस्तुत करने का प्रबंध करते हैं। लेखा परीक्षण रिपोर्टों की जांच लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) द्वारा की जाती है। सामग्री उपलब्ध कराने के अतिरिक्त नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक लेखा परीक्षण अनुच्छेदों पर आधारित स्मरण पत्रों की रूपरेखा तैयार करने में समिति की सहायता करता है जिसके आधार पर समिति के सदस्य मौखिक जांच कर सकते हैं। नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक रिपोर्ट तैयार करने में भी समिति की सहायता करता है। वास्तविक रूप में नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक लोक लेखा समिति का "मित्र, दार्शनिक एवं मार्गदर्शक" है। लोक लेखा समिति (Public Accounts Committee) लेखा परीक्षण रिपोर्ट के निष्कर्षों पर आधारित अपनी रिपोर्ट स्वीकृति के लिये मंत्रालयों को भेजती है। समिति की अधिकांश सिफारिशें सरकार द्वारा स्वीकार कर ली जाती हैं। यदि कुछ विषयों पर सरकार को समिति की सिफारिशें मान्य नहीं होती हैं तो समिति पुनः इस पर विचार करती है तथा संसद को कार्यवाही रिपोर्ट (Action Taken Report) प्रस्तुत करती है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि लेखा परीक्षण कोई न्यायिक जांच नहीं है तथा इसका लक्ष्य दोष निकालना नहीं होता है। इसका उद्देश्य तो प्रशासन को नियमों एवं व्यवस्था में पायी जाने वाली कमियों, अनियमितताओं तथा त्रुटियों से अवगत कराना है और जहां तक संभव हो योजनाओं एवं परियोजनाओं को अधिक तत्परता, अधिक दक्षता तथा अधिक किफायत से पूरा करने के उपाय सुझाना है।

अध्याय - 18

कर प्रशासन

(Taxation Administration)

प्राचीन काल में करों का राजकीय व्यवस्था में कोई स्थान नहीं था तथा सन् 1500 तक इसके बारे में सोचा भी नहीं गया था। 1500 के बाद ही करों से आय प्राप्त करने की पहल की गयी। कर मुख्यतया धन एकत्र करने के उद्देश्य से लगाये जाते थे। राज्य की आय के स्त्रोतों में करों का प्रमुख स्थान होता है। आधुनिक युग में 'कर' सार्वजनिक आय का एक महत्वपूर्ण स्त्रोत है। सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा वसूल किया जाने वाला अनिवार्य भुगतान कर कहलाता है। कल्याणकारी कार्यों को पूरा करने तथा आर्थिक विकास हेतु साधन एकत्रित करने हेतु सरकार करारोपण का सहारा लेती है।

सरकार की समस्त क्रियाओं का आधार उसकी आय होती है, जिसका राजस्व में महत्वपूर्ण स्थान है। सरकार के कर्त्तव्यों में व द्धि होने से सार्वजनिक व्यय की मात्रा बढ़ती जाती है और उसे पूरा करने के लिए जनता पर कर लगाये जाते हैं जिसे जनता को सहन करना ही होता है। वर्तमान समय में प्रशुल्क नीति की सहायता से सरकार देश की आर्थिक समस्याओं को दूर करने के प्रयास कर रही हैं। सार्वजनिक आय सम्बन्धी नीतियों का प्रयोग बचत, विनियोग एवं उत्पादन को बढ़ाने के लिए किया जाता है। विकसित एवं अविकसित राष्ट्रों में आर्थिक स्थिरता लाने के लिये आय सम्बन्धी नीति का प्रयोग किया जाता है। एक अच्छी कर प्रणाली में विभिन्न करों को इस प्रकार से समायोजित किया जाता है कि उनका सामूहिक प्रभाव समाज पर अच्छा पड़े। 'कर' सार्वजनिक आय का एक महत्त्वपूर्ण स्त्रोत है। 'कर' मुद्रा के रूप में एक अनिवार्य अंशदान है, जो नागरिकों के सामान्य हित एवं कल्याण के लिए सरकार द्वारा नागरिकों से वसूल किया जाता है। प्रो. सेलिगमैन के अनुसार "कर व्यक्तियों द्वारा सरकार को दिया गया वह अनिवार्य भुगतान है, जो सामान्य लाभ के कार्यों हेतु लिया जाता है जिसका मिलने वाला विशेष लाभ से कोई सम्बन्ध नहीं होता है।"

कर के उद्देश्य
(Objective of Taxation)

करारोपण के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :

(1) **आय प्राप्त करना (To get Income) :—** करारोपण का सबसे प्रमुख तथा प्राचीनतम उद्देश्य आय प्राप्त करना है। राज्य को विभिन्न कार्यों को पूरा करने के लिए कर लगाने पड़ते हैं और इसलिये राज्य को कर लगाते समय यह देखना होता है कि इस कर से अधिक आय प्राप्त हो सकती है या नहीं। जिन करों से राज्य सरकार अधिक आय प्राप्त नहीं कर पाती, उनको समाप्त कर दिया जाता है।

(2) **उपभोग पर रोक लगाना (To Restrict on Consumption) :—** कर का उद्देश्य यह भी होता है कि कुछ वस्तुओं के उपभोग पर रोक लगाई जा सके। समाज में कुछ ऐसी वस्तुओं का उपभोग होता है जिससे नैतिक पतन होने लगता है तथा लोगों का स्वास्थ्य गिर जाता है और स्वास्थ्य के गिरने पर कार्य करने की क्षमता कम हो जाती है। उपभोक्ता अपनी आय का अधिकांश भाग इन मादक पदार्थों पर व्यय कर देता है और शेष आय इतनी रह जाती है कि जिससे अनिवार्य वस्तुओं तक का उपभोग करना कठिन हो जाता है। अतः मादक पदार्थों का उपभोग केवल उपभोक्ता के लिये हानिकारक नहीं होता, बल्कि देश के लिये भी वह हानिकारक होता है क्योंकि कार्य करने की क्षमता के कम होने से देश का उत्पादन घट जाता है। इन वस्तुओं के उपभोग को रोकने के लिये सरकार कर की सहायता लेती है।

(3) **समाज में धन की असमानता कम करना (To Minimise the Unequality of Wealth in Society) :—** आर्थिक असमानता देश की शत्रु होती है। एक लोक हितकारी राज्य (Welfare State) की स्थापना तभी हो सकती है जबकि देश में आर्थिक असमानता कम हो तथा धन का समान वितरण हो। इस असमानता को कर की सहायता से दूर किया जा सकता है। सरकार धनी वर्ग पर भी भारी मात्रा में प्रत्यक्ष कर (Direct Tax) लगाकर उनसे भारी मात्रा में धन खींच लेती है। जिससे वे अधिक धनी नहीं होने पाते। इन करों से जो आय प्राप्त होती है, उसे निर्धन वर्ग के हित पर व्यय किया जाता है जिससे निर्धनों का रहन-सहन का स्तर ऊंचा हो जाता है। इससे धनी और निर्धन के बीच असमानता की खाई कम होने लगती है।

(4) **आयात-निर्यात पर रोक लगाना (To Restrict on Import and Export) :—** कर लगाने का उद्देश्य कभी-कभी आयात-निर्यात पर रोक लगाने का भी होता है। जब सरकार यह समझती है कि वस्तुओं का उत्पादन देश में कम हो रहा है और वह देश के लिये पर्याप्त नहीं है तो सरकार उस पर भारी निर्यात कर (Export Duty) लगा देती है, जिससे विदेशी बाजार में वस्तु की कीमत बढ़ जाती है और विदेशी उपभोक्ता उसे खरीदना बन्द कर देते हैं जिससे उस वस्तु का निर्यात कम हो जाता है। इसी प्रकार यदि सरकार अपने देश में किसी उद्योग का विकास करना चाहती है तो वह वस्तु के आयात को कम करने के लिये भारी आयात कर (Import Duty) लगायेगी, जिससे उस विदेशी वस्तु की कीमत देशी बाजार में अधिक हो जायेगी और लोग अपने देश की बनी वस्तुओं का उपभोग करेंगे। इस प्रकार आयात-निर्यात पर रोक लगाने के लिये भी सरकार कर का सहारा लेती है।

(5) **राष्ट्रीय आय में व द्धि (To Increase the National Income) :—** करों के द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय आय में व द्धि हो जाती है तथा कर लगाने से इसका अच्छा प्रभाव उत्पादन व आय प्राप्त करने पर भी देखा जा सकता है।

लर्नर के अनुसार कराधान का मुख्य उद्देश्य व्यक्तियों की क्रय शक्ति को कम करना है। इसलिए सरकार मुद्रा-स्फीतिक परिस्थितियों में कराधान का प्रयोग करती है। इस प्रकार एक देश में कर प्रशासन को दो उद्देश्यों को पूरा करना पड़ता है प्रथम राष्ट्र की कर-संभाव्यता का दोहन करके राष्ट्रीय तंत्र को चलाने के लिए आगम एकत्र करना और द्वितीय राजकोषीय प्रभावों के द्वारा समुदाय के सामाजिक आर्थिक ढांचें में ऐच्छिक परिवर्तन लाना और कीमतों, उपभोग, रोजगार तथा आय-सम्पत्ति के वितरण को ऐच्छिक स्तर पर बनाए रखना।

एक देश की कर व्यवस्था उस देश की सरकार के सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक उद्देश्यों को प्रतिबिम्बित करती है। सरकार के लिए पर्याप्त मात्रा में साधन एकत्र करने के अलावा कर नीति के उद्देश्य स्फीति पर नियन्त्रण, आय के पुन-र्वितरण को प्रभावित करना, आय व सम्पत्ति के वितरण की असमानताओं को कम करना, अनैच्छिक उपभोग अथवा उत्पादन पर नियंत्रण करना आदि हैं। कर नीति के इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सक्षम कर प्रशासन सरकार के हाथों में एक बहुत बड़ा अस्त्र है।

इसके अतिरिक्त, प्रभावी व सक्षम कर प्रशासन की सहायता से सरकार नीतियों के निर्माता उद्देश्यों को पूरी करने के लिए बड़े पैमाने पर क्रियाओं और उनके विभिन्न संयोगों को अपना सकते हैं।

भारत में कर प्रशासन की मशीनरी
(Machinery for Tax Administration in India)

केन्द्रीय करों के प्रशासन की जिम्मेदारी वित्त मंत्रालय, भारत सरकार की है। कर प्रशासन की दो शीर्ष संस्थायें केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड और केन्द्रीय उत्पाद शुल्क बोर्ड है। केन्द्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड में एक अध्यक्ष और तीन कार्यात्मक सदस्य (Functional Members) होते हैं। यह सभी सामूहिक रूप से प्रत्यक्ष कराधान से संबंधित नीतियों के निर्माण के लिए उत्तरदायी होते हैं। केन्द्रीय प्रत्यक्ष करों में निजी वैयक्तिक कर, निगम कर, सम्पत्ति कर, उपहार कर और पूंजीगत लाभ करों को शामिल किया जाता है। यह बोर्ड सम्पदा शुल्क के प्रशासन की भी देख-रेख करता है। बोर्ड स्वायत्त संस्था नहीं होती इसलिए बोर्ड के कार्यों में सरकार का हस्तक्षेप व प्रभाव इसकी एक सामान्य विशेषता है।

प्रत्यक्ष करों में निजी आय कर और निगम कर, कर राजस्व के प्रमुख स्त्रोत हैं। निजी आय प्रशासन में आयकर अधिकारी का महत्वपूर्ण पद है। प्रत्येक आयकर अधिकारी के अधिकार क्षेत्र में एक निश्चित इलाका अथवा आय अर्जित करने वाला वर्ग होता है। आय कर अधिकारी के कार्य की जांच और नियंत्रण का कार्य सहायक आयुक्त (Assistant Commissioner) करता है। प्रथम स्तर पर अपील की सुनवाई सहायक आयुक्त अपील (Appellate Assistant Commissioner) द्वारा की जाती है। आयकर अधिकार, सहायक आयुक्त (निरीक्षण) और सहायक कमीशनर, अपील सभी आय कर आयुक्त के अन्तर्गत कार्य करते हैं। 1969-70 में एक नये कैडर अतिरिक्त आयकर आयुक्त (Additional Commissioner of Income Tax) का स जन किया गया। आयकर आयुक्त पद के समकक्ष जांच निदेशक (निरीक्षण), अखिल भारतीय अपील, सम्पदा शुल्क नियंत्रक, जांच निदेशक (आय कर अंकेक्षण), जांच निदेशक (अनुसंधान, सांख्यिकी और प्रकाशन) और CPM निदेशक के अलावा तीन अन्य निदेशक हैं जो प्रत्यक्ष कर प्रशासन के समूचे तंत्र का पर्यवेक्षण और नियंत्रण करते हैं।

1972 में जांच निदेशालय (निरीक्षण) में एक विशिष्ट कक्ष का स जन किया गया। यह भारत के बड़े व्यवसायिक घरानों के कर-मूल्यांकन पर नजर रखता है। 'विदेशी कर प्रभाग' के नाम से एक अलग प्रभाग को कायम किया गया। बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के सबसे वरिष्ठ आय कर आयुक्तों को उनके क्षेत्रों में जांच निदेशक के तौर पर काला धन निकालने के लिए नियुक्त किया जाता है। इन जांच निदेशकों को काफी अधिकार और शक्तियां प्राप्त होती हैं।

संघ द्वारा लगाये गये प्रमुख अप्रत्यक्ष करों में सीमा और उत्पाद शुल्क हैं। अप्रत्यक्ष कर का केन्द्रीय बोर्ड अप्रत्यक्ष करों से सम्बन्धित नीतियों को संचालित करने में सरकार को सलाह देने वाली

सबसे शीर्ष संस्था है। यह संस्था भारत सरकार की अप्रत्यक्ष करों के प्रशासन और निर्देशित करने में भी सहायक होती है। इसमें एक अध्यक्ष और तीन सदस्य होते हैं। विशिष्ट ड्यूटी पर कुछ अधिकारी और निदेशक इसके अन्तर्गत कार्य करते हैं।

बोर्ड में एक प्रशासनिक और अपील खंड होता है। अप्रत्यक्ष कर प्रशासन का सीमा व उत्पादन शुल्क सम्बन्धी सारा दायित्व संग्राहकों (Collectors) पर होता है। इन अधिकारियों की एक खंड से दूसरे खंड में बदली होती रहती है।

कर प्रशासन की मुख्य विशेषतायें

(Main Features of Tax Administration)

भारत को ब्रिटिश साम्राज्य से कर प्रशासन विरासत में प्राप्त हुआ। इस कर प्रशासन को मिलीटरी-नुमा प्रशासन चलाने अथवा एक नीति को क्रियान्वित करने के लिए कायम किया गया ताकि ज्यादा से ज्यादा वसूली की जा सके। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इसी प्रशासन का उपयोग प्रजातांत्रिक कल्याणकारी राजस्व जिसके कुछ विशिष्ट आर्थिक-सामाजिक उद्देश्य थे, की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया गया।

कर प्रशासन की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं –

1. **जनता के विश्वास का अभाव (Lack of Public Confidence) :** हमें यह समझना चाहिए कि कोई भी प्रशासन शून्य (vacuum) में कार्य नहीं करता। प्रत्येक चरण पर इसका सम्बन्ध जनता के साथ होता है और चूंकि एक रूप में अथवा अन्य रूप में एक कर या करों का प्रभाव लगभग प्रत्येक व्यक्ति तक अवश्य पहुंचता है। इसलिए कर प्रशासन को समूचे देश के साथ सम्बन्ध बनाना पड़ता है। कर अधिकारियों का आम जनता के प्रति जो द ष्टिकोण होता है उसके कारण आम जनता का कर प्रशासन में विश्वास नहीं होता। करदाताओं के साथ समझदारी व नम्रता के साथ पेश आना चाहिए। प्रजातांत्रिक देशों में यह महसूस किया गया है कि करों का संग्रह अविवेकपूर्ण और असुविधाजनक होता है। हाल ही में कर अधिकारियों के द ष्टिकोण व जो कुछ बदलाव आया है उसमें अभी और परिवर्तन की जरूरत है।

   सामान्य अर्थव्यवस्था पर कर कानूनों और नीति का प्रभाव कर प्रशासन द्वारा की गयी व्याख्या (Interpretation) पर निर्भर करता है यदि कर प्रशासन इतना कमजोर अथवा भ्रष्ट है कि कर चोरी की दर काफी अधिक है तब नीतिगत निर्णयों का क्रियान्वयन व्यर्थ हो जाता है और इसके परिणामस्वरूप समाज का सामाजिक-आर्थिक ढांचा विकृत हो जाता है।

   एक अच्छी या श्रेष्ठ कर प्रणाली के लिए निम्न मूल दशाओं का होना आवश्यक है :

   (i) कर कानून सरल और स्पष्ट भाषा में होना चाहिए जिससे प्रशासन सुचारू रूप से कार्य कर सके और करदाता भी आसानी से समझ सके।

   (ii) अतार्किक और अविवेकी करों से जहां तक संभव हो, बचा जाना चाहिए।

   (iii) निजी और निगम आय कर का आधार व्यापक होना चाहिए जिससे करों की दरों को बढ़ाये बिना पर्याप्त मात्रा में राजस्व प्राप्त हो सके। कर की दरें कम होने पर करों की चोरी की संभावना थी कम होगी।

(iv) जिस वस्तु अथवा सेवा पर कर लगाया जा रहा है जहां तक संभव हो, उसके बारे में पूरी और सही सूचना प्राप्त की जानी चाहिए।

कर प्रशासन के कर्मचारियों को इस कार्य के लिए पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित और प्रबंध की आधुनिक तकनीकों से सुसज्जित करना चाहिए। कर प्रशासन प्रवैगिक होना चाहिए जो समाज के आर्थिक और सामाजिक ढांचे के अनुसार परिवर्तित हो सके तथा जनता का विश्वास जीत सके।

2. **कर कानूनों में कमी के फलस्वरूप करों की चोरी (Loop-holes in Taxes Laws Resulting in Tax Evasion) :** जनता को यह विश्वास दिलाया जाना चाहिए कि कर उचित ही लगाए हैं और प्रत्येक व्यक्ति अपने भाग का भुगतान करता है। यदि आम जनता में यह भावना घर कर जाती है कि कर व्यवस्था कर चोरी और कमियों का पुलिंदा है तो इससे ईमानदार कर दाता नैतिक रूप से हतोत्साहित हो जाएगा। अब कर चोरी लगातार बड़े पैमाने पर हो तो यह कर दाता, अधिकारी, और राजनीतिज्ञों के गठबंधन के कारण ही संभव होती है। कर चोरी काली मुद्रा के स जन का एक बहुत बड़ा कारण है।

3. **जटिल कर व्यवस्था और कानून (Complex Tax Laws and System) :** भारत में साधारणतया कर कानून जटिल और उलझनपूर्ण हैं। यह कानून संशोधनों और पुनः संशोधनों की उपज है। औपचारिक ढांचे में यह काफी परिनिष्ठित और सुरक्षित दिखायी पड़ते हैं लेकिन वास्तविकता में यह कमियों और अस्पष्टताओं से भरे पड़े हैं जिसमें मनमर्जीपन, अक्षमता और भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है।

4. **कर संग्रहण में बहु-सत्ता (Multiple-Authorities for Tax Collection) :** केन्द्र और राज्यों द्वारा लगाए गए विभिन्न करों का संग्रहण अलग-अलग सत्ताधारियों द्वारा किया जाता है। राज्य में भूमि राजस्व, शहरी भूमि पर कर उसे प्रत्यक्ष कर और बिक्री कर व राज्य उत्पाद शुल्क जैसे अप्रत्यक्ष कर होते हैं। इन करों का प्रशासन राज्य के विभिन्न कर सत्ताधारियों के हाथों में होता है। संघ सरकार भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष करों का संग्रहण विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाओं के माध्यम से करती है। सही कर-आधार की जांच के लिए न तो इनमें आपस में कोई राय होती है और न ही तिरछी जांच (Cross-Checking) की जाती है। एक उत्पाद पर प्रारम्भ में उत्पादन शुल्क की, की गई चोरी आयकर, बिक्री कर आदि चोरी के लिए प्रेरित करती है। अतः कर प्रशासन की विभिन्न व्यवस्थाओं में समन्वय होना बहुत आवश्यक है ताकि करों की चोरी को रोका जा सके।

5. **कर प्रशासन के द्वारा कराधान में न्याय संभव नहीं (Justice in Taxation could not be achieved by the Tax Administration) :** भारतीय कराधान जांच आयोग ने इस पक्ष पर जोर देते हुए यह पाया है कि, "राज्य-नागरिकों के सम्बन्धों में करों के अलावा शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जहां यह इतना आवश्यक है कि न्याय केवल किया ही नहीं जाना चाहिए बल्कि न्याय होता हुआ दिखाई भी देना चाहिए।" इसलिए कर कानून स्पष्ट होने चाहिए तथा कर संग्रहण शीघ्रतापूर्वक किया जाना चाहिए। कर संग्रहण के कार्य में जो कर्मचारी कार्यरत हैं। उन्हें पूरी क्षमता के साथ धैर्य व चतुराई से अपने कार्य को अंजाम देना चाहिए।

भारतीय कर प्रशासन कर संग्रहण के कार्य को बहुत अच्छी प्रकार से पूरा करती है लेकिन यह उस स्तर से यह कार्य नहीं कर पायी जिसकी एक विकासशील समाजवादी अर्थव्यवस्था में आशा की जाती है।

6. **आदाताओं की संख्या में व द्धि (Growth in the Number of assesscees) :** भारत में कर आदाताओं (Assessees) की संख्या में भारी व द्धि हुई है जिसके कारण कर प्रशासनिक मशीनरी पर कार्य का बोझ और तनाव बढ़ गया है। कानूनों और प्रक्रियाओं की जटिलता तथा कार्य भार में बढ़ोत्तरी के कारण बकाया राशि में भारी व द्धि हुई है। 31 दिसम्बर, 1971 तक बकाया राशि की मात्रा बढ़कर 1009 करोड़ रुपए हो गयी। बकाया राशि का संचय भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है।

7. **संघीय उत्पाद शुल्क का प्रशासन (Union Excise Tax Administration) :** संघीय उत्पादन शुल्क का प्रशासन सीधा और प्रभावशाली है। यह व्यवस्था भी काफी व्यापक है। विनिर्माताओं को लाइसेंस जारी किया जाता है और उत्पाद शुल्क अधिकारी फैक्ट्री परिसर में ही कार्य करते हैं। इनको प्रवेश, तलाशी, पकड़ने व रोकने (Detention) संबंधी काफी अधिकार होते हैं। विनिर्माताओं पर अधिकारियों का पूर्ण नियंत्रण रहता है। कर का संग्रहण निकासी (Clearance) पर किया जाता है।

8. **बिक्री कर प्रशासन (Sales Tax Administration) :** भारत में बिक्री कर कानूनों में तीन प्रमुख कमियां हैं—प्रथम, कर कानून अस्प्ष्ट और काफी जटिल हैं जिसमें करों की चोरी आसानी से हो जाती है। द्वितीय, जांच (Assessment) के कार्य में काफी देरी हो जाती है जिससे ईमानदार कर दाता के विश्वास को ठेस पहुंचती है। तीसरे, जांच व निरीक्षण के कार्य में अधिकारियों द्वारा लापरवाही बरती जाती है।

कर प्रशासन लोक आर्थिक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण खंड है जिसके द्वारा राजकोषीय उपायों के माध्यम से सामाजिक-आर्थिक उद्देश्यों और ठोस वित्तीय शस्त्र की प्राप्ति की जाती है। इस खंड की दक्षता सरकारी प्रशासन की एक पूर्व दशा है। राष्ट्रीय आर्थिक-सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए सरकारी नीतियों और कार्यक्रमों की सफलता काफी कुछ कर प्रशासन की कुशलता पर निर्भर करते हैं। अतः समाजवादी विकासशील अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भारतीय कर प्रशासन पर ध्यान देने की आवश्यकता काफी अधिक है।

करों को विभिन्न व्यक्तियों पर पड़ने वाले प्रभावों के आधार पर दो भागों में बांटा जाता है — (i) प्रत्यक्ष रक एवं (ii) अप्रत्यक्ष कर। इन दोनों प्रकार के करों में अनतर समझने से पूर्व हमें इनके अर्थ को भली प्रकार समझ लेना चाहिए।

प्रत्यक्ष कर
(Direct Taxes)

प्रत्यक्ष कर वह है जो कि उन्हीं व्यक्तियों द्वारा भुगतान किए जाते हैं जिन पर कि ये लगाये जाते हैं। अर्थात् उनका भार किसी दूसरे व्यक्ति पर नहीं डाला जा सकता। प्रत्यक्ष करों का भार उसी व्यक्ति को अन्तिम रूप से वहन करना पड़ता है जिन पर इसे लगाया जाता है। ये कर प्रायः किसी व्यक्ति की आय और धन पर लगाया जाता है। भारत में आय-कर व धन-कर इसके अच्छे उदाहरण हैं। प्रो. मेहता के अनुसार—"प्रत्यक्ष कर वह कर है जो उसी व्यक्ति द्वारा पूर्ण रूप से दिया जाता है जिस पर कि वह लगाया जाता है।"

अप्रत्यक्ष कर
(Indirect Taxes)

प्रत्यक्ष कर के विपरीत अप्रत्यक्ष कर वे कर हैं जो कि जिन व्यक्तियों पर लगाया जाता है वे

यद्यपि सरकार को इसका भुगतान करने के लिए उत्तरदायी हैं लेकिन वे इस कर को किसी दूसरे व्यक्ति से वसूल कर सकते हैं अतः कर का भार दूसरे व्यक्ति को विवर्तित (Shift) किया जा सकता है। इस प्रकार वे कर लगाये किसी व्यक्ति पर जाते हैं जबकि इसका अन्तिम भार अन्य व्यक्तियों पर पड़ता है। इस प्रकार के कर प्रायः वस्तुओं पर उनके उत्पादन अथवा बिक्री के समय लगाये जाते हैं। भारत में उत्पादन कर, बिक्र कर, मनोरंजन कर आदि अप्रत्यक्ष कर के उदाहरण हैं। करदाता इन करों को वस्तुओं के मूल्य में जोड़कर उपभोक्ता से वसूल कर लेते हैं।

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों में अन्तर
(Difference Between Direct and Indirect Taxes)

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों में अन्तर का मुख्य आधार कर का दायित्व (Impact) एवं कर का भार (Incidence) है। प्रत्यक्ष कर में कर का दायित्व एवं भार एक ही व्यक्ति पर होता है अर्थात् ये जिस व्यक्ति पर लगाये जाते हैं उसी व्यक्ति द्वारा वास्तव में भुगतान भी किए जाते हैं। इनका विर्वतन संभव नहीं है। जबकि दूसरी ओर अप्रत्यक्ष करों में कर का दायित्व एवं कर का भार अलग-अलग व्यक्तियों पर होता है। जिस व्यक्ति पर कर का दायित्व डाला जाता है वास्तव में वह व्यक्ति उस कर को वस्तुओं के मूल्यों में जोड़कर वस्तु के क्रेता से वसूल कर लेता है और इस प्रकार उसका भार विवर्त (Shift) कर दिया जाता है और वह अन्तिम रूप से उसके द्वारा वहन नहीं किया जाता जिस पर यह डाला गया था। इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष कर व्यक्तियों पर लगाये जाते हैं जबकि अप्रत्यक्ष कर जैसे बिक्री कर उत्पादन कर आदि वस्तुओं पर लगाये जाते हैं।

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों के सापेक्षिक गुण-दोष
(Relative Merits and Demerits of Direct and Indirect Taxes)

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों का अर्थ समझ लेने के पश्चात् अब हम उनके सापेक्षिक गुण-दोषों पर विचार करेंगे।

प्रत्यक्ष करों के गुण
(Merits of Direct Taxes)

प्रत्यक्ष करों के निम्न मुख्य गुण हैं –

(1) **न्यायशील (Equitable) :** ये कर समानता एवं न्यायशीलता के आधार पर लगाये जाते हैं क्योंकि ये कर प्रत्येक वर्ग की भुगतान-क्षमता (Ability to Pay) के आधार पर लगाये जाते हैं। अतः इनका भार धनी वर्ग पर अधिक ओर निर्धन वर्ग पर कम होता है। एक निश्चित सीमा तक आय वाले व्यक्ति इन करों से मुक्त रखे जाते हैं।

(2) **मितव्ययी (Economical) :** ये कर मितव्ययी होते हैं क्योंकि इनको वसूल करने में अधिक व्यय नहीं करना पड़ता है। ये कर या तो स्रोत पर ही काट लिए जाते हैं या उस व्यक्ति द्वारा सीधे खजाने में जमा कर दिए जाते हैं जिन पर ये लगाये गये हैं।

(3) **निश्चितता (Certainty) :** इन करों में निश्चितता का गुण पाया जाता है। करदाता यह जानते हैं कि कर कितना, कब व किस दर पर भुगतान किया जाता है।

(4) **लोचदार (Elastic) :** प्रत्यक्ष कर लोचपूर्ण होते हैं। कर की दरों में थोड़ा सा परिवर्तन कर देने से आय में आसानी से व द्धि की जा सकती है। आर्थिक संकट के समय सरकार इन करों की दरों में व द्धि करती है।

(5) **सामाजिक चेतना (Civic Consciousness) :** प्रत्यक्ष कर सामाजिक चेतना को जाग त करते हैं। व्यक्ति जो कर देता है वह इस बात में भी दिलचस्पी लेता है कि सरकार कर द्वारा प्राप्त आय का प्रयोग किस प्रकार करती है। सरकार द्वारा उसका गलत प्रयोग करने पर वह उसके विरुद्ध आवाज उठाता है।

प्रत्यक्ष कर के दोष
(Demerits of Direct Taxes)

प्रत्यक्ष करों के मुख्य दोष अथवा सीमायें इस प्रकार हैं –

(1) **असुविधाजनक (Uncomfortable) :** प्रत्यक्ष कर करदाता के लिए असुविधाजनक एवं कष्टदायक होते हैं। कोई भी व्यक्ति खुशी से कर का भुगतान नहीं करता है। ये कर कष्टदायक होते हैं क्योंकि करदाता को अनेक खाते व हिसाब-किताब रखने पड़ते हैं व अनेक औपचारिकतायें पूरी करनी होती हैं। इसके अतिरिक्त ये कर एक साथ ही भारी मात्रा में भुगतान करने पड़ते हैं जबकि करदाता को आय धीरे-धीरे प्राप्त होती है।

(2) **कर चोरी (Tax-evasion Simpler) :** प्रत्यक्ष करों में चोरी की संभावना होती है। जिन व्यक्तियों की आय निश्चित नहीं होती वे अपने हिसाब-किताब गलत बनाकर कर से बच जाते हैं। भारत में काले धन की समस्या का मूल कारण यही है।

(3) **मनचाही कर-दर (Arbitrary Rates of Tax) :** प्रत्यक्ष करों की दर का निर्धारण सरकार की इच्छा पर निर्भर करता है। इसके लिए कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है।

(4) **सीमित क्षेत्र (Limited Scope) :** इन करों का क्षेत्र बहुत सीमित है। एक बहुत बड़ी संख्या में लोग इन करों के क्षेत्र में नहीं आते। इस कर का प्रभाव बहुत कम लोगों पर ही पड़ता है।

(5) **लोकप्रिय नहीं (Unpopular) :** इन करों का दायित्व एवं भार एक ही व्यक्ति पर होने के कारण इनका भार करदाता द्वारा अधिक महसूस किया जाता है। अतः वह कर को न देने का प्रयास करता है।

(6) **प्रशासनिक व्यय अधिक (More Administrative Cost) :** प्रत्यक्ष करों के लिए एक अलग से संगठन बनाना पड़ता है जोकि प्रत्येक करदाता को मिल सके व उनसे कर वसूल कर सके। इस प्रकार कर वसूली की लागत बहुत अधिक आती है तथा सरकार को इस स्रोत से शुद्ध आय (Net Revenue) कम होती है।

(7) **उत्पादन पर बुरा प्रभाव (Bad Effect on Production) :** प्रत्यक्ष करों का लोगों पर काम करने की इच्छा व बचत करने की इच्छा पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। लोग यह सोचते हैं कि वे जितना ज्यादा कमायेंगे उतना अधिक दर से उन्हें कर देना होगा। इसके अतिरिक्त कर बचाने के उद्देश्य से वह अपनी आय को कम दिखाता है लेकिन इस बची हुई आय का प्रयोग वह उत्पादन के लिए नहीं कर सकता। अतः उत्पादन व पूंजी निर्माण पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

अप्रत्यक्ष करों के गुण
(Merits of Indirect Taxes)

अप्रत्यक्ष करों के मुख्य गुण इस प्रकार हैं –

(1) **सुविधाजनक (Convenient) :** ये कर करदाता और सरकार दोनों के लिए ही सुविधाजनक हैं। करदाता इसका भुगतान वस्तु खरीदते समय उनके मूल्य के एक भाग के रूप में अदा कर देते हैं अतः उन्हें इनका भार महसूस नहीं होता है। इसके अतिरिक्त करदाता इन करों का भुगतान एक-साथ नहीं करता बल्कि जब भी वह वस्तुएं खरीदेगा केवल तभी उसका भुगतान किया जाएगा। सरकार के लिए भी इनकी वसूली सुविधाजनक है क्योंकि वह इनकी वसूली वस्तु के उत्पादकों एवं विक्रेताओं से आसानी से कर लेते हैं।

(2) **प्रत्येक व्यक्ति का योगदान (Contribution by Everyone) :** ये कर क्योंकि वस्तुओं पर लगाये जाते हैं और प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ क्रय करता ही है इसलिए वस्तुओं के क्रय करते समय वह कुछ न कुछ कर का भी भुगतान करता है। इस प्रकार प्रत्येक नागरिक का राजस्व में कुछ-न-कुछ योगदान रहता है।

(3) **कर बचाना संभव नहीं (Non Possibility of Evasion) :** अप्रत्यक्ष करों में कर बचना संभव नहीं है क्योंकि कर वस्तु के मूल्य का ही एक भाग होता है। अतः यदि कोई व्यक्ति वस्तु खरीदता है तो उसे कर देना ही पड़ता है।

(4) **लोचदार (Elastic) :** कुछ वस्तुएं इस प्रकार की होती हैं जिनकी मांग पर उनके मूल्य का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। सरकार ऐसी वस्तुओं की कर की दरों में थोड़ा सा संशोधन करने पर भी अधिक राजस्व प्राप्त कर लेती है।

(5) **सामाजिक कल्याण (Social Welfare) :** अप्रत्यक्ष कर सामाजिक कल्याण में व द्धि करते हैं। सरकार उन वस्तुओं पर अधिक कर लगाती है जो कि हानिकारक हैं और इस प्रकार उन वस्तुओं के मूल्य बढ़ाकर उनके उपभोग को नियंत्रित करती है। इसलिए सरकार शराब, अफीम, सिगरेट आदि पर भारी कर लगाती है। इसी प्रकार सरकार कुछ वस्तुओं के उपभोग में व द्धि करने के लिए करों को कम कर सकती है अथवा उनकों करों से मुक्त कर सकती है।

(6) **विस्त त आधार (Broad Basis) :** अप्रत्यक्ष कर किसी एक वस्तु पर नहीं लगाया जाता है। एक बड़ी संख्या में वस्तुओं पर कर लगाकर सरकार बड़ी मात्रा में राजस्व प्राप्त करती है। अनेक वस्तुओं पर कर लगने से किसी एक मद के क्रेता पर ही अधिक कर-भार नहीं पड़ता है।

(7) **न्यायशीलता (Equitable) :** अप्रत्यक्ष कर समानता एवं न्यायशीलता के आधार पर लगाये जाते हैं। ऐसी वस्तुओं पर जिनका प्रयोग केवल धनी वर्ग करता है, कर की दर अधिक होती है। इसके विपरीत कुछ आवश्यक वस्तुओं पर तथा उन वस्तुओं पर जिनका प्रयोग निम्न आय वर्ग करता है कर की दर बहुत कम होती है अथवा उन पर कोई कर नहीं लगाया जाता है। इस प्रकार ये न्यायशीलता व समानता के सिद्धान्त पर आधारित हैं।

अप्रत्यक्ष करों के दोष
(Demerits of Indirect Taxes)

अप्रत्यक्ष कर की प्रमुख सीमाएं इस प्रकार हैं –

(1) **न्यायपूर्ण नहीं (Inequitable) :** अप्रत्यक्ष कर इस कारण न्यायपूर्ण नहीं कहे जा सकते

क्योंकि वे उपभोक्ता वस्तुओं पर पर लगाये जाते हैं और सभी व्यक्तियों से जो भी उनको खरीदता है समान कर वसूल किया जाता है। इस प्रकार कर का भार धनी वर्ग की अपेक्षा गरीबों पर अधिक पड़ता है।

(2) **आर्थिक विषमता में सहायक (Promotes Economic Inequality) :** अप्रत्यक्ष करों से आर्थिक विषमता बढ़ती है। ये कर प्रायः आवश्यक वस्तुओं (लोचहीन मांग वाली) पर अधिक लगाये जाते हैं। एक निर्धन व्यक्ति अपनी आय का एक बड़ा भाग इन वस्तुओं पर खर्च करता है अतः उस पर इनका भार अधिक होता है। इस प्रकार समाज में आर्थिक विषमता बढ़ती है।

(3) **अमितव्ययी (Uneconomical) :** इस कर की वसूली पर आय का बड़ा भाग व्यय हो जाता है क्योंकि राज्य को इन करों की वसूली के लिए विभिन्न संगठन बनाने पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त इन करों की चोरी व्यापारियों एवं उपभोक्ताओं की सांठगांठ से बहुत अधिक होती है जिसका रोकने के लिए अनेक अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है। इस प्रकार ये कर अमितव्ययी हैं।

(4) **अनिश्चितता (Uncertainty) :** इन करों को लगाते अथवा व द्धि के समय सरकार इनसे प्राप्त राजस्व का ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगा सकती। इसका प्रमुख कारण यह है कि कर से वस्तुओं के मूल्य में व द्धि हो जाती है जिसके कारण इसकी मांग कम हो जाती है। कर व द्धि का वस्तु की मांग पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। अतः कर द्वारा प्राप्त राजस्व के बारे में अनिश्चितता बनी रहती है।

(5) **सामाजिक चेतना का अभाव (Lack of Civic Consciousness) :** अप्रत्यक्ष कर सामाजिक चेतना उत्पन्न नहीं करते। इसका प्रमुख कारण यह है कि कर वस्तु को क्रय करते समय ही उसके मूल्य के साथ अदा कर दिया जाता है जिसका उसे अधिक भार महसूस नहीं होता। अतः वह इस बात के लिए जागरूक नहीं रहता कि उस कर का प्रयोग सरकार द्वारा ठीक किया जा रहा है या नहीं।

(6) **बेईमानी को बढ़ावा (Encourage Dishonesty) :** अप्रत्यक्ष कर बेईमानी को बढ़ावा देते हैं क्योंकि – (i) दुकानदार वस्तुओं का मूल्य कर की राशि से अधिक बढ़ा देता है, (ii) पुराने कर मुक्त स्टॉक को भी वह टैक्स सहित बेचता है, (iii) दुकानदार साधारणतया विक्रय के लिए कोई कैशमीमों नहीं देता और न ही ग्राहक मांगता है, (iv) गलत हिसाब-किताब बनाकर प्रस्तुत किए जाते हैं।

दोनों ही कर आवश्यक
(Both One are Necessary)

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष करों के गुण-दोषों का विश्लेषण करने पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि दोनों में से कोई भी कर दोषमुक्त नहीं है। ये दोनों प्रकार के कर एक दूसरे के पूरक हैं। सरकार को एक विकासात्मक वित्त व्यवस्था के एक स्त्रोत के रूप में दोनों प्रकार के करों का उचित समावेश करना चाहिए जिससे एक ओर सरकार को अधिक कर मिल सके तथा दूसरी ओर समानता व न्यायशीलता के सिद्धान्त को बनाये रखते हुए उसका भार गरीब वर्ग पर कम-से-कम हो।

भारत में भी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के कर लगाये जाते हैं। आयकर, धनकर, निगम

कर आदि प्रत्यक्ष कर के उदाहरण हैं जबकि विक्रय-कर, उत्पाद-शुल्क, सीमा-शुल्क आदि अप्रत्यक्ष कर के उदाहरण हैं। सरकार इन दोनों प्रकार के करों के माध्यम से कर की वसूली करती है। लेकिन दोनों में उचित सामंजस्य का अभाव है। प्रत्यक्ष कर व अप्रत्यक्ष करों का कुल राजस्व में योगदान 1991-92 में क्रमशः 17 व 83 प्रतिशत था जो कि 2000-2001 में क्रमशः 36 व 64 प्रतिशत है। इस प्रकार भारत में अप्रत्यक्ष करों के योगदान में अत्यधिक व द्धि हुई है जोकि न्यायसंगत नहीं कही जा सकती। अप्रत्यक्ष करों का प्रभाव गरीब वर्ग पर अधिक पड़ता है जबकि प्रत्यक्ष करों का उत्पादन क्षमता व बचत पर कुप्रभाव पड़ता है। भारत में अप्रत्यक्ष करों का योगदान अधिक होने के कारण यह गरीब वर्ग के हित में नहीं है। इससे आर्थिक विषमता बढ़ती है।

कर प्रणाली की आलोचना
(Critcism of Tax System)

भारतीय संविधान एक अर्द्ध गण राज्य (Quasi federal) है जहां पर त्रि-स्तरीय सरकारें (Three-tier Government) कार्य करती हैं। यह सरकारें केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार और स्थानीय सरकारें हैं। भारतीय संविधान स्थानीय सरकारों को कराधान के कोई स्वतंत्र अधिकार नहीं देता। यह सरकारें सीधे तौर पर राज्य सरकारों के प्रभुत्व में होती हैं। कराधान के क्षेत्र में केन्द्र व राज्य सरकारों के बीच विवाद उत्पन्न न हो, इसलिए विभिन्न स्तर की सरकारों को कराधान के स्वतंत्र व अलग अधिकार प्रदान किए गए हैं। उदाहरण के लिए कराधान के क्षेत्र में तीन प्रमुख करों उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क व कम्पनी आय कर को केन्द्र सरकार को सौंपा गया तथा वस्तुओं की बिक्री और गतिशीलता पर कर लगाने का अधिकार राज्य सरकारों को सौंप दिया गया। प्रत्यक्ष करों के क्षेत्र में, गैर-कृषि आय और परिसम्पत्तियों के पूंजीगत मूल्य, कम्पनी कर, म त्यु कर आदि कर केन्द्र को सौंपे गए। दूसरी तरफ कृषि आय, भूमि, भवन तथा कृषि सम्पत्ति के सम्बन्ध में उत्तराधिकार कर लगाने का अधिकार राज्य सरकार को सौंपा गया है।

केन्द्र सरकार मुख्य रूप से तीन कर—आयकर, सीमा शुल्क व संघीय उत्पाद शुल्क लगाती है। योजना के प्रारंभिक वर्षों में सीमा शुल्क केन्द्र सरकार के कर राजस्व का प्रमुख स्त्रोत था। परन्तु बाद के वर्षों में इसका महत्व कम हो गया। इसका मुख्य कारण उत्पाद शुल्क के सीमा क्षेत्र का विस्तार था। आजकल केन्द्र सरकार को सबसे अधिक कर राजस्व उत्पाद शुल्क से ही प्राप्त होता है। राज्य सरकारों को कर राजस्व स्टाम्प शुल्क, भूमि का रजिस्ट्रेशन शुल्क, बिक्री कर, अल्कोहल व नशीले पदार्थों पर उत्पाद शुल्क आदि से प्राप्त होता है। अन्य करों के अलावा राज्य सरकार की बिक्री कर पर निर्भरता लगातार बढ़ रही है। राज्य सरकारों को कर राजस्व का 40 प्रतिशत भाग बिक्री कर से ही प्राप्त होता है। अब हम भारत में लगाये गए प्रमुख करों का अध्ययन करेंगे।

व्यक्तिगत आय-कर
(Personal Income Tax)

आय-कर की वर्तमान प्रणाली में आय-कर लगाया जाता है। 1965 में कर की दरों के ढांचे का समाजीकरण किया गया, जिसके परिणामस्वरूप इसे कर के साथ मिला दिया गया। सन् 1960 के बाद आय कर में समय-समय पर अनेक परिवर्तन किये गये तथा करदाताओं को अनेक प्रकार की छूट भी दी गयी। आय कर के वर्तमान ढांचे में आय कर के अतिरिक्त आय-कर पर अधिभार, सुपरटैक्स व सुपरटैक्स पर अधिभार सम्मिलित है। आय-कर व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति, अविभाजित

हिन्दू परिवार, फर्म एवं कम्पनियों के लिए आय-कर की दरें भिन्न-भिन्न हैं। आय-कर की दरों का निर्धारण प्रत्येक वर्ष पारित होने वाले वित्त अधिनियम के आधार पर किया जाता है। 1966 से आय-कर की राशि पर 10% से विशेष अधिभार लगाने का प्रावधान किया गया। भारत में आय कर को आय का मुख्य साधन माना गया है, फिर भी सरकार को इस मद से वांछित आय प्राप्त नहीं हो पाती। 1979-80 वर्ष में आयकर व निगम कर के रूप में 901 करोड़ रुपये जनता पर बकाया थे। भारत में आय-कर की प्रारम्भिक दरें अन्य देशों की तुलना में नीची हैं, परन्तु इन दरों में प्रगतिशीलता का अंश ऊंचा है। इसी कारण कर की चोरी होती है। इसे रोकने हेतु आय-कर की अधिकतम दर 1985 बजट से 50% कर दी गयी है। वर्ष 1990-91 में व्यक्तिगत आय कर से 5,274 करोड़ रुपये की प्राप्ति हुई।

सीमा शुल्क
(Custom Duty)

ऐतिहासिक द ष्टि में सीमा शुल्क विश्व में सबसे पुराना शुल्क है। प्रारम्भ में यह कर व्यापारियों के व्यापारिक लाभ पर लगाया जाता था, परन्तु आजकल उत्पादन कर की भांति यह कर वस्तुओं पर लगाया जाता है। देश के आयातों एवं निर्यातों पर लगाये जाने वाले कर को शुल्क कहते हैं। अतः आयात की गयी वस्तुओं पर जो कर लगाये जायें उसे आयात कर तथा निर्यात होने वाली वस्तुओं पर लगाये कर को निर्यात कर कहते हैं। सीमा-शुल्कों में दो प्रकार के कर सम्मिलित किये जाते हैं – (क) निर्यात कर, (ख) आयात कर। सीमा-शुल्क दो आधारों पर लगाये जा सकते हैं – मूल्यानुसार कर (Ad valorem Duty) जो वस्तु के मूल्य पर लगाये जाते हैं तथा विशिष्ट कर (Specific Duty) जो वस्तु के परिमाण पर लगाये जाते हैं। प्रो. जे.के. मेहता के अनुसार, "सीमा शुल्क इतिहास में अति प्राचीन करों में से एक है जो उस समय व्यापारियों के लाभ पर एक कर के रूप में लगाये जाते थे, परन्तु आजकल ये कर लाभ पर न लगाकर उत्पादन करों की भांति वस्तुओं पर लगाये जाते हैं।"

इन करों का भार आयात तथा निर्यात होने वाली वस्तु की मांग एवं पूर्ति की लोच के आधार पर उत्पादक एवं उपभोक्ता पर पड़ता है। यदि वस्तु की मांग बेलोचदार है तो सीमा शुल्क का भार उपभोक्ता पर पड़ेगा। यदि वस्तु की मांग लोचदार है तो सीमा कर का भार उत्पादक वर्ग पर पड़ता है। इसी प्रकार पूर्ति लोचदार होने पर सीमा-शुल्क का भार उपभोक्ता पर तथा बेलोचदार पूर्ति में भार उत्पादक को स्वयं सहन करना होगा।

सन् 1945 में भारत में टेरिफ बोर्ड की स्थापना की गयी। इस बोर्ड ने अनेक बातों पर जांच करने का सुझाव दिया था। 1945 की नीति भेदमूलक नीति की तुलना में उदार थी परन्तु यह नीति विस्त त नहीं थी।

सीमा-शुल्क दो उद्देश्यों से लगाये जाते हैं –

(i) सरकार आय में व द्धि करने हेतु, एवं

(ii) स्वदेशी उद्योगों को संरक्षण देने हेतु।

भारत में सीमा-कर मुस्लिम काल से ही लगता आया है। उसके पश्चात् इसकी दरों में निरन्तर व द्धि कम होती गयी। स्वतंत्रता के पश्चात् इन करों की दरों में और अधिक व द्धि कर दी गयी। वर्तमान समय में अनेक प्रकार की वस्तुओं पर सरकार द्वारा आयात कर तथा निर्यात कर लगाया जाता है। सीमा-शुल्क या तो मूल्यानुसार लगाये जाते हैं, या परिमाणनुसार। जब ये मूल्यानुसार

लगाये जाते हैं तो इसे यथा मूल्य कहते हैं और जब परिमाणनुसार लगाते हैं, तो इसे परिमाणिक कहते हैं। सीमा-शुल्क का भार वस्तुओं पर लगे हुए अन्य करों की भांति आयातकर्त्ता एवं निर्यातकर्त्ता देशों की वस्तुओं की मांग और पूर्ति की सापेक्षिक लोचों पर निर्भर करता है।

सीमा-शुल्क के इतिहास के अध्ययन को निम्न प्रकार से रखा जा सकता है :

(क) आयात कर – (i) यद्यपि भारत में आयात कर प्राचीन समय से लगाये जाते रहे हैं, फिर भी इसका महत्व प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् काफी बढ़ गया। (ii) आयात कर की दरें भारतीय प्रशुल्क अधिनियम, 1934 के अनुसार लगायी जाती हैं, जिनमें समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं। (iii) भारत में इस प्रकार का उद्देश्य आय प्राप्ति के साथ-साथ स्वदेशी उद्योगों को संरक्षण प्रदान करना है। (iv) अनेक उपभोग व उत्पादक वस्तुओं पर यह कर लगाया जाता है। सीमा शुल्क से 1980-81 में 3,190 करोड़ रुपये, 1981-82 में 4,140 करोड़ रुपये तथा 1982-83 में 4,997 करोड़ रुपये की आय हुई। 1985-86 में 6,000 करोड़ रुपये की आय प्राप्त हुई।

(ब) निर्यात-कर – (i) निर्यात कर का देश की अर्थ-व्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है। (ii) वित्तीय कठिनाइयों को दूर करने हेतू 1857 में दर 5% से बढ़ाकर 10% कर दी गयी। (iii) 1867 से निर्यात कर को हटा दिया गया और 1914 में केवल चावल पर ही लगाया गया। (iv) इस समय महत्वपूर्ण वस्तुओं पर भी निर्यात कर लगाए जाते हैं। निर्यात कर से 1980-81 में 118 करोड़ रुपये की आय हुई। 1981-82 में 44 करोड़ रुपये की आय हुई। 1985-86 में 60 करोड़ रुपये की आय हुई।

सीमा-शुल्क लगाने का महत्वपूर्ण कारण आय प्राप्त करना न होकर विदेशी व स्वदेशी व्यापार को प्रभावित करना है। इससे दोहरा लाभ प्राप्त होता है तथा आन्तरिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को मार्गदर्शन मिलता है। इससे कोई भी देश व्यापार में संतुलन स्थापित कर सकता है। कुछ वस्तुओं पर नये निर्यात-शुल्क और कुछ पर नये आयात-शुल्क लगाये गये।

'कराधान जांच आयोग' का मत था कि राजस्व प्राप्ति एवं कीमतों में स्थिरता लाने के उद्देश्य से निर्यात करों का अधिकाधिक उपभोग किया जाना चाहिए। भारत में निर्यात कर राजस्व एवं संरक्षण दोनों ही द ष्टिकोणों से लागू किये गये। 1980 के राजकोषीय आयोग ने उद्योगों को तीन भागों में बांटा –

(i) प्रतिरक्षा व अन्य सैनिक उद्योग,
(ii) मूलभूत एवं महत्वपूर्ण उद्योग,
(iii) अन्य उद्योग।

इन तीनों प्रकार के उद्योगों के संबंध में आयोग ने प थक-प थक संरक्षण सम्बन्धी सुझाव दिये थे। 1952 में एक स्थानीय टैरिफ बोर्ड की स्थापना की गयी।

निगम कर
(Corporation Tax)

निगम कर उस कर को कहते हैं जो निगमों व व्यावसायिक कम्पनियों पर लगाये जाते हैं और उसे कम्पनियों द्वारा भुगतान किया जाता है। यह कर उन करों से भिन्न होते हैं जो हिस्सेदारों द्वारा लाभांश के रूप में प्राप्त की गयी आय पर लगाये जाते हैं। यह कर आय का प्रधान स्त्रोत बन गया है। 1959-60 तक यह सुपर टैक्स के नाम से विख्यात था। 1960-61 से आय-कर को निगर कर में सम्मिलित कर लिया गया है। समय-समय पर अधिनियम में संशोधन करते हुए

निगम कर की सीमा एवं छूट में भी परिवर्तन किये गये। 1970-71 में निगर कर से लगभग 320 करोड़ रुपये प्राप्त हुये। प्रत्येक राष्ट्र में पूंजी कर लगाने पर विशेष जोर दिया गया है जिसे अनेक रूपों में लगाया जाता है।

केन्द्रीय उत्पादन शुल्क
(Union Excise Duties)

भारत में उत्पादन शुल्क मुगलों के समय से लगाया जा रहा है। 1950-51 में केन्द्रीय उत्पादन कर 67.54 करोड़ रुपये था जो 1988-89 में बढ़कर 18,000 करोड़ रुपये हो गया। देश में वस्तु को उत्पादन करने के पश्चात् उपभोक्ता तक पहुंचने से पूर्व जो कर लगाये जाते हैं उसे उत्पादन कर कहते हैं। संविधान के अनुसार केन्द्रीय सरकार को शराब, अफीम तथा भांग जैसी नशीली वस्तुओं व औषधियों को छोड़कर अन्य वस्तुओं पर उत्पादन कर लगाने का अधिकार है। वर्तमान समय में 70 ऐसे पदार्थ हैं जिन पर भारत सरकार द्वारा उत्पादन कर लगाया जाता है। प्रो. जे. के. मेहता के अनुसार "उत्पादन शुल्क से सामान्यतया अभिप्राय घरेलू उत्पादित माल पर लगे कर से है जो कि या तो उत्पादन प्रक्रिया में हो या जो ग्राहकों को बेचने से पूर्व लगे जिससे उसके उपभोग को सीमित किया जा सके।" संघ सरकार को वस्तुओं पर ऐसे उत्पादन कर लगाने के अधिकार प्राप्त हैं। इस कर से प्राप्त आय को वित्तीय आयोग की सिफारिशों के आधार पर केन्द्र एवं राज्य सरकारों के मध्य विभाजित कर दिया जाता है। यह कर दो उद्देश्यों से लगाया जाता है : (i) उपभोग को नियन्त्रित करने एवं (ii) आय प्राप्त करने हेतु।

उत्पादन शुल्क को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(1) आधारभूत उत्पादन कर,

(2) विशेष कर,

(3) बिक्री कर के स्थान पर अतिरिक्त उत्पादन कर।

भारत में केन्द्रीय उत्पादन कर मुगलकाल में भी लगाया जाता था और इसे नशीले पदार्थों पर लगाते थे। 1909 में प्रान्तों को भी इस कर को लगाने के अधिकार सौंप दिये गये और उत्पादन करों को दो भागों में विभाजित कर दिया गया : (1) केन्द्रीय उत्पाद कर, (ii) प्रान्तीय उत्पाद कर। वर्तमान समय में केन्द्र को अनेक वस्तुओं पर उत्पादन कर लगाने का अधिकार दिया गया है। उत्पादन करों की दरों में समय-समय पर परिवर्तन होते रहते हैं तथा प्रत्येक वर्ष सरकार नवीन वस्तुओं पर उत्पादन कर लगा देती है। इसके साथ-ही-साथ अनेक वस्तुओं पर उत्पादन कर की छूट प्रदान की जाती है। सन् 1957 से अतिरिक्त उत्पादन कर भी लगाया गया है। यह कर राज्यों द्वारा लगाये जाने वाले बिक्री-कर की जगह लगाया गया है। अतिरिक्त उत्पादन करों को भी राज्यों में वितरित कर दिया जाता है। 1975 से परीक्षण के तौर पर छूटी हुई वस्तुओं पर 1% की दर से उत्पादन कर लगाया गया था, 1977-78 से इस दर को बढ़ाकर 2% कर दिया गया है। 1988-89 बजट में अनेक वस्तुओं पर रियायतें दी गयीं जिससे सरकार को काफी हानि हुई। वर्ष 1990-91 में उत्पादन शुल्क से 24,356 करोड़ रुपये की प्राप्ति हुई जो 1991-92 में बढ़कर 27,696 करोड़ रुपये हो गई।

उत्पादन कर के पक्ष में निम्न तर्क दिये जा सकते हैं :

(i) **उत्पादक** — यह कर उत्पादक होते हैं, और थोड़ी सी दर बढ़ाने से ही आय में पर्याप्त व द्धि हो जाती है।

(ii) **विलासिता पर कर** – इन करों को विलासिता की वस्तुओं पर कर लगाने से धनी वर्ग से अधिक कर राशि वसूल की जा सकती है। इस प्रकार की आय की असमानता को दूर करने में यह कर सहायक सिद्ध होता है।

(iii) **सुविधाजनक** – इस कर को माल क्रय करते समय ही उपभोक्ता से वसूल करने के कारण यह सुविधाजनक होते हैं। इस कर की अदायगी एक प्रकार से किस्तों में की जाती है, जिसका भार उपभोक्ता अनुभव नहीं करते हैं।

(iv) **उपभोग पर रोक** – हानिकारक वस्तुओं पर भारी कर लगाकर उसके उपभोग को रोका जा सकता है।

उत्पादन-शुल्क के सम्बन्ध में निम्न सुझाव दिये जा सकते हैं :

(i) उत्पादन करों को उपभोग नियंत्रण के उद्देश्य से लगाकर राजस्व प्राप्ति की द ष्टि से लगाया जाना चाहिए।

(ii) उत्पादक शुल्कों से प्राप्त होने वाली राशि का अधिकांश भाग राज्यों में वितरित कर दिया जाना चाहिए।

(iii) उत्पादन शुल्क उन वस्तुओं पर लगाया जाना चाहिए, जिनका उत्पादन बड़ी मात्रा में किया जाता हो।

(iv) धनी व्यक्तियों द्वारा उपभोग की जाने वाली वस्तुओं पर ही यह कर लगाया जाना चाहिए।

(v) उत्पादन कर की दरों का विवेकीकरण किया जाना चाहिए।

राज्य सरकार के कर
(State Excise Duties)

राज्य उत्पादन कर (State Excise Duties) : भारतीय संविधान में केन्द्र एवं राज्य सरकारों को उत्पादन-कर लगाने का अधिकार दिया गया है। इस कर को लगाने का मुख्य कारण आय प्राप्त करने के साथ-साथ नशीली वस्तुओं के उपयोग पर रोक लगानी थी। वह अधिकार निम्न वस्तुओं पर उत्पादन कर लगाने को प्राप्त है– (i) देशी शराब, (ii) भांग, (iii) चावल व जौ की शराब, (iv) निद्राकारक वस्तुएं, (v) औषधियां, (vi) चरस, (vii) गांजा, (viii) अफीम। इन करों को लगाने के दो उद्देश्य होते हैं जैसे आय प्राप्त करना एवं इन पदार्थों का उपयोग कम करना। जिन वस्तुओं पर केन्द्रीय सरकार के द्वारा उत्पादन कर लगाया जाता है उसे केन्द्रीय उत्पादन कर एवं राज्यों के द्वारा लगाये जाने वाले करों को राज्य उत्पादन कर कहा जाता है। 1974 से राज्य सरकारों के द्वारा उत्पादन कर लगाया जाने लगा था। भारत में यह कर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है – (i) वे कर जो देश में उत्पादित वस्तु पर लगाये जाएं (ii) दूसरे, जबकि उस वस्तु के उपभोग को कम करना हो।

भारत में नशीले पदार्थों पर करारोपण प्राचीन काल से ही होता आया है। ब्रिटिश काल में यह कर जमींदारों द्वारा लगाया जाता था जिसे 1770 में समाप्त कर दिया गया। कुछ समय पश्चात् शराब के बनाने एवं बेचने के लिए अनुज्ञापत्र प्रणाली को प्रारम्भ किया गया परन्तु राज्य सरकारों की नीतियों में समानता का अभाव था। 10 वर्षों के बाद शराब बनाने व बेचने के लिये लाइसेंस प्रणाली की स्थापना हुई और केन्द्रीय शराब बनाने के कारखाने कुछ बड़े-बड़े शहरों में स्थापित किये गये। 1820 के अधिनियम के अन्तर्गत अधिकृत व्यक्ति ही ताड़ी का उत्पादन तथा विक्रय कर सकते थे। यह प्रथा 40 वर्षों तक चलती रही और इसके बाद उसके स्थान पर उत्पादन

कर लगाया गया। 1894 में हेम्प औषधि आयोग (Hemp Drug Commission) की नियुक्ति की गयी जिसने उत्पादन को नियन्त्रित करने के उद्देश्य से कर लगाने की सिफारिश की।

मद्य निषेध नीति (Prohibition Policy) : 1919 से नशीले पदार्थों पर कर लगाने के अधिकार राज्य सरकारों को प्राप्त हो गये। 1921 से मद्य निषेध की नीति पर विचार किया जा रहा था, परन्तु 1937 में प्रान्तीय स्वशासन प्रारम्भ होने से विभिन्न राज्यों ने मद्य निषेध की नीति को अपनाया। युद्धकाल से बढ़ती आवश्यकता के कारण मद्य निषेध नीति का परित्याग कर दिया गया है। 1964 में प्रान्तों में स्थापित सरकारों ने मद्य निषेध की नीति को फिर से स्वीकार किया। विभिन्न राज्यों में मद्य निषेध की प थक्-प थक् नीति अपनायी जाती है। देश का 28% भाग मद्य निषेध के अन्तर्गत आता है और यह 36% जनसंख्या पर लागू होता है। सन् 1954 में श्रीमननारायण अग्रवाल की अध्यक्षता में एक मद्य निषेध नीति का समर्थन किया गया था। वर्तमान समय में मद्य निषेध पूर्णरूप से लागू हो गया है तथा सम्पूर्ण जनसंख्या इसके अन्तर्गत आती है। भारतीय संविधान में नीति निर्देशक तत्वों में भी मद्य निषेध को स्वीकार किया गया है। संविधान की धारा 47 में कहा गया है कि "राज्य केवल औषधि संबंधी उद्देश्यों को छोड़कर, स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद मादक पदार्थों के उपभोग का निषेध करेगा।" इसी प्रकार 31 मार्च 1956 को लोकसभा में यह प्रस्ताव पारित किया गया है कि "यह सदन इस मत का है कि मद्य निषेध को द्वितीय पंचवर्षीय योजना का एक अभिन्न अंग माना जाये और सुझाव देता है कि नियोजन आयोग को सम्पूर्ण देश में मद्य निषेध को शीघ्रता एवं प्रभावपूर्ण रूप से अपनाने हेतु कार्यक्रम अपनाने चाहिए।"

बिक्री-कर (Sales Tax) : यह कर वस्तुओं की बिक्री के समय लगाया जाता है और बेचने वाले से लिया जाता है। आजकल यह राज्य सरकारों की आय का एक मुख्य स्त्रोत है। बिक्री-कर प्रायः आराम और विलासिता की वस्तुओं पर लगाया जाता है। आवश्यकता की वस्तुओं पर नहीं लगाया जाता। बिक्री-कर दो प्रकार का हो सकता है – (i) एक बिन्दु कर (Single Point Sales Tax) और (ii) बहु बिन्दु कर (Multiple Point Sales Tax) इस प्रणाली में बिक्री कर उत्पादक से उपभोक्ता तक माल पहुंचाने की सारी प्रक्रिया में केवल एक बार या तो आरम्भ में उत्पादक से उत्पादित माल बेचते समय या अन्त में फुटकर विक्रेता से उपभोक्ता को माल बेचते समय वसूल किया जाता है। दिल्ली, पश्चिमी बंगाल आदि में इसी प्रणाली के अनुसार बिक्री-कर लगाया जाता है। दूसरी प्रणाली में बिक्री-कर, बिक्री के हर बिन्दु पर अर्थात् उत्पादक से उपभोक्ता के पास पहुंचने तक वस्तु जितनी बार बेची जाती है, उतनी ही बार कर लगाया जाता है। मद्रास, मैसूर आदि में इस प्रणाली के अनुसार बिक्री कर लगाया जाता है।

बिक्री-कर चाहे किसी भी प्रणाली के अनुसार लगाया जाये, इसका द्रव्य भार उपभोक्ताओं (Consumers) पर ही पड़ता है, क्योंकि विक्रेता कर की रकम को मूल्य के साथ ही ग्राहक से वसूल कर लेता है। इसलिए यह एक अप्रत्यक्ष-कर (Indirect Tax) है। यह कर प्रतिगामी (Regressive) भी है। इसका अधिक भार गरीब लोगों पर पड़ता है। यह कर असुविधाजनक तथा खर्चीला है। व्यापारियों को अपनी बिक्री का पूरा-पूरा हिसाब रखना पड़ता है और सरकार को इसे एकत्र करने पर काफी खर्चा करना पड़ता है। इससे प्राप्त होने वाली आय अनिश्चित भी होती है।

इसके कुछ दोषों को दूरे करने के लिए विधान में यह प्रबन्ध किया गया है कि कोई एक राज्य से दूसरे राज्य में जाने वाले माल तथा विदेशों को निर्यात किये जाने वाले माल पर बिक्री-कर न लगायेगा। साथ ही यह भी आदेश है कि संसद जिन वस्तुओं को सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक घोषित कर दे उन पर बिक्री-कर नहीं लगाया जा सकता।

करारोपण जांच आयोग का मत है कि "बिक्री-कर अब केवल राज्य सरकारों की आय के स्त्रोतों में से अकेला सबसे बड़ा स्त्रोत ही नहीं है, वरन् यह एक ऐसा स्त्रोत है जिनमें आय की प्राप्तियों के रूप में बड़ी लचक दिखाई है। इसके अतिरिक्त बिक्री-कर राज्य की वित्तीय पद्धति का एक अभिन्न अंग बन गया है और कुछ राज्यों में यह 10 से 15 वर्षों पूर्व से प्रचलित है।"

आयोग के द्वारा जो सुझाव दिये गये थे उन सुझावों को आधार मानकर सरकार ने निम्नलिखित कार्यक्रम प्रस्तुत किया था :

(i) 1956 के संविधान में संशोधन करके अन्तर्राज्य व्यापार की वस्तुओं पर करारोपण करने का अधिकार संघ सरकार को दे दिया गया था।

(ii) 1956 अधिनियम के अन्तर्गत कपास, पटसन, कोयला, लोहा व तिलहन आदि पर बिक्री-कर के संबंध में राज्य-सरकारों पर प्रतिबन्ध लगा दिये थे।

(iii) 1957 से मिल में बने कपड़े, चीनी व तम्बाकू पर अतिरिक्त बिक्री-कर, उत्पादन कर संघ सरकार के द्वारा लगाया जाने लगा तथा वित्त आयोग की सिफारिशों पर उस कर को राज्यों में बांटा जाने लगा।

(iv) सितम्बर 1958 में केन्द्रीय बिक्री-कर अधिनियम में सुधार किया गया।

(v) कर-जांच आयोग की सिफारिशों पर अनेक राज्यों में बिक्री-कर सलाहकार समितियों की रचना की गई।

निरपेक्ष रूप से वर्ष 1980-81 में केन्द्र व राज्य सरकार को 19,844 करोड़ रुपये का कर राजस्व प्राप्त हुआ। इनमें से 3268 करोड़ रुपये प्रत्यक्ष करों से तथा 16,576 करोड़ अप्रत्यक्ष करों से प्राप्त हुए। वर्ष 1990-91 में सरकार को कर राजस्व से 89,183 करोड़ रुपये प्राप्त होने का अनुमान था जिनमें से 13,047 करोड़ रुपये प्रत्यक्ष करों से व 76,136 करोड़ रुपये अप्रत्यक्ष करों से प्राप्त होने थे। अप्रत्यक्ष करों में जहां सीमा शुल्क के योगदान में कमी आई है वहां संघीय उत्पाद शुल्क का अनुपात 1950-51 में 10.78 प्रतिशत से बढ़कर 1991-92 में 27.0 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार इसी अवधि के दौरान बिक्री कर का कुल कर राजस्व में अनुपात 9.29 से बढ़कर 21.2 प्रतिशत है। पिछले 40 वर्षों में सीमा शुल्क के योगदान में कुछ गिरावट आई है। 1950-51 में इसका अनुपात 25.07 प्रतिशत था जो 1991-92 में घटकर 22.4 प्रतिशत रह गया है। सीमा शुल्क में कमी और संघीय उत्पाद शुल्क में व द्धि भारतीय कर ढांचे का एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है।

भारतीय कर ढांचे का मूल्यांकन
(Evaluation of Indian Tax Structure)

भारतीय कर ढांचा काफी विस्त त है। इस समय देश में अनेक प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर लगाए जाते हैं और इनसे राजस्व प्राप्ति इतनी है कि अब भारत विश्व में सबसे अधिक करारोपित देशों की श्रेणी में पहुंच गया है। इस पर भी सरकार को यदि वित्तीय साधनों का प्रायः अभाव महसूस होता है और उसे लोक ऋण तथा घाटे के वित्त प्रबन्धन का सहारा लेना होता है तो उसकी वजह यह है कि सरकान ने गैर विकास खर्चों को बहुत बढ़ा रखा है और लोक व्यय के मितव्ययिता के सिद्धान्त का पालन गंभीरतापूर्वक नहीं किया है।

भारतीय कर ढांचे का मूल्यांकन करने पर इसके बारे में प्रमुख बातें निम्नलिखित हैं –

(1) **लचीलापन और प्रफुल्लता (Elasticity and buoyancy) :** किसी भी कर प्रणाली में लचीलेपन का अर्थ यह होता है कि करों में आय लोच (Income Elasticity) काफी है। दूसरे शब्दों

में, जब राष्ट्रीय आय में व द्धि से ही कर-राजस्व में अनुपात से अधिक व द्धि हो जाती है तो कर ढांचा लचीला माना जाता है। करों की प्रफुल्लता (Buoyancy of Taxes) की अवधारणा व्यापक है। जब करों की दरों में परिवर्तन, कराधान के आधार में विस्तार, अर्थात् नए लोगों और नई वस्तुओं पर कराधान को भी ध्यान में रखकर आय के प्रति कर-राजस्व की प्रतिक्रिया (Responsiveness) की जांच की जाती है तो दरअसल हम करों की प्रफुल्लता मालूम करते हैं।

हाल में नैशनल इंस्टीच्यूट ऑफ पब्लिक फाइनेंस एण्ड पॉलिसी ने भारत में लगाए जाने वाले विभिन्न करों की 1970-71 से 1983-84 की अवधि में लोच और प्रफुल्लता का अनुमान लगाया है। इस अध्ययन से पता चला है कि जहां सभी कर राजस्व की लोच इकाई से कम (0.96) थी, वहां उसकी प्रफुल्लता इकाई से ज्यादा थी। इसके अलावा राज्यों के कर-राजस्व में केन्द्र के कर-राजस्व से लोच और प्रफुल्लता दोनों ही ज्यादा थी।

(2) **न्यायशीलता (Equity) :** भारतीय कर प्रणाली कुल मिलाकर प्रगामी (Progressive) बताई जाती है, यद्यपि कुछ वस्तुओं पर उत्पादन शुल्क और बिक्री कर प्रतिगामी (Regressive) हैं। भारतीय आय कर का ढांचा प्रगामी है। एक सीमा तक आय कर मुक्त है और इस सीमा के आगे आय बढ़ने पर आय कर की दर बढ़ती जाती है। अप्रत्यक्ष करों के बारे में आम धारणा यह है कि वे प्रतिगामी हैं क्योंकि उत्पादन शुल्क के राजस्व का अधिकांश भाग सूती कपड़ा, चीनी, मिट्टी का तेल, चाय, तम्बाकू, दियासलाई जैसी जनसाधारण उपभोग की वस्तुओं से प्राप्त होता है, लेकिन कराधान जांच समिति (Taxation Enquiry Committee) के अनुसार 1953-54 में अप्रत्यक्ष कर प्रणाली प्रगामी थी। 1958-59 में यह और अधिक प्रगामी हो गई थी। हाल में झा समिति ने भी इसी बात की पुष्टि की है कि भारतीय अप्रत्यक्ष कर प्रणाली प्रगामी है। विशुद्ध टैक्नीकल द ष्टिकोण अपनाकर हम मान सकते हैं कि भारतीय कर व्यवस्था प्रगामी है और इसमें न्यायशीलता के सिद्धांत का पालन होता है, लेकिन गहराई में जाकर समस्या का विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय कर ढांचा अन्यायपूर्ण है। इस सारणी से स्पष्ट है कि अप्रत्यक्ष करों का भार गरीबों पर कितना अधिक था।

सारणी :

अप्रत्यक्ष करों का कुल व्यय के साथ प्रतिशत (1973-74)

मासिक प्रति व्यक्ति व्यय रुपये	ग्रामीण क्षेत्र अप्रत्यक्ष करों का कुल व्यय के साथ प्रतिशत	शहरी क्षेत्र अप्रत्यक्ष करों का कुल व्यय के साथ प्रतिशत	सम्पूर्ण भारत में अप्रत्यक्ष करों का कुल व्यय के साथ प्रतिशत
0-15	2.91	3.63	2.96
15-28	3.33	6.31	3.63
28.43	4.45	7.36	4.89
43.55	6.18	9.66	6.85
55.75	6.71	11.86	7.92
75.100	10.02	14.80	11.40
100 और अधिक	16.17	30.19	21.96
सभी परिवार	8.03	17.96	10.54

स्रोत : Government of India. Report of the Indirect Taxation Enquiry Committee (New Delhi. 1978).

(3) **प्रशासनिक कुशलता (Administrative Efficiency) :** भारतीय कर ढांचा प्रशासनिक द ष्टि से कार्यकुशल नहीं है। प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर दोनों ही बहुत जटिल (Complex) हैं जिससे लोगों को करों से कानूनी ढंग से बचने और करों की चोरी करने का काफी मौका मिलता है। भारतीय कर प्रणाली में सरलता और निश्चितता के सिद्धान्तों की अवहेलना की गई है। केल्डोर के अनुसार भारत के कर कानूनों में परिभाषा सम्बन्धी दोष भी है। परिणाम यह होता है कि कर अधिकारी अपने ढंग से कर कानूनों की व्याख्या कर करदाताओं को परेशान करते हैं। दरअसल कर विभाग में व्यापक भ्रष्टाचार को बढ़ाने में इस कारक का योगदान काफी है।

(4) **करों की अवहेलना और एकीकरण का अभाव (Multiplicity of Taxes and Lack of Integrat 104) :** भारत में बहुत सारे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष कर लगाए गए हैं। उदाहरणार्थ आय कर, अधिकार, सम्पत्ति कर और उपहार कर प्रत्यक्ष करों की श्रेणी में आते हैं। चूंकि इन करों के आधार परस्पर निर्भर हैं, इसलिए प्रायः यह तर्क दिया जाता है कि इनका एकीकरण करके एक प्रत्यक्ष कर लगाया जाना चाहिए। केल्डोर का सुझाव था कि कर तो अलग-अलग ही लगाए जाने चाहिए लेकिन करदाताओं को इन करों के निर्धारण के लिए केवल एक विस्त त विवरणी (Single Comprehensive Return) भरना चाहिए। इससे प्रशासनिक कुशलता बढ़ेगी और करों की चोरी को रोका जा सकेगा। प्रत्यक्ष कर कानून समिति (The Direct Tax Law Committee) जिसके अध्यक्ष एस.पी.चोकसी थे, ने सिफारिश की है कि इन चारों प्रत्यक्ष करों के लिए एक ही कानून "प्रत्यक्ष कर प्रबन्ध एवं प्रशासन अधिनियम (The Direct Taxes Management and Administration Act)" होना चाहिए।

इसी प्रकार अप्रत्यक्ष करों में भी एकीकरण का अभाव है। उत्पादन शुल्क केन्द्रीय सरकार द्वारा, बिक्री कर राज्य सरकारों द्वारा और चुंगी (Octroi) स्थानीय प्रशासन द्वारा लगाई जाती है। अप्रत्यक्ष कराधान जांच समिति ने इन करों के बीच तालमेल के अभाव को स्पष्ट किया है। समिति की राय में चुंगी अवांछनीय कर है और इसे हटाया जाना चाहिए। इसके अलावा उत्पादन शुल्क और बिक्री कर की जगह वधित मूल्य योग (VAT) लगाने की प्रक्रिया शुरू की जानी चाहिए।

(5) **कर ढांचे में अन्तर्क्षेत्रीय असंतुलन (Inter-sectoil imbalances in the tax structure) :** भारत में कृषि क्षेत्र पर उचित कराधान नहीं है। आजादी मिलने के समय कृषि क्षेत्र में बड़ी संख्या में ऐसे लोग नहीं थे जिन पर आय कर लगाया जा सकता था। लेकिन भूमि सुधार लागू होने के बाद कृषि में हरित क्रांति से बड़े किसानों का वर्ग पैदा हुआ है। इनकी आय अच्छी खासी होने के बावजूद वे कर मुक्त हैं। इसके अलावा कुछ राज्यों ने मालगुजारी को कम कर दिया गया है। परिणाम यह हुआ कि कर ढांचें में अन्तर्क्षेत्रीय असंतुलन पैदा हो गया है। चौकसी समिति (The Choksi Committee) के अनुसार कृषि आय और गैर-कृषि आय में समन्वय किया जाना चाहिए। इससे कर ढांचे में अन्तर्क्षेत्रीय असंतुलन दूर होगा, सरकार की आमदनी में व द्धि होगी और काले धन के विस्तार पर रोक लगाई जा सकेगी।

कर सुधार
(Taxation Reforms)

कर सुधार के लिए मुख्य कदम इस प्रकार हैं :

मूल्य वर्धित कर (VAT) : यह वस्तुतः विक्रय कर का एक विकल्प है। यह एक ऐसी कर प्रणाली

है जिसके अनुसार कर (Tax) केवल उत्पादन प्रक्रिया में की गई मूल्य व द्धि पर ही लगाया जाता है। मूल्य की यह व द्धि उत्पादन या विक्रेता द्वारा की जाती है। श्री एल.के.झा समिति के अनुसार, "मूल्य वर्धित कर (VAT) व्यापक रूप से समस्त वस्तुओं और सेवाओं पर लगाया गया एक कर है जिसमें निर्मित वस्तुओं एवं शासकीय सेवाओं को प थक् कर दिया जाता है। यह कर प्रत्येक स्तर पर होने वाली व्यवसाय की मूल्य व द्धि पर जोड़ा जाता है अतः इसे मूल्य वर्द्धित कर (VAT) कहते हैं।"

इस प्रकार वर्धित मूल्य = [वस्तु का कुल मूल्य] - [क्रय की गई कच्ची सामग्री एवं अन्य सामग्री का मूल्य]

मूल्य वर्धित कर (VAT) यद्यपि विक्रय कर का विकल्प है, किन्तु दोनों करों में अन्तर है। विक्रय कर वस्तु के कुल मूल्य पर केवल एक बार ही लगाया जाता है जबकि VAT उत्पादन की प्रत्येक अवस्था में केवल बढ़े मूल्य पर लगाया जाता है।

(I) मूल्य वर्धित कर के विभिन्न रूप (Various Forms of VAT)

(i) **उत्पादन पर आधारित मूल्य वर्धित कर :** प्रत्येक फर्म उत्पादन करने के लिए अन्य फर्मों से कच्चा माल क्रय करती है और अपने निर्मित उत्पादन को बेचकर आय प्राप्त करती है। इस प्राप्त आय में से क्रय की गई सामग्री का मूल्य घटा देने से फर्म के उत्पादन का वर्धित मूल्य ज्ञात हो जाता है। इसी वर्धित मूल्य पर लगाये गये कर को उत्पादन पर आधारित मूल्य वर्धित कर कहते हैं।

(ii) **उपभोग पर आधारित मूल्य वर्धित कर**—राष्ट्रीय उत्पाद में से कुल विनियोग राशि को घटा देने पर जो शेष बचता है, उस पर लगाया गया कर उपभोग आधारित मूल्य वर्धित कर कहलाता है। यह कर उन वस्तुओं पर लगाया जाता है जिनका प्रयोग अन्तिम उपभोग हेतु किया जाता है।

(iii) **आय आधारित मूल्य वर्धित कर**—यह कर निगम कर (Corporation Tax) के विकल्प के रूप में लगाया जाता है। उदाहरण प्रक्रिया में उत्पति के विभिन्न साधन पारिश्रमिक के रूप में आय प्राप्त करते हैं। इन पारिश्रमिकों का योग करके यदि उसे आधार मानकर होने वाली मूल्य व द्धि पर कर लगाया जाए तो उसे आय आधारित मूल्य वर्धित कर कहते हैं।

(iv) **मजदूरी आधारित मूल्य वर्धित कर**—एक फर्म द्वारा उत्पादन इकाइयों के मूल्यों में से उसमें प्रयुक्त विभिन्न आदाओं (Inputs) के साथ मशीन की घिसावट, ब्याज आदि को घटाकर जो शेष बचता है वह वर्धित मूल्य होता है जो मजदूरी भुगतान के बराबर होता है। इस रीति से लगाया गया कर मजदूरी आधारित मूल्य वर्धित कर कहलाता है।

(II) संशोधित मूल्य वर्धित कर (MODVAT)

भारत में मूल्य वर्धित कर विक्रय कर के स्थान पर न लगाकर उत्पादन शुल्क के स्थान पर लगाया गया है। भारत में मूल्य वर्धित कर के संशोधित रूप को अपनाए जाने के कारण संशोधित मूल्य वर्धित कर (MODVAT) कहा जाता है।

भारत में सर्वप्रथम भूतलिंगम समिति ने उत्पादन शुल्क के नाम से मूल्य वर्धित कर का

समर्थन किया। अप्रत्यक्ष करों में सुधार हेतु गठित एल.के.झा समिति ने वर्ष 1978 में कुछ निर्मित वस्तुओं पर मूल्य वर्धित कर लगाने का सुझाव दिया जिसे MANVAT (Manufactured VAT) का नाम दिया गया। बाद में इसे 1 मार्च, 1986 से संशोधित करके MODVAT कर दिया गया। वर्तमान में MODVAT के स्थान पर CENVAT लागू है।

भारत में कर ढांचा

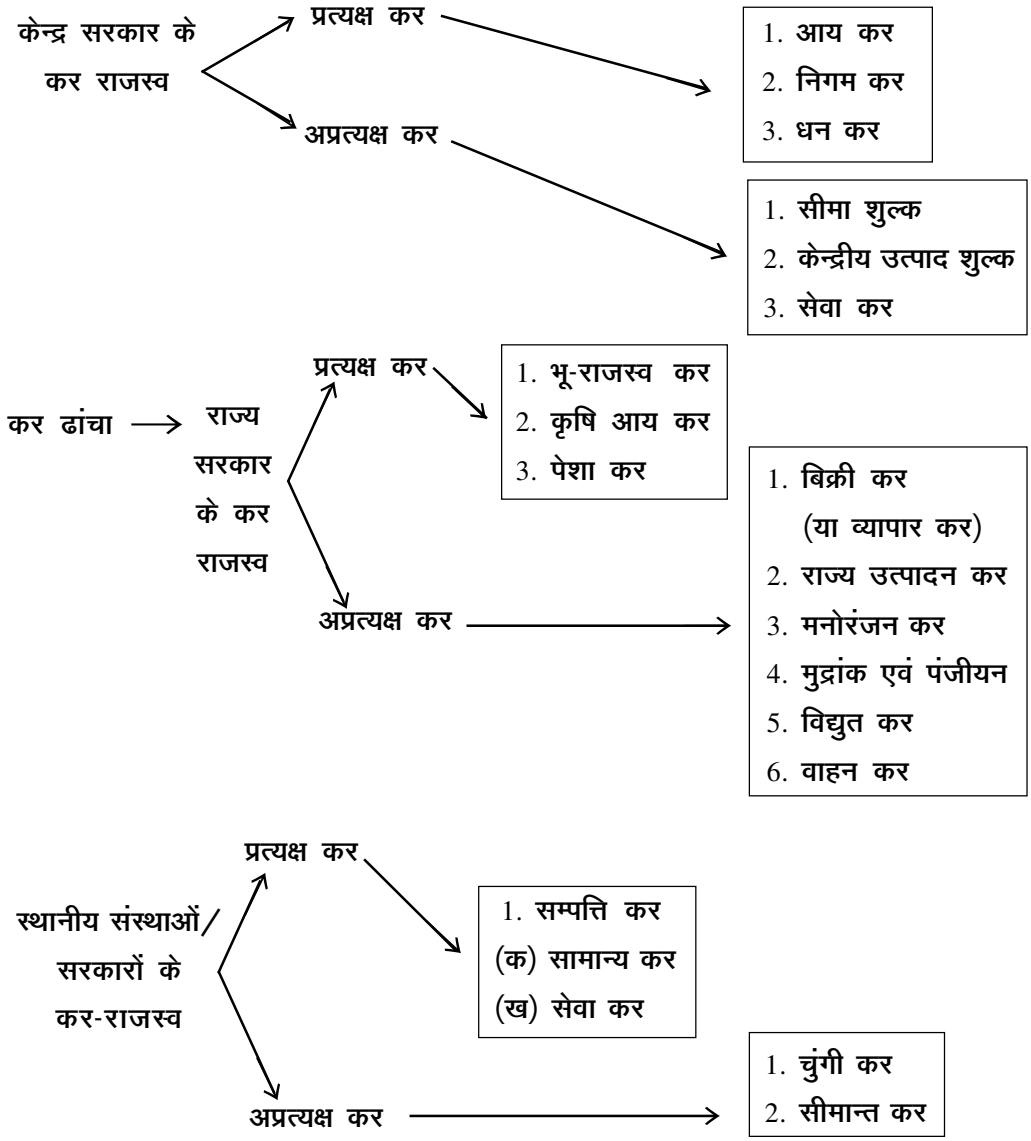

(III) सेनवेट (CENVAT)

वित्त अधिनियम 2000 द्वारा केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क अधिनियम में एक महत्वपूर्ण संशोधन किया गया और MODVAT के स्थान पर CENVAT (केन्द्रीय मूल्य सम्बर्द्धित कर) लागू किया गया है। वर्ष 2002-03 के बजट प्रस्तावों में CENVAT में संशोधन करके इसे और अधिक सरल बना दिया गया है।

(IV) चेलैया समिति की प्रमुख सिफारिशें
(Sailent Recommendations of Chelliah Committee)

केन्द्र सरकार ने कर ढांचे की जांच एवं उसके सुधार की सिफारिश करने के लिए 1991 में प्रोफेसर राजा जे. चेलैया की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया तथा समिति को निम्नांकित बिन्दुओं पर अपने सुझाव प्रस्तुत करने को कहा –

- प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर के वर्तमान ढांचे की जांच करना।
- कर ढांचे को अधिक लोचपूर्ण बनाने के सुझाव देना।
- कर प्रशासन (Tax Administratioln) को अधिक कुशल बनाने के लिए कराधान नियमों को सरल बनाने के सुझाव देना।

समिति ने अपनी अन्तरिम रिपोर्ट दिसम्बर, 91 में प्रस्तुत की जिसे फरवरी 1992 में संसद में प्रस्तुत किया गया। समिति ने अपनी अन्तिम रिपोर्ट दो भागों में प्रस्तुत की। रिपोर्ट का प्रथम भाग समिति द्वारा सरकार को अगस्त 1992 में सौंपा गया जबकि रिपोर्ट का दूसरा भाग जनवरी 1993 में प्रस्तुत किया। इस समिति की सिफारिशों को सरकार ने 1993-94 के बजट प्रस्तावों में सम्मिलित कर लिया।

समिति द्वारा प्रस्तुत प्रमुख सिफारिशें हैं :

1. अन्तिरम रिपोर्ट (दिसम्बर 1991) में प्रस्तुत सिफारिशें :

(क) आय कर (Income Tax)

(i) व्यक्तिगत आय सीमा छूट 28,000/- वार्षिक पर स्थिर की जानी चाहिए तथा उत्तरोत्तर बढ़ती आय पर बढ़ती दर से छूट दी जानी चाहिए –

आय (रुपये 28,000 - 50,000) 20% कर की दर

रुपये 50,000 - 2,00,000 27.5% कर की दर

रुपये 2,00,000 से अधिक 40% कर की दर

(ii) रिलीफ बाण्ड पर ब्याज [धारा 10(15)(iic)] सार्वजनिक क्षेत्र कम्पनी से प्राप्त ब्याज [धारा 10(15)(iv)h], सरकार की जमाओं पर प्राप्त ब्याज [धारा 10(15)(iv)(i)], धारा 80C धारा 80CCA तथा धारा 80CCB आदि के अन्तर्गत दी जाने वाले कर राहतें समाप्त की जानी चाहिए।

(ख) व्यापारियों के लिए एक मुश्त कर योजना– 3 लाख से 5 लाख तक वार्षिक व्यापार वाले व्यापारियों के लिए 1,000 रुपये वार्षिक कर (Tax) लगाकर उन्हें अपना आय विवरणी प्रस्तुत करने से छूट दे दी जानी चाहिए।

(ग) अनुमानित आय योजना – 5 लाख रुपये से अधिक वार्षिक व्यापार वाले व्यक्तियों अथवा 10,000 रुपये से अधिक आय-स्त्रोत वाले व्यक्तियों के लिए अनुमानित आय योजना लागू की जानी चाहिए जिसमें व्यवसाय की शुद्ध आय कुल व्यापार राशि का 8% कमीशन के मामले में कुल कमीशन का 50% तथा निर्माण कार्य के ठेंकों से प्राप्त राशि का 10% शुद्ध आय मानकर कर निर्धारित किया जाना चाहिए। यह योजना 25 लाख रुपये से अधिक वार्षिक व्यापार वाले व्यक्तियों पर लागू नहीं की जानी चाहिए।

(घ) आयात प्रशुल्क—आयात करों में आगामी चारी वर्षों तक 50% की कटौती की जानी चाहिए और वर्ष 1998-99 तक इसे 25% न्यूनतम स्तर तक घटाया जाना चाहिए।

(ङ) सम्पत्ति कर—अनुत्पदाकीय मदों पर सम्पत्ति कर समाप्त किया जाना चाहिए। पहले 15 लाख तक की सम्पत्ति को धन कर से पूर्णतः मुक्त रखा जाना चाहिए तथा इससे ऊपर की सम्पत्ति पर 1% की दर से धन कर लगाया जाना चाहिए।

(च) मूल्य संबर्धित कर (VAT) पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।

(छ) उत्पाद शुल्क (Excise Duty) के परिक्षेत्र का विस्तार किया जाना चाहिए।

2. अन्तिम रिपोर्ट—प्रथम भाग की सिफारिशें

- वर्ष 1993-94 तक निगम कर पर लगे सरचार्ज को समाप्त करके निगम कर की दर को 51.75% से घटाकर 45% किया जाना चाहिए तथा वर्ष 1994-95 में इस कर को पुनः घटाकर 40% किया जाना चाहिए।
- ब्याज कर समाप्त किया जाना चाहिए।
- उपहार कर की छूट सीमा को 20,000 रुपये से बढ़ाकर 30,000 रुपये किया जाना चाहिए।
- गैर-कृषकों की 25,000 रुपये से अधिक कृषि आय पर कर लगाया जाना चाहिए।
- निर्माण स्तर पर VAT योजना का विस्तार किया जाना चाहिए।
- बिक्री कर को राज्य VAT (State VAT) में बदला चाना चाहिए।
- करदाताओं की पहचान हेतु वर्तमान स्थायी खाता संख्या (PAN) प्रणाली के स्थान पर करदाता पहचान संख्या (TIN) लागू की जानी चाहिए।

3. अन्तिम रिपोर्ट—द्वितीय भाग की सिफारिशें

- आयात शुल्क की अधिकतम 110% की दर को घटाकर 50% करना चाहिए।
- भिन्न-भिन्न वस्तुओं के लिए आयात शुल्क की भिन्न-भिन्न दरों को अपनाया जाना चाहिए।
- करों की दरों को कम करना चाहिए।
- 1997-98 तक की दरों का समायोजन चरणबद्ध तरीके से लागू किया जाना चाहिए।
- अनाज और चावल के आयात को आयात शुल्क से मुक्त रखा जाना चाहिए, किन्तु दालों एवं तिलहनों के आयात पर 10% आयात शुल्क लगाया जाना चाहिए।

अध्याय - 19
वित्तीय मूल्यांकन
(Financial Appraisal)

अब तक आपको यह ज्ञात हो गया होगा कि आधुनिक सरकारों विकासात्मक कार्यों पर आपार धन राशि खर्च करती है। सरकार द्वारा किया गया कुल व्यय जनता को अधिकाधिक सेवाएं एवं वस्तुएं प्रदान करने के लिए बड़ी संख्या में निवेश परियोजनाओं में वितरित होता है। इन परियोजनाओं में सड़कें, पुल, बंदरगाक, परिवहन, दूर संचार, स्वास्थ्य, शिक्षा इत्यादि सम्मिलित हैं। आधुनिक सरकारों विभिन्न औद्योगिक एवं व्यावसायिक गतिविधियाँ भी अपनाती है। उदाहरण के लिए वह बैंकों एवं बीमा कंपनियों का स्वामित्व व नियंत्रण करती हैं। औद्योगिक एवं उपभोक्ता वस्तुओं जैसे इस्पात, विद्युत उपकरण, दूध एवं ब्रेड का उत्पादन करती है। इन सभी गतिविधियों के लिए दिन प्रतिदिन के व्यय के अलावा दीर्घकालीन निवेश, जो पूँजीगत निवेश भी कहलाता है, की भी आवश्यकता होती है। सरकार एवं जन अभिकरणों द्वारा किया गया निवेश भी पूँजीगत निवेश कहलाता है। वह प्रश्न जो हमे यहाँ आकृष्ट करते हैं वे हैं: निवेश के उद्देश्य क्या हैं ? अथवा सरकार दीर्घकालीन निवेश क्यों करती है ? उनका महत्त्व क्या है, लोक निवेश के निर्धारण तत्व क्या हैं ? सरकार एवं उसके निकायों द्वारा किस प्रकार की विभिन्न परियोजनाओं में निवेश किया जाता है ? निवेश निर्णय किस प्रकार से किया जाता है ? लोक निवेश के निर्णय लेने के लिए वह किस प्रक्रिया को अपनाते हैं ? लोक निवेश परियोजनाओं का वित्तीय मूल्यांकन क्यों होना चाहिए ? वित्तीय मूल्यांकन क्या है ? वित्तीय मूल्यांकन की लोकप्रिय तकनीकें क्या है ? वर्तमान शुद्ध मूल्य, आंतरिक लाभ की दर एवं लेखा लागत अनुपात वित्तीय मूल्यांकन से परिकलित किया जाता है? लोक निवेश परियोजनाओं से संबंधित अनिश्चितताएँ क्या हैं ? परियोजनाओं मूल्यांकन में किस प्रकार से इनका स्पष्टीकरण दिया जा सकता है ? लोक निवेश परियोजनाओं से जुड़ी अनिश्चितताओं के स्पष्टीकरण के लिए सूक्ष्मग्राहिता विश्लेषण उपागम क्या है ? आइये हम इन प्रश्नों को एक-एक करके सुलझाने का प्रयत्न करें।

लोक निवेश के उद्देश्य एवं महत्त्व
(Objectives and Importance of Public Investment)

भारत जैसे प्रजातांत्रिक देश में लोक निवेश का उद्देश्य अधिकतम लोगों को अधिकतम लाभ पहुँचाना होना चाहिए। निजी निवेश लाभ अथवा निजी हित से संचालित होते हैं, लोक निवेश सामाजिक उपयोगिता अथवा लाभ पर आधारित होता है क्योंकि प्रजातांत्रिक देश सामान्यतः निर्वाचक गणों की ओर से बोलते एवं कार्य करते हैं। यह राज्य की समस्त जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करती है। व्यापक अर्थों में, हम यह कह सकत हैं कि लोक निवेश के उद्देश्य लगभग राज्य के कार्यों एवं उत्तरदायित्वों के अनुरूप होते हैं।

विशेष अर्थों में लोक निवेश राष्ट्रीय सुरक्षा एवं कानून तथा व्यवस्था की आवश्यकताओं एवं जरूरतों से दिशा निर्देशित होते हैं। यह सामाजिक उपयोगिता एवं जनोपयोगिता से भी निर्देशित होते हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा, ऊर्जा, परिवहन एवं दूर संचार के क्षेत्रों में किया गया लोक निवेश सामान्यतः इस श्रेणी में आते हैं सड़कों, पुलों, बंदरगाहों, रेलों, शक्ति संयंत्रों इत्यादि में किया गया लोक निवेश सामाजिक आर्थिक आधारभूत संरचनाओं के रूप में न्यायसंगत ठहराये जाते हैं, यह विकास एवं व द्धि के उत्प्रेरक के रूप में कार्य करते हैं। सामाजिक आर्थिक आधारभूत संरचनाओं में किया गया लोक निवेश इसलिए भी तार्किक है क्योंकि इसमें अत्यधिक धन की आवश्यकता होती है तथा इनकी प्रतिफल देने में सक्षम होने की अवधि भी लंबी होती है; बाह्य बचतों के कारण यह निजी निवेश के द ष्टिकोण से अनाकृष्ट तथा अनुप्रयुक्त हो जाते है। निजी व्यवसायिकों के पास साधन सीमित होते हैं। तथा वह उनके स्वयं के अलावा दूसरों को होने वाली बचतों अथवा प्रतिफल में रुचि नहीं दर्शाते। इसके दूसरी ओर सरकार के हाथों में उनकी कर लगाने की शक्ति एवं घाटे के वित्त के कारण अपार धन राशि होती है, वह एक समाज अथवा समुदाय के रूप में दीर्घकालीन द ष्टिकोण अपना सकती है एवं अच्छे तथा बुरे प्रभावों या जो पश्चगामी और अग्रवर्ती कड़ियाँ अथवा इनके निवेशों से होने वाली बाह्य बचतें भी कहलाती हैं, का मूल्यांकन कर सकती है। आधारभूत संरचनाओं में निवेश एक अर्थव्यवस्था के सामाजिक एवं आर्थिक विकास के द ष्टिकोण से भी आवश्यक है। ऐसे कई क्षेत्रों में निवेश का सुझाव निजी एकाधिकार को समाप्त करने तथा कुछ लोगों के हाथ में संपत्ति एवं धन का केंद्रीकरण रोकने के लिए भी दिया जाता है।

लोक निवेश का महत्व इस तथ्य से भी जाना जा सकता है कि यह एक अर्थव्यवस्था के वर्तमान को इसके भविष्य से जोड़ता है। भारत जैसी अर्थव्यवस्था की व द्धि की दर अधिकांश रूप से लोक निवेश पर निर्भर करती है। यह निजी पूंजी एवं उद्यम की भूमिका को नकारने के लिए नहीं है। परंतु इस तथ्य के कारण कि लोक निवेश निजी निवेश के विकास एवं प्रोत्साहन के लिए आधारभूत संरचनात्मक सुविधाओं के विकास का आधार प्रदान करता है, यह अति महत्वपूर्ण हो जाता है।

लोक निवेश के प्रकार एवं निर्धारक तत्व
(Types and Basic Factors of Public Investment)

लोक निवेश का आकार, प्रतिरूप एवं प्रकार विभिन्न कारकों द्वारा निर्धारित होते है। लोक निवेश का आकार, प्रतिरूप एवं प्रकार निर्धारित करने वाले कारक सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था, अर्थव्यवस्था के विकास का स्तर, अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ इत्यादि पर निर्भर करते है। राज्य की प्रकृति, उसकी विचारधारा, प्रशासनिक एवं प्रबंधकीय क्षमताएं एवं सामाजिक आर्थिक क्षेत्र में उसकी भूमिका भी लोक निवेश के निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। भारत जैसे देश में जिसने मिश्रित अर्थव्यवस्था एवं राष्ट्रीय विकास योजनाओं को अपनाया है, लोक निवेश विकास कार्यनीति का एक घटक है। भारत ने यह संकल्प किया है कि वह समाज की समाजवादी व्यवस्था को अपनायेगा तथा अर्थव्यवस्था की बागडोर लोक क्षेत्र में होगी। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि भारत में लोक निवेश पिछली सात पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान निजी निवेश से कई अधिक गुणा बढ़ गया है। गरीबी एवं बेरोजगारी को समाप्त करने के लिए राष्ट्रीय आय में व द्धि भारतीय योजनाओं का मूलभूत उमूलभूत उद्देश्य है। इसे पाने के लिए लोक निवेश का भारी उद्योगों एवं सामाजिक आर्थिक आधारभूत संरचनाओं में सक्रिय उपयोग किया जा रहा है। भारतीय सरकार की रोजगार

संबंधी चिंता के कारण पुरानी एवं रुग्ण, कपड़ा, पटसन एवं अभियांत्रिक उद्योगों में भारी निवेश हुआ है। व्यक्तिगत निवेश परियोजनाओं का वर्गीकरण नवीन परियोजनाओं के विस्तार, आधुनिकीकरण एवं विविधीकरण के रूप में किया जा सकता है।

विचाराधीन परियोजनाओं में से कुछ परस्पर निवारक भी हो सकती है जिसका अर्थ है कि एक को स्वीकृति प्रदान करने से दूसरी परियोजनाओं की स्वीकृति प्रतिबंधित हो जाती है। पुराने संयंत्र की पूरी तरह से मरम्मत अथवा प्रतिस्थापन किया जाना परस्पर निवारक परियोजना का उदाहरण है। वैकल्पिक परियोजनाएं परस्पर निवारक परियोजनाओं का एक अन्य उदाहरण है। उदाहरण के लिए विद्युत उत्पादन के लिए तीन वैकल्पिक परियोजनाएं हो सकती हैं। ताप बिजली संयंत्र अथवा जल विद्युत संयंत्र अथवा परमाणु ऊर्जा संयंत्र। एक अन्य उदाहरण के लिये लघु सिंचाई परियोजनाओं द्वारा अतिरिक्त सिंचाई क्षमता बढ़ाने के लिए कई विकल्प हो सकते हैं, जैसे नल कूप, उत्थापन सिंचाई, गुरुत्वाकर्षी नहरें, वर्तमान कुओं का चौड़ा करना तथा सुधारना।

इसके अलावा स्वतंत्र परियोजनाएं भी हो सकती हैं। किसी नये उत्पादन का प्रवर्तन तथा अन्तरा विभागीय प्रशिक्षण संस्थान का आरंभ ऐसी दो स्वतंत्र परियोजनाएं हो सकती है जो परस्पर निवारक नहीं है।

लोक निवेश के निर्णय निर्माण की प्रक्रिया
(Process of Decision Making in Public Investment)

लोक निवेश कई उद्देश्यों को लेकर किया जाता है। तथा इन्हें निर्देशित करने वाले विभिन्न लोक निकाय होते हैं। यह स्वाभाविक ही है कि लोक निवेश से संबंधित निर्णयों के लिए उनकी अपनी संगठनात्मक प्रक्रियाएं होती हैं। यहां पर हम आपको भारत में लोक निवेश निर्णय निर्माण प्रक्रिया का एक व्यापक ढांचा बतलाने का प्रयत्न करेंगे।

जैसा कि आपको ज्ञात होगा, भारत ने मध्यम काल योजनाओं को अपनाया है। जिसके परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था के विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं को बनाया जाता है। पंचवर्षीय योजनाओं को तैयार करना योजना आयोग का उत्तरदायित्व है, जो कि 1950 में स्थापित किया गया था। इसके कई पूर्णकालिक एवं अंशकालिक सदस्य होते हैं। तथा यह भारत के प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में कार्य करता है। योजना आयोग का एक उपाध्यक्ष भी होता है जो कि दिन प्रतिदिन के कार्यों को देखता है। योजना आयोग प्रत्येक योजना के अंतर्गत किया जाने वाला कुल निवेश तथा लोक क्षेत्र में उसके अंश का निर्णय करता है। योजना आयोग निवेश का क्षेत्रीय एवं अन्तर राज्यीय आबंटन भी करता है। यह वित्त मंत्रालय के साथ विचार-विमर्श करके केंद्रीय वार्षिक योजना तथा राज्य सरकारों के साथ विचार विमर्श करके राज्य वार्षिक योजना को अंतिम रूप प्रदान करते हैं। योजना निवेश का क्षेत्रीय एवं अन्तरराज्यीय आवंटन विकास कार्यनीति, प्राथमिकताओं की रूपरेखा तथा संतुलित क्षेत्रीय विकास के महत्व को प्रतिबिम्बित करते हैं। यह आवश्यक रूप से ब हत स्तर के लोक निवेश निर्णय हैं जो कि संपूर्ण सीमाओं का निर्धारण करता है। यहां पर यह भी कहा जा सकता है कि ब हत स्तर पर लोक निवेश निर्णय योजना की राजनीति तथा विकास के सिद्धांतों एवं परिकल्पनाओं को भी प्रतिबिम्बित करती है। चूंकि पिछले दशक में अन्तर क्षेत्रीय, अन्तर राज्कीय एवं अन्तर सामयिक संगति का प्रश्न लगातार उछाला जाता रहा है, वैज्ञानिक योजनाओं के तहत अपनाई जाने वाली विभिन्न तकनीकें जैसे कि आगत निर्गत विश्लेषण एवं अर्थव्यवस्था के ब हत प्रतिमान योजना प्रक्रिया में अपनाये गये।

लोक निवेश के ब हत स्तर के निर्णयों के अलावा संपूर्ण आकार एवं क्षेत्रीय तथा राज्यीय आवंटन से संबंधित प्रश्न महत्वपूर्ण होते हैं। एक अन्य स्तर है सूक्ष्म स्तर अथवा परियोजना स्तर पर लोक निवेश निर्णय। योजना द्वारा निर्धारित सीमाओं के अंदर उसके आकार, क्षेत्रीय आवंटन से संबंधित विभिन्न कार्यक्रम जो कि वर्तमान व्यय एवं दीर्घकालीन परिसंपत्तियों के निर्माण दोनों को सम्मिलित करने हैं, तैयार किये जाते हैं। यह निर्णय सामान्यतः संबंधित मंत्रालयों में प्रशासनिक विभागों द्वारा एवं विशिष्ट कार्यक्रम प्राधिकारियों द्वारा योजना आयोग एवं वित्त मंत्रालय द्वारा वार्षिक बजट की निर्माण प्रक्रिया के रूप में किये जाते है। वार्षिक बजट में महत्वपूर्ण, विशाल एवं व द्विपरक पूंजीगत बजट होता है यहीं कारण है कि पूंजीगत निवेश निर्णय अथवा परियोजना निवेश निर्णय अति महत्वपूर्ण हो जाते है। प्रत्येक लोक निवेश परियोजना को वार्षिक बजट में सम्मिलित करने से पूर्व उसके निर्माण एवं मूल्यांकन के लिए एक व्यवस्था की गई है। योजना आयोग के अलावा ऐसे कई सरकारी अभिकरण हैं जो कि परियोजना स्तर पर लोक निवेश निर्णयों से संबंधित है। निवेश के आकार के संबंध में कुछ सीमाओं के अंदर, परियोजनाएं विभिन्न मंत्रालयों की व्यय वित्त समिति द्वारा स्वीकृति की जाती हैं। रोजमर्रा की एवं कम मूल्य की परियोजनाओं पर आंतरिक वित्तीय सलाहकार अथवा वित्त मंत्रालय द्वारा विचार विमर्श किया जाता है। कुल केंद्रीय निवेश का लगभग दो तिहाई भाग नित्यचर्या के वित्तीय निर्णयों के रूप में स्वीकृति किया जाता है। भारी निवेश वाली परियोजनाओं का विस्त त परियोजना मूल्यांकन किया जाता है। लोक निवेश परियोजनाओं का मूल्यांकन करने के लिए दो मुख्य अभिकरण हैं- योजना आयोग का परियोजना मूल्यांकन प्रभाग एवं लोक निवेश मंडल। इन अभिकरणों को मूल्यांकन के लिए भेजे जाने वाली परियोजनाओं की वित्तीय सीमा समय-समय पर निर्धारित की जाती है।

परियोजना मूल्यांकन की प्रकृति
(Nature of Project Evaluation)

यहाँ पर हम यह उल्लेख करना चाहेंगे कि प्रत्येक निवेश परियोजना में आवश्यक रूप से बहुगुणात्मक गतिविधियां सम्मिलित होती हैं जो कि परियोजना स्थापना के तर्काधार एवं उद्देश्यों, तकनीक का चुनाव; संयंत्र एवं मशीनों का चुनाव, उपयोग में आने वाले कच्चे माल का निर्धारण, उत्पाद का बाजार अथवा परियोजना की सेवा लागत, वित्त के साधन एवं प्रत्याशित लाभ को निर्धारित करती हैं। इसके पश्चात इस प्रकार की गतिविधियाँ जैसे कि भूमि का अधिग्रहरण, मशीनरी एवं संयंत्र वित्त का प्रबंध, सरकारी एवं अन्य वैधानिक निकासियां प्राप्त करना इत्यादि अपनाई जाती हैं। ये गतिविधियाँ परियोजना के आरंभ से शुरू हो जाती हैं जो कि परियोजना के उद्देश्यों को पूरा करती हैं।

परियोजना मूल्यांकन में आंकड़ों का संकलन, लागतों का अनुमान, लाभों एवं लाभदायकता को आवश्यक रूप से सम्मिलित किया जाता है। संबद्ध आंकड़े प्राथमिक साधनों जैसे कि बाजार अथवा सहायक साधनों जैसे कि सरकारी प्रकाशनों अथवा उद्योग एवं अनुसंधान निकायों के प्रकाशनों से एकत्रित किये जा सकते हैं। एक बार संबद्ध आंकड़े एकत्रित हो जायें तो परियोजना की संभावित लागत तैयार की जा सकती है जो कि भूमि एवं भवन की लागत से शुरू होकर, संयंत्र एवं मशीनरी की लागत, कर एवं शुल्क, विविध स्थायी परिसंपत्तियाँ, स्थायी कार्यकारी पूंजी की आवश्यकताएं अनुमानित संचालन पूर्ण व्यय एवं आकस्मिक व्यय का अनुमान लगाती हैं।

एक बार परियोजना की लागत का अनुमान लगा लिया जाये तो यह आवश्यक हो जाता है कि कार्यान्वयन की सूची, क्षमता उपयोगिता, कच्चे माल की लागत एवं अन्य संबंधित लागतों, संभावित विक्रय मूल्य इत्यादि से संबंधित कुछ निश्चित पूर्वानुमान लगा लिये जायें जिससे अनुमानित प्रतिलाभ एवं परियोजना की लाभदेयता का अनुमान हो जाये। अनुमानित एवं अपेक्षित प्रतिफल की तुलना परियोजना की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति का आधार बनती है। अनुमानित/अपेक्षित प्रतिफल में क्या सम्मिलित किया जाता है ? यह वास्तव में परियोजना मूल्यांकन की प्रकृति एवं केन्द्र बिन्दु पर निर्भर करता है। परियोजना मूल्यांकन के कई आयाम हो सकते हैं जो कि इस बात पर निर्भर करते हैं कि मूल्यांकन परियोजना अधिकारी अथवा वित्त प्रदान करने वाले अधिकारियों द्वारा किया जा रहा है जबकि परियोजना अधिकारियों का संबंध सामान्यतः तकनीकी, वित्तीय एवं आर्थिक अथवा सामाजिक मूल्यांकन से होता है। वित्त प्रदान करने वाले अधिकारी इसके अलावा प्रबंधकीय मूल्यांकन से भी दिलचस्पी लेते हैं। आइये हम परियोजना मूल्यांकन के इन आयामों की संक्षेप में व्याख्या करें।

तकनीकी मूल्यांकन तकनीकी स्थिति, यंत्रों की क्षमताओं, उत्पादन कार्यक्षमता एवं अवस्थापन प्रभावों को ध्यान में रखकर परियोजना की तकनीकी व्यवहार्यता का मूल्यांकन करती है। सरल शब्दों में यह निर्णय लेने का प्रयास किया जाता है कि क्या परियोजना प्रस्ताव में विचारित उत्पादन गतिविधि प्रस्तावित स्थान पर संभव है तथा क्या उसके द्वारा इच्छित उत्पादन स्तर अनमानित लागत पर उपलब्ध होगा।

वित्तीय मूल्यांकन परियोजना की व्यावसायिक व्यवहार्यता को परखने का प्रयास करता है। यह स्थापित करने का प्रयास करता है कि एक तर्कसंगत समयावधि में क्या परियोजना उसे वित्त प्रदान करने के लिए प्राप्त ऋण को चुका पायेगी एवं समद ष्टि निधि की पूर्ति करने वालों को समुचित लाभ प्रदान कर पायेगी। यह परियोजना की निश्चित वित्तीय लागतों एवं परियोजना को प्रायोजित करने वाले निकायों के लाभों पर केंद्रित होता है।

आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन अर्थव्यवस्था अथवा समाज का व्यापक द ष्टिकोण अपनाता है। यह परियोजना की न्यायसंगतता आर्थिक अथवा सामाजिक लागतों एवं परियोजना से समस्त अर्थव्यवस्था अथवा समाज को होने वाले लाभों की तुलना करके आंकने का प्रयत्न करता है। प्रबंधकीय मूल्यांकन को प्रोत्साहनकर्ताओं की ईमानदारी एवं परियोजना निर्माण एवं कार्यान्वयन करने वाले प्रबंधकीय दल की क्षमता को आंकने का प्रयत्न करता है। इसका लक्ष्य प्रोत्साहनकर्ताओं एवं प्रबंधकों की परियोजना को नियोजित रूप से चलाने की प्रतिबद्धता की परख करने का होता है।

आप यह जान गये होंगे कि परियोजना मूल्यांकन के चार मुख्य आयाम होते हैं, जैसे कि तकनीकी मूल्यांकन, वित्तीय मूल्यांकन, आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन एवं प्रबंधकीय मूल्यांकन। जैसा कि ऊपर कहा गया है प्रबंधकीय मूल्यांकन परियोजना को वित्त प्रदान करने वाले अभिकरणों द्वारा लागू किया जाता है, यह वित्तीय संस्थाएं जैसे कि भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, भारतीय औद्योगिक ऋण एवं निवेश निगम अथवा अंर्तराष्ट्रीय निकाय जैसे कि विश्व बैंक, एशियाई विकास बैंक इत्यादि भी हो सकती हैं। लोक क्षेत्र में परियोजना अधिकारी तकनीकी, वित्तीय एवं आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन पर ध्यान केंद्रीत करते हैं। आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन ईकाई 17 में विवेचना का विषय होगा। आगामी भाग में हम निवेश परियोजनाओं के वित्तीय मूल्यांकन की कुछ तकनीकों की व्याख्या करेंगें।

वित्तीय मूल्यांकन की तकनीकें
(Techniques of Financial Evaluation)

आपने यह देखा होगा कि निवेश परियोजनाओं में अपार धन राशि लगी होती है। इन परियोजनाओं से प्रतिफल भविष्य में उपलब्ध होता है जो कि दूरस्थ एवं कई वर्षों तक फैला हुआ हो सकता है। आप यह पाते हैं कि इन निवेशों में लगाया गया धन तथा इनसे प्राप्त होने वाला धन अलग-अलग समयावधि से संबंधित होता है। मुद्रास्फीति के इस दौर में, जिसमें कि हम सब रह रहे हैं आज का एक रुपया भविष्य के एक रुपये से अधिक मूल्यवान है। इसके अलावा भविष्य की अनिश्चितताएं हाथ में आये एक रुपए को भविष्य में प्राप्त होने वाले रुपये से अधिक मूल्यवान बना डालती है। परिणामस्वरूप परियोजनाओं का वित्तीय मूल्यांकन करते समय धन का यह समय मूल्य अति महत्वपूर्ण हो जाता है। पिछले कई वर्षों से मूल्यांकन की कई तकनीकें विकसित हुई हैं। इनमें से मुख्य हैंः प्रतिफल प्राप्त होने की अवधि, प्रतिफल की लेखा दर, वर्तमान शुद्ध मूल्य, आंतरिक प्रतिफल दर एवं लागत लाभ अनुपात अथवा लाभदेयता सूचकांक। प्रथम दो यानि वे प्रतिफल प्राप्त होने की अवधि एवं प्रतिफल की लेखा दर तकनीकें धन के समय मूल्य की धारणा को नहीं मानते। अतः उन्हें लोक निवेश के कार्यों के लिए नहीं अपनाया जाता। वर्तमान शुद्ध मूल्य, प्रतिफल की आंतरिक दर एवं लागत लाभ अनुपात लोक निवेश परियोजनाओं के वित्तीय मूल्यांकन के लिए सामान्य रूप से अपनाया जाता है। आईये हम प्रत्येक का संक्षेप में विवेचन करें।

कुल वर्तमान मूल्य
(Total Present Value)

वर्तमान शुद्ध मूल्य जैसा कि नाम से ही ज्ञात होता है ऐसी तकनीक है जिसमें निवेश परियोजनाओं का वित्तीय मूल्यांकन परियोजना के नकद लागत एवं निर्गत के अंतर वर्तमान मूल्य के आधार पर किया जाता है। तदनुसार, वर्तमान शुद्ध मूल्य के आधार पर परियोजना मूल्यांकन के लिए हमें निम्न कार्य करने होंगे।

1. परियोजना की आर्थिक जिन्दगी के दौरान (वर्ष प्रति वर्ष) नकद आगत एवं निर्गत का अनुमान लगाना।
2. परियोजना के आर्थिक जीवन के दौरान नकद आगतों एवं निर्गतों की तुलना करके शुद्ध नकद प्रवाह का निर्धारण करना।
3. शुद्ध नकद प्रवाह में कटौती जिसमें उपयोग में लाई गई कटौती की दर अपेक्षित प्रतिफल की दर के समान होती है।
4. परियोजना का कटौती के बाद शुद्ध मूल्य अथवा वर्तमान मूल्य का निर्धारण।
5. अगर वर्तमान शुद्ध मूल्य धनात्मक है तो परियोजना को स्वीकृति प्रदान करना तथा अगर वर्तमान शुद्ध मूल्य ऋणात्मक है तो परियोजना को अस्वीकृत करना।

आप यह आसानी से अवलोकन कर पायेंगे कि वर्तमान शुद्ध मूल्य तकनीक से परियेजना मूल्यांकन करने के लिए हम केवल परियोजना से संबंधित नकद लागत एवं निर्गत में रुचि लेते हैं तथा लेखा के तरीकों आय एवं व्यय में नहीं जो कि नकद के अलावा अन्य घटकों को भी सम्मिलित करते हैं। एक उदाहरण के लिए, एक निश्चित अवधि में लाभ एवं हानि खाते का मूल्य ह्रास एक महत्वपूर्ण मद होती है, यह उसी अवधि के दौरान नकद निर्गतों का भाग नहीं होता है। अतः एक परियोजना के वर्तमान शुद्ध मूल्य का परिकलन करने के लिए हम केवल परियोजना

से संबंधित नकद लागत एवं निर्गत पर ही ध्यान केंद्रित करते हैं तथा समस्त गैर नकद आय एवं व्यय को नजर अंदाज कर देते हैं। इसके अलावा यह भी महत्वपूर्ण है कि इसे वर्तमान शुद्ध मूल्य के परिकलन के लिए ध्यान में रखा गया। नकद प्रवाह करों की कटौती के पश्चात पंरतु ब्याज प्रभार से पहले होता है। यह कर के बाद क्यों किये जाते हैं ? यह समझना आसान है। चूंकि कर उत्तरदायित्व किसी भी आय 'अथवा नकद प्रवाह परियोजना अधिकारियों के पास उपलब्ध होने से पूर्व निभाना पड़ता है, अतः परियोजना से संबंधित कुल नकद प्रवाह कर उत्तरदायित्व प्रदान करने के पश्चात् ही लिया जाता है। परंतु यह ब्याज से पूर्व क्यों होता है। इसके लिये कुछ स्पष्टीकरण की आवश्यकता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है, ब्याज से पूर्व नकद प्रवाह का निर्धारण इसलिए किया जाता है क्योंकि परियोजना के नकद प्रवाह में कटौती करने के लिए अपेक्षित प्रतिफल दर में ब्याज भी सम्मिलत होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि अपेक्षित प्रतिफल दर और कुछ नहीं बल्कि वित्त के विभिन्न स्त्रोतों जिसमें ऋण भी सम्मिलित है का भारित औसत लागत है।

वर्तमान शुद्ध मूल्य के परिकलन के संबंध में, यह भी महत्वपूर्ण है कि किसी परियोजना से संबंधित नकद प्रवाह परियोजना के आर्थिक जीवन के काल में ही विचार में रखा जा सकता है। अन्य शब्दों में इसका अर्थ है कि एक परियोजना के नकद प्रवाह उसके उपयोगी एवं लाभदायक आर्थिक जीवन के दौरान ही विचार के लिए जायेंगे एवं उसके भौतिक जीवन काल तक नहीं। एक निवेश परियोजना का आर्थिक जीवन उसके भौतिक जीवनकाल से छोटा होता है।

वर्तमान शुद्ध मूल्य की तकनीक को समझने के लिए हम एक उदाहरण लेंगे। परंतु उससे पूर्व हमें संक्षेप में वर्तमान शुद्ध मूल्य के परिकलन के लिए अपनाई गई कटौती की प्रक्रिया को समझना होगा।

शुरू करने के लिए यह याद रखना आवश्यक होगा कि वर्तमान मूल्य भविष्य मूल्य का कटौती मूल्य है। यह अधिक परिचित वर्तमान राशि की मिश्रित मूल्य का विपरीत होता है। अतः वर्तमान मूल्य की भविष्य राशि की कटौती द्वारा परिकलन की प्रक्रिया को समझने के लिए, हम चक्रव द्धि ब्याज के सूत्र से जो कि आपने विद्यालय में पढ़ा होगा, आरंभ करेंगे। आपको याद होगा कि एक रुपया 100 रुपयों की राशि (Po=100 रुपए) का अगर एक वर्ष (n=1) के लिए 10 % ब्याज की दर से निवेश किया जाये तो एक वर्ष के पश्चात् वह 110 रुपये तथा दो वर्षों के अंत में यह 121 रुपये हो जायेगा तथा यह राशि तीन, चार, पांच अथवा इससे अधिक वर्षों के अंत में क्या हो जायेगा ? यह निम्न सूत्र के साथ आसानी से जाना जा सकता हैः

$$P_1 = P_0 (1+r)^n$$

जहां पर P_1 = एक वर्ष के अंत में भविष्य राशि है।

P_0 = वर्तमान राशि है।

r = ब्याज की दर है।

n = समयावधि है।

अतः एक वर्ष के अंत में यह हो जायेगा

$$P_1 = 100 (1+ 10)^1 = 110$$

दो वर्षों के अंत में यह हो जायेगा।

$$P_2 = 100 (1 + 10)^2 = 121$$

$P_3 = 100\ (1 + 10)^3 = 133.10$
$P_4 = 100\ (1 + 10)^4 = 146.41$
$P_5 = 100\ (1 + 10)^5 = 161.05$

इसी प्रकार से आप वर्तमान राशि का भविष्य मूल्य किसी भी समयावधि के अंत में एक दी गई ब्याज दर पर निकाल सकते है।

अब अगर हम इन परिकलनों पर अन्य प्रकार से देखें तो हम कह सकते हैं कि 100 रुपये इस वर्ष के अंत में मिलने वाली 110 रुपयों की राशि का वर्तमान मूल्य है जहां पर कटौती की दर 10 प्रतिशत है। अथवा 100 रुपये दो वर्ष के अंत में 10 प्रतिशत कटौती की दर से मिलने वाली 121 रुपयों की राशि का वर्तमान मूल्य है। तथा 100 रुपये 5 वर्ष के अंत में 10 प्रतिशत कटौती की दर से मिलने वाली 161.05 की राशि का वर्तमान मूल्य है। इसे एक मूत्र के रुप में रखे तो :

जहां पर चिन्ह (16.1) के समान की महत्त्व रखते हैं। अतः एक वर्ष के अंत में 10 प्रतिशत की कटौती दर से 110 रुपयों का वर्तमान मूल्य है :

$= 110\ (1 + 10) = 110$

एक भविष्य राशि के वर्तमान मूल्य का निर्धारण करने के लिए आप वर्तमान मूल्य सूत्र की मदद से गणनाओं के समय खर्च करने की बजाय, आप वर्तमान मूल्य सारणी का उपयोग कर सकते हैं।

आईये अब हम वर्तमान शुद्ध मूल्य तकनीक के अध्ययन के लिए एक विशिष्ट उदाहरण ले कर करें।

उदाहरण-1

के० सी० डी० सी० एक निवेश परियोजना पर विचार कर रही है जिसका नकद प्रवाह निम्न प्रकार से है :

1	8
2	20
3	15
4	10
5	5

अगर अपेक्षित प्रतिफल की दर 15 प्रतिशत प्रति वर्ष है, तो इस परियोजना को स्वीकृति किया जाये अथवा नहीं ?

आइये पहले हम इस मामले के तथ्यों को समझें। उपरोक्त तथ्य यह दर्शाते हैं कि सी॰ डी॰ सी॰ एक परियोजना पर विचार कर रही है जिसमें आरंभ में नकद 30 लाख रुपयों, की जरूरत होगी। परियोजना की पांच वर्षों की अवधि में यह प्रत्येक वर्ष क्रमशः 8 लाख रुपये 20 लाख रुपये, 15 लाख रुपयें, 10 लाख रुपये एवं 5 लाख रुपये पैदा करेगी। कुल नकद प्रवाह के यह आंकड़ें मूल्यह्रास एवं ब्याज से पूर्व परंतु करों के पश्चात् की राशि दर्शाते हैं। यह आंकड़ें परियोजना के आरंभ होने के पश्चात् की शुद्ध नकद लागत भी है एवं परियोजना के अंत में उपलब्ध अवशिष्ट मूल्य अथवा शेष बचा हुआ मूल्य भी है।

अब, इस परियोजना का शुद्ध वर्तमान मूल्य ज्ञात करने के लिये के सी॰ डी॰ सी॰ निम्न प्रकार से एक सारणी तैयार करेगी :

परियोजना

वर्ष	कुल नकद प्रवाह (लाख रुपयों में)	वर्तमान साधन मूल्य 15% पर	वर्तमान मूल्य (लाख रुपयों में)
0	–30	1.000	–30.00
1	8	0.870	6.96
2	20	0.756	15.12
3	15	0.658	9.87
4	10	0.572	5.72
5	5	0.497	2.49

आपने नोट किया होगा कि इस परियोजना का वर्तमान कुल मूल्य 10.16 लाख रुपये है अतः इसे कार्यान्वयन के लिए स्वीकृति किया जा सकता है। अब मान लीजिए कि के॰ सी॰ डी॰ सी॰ के पास चार परियोजना प्रस्ताव विचारधीन थे, जिनका कुल मूल्य निम्न प्रकार से था :

परियोजना	वर्तमान शुद्ध मूल्य (लाख रुपयों में)
A	10.16
B	–8.64
C	9.50
D	12.50

वर्तमान मूल्य की तकनीक के अनुसार के॰ सी॰ डी॰ को A C एवं D परियोजनाओं को स्वीकृति कर देना चाहिए, अगर उसके पास इन्हें कार्यान्वित करने के लिये आवश्यक धन राशि है। परियोजना B को इसलिये स्वीकृत नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि उसका वर्तमान शुद्ध मूल्य ऋणात्मक है। अब अगर वित्त के अभाव के कारण के सी॰ डी॰ सी॰ को कोई एक परियोजना स्वीकृत करनी हो तो परियोजना D को स्वीकृत किया जाना चाहिए क्योंकि उसका वर्तमान कुल मूल्य सबसे अधिक है। अतः हम कह सकते हैं कि वर्तमान कुल मूल्य तकनीक द्वारा परियोजना मूल्यांकन के अनुसार धनात्मक वर्तमान कुल मूल्य वाली परियोजना स्वीकृत की जानी चाहिए। अगर एक से अधिक परियोजनाओं में चुनाव करना हो तो अधिकतम वर्तमान कुल मूल्य वाली परियोजना को स्वीकृत किया जाना चाहिए। आंतरिक प्रतिफल दर तकनीक के अंतर्गत हम वह कटौती दर निकालते हैं जिस पर समस्त भविष्य कुल नकद प्रवाह का कुल वर्तमान मूल्य आरंभिक नकद प्रवाह के बराबर होता है, अन्य शब्दों में कुल वर्तमान मूल्य शून्य होता है। यह कटौती दर आंतरिक प्रतिफल की दर कहलाती है। इस तरह सबसे प्राप्त आंतरिक प्रतिफल दर की तुलना अपेक्षित प्रतिफल दर से की जाती है जिससे कि परियोजना की स्वीकार्यता का पता चल जाये। निणर्य नियम एकदम सरल है। अगर आंतरिक प्रतिफल की दर अपेक्षित प्रतिफल के बराबर अथवा उससे ज्यादा है तो परियोजना स्वीकार कर ली जाती है अथवा नहीं आंतरिक प्रतिफल दर का परिकलन करने के लिए परीक्षण प्रणाली को अपनाना पडता है। आइये हम एक मामले का अध्ययन उदाहरण के लिये करें।

उदाहरण-2

के॰ सी॰ डी॰ सी॰ के पास एक निवेश परियोजना विचाराधीन है जिसके अनुमानित शुद्ध नकद प्रवाह निम्नलिखित हैं :

वर्ष	शुद्ध नकद प्रवाह (लाख रुपयों में)
0	–50
1	20
2	17.5
3	15
4	12.5
5	10

अगर अपेक्षित प्रतिफल की दर 15 प्रतिशत है तो क्या के॰ सी॰ डी॰ सी॰ को यह परियोजना स्वीकृत करनी चाहिये अथवा नहीं ?

आंतरिक प्रतिफल दर तकनीक के अंतर्गत पहले कदम के रूप में हम उस कटौती दर को ढूढ़ने का प्रयत्न करेगें जो कि भविष्य की सभी नकद प्रवाह के वर्तमान मूल्य को आस्मिक नकद बाहिर्वाह यानी कि इस मामलों में 50 लाख रुपयों के बराबर करती हो अथवा शुद्ध वर्तमान मूल्य शून्य है। इसलिए इसे परीक्षण प्रणाली कहते हैं। आइये, शुरुआत के तौर पर हम 20 प्रतिशत प्रतिवर्ष कटौती दर से परीक्षण करें परिणामों को निम्नलिखित सारणी में दर्शाया गया है :

वर्ष	कुल नकद प्रवाह (लाख रुपयों में)	वर्तमान साधन मूल्य 20% पर	वर्तमान मूल्य (लाख रुपयों में)
0	–50	1.000	–50
1	20	0.833	16.66
2	17.5	0.694	12.15
3	15	0.579	8.69
4	12.5	0.482	6.02
5	10	0.402	4.02
		कुल वर्तमान मूल्य =	–2.46

आपने यह देखा होगा कि 20% कटौती दर पर वर्तमान कुल मूल्य शून्य नहीं है। वह -2.46 है। अतः हमें किसी ओर कटौती दर से परीक्षण करना होगा। अब क्या वह 20 % से अधिक होना चाहिए अथवा कम ? वह 20 % से कम होनी चाहिये क्योंकि हमने 16.6.1 में पाया था कि कटौती दर के कम होने से वर्तमान मूल्य बढ़ता है एवं इसके विपरीत होता है। आइये अब हम 16 % कटौती दर से प्रयत्न करें।

वर्ष	कुल नकद प्रवाह (लाख रुपये)	वर्तमान साधन मूल्य 16% पर	वर्तमान मूल्य (लाख रुपये)
0	–50	1.000	–50
1	20	0.862	17.24
2	17.5	0.743	13.00
3	15	0.641	9.62
4	12.5	0.552	6.90
5	10	0.476	4.76
		वर्तमान कुल मूल्य =	–1.52

हम पाते हैं कि 16% कटौती दर पर भी वर्तमान कुल मूल्य शून्य नहीं है। परंतु अब एक चीज स्पष्ट हो गई कि वह कटौती दर जिस पर भविष्य के समस्त नकद प्रवाह का वर्तमान मूल्य आरंभिक

नकद लागत के बराबर हो जाएगा (अथवा वर्तमान शुद्ध मूल्य शून्य हो जायेगा) 16 % एवं 20% के मध्य में स्थित है परंतु उस निश्चित दर को कैसे प्राप्त किया जाये ? क्या हम 16% एवं 20 % के मध्य कोई और कटौती दर का परीक्षण कर सकते हैं। निश्चित रूप से, इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। हम अपनी उपलब्ध जानकारी की मदद से सुनिश्चित कटौती दर आन्तर गणन सूत्र की सहायता से प्रदान कर सकते हैं। आन्तर गणन सूत्र निम्न प्रकार से है:

आंतरिक प्रतिफल दर

जहां पर, = कटौती की निचली दर (उपयोग में लाई दो दरों में से)

= कटौती की उच्च दर (उपयोग में लाई दो दरों में से)

= निचली कटौती दर पर वर्तमान शुद्ध मूल्य (धनात्मक अथवा ऋणात्मक चिन्ह को हटा कर)

= उच्च कटौती दर पर वर्तमान शुद्ध मूल्य (धनात्मक/ऋणात्मक चिन्ह को हटाकर)

आइये अब हम उपयोग सूत्र में संख्या मूल्यों का प्रतिस्थापन करके आंतरिक प्रतिफल दर निकालें:

आंतरिक प्रतिफल दर $= 16+\frac{1.52}{1.52+2.46}\times(20-16)$

$= 16+\frac{1.52}{3.98}\times 4$

$= 16 + 1.53 = 17.53.$

अतः इस परियोजना की आंतरिक प्रतिफल दर 17.53 है। चूंकि अपेक्षित प्रतिफलज दर 15 % है, परियोजना जिसकी आंतरिक प्रतिफल दर 17.53 % है। निशचित रूप से स्वीकार्य है।

लागत लाभ अनुपात

वर्तमान कुल मूल्य एवं आंतरिक प्रतिफल दर के अलावा वित्तीय मूल्यांकन के लिए लागत लाभ अनुपात अथवा लाभदेयता सूचकांक प्रणाली का भी उपयोग कर सकते हैं। सभी तकनीक के अंतर्गत परियोजना के आर्थिक जीवन के दौरन शुद्ध नकद अन्तर्वाह का वर्तमान मूल्य शुद्ध नकद बाहिर्वाह के वर्तमान मूल्य के अनुपात के रूप में दर्शाया जाता है।

इसका सूत्र है :

$$\text{लागत लाभ अनुपात} = \frac{\text{कुल नकद अन्तर्वाह का वर्तामान मूल्य}}{\text{कुल नकद बाहिर्वाह का वर्तमान मूल्य}}$$

उदाहरण- में लिये गये परियोजना आंकड़ों से लागत लाभ अनुपात निम्न प्रकार से निकाला जा सकता है :

$$\text{लागत लाभ अनुपात} = \frac{40.16}{40}\times 100 = 1.34 = 134\%$$

अतः लागत लाभ अनुपात एक अनुपात (अथवा प्रतिशत) के में निकाला जा सकता है। लागत लाभ अनुपात का उपयोग एकदम सरल है। एक परियोजना स्वीकृति होती है यदि लागत लाभ अनुपात एक या एक सौ प्रतिशत से अधिक हो। लागत लाभ अनुपात के आधार पर अगर एक

से अधिक परियोजना में से चुनाव करना हो तो, नियम यह है कि जितना उच्च अनुपात हो उतना ही बेहतर है।

हम वित्तीय मूल्यांकन पर अपने विचार विमर्श को यह कहकर समाप्त करते हैं कि उपरोक्त व्याख्यायित तीनों तकनीकें समान रूप से लोकप्रिय हैं तथा अधिकांश रूप से संयोजन द्वारा न कि अलग-अलग उपयोग में लाई जाती है।

सारांश
(Conclusion)

वर्तमान इकाई में हमने लोक निवेश के उद्देश्यों एवं महत्व की व्याख्या की है। जबकि व्यापक अर्थों त में लोक निवेश का उद्देश्य "अधिकतम जनता को अधिकतम लाभ" पहुँचाना है, विशिष्ट अर्थों में इसका उद्देश्य एक प्रजातांत्रिक राज्य में लोक निवेश की सामाजिक उपयोगिता अथवा सामाजिक लाभ को अधिकतम बनाना है। यह नोट किया गया है कि लोक निवेश का आकार, प्रतिरूप एवं प्रकार विभिन्न कारकों जैसे कि आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्था की प्रकृति, अर्थव्यवस्था के विकास का स्तर, अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ इत्यादि पर निर्भर करते हैं।

लोक निवेश निर्णय निर्माण प्रक्रिया के दोनों समष्टि एवं व्यष्टि आयाम हैं तथा इसमें विभिन्न सरकारी अभिकरण सम्मिलित हैं। परियोजना स्तर पर, परियोजना मूल्यांकन में आवश्यक रूप से आंकड़े एकत्र करना एवं परितुलन, लागत का अनुमान, लाभ एवं लाभदेयता तथा परियोजना चुनाव मापदण्ड अथवा अपेक्षित प्रतिफल दर से उसकी तुलना करके यह निर्णय लिया जाता है कि परियोजना को अपनाया जाये अथवा नहीं। परियोजना मूल्यांकन के कई आयाम हो सकते हैं जैसे कि तकनीकी, वित्तीय, आर्थिक अथवा सामाजिक एवं प्रबंधकीय। वित्तीय मूल्यांकन जो कि इस इकाई का मुख्य केंद्र बिंदु है, परियोजना की व्यवसायिक व्यवहार्यता को परखता है।

शुद्ध वर्तमान मूल्य आंतरिक प्रतिफल दर एवं लागत लाभ अनुपात वित्तीय मूल्यांकन को तीन व्यापक रूप से उपयोग में आने वाली तकनीकें हैं। इस इकाई के पश्चात् हम इकाई 14 में परियोजना के आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन की विस्त त रूप से व्याख्या करेंगे।

आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन
(Economic and Social Appraisal)

इकाई 16 में हमने परियोजना विश्लेषण तथा मूल्यांकन की तकनीकों एवं संकल्पनाओं की व्याख्या की है। उनमें चर्चा का केंद्र बिन्दु मुख्यतः एक परियोजना से संबंधित नकद अन्तर्वाह एवं बहिर्वायह ही थे। निर्विवाद रूप से, मूल्यांकन की तकनीक उन परिणामवाचक एवं मौद्रिक लाभों एवं लागतों से संबंधित थी जो कि परियोजना अधिकारी अथवा उद्यम को प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त होते थे। परंतु इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि अन्य कोई प्रासंगिक विचारणीय मुद्दे नहीं हैं। वास्तव में, विभिन्न आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरण से संबंधित विचार अर्थात गैर वित्तीय विचार कुछ स्थितियों में वित्तीय विचारों से अधिक महत्वपूर्ण हो जाते हैं। यह गैर वित्तीय विचार मुद्दे क्या हैं जिन्हें पूंजीगत परियोजनाओं के चुनाव एवं मूल्यांकन के समय विचार में रखना होता है ? यह कितने प्रांसगिक हैं ? परियोजना विश्लेषण में गैर वित्तीय विचार मुद्दों को किस प्रकार से सम्मिलित किया जाए ? इस संबंध में उपयोगी अवधारणाएं एवं तकनीकें क्या हैं ? आइये इस परियोजना से संबंधित गैर वित्तीय मुद्दों पर प्रकाश डालकर अपनी बात आरंभ करें।

गैर वित्तीय तर्क विचार
(Non Financial Rational View)

वित्तीय प्रतिफलनों के अतिरिक्त, अर्थात परियोना से परियोजना अधिकारियों को होने वाले प्रत्यक्ष लाभों के अतिरिक्त एक परियोजना से संबंधित कुछ गैर वित्तीय प्रतिफल भी होते हैं जो व्यापक रूप से आर्थिक सामाजिक एवं पर्यावरणीय लागत एवं लाभ होते हैं। ये समस्त सामाज अथवा अर्थव्यवस्था को प्राप्त होते हैं।

परियोजना के आर्थिक लाभ एवं लागत देश की अर्थव्यवस्था को परियोजना से होने वाले अवसर लागत एवं लाभ होते हैं। क्षेत्रीय अवसर लागत यह आय या प्रतिफल हानि है जो कि निवेश के वैकल्पिक उपयोग के कारण होती है। अवसर लाभ निवेश के वैकल्पिक उपयोग से होने वाली अतिरिक्त आय अथवा प्रतिफल है। उदाहरण के लिए, अगर यह एक ऐलूमिनियम के उत्पादन की परियोजना है, जो आयातित तांबे का विकलप सिद्ध होगा, तो इससे देश की विदेशी मुद्रा स्थिति पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। परियोजना का उत्पादन यानी ऐलुमिनियम का जब आयातित तांबे के विकल्प के रूप में उपयोग होगा तो देश की विदेशी मुद्रा बचेगी। एक अन्य उदाहरण लें, अगर एक परियोजना उर्वरकों के उत्पादन के लिये है जो स्थानीय निर्मित नेप्था का उपयोग करती है। परंतु नेप्था उत्पादक आयातित गैसोलीन का उपयोग करते हैं, तो इस परियोजना का देश की विदेशी मुद्रा स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। उर्वरक परियोजना द्वारा नेप्था उत्पादक उसे पूरा करने के लिए अधिक गैसोलीन आयात करेंगे, जिससे देश की विदेशी मुद्रा स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। अतः इन दोनों के परियोजनाओं के मामलें में परियोजना नकद प्रवाह के अतिरिक्त देश की विदेशी मुद्रास्फिति पर उनके प्रभाव का भी ध्यान रखना होगा।

परियोजना की सामजिक लागत एवं लाभ समाज के विभिन्न वर्गों को को होने वाली हानियों अथवा लाभों के रूप में देखे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, अपनी परियोजना को सेवारत करने के लिए अगर परियोजना अधिकारी शिक्षा संस्थानों, अस्पतालों इत्यादि की सुविधाओं का भी निर्माण करते हैं जो कि उस क्षेत्र में रहने वाले अन्य लोगों को भी उपलब्ध होगी तो वह समाज के इस वर्ग के लिए अतिरिक्त लाभ होगा। दूसरी ओर, अगर परियोजना कोयले से चलने वाले ताप शक्ति संयंत्र की है, तो कि राख भरा धुआं छोड़ता है, तो यह उस क्षेत्र में रहने वाले लोगों के लिए एक अन्य अतिरिक्त भार होगा क्योंकि इससे पर्यावरण दूषित होगा तथा उनकी जिंदगी खराब हो जाएगी इससे आस पास का क्षेत्र भी खराब होगा एवं उस क्षेत्र में रहने वाले लोगों के स्वास्थ्य पर भी विपरीत असर पड़ सकता है।

पर्यावरण लाभ एवं लागत भी परियोजना के महत्वपूर्ण गैर वित्तीय पहलू हैं। उदाहरण के लिए, एक जल विद्युत परियोजना है, जिसके अंतर्गत एक बांध बनाया जाना है। अगर जल आस-पास की बंजर भूमि को उर्वरक बना कर हरियाली फैला देर तो यह नदी के आसपास के क्षेत्र के लिए लाभ होगा। दूसरी ओर अगर यह अपने विशाक्त अवशेषों को नदी की धारा में छोड़ता है, तो यह पर्यावरण पर अतिरिक्त भार होगा। एक क्षेत्र में सिंचाई नहरें बनाने जैसी परियोजना भी, जो कि कृषि उत्पादन के लिए सिंचाई सुविधाएं प्रदान करके बहुत सा लाभ प्रदान करती है, पर्यावरण पर भार डालती है। क्षेत्र में नहरों का जाल नीचे से जल स्तर को ऊँचा कर सकता है, जिसके कारण क्षारीय अथवा लवणीय पदार्थ ऊपर की ओर आना शुरू कर देंगें। क्षारीय अथवा लवणीय पदार्थों द्वारा आक्रमित भूमि भार सिद्ध होगी। जल स्तर के बढ़ने के कारण उस क्षेत्र

की वनस्पति जलवन में भी परिवर्तन आये, जिससे क्षेत्र के पेड़ पौधों में भी परिवर्तन आयेगा। कुछ पक्षियों एवं पशुओं की दुर्लभ जातियां जो कुछ विशेष वनस्पति पर निर्भर होती हैं या तो नष्ट हो सकती हैं अथवा वहां से भाग सकती हैं। यह उस परियोजना द्वारा प्रदत्त पर्यावरण लागत होगी।

पिछली इकाई में चर्चित वित्तीय मूल्यांकन परियोजना के आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरण संबंधी आयामों को कितना आच्छादित करता है ? आइये हम इस प्रश्न की व्याख्या आगामी भाग में करें।

आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन की आवश्यकता
(Need for Economic and Social Appraisal)

हम यह समझ सकते हैं कि परियोजनाएं समाज, या जीवन से अलग-अलग नहीं होती हैं। उनका एक सामाजिक संदर्भ होता है। भारत जैसे विकासशील अर्थव्यवस्था के संदर्भ में निवेश परियोजना अधिकतर आर्थिक विकास के साथ सामाजिक न्याय स्थापित करने के साधन के रूप में देखें जाते हैं। लोक निवेश परियोजनाओं से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सामान्य लाभ में अधिकतम सहयोग प्रदान करेगी। क्या वर्तमान कुल मूल्य जैसे वित्तीय मूल्यांकन के मापदण्ड (जैसा इकाई 16 में बताया गया है) अधिकतम जनसंख्या को अधिकतम लाभ सुनिश्चित करते हैं। इस प्रश्न के उत्तर का कुछ भाग समाज के आर्थिक एवं औद्योगिक संगठन पर निर्भर करता है। सामान्यतः वर्तमान शुद्ध मूल्य विश्लेषण के लिए उपयोग में लाई गई कीमतें एवं लागतें आर्थिक मूल्यों का सही प्रतिबिंब है तो कुल वर्तमान लागत का नियम समाज के कुल आर्थिक कल्याण को अधिकतम बनाता है। अगर कीमतें एवं लागतें आर्थिक मूल्यों को प्रतिबिंबित करने में असफल होती हैं तो यह निष्कर्ष लागू नहीं होगा। वस्तुतः ऐसे असंख्य कारण होते हैं जो एक ओर तो आर्थिक मूल्यों एवं दूसरी ओर प्रतीमान कीमतों एवं लागतों के मध्य विसंगतियों उत्पन्न करते हैं। आइये हम उनमें से कुछ का अध्ययन करें।

बाजार विकृतियां
(Market Distortion)

विकृति का सबसे सामान्य रूप अधिशेष श्रम अर्थव्यवस्था के श्रम बाजार में पाया जाता है, जहां पर मजदूरी की दर श्रम की सामाजिक अवसर लागत के समान नहीं होती। अर्थव्यवस्था के आधुनिक संगठित क्षेत्रों में (आधुनिक उद्योग एवं वाणिज्य, सरकार एवं बागान) श्रमिकों को दी जाने वाली मजदूरी (श्रमिक भूमिहीन हो अथवा नहीं हो सकता है) ग्रामीण क्षेत्रों में दी जाने वाली मजदूरी से कहीं अधिक होती है। अतः संगठित क्षेत्रों में श्रमिकों का लागत मूल्य ग्रामीण क्षेत्रों से कहीं अधिक है अगर हम यह मान लें कि संगठित क्षेत्रों में श्रम का मुख्य स्त्रोत ग्रामीण (कृषि) क्षेत्र है जैसा भारत के अधिकांश भागों में विद्यमान है। अतः आधुनिक संगठित क्षेत्र में दी जाने वाली मजदूरी श्रम की समाज के प्रति अवसर लागत का प्रतिनिधित्व नहीं करती है।

भारत एवं शायद कई अन्य विकासशील देशों में पूंजी बाजार अपूर्ण माने जाते हैं। जिसका प्रमाण ब्याज दर की एक विस्त त श्रेणी का विद्यमान होना है। उदाहरण के लिए, भारत में विभिन्न संगठित क्षेत्र वित्तीय संस्थानों द्वारा ली गई ब्याज दर पारंपरिक मुद्रा बाजार (ग्रामीण ऋण दाता, व्यापारी जमींदार इत्यादि) से सर्वथा विभिन्न है। जहाँ पर जोखिम समान हो वहां ब्याज दर भी समान होनी चाहिये। परंतु ऐसा कम ही होता है, क्योंकि सरकार पूंजी बाजार के स्वतंत्र कार्य करने में हस्तक्षेप करती है तथा कई अन्य अपूर्णतायें भी होती हैं।

एक अन्य मुख्य कारण जो विश्व बाजार के साथ आर्थिक एकीकरण को रोकता है वह सरकारी व्यापारी नीति है। कई विकासशील देशों में (जिनमें भारत भी सम्मिलित है) सरकारें कई प्रकार के सीमा शुल्क, आयात प्रतिबंध तथा कई बार तो निर्यात प्रतिबंध अथवा रोक लगा देती है। सीमा शुल्क एवं प्रतिबंध जो आयात पर लगायें जाते हैं वह घरेलू कीमतों को उनकी लागत जमा बीमा तथा वाहन शूल्क कीमतों से कहीं अधिक बढ़ा देती है। निर्यात प्रतिबंध एवं कोटा एक विपरीत दिशा में कार्य करते हैं। बहुधा एक संरक्षित उद्योगों के उत्पादन अन्य घरेलू उद्योगों के लिए कच्चे माल का काम करते हैं। यह परवर्ती उद्योगों के लिये निर्यात निरूत्साहन का कार्य करती है। सरंक्षण से कई बार घरेलू कीमत स्तर इतने बढ़ जाते हैं कि संरक्षित उद्योगों के मूल्य योग अनुपात उससे कहीं अधिक होते हैं जो संरक्षण के अभाव में हो।

मुद्रा अधिमूल्यन कई विकासशील देशों का आम लक्षण है, तथा उपरोक्त संरक्षण उपायों में प्रतिबिंबित होता है। अगर विनियम दर (जो सरकार द्वारा नियंत्रित होती है) मुद्रास्फीति के अनुरूप नहीं बदली जाती तो आयात एवं निर्यात की कीमतें घरेलू बाजार की कीमतों की तुलना में अत्याधिक कम हो जाती है। इससे विदेशी मुद्रा की भारी माँग हो जाती है, तथा कई बार महत्त्वपूर्ण विश्व मुद्राओं की बाजार कीमत ज्यादा हो जाती है जो विनियम की बैंक दर से भिन्न होती है।

सरकार वित्त उपलब्ध करनें के एक साधन के रूप में कर का स्वतंत्र रूप में उपयोग करती है। करों द्वारा विशेषतः वस्तुओं पर अप्रत्यक्ष करों द्वारा उपभोग वस्तुओं का घरेलू कीमत स्तर काफी बढ़ जाता है। बहुधा मध्यवर्ती वस्तुओं पर भी कर लगाया जाता है जिससे अंतिम उत्पादों की कीमतें और भी बढ़ जाती हैं। दूसरी और अनुदान कीमत स्तर को नीचे गिरा देते हैं। कर लगाई गई अथवा अनुदान दी गई वस्तुओं की बाजार कीमतें उनकी सही सामाजिक लागत को नहीं दर्शाती है जिसमें उसकी खरीद बिंदु के समय उपलब्ध उसे उत्पादित करने में लगे साधनों की अवसर लागत ही सम्मिलित होती है। अतः हम यह पाते हैं कि उपरलिखित कारणों की वजह से बाजार कीमतें आर्थिक कीमतों से भिन्न होती हैं।

बाह्यताए
(Externalities)

ऐसा बहुधा होता है कि एक नई परियोजना आरंभ करने पर इसके आस-पास की आर्थिक गतिविधियों में कई परिवर्तन अथवा प्रतिक्रियाएं उत्पन्न हो जाए। ये सकारात्मक भी हो सकती हैं और नकारात्मक भी हैं। नकारात्मक पहलू क्षेत्र में अन्य आर्थिक गतिविधियों के कार्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है, अर्थात् सामाजिक लागतों का निर्माण करती है। सकारात्मक पहलू नई आर्थिक गतिविधियों एवं अतिरिक्त लाभ उत्पन्न करती हैं। इन अंतः संबंधों को बाह्यताएं भी कहा जाता है। संक्षेप में, बाह्यताएं उन लागतों एवं लाभों की ओर संकेत करती है जिनका निजी फर्म अपने वर्तमान कुल मूल्य विश्लेषण में नजर अंदाज कर देती है (जैसा कि वह लागत एवं लाभ जो कि फर्म के लिए तो बाह्य है परंतु समाज के लिए आंतरिक है)। इसके कई दर्जन उदाहरण है परंतु यहां पर केवल दो ही पर्याप्त होंगे।

माना कि एक इस्पात मिल का निर्माण किया जाता है, जिस स्थान पर वह बनाई जायेगी वहाँ के आस-पास की हवा तथा जल को दूषित करेगी। इसके बावजूद मिल की यह गंदगी वातावरण में छोड़ने की स्वतंत्रता प्राप्त होगी। प्रदूषण के लिए कोई शुल्क अथवा दण्ड नहीं होगा। अतः इस्पात कंपनी, गंदगी फैकनें की व्यवस्था का चुनाव करते समय यह मान लेगी कि पर्यावरण

सुरक्षा की कोई लागत नहीं है, और उसी के अनुसार अपना आकलन करेगी तथा मिल बनाने का निणर्य लेगी। तथापि प्रदूषण के परिणामस्वरूप समाज को वास्तविक लागतें उत्पन्न होगी चूंकि कंपनी उन्मुख वर्तमान कुल मूल्य विश्लेषण इन लागतों को नजर अंदाज करेंगे। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि फर्म के लिये वर्तमान कुल मूल्य के अधिकतम होने से यह जरूरी नहीं कि समाज कल्याण भी अधिकतम हो।

एक अन्य वैकल्पिक स्थिति लें। मान लें। मान लें कि श्रम लागत दिल्ली की तुलना में गुड़गांव में थोड़ी कम है। अतः एक नये निवेश को लागू करने पर, फर्म गुड़गांव में एक नई फैक्ट्री लगाने का निर्णय लेगी। परंतु इससे दिल्ली में बेरोजगार हुए व्यक्तियों को संभालने के लिए समाज पर पड़ने वाली उच्च संभावित लागत का क्या होगा ? यह लागतें फर्म के लिए बाह्य है परंतु समाज के लिए आंतरिक हैं, यहाँ पर फर्म का वर्तमान कुल मूल्य अधिकतम होने से समाज का आर्थिक कल्याण नहीं बढ़ेगा।

सामाजिक वस्तुएं
(Social Articles)

ऐसी कई वस्तुएं होती हैं, जैसे कि शिक्षा, संस्कृति, शांति, सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं आधारभूत वैज्ञानिक अनुसंधान, जिन पर समाज उच्च मूल्य लगाता है, परंतु वह किसी न किसी कारणवश अपने मूल्य के बराबर बाजार कीमत नहीं जुटा पाते। अगर इनमें निवेश करने के लिए वर्तमान कुल मूल्य ही अकेला मापदण्ड हो तो समाज इन क्षेत्रों से संभवतः इतना कम निवेश करें कि इनकी संभावित क्षति ही हो। अतः समाज की उच्च आर्थिक अधिकतम की ओर ले जाने के लिये, वर्तमान कुल मूल्य नियम को परिवर्तित करना होगा।

कर
(Tax)

अंतिम तथा अत्यधिक मुश्किल घटक निगम कर है। वर्तमान कुल मूल्य को अधिकतम करने के लिए, फर्में वास्तविक रूप में करों के पश्चात् होने वाले नकद, प्रवाहों के पक्ष में सोचती हैं। अधिकतर मामलों में वर्तमान कुल मूल्य को करों के पश्चात् अधिकतम करने पर भी वही परिणाम आते हैं जो कि करों को घटाने से पूर्व करने पर आयें। परंतु कभी-कभी विवाद भी उत्पन्न हो सकता है जब कर पश्चात् वर्तमान कुल मूल्य के कुछ और परिणाम आते हैं एवं कर पूर्व वर्तमान कुल मूल्य नियम का अनुसरण करने पर कुछ अन्य कार्यविधि अपनानी पड़ती है। कर पूर्व अधिकतम वर्तमान कुल मूल्य उस विकल्प का चुनाव करता है जो संपूर्ण समाज के लिए लाभदायक हो, जबकि कर पश्चात् अधिकतम वर्तमान कुल मूल्य उस विकल्प का चुनाव करता है जो फर्म को अधिकतम लाभ पहुँचाये। अतः हमारे पास एक अन्य उदाहरण है जिसमें एक स्पष्ट संभावना है कि कर पश्चात् अधिकतम शुद्ध मूल्य नियम सामाज कल्याण को अधिकतम नहीं बनायेगा।

ऊपर दिए गए चारों स्त्रोत, वर्तमान कुल मूल्य निवेश नियम एवं अधिकतम सामाजिक लाभ में उत्पन्न होते हैं, आधुनिक बाजार अर्थव्यवस्थाओं में विद्यमान है। वास्तविक प्रश्न यह है कि इस स्थिति के बारे में क्या किया जा सकता है ? क्या निवेश मापदंड के रूप में वर्तमान कुल मूल्य का त्याग कर देना चाहिये। सही उत्तर यह है कि यह नियम अधिकतम निवेश निर्णयों के लिए

अन्य विकल्पों से बेहतर सिद्ध हुआ है अतः इसको बनाए रखना ही होगा। अधिकांश समय, फर्म का वर्तमान कुल मूल्य अधिकतम होने पर समाज का वर्तमान कुल मूल्य भी अधिकतम होता है, क्योंकि यही एक नियम है, जो महत्वपूर्ण एवं सीमित, साधन, यानी पूंजी का संभावित कुशलतम उपयोग करता है।

सोलोमन एण्ड प्रिगले ने यह पाया कि वित्त प्रबंध निर्णयों का अधिकतम वर्तमान कुल मूल्य मापदंड समाज के आर्थिक कल्याण को बेहतर बनाने का कार्य किसी अन्य कार्यात्मक मापदंड से अधिक कुशल रूप में करता है। अतः यह समाज के आर्थिक कल्याण को अधिकतम बनाने के लिये एक आवश्यक शर्त है। परंतु यह अपने आप में समुचित शर्त नहीं है। समाज स्वयं ऐसी स्थितियों को बना (अथवा बिगाड़) सकता है जिनमें इस नियम को लागू करने पर कुल कल्याण का स्तर और अधिक ऊँचा उठ सकता है। एक समाधान जो कार्य नहीं करता वह है प्रबंधकों को यह अनुमति देना अथवा प्रोत्साहित करना कि वह साधनों का आबंटन अपने इस निजी अनुमान के आधार पर कर लें कि समाज के लिये वही अधिकतम लाभकारी होगा।

व्यावसायिक लाभदेयता की सीमाएं
(Limitations of Professional Benifits)

किन अर्थों में व्यावसायिक लाभदेयता के मापदंड राष्ट्रीय आर्थिक लाभदेयता से भिन्न होते है ? ऐसा क्यों होता है कि व्यावसायिक लाभ बहुधा सामाजिक लाभों के बुरे मार्गदर्शक माने जाते हैं ? अगर दोनों हों मामलों में ढांचा "वर्तमान मूल्यों" का हो तो, स्पष्टतः व्यावसायिक लाभों एवं आर्थिक लाभों के मध्य अंतर किसी भी वर्ष में ब्याज की बाजार दर एवं समुचित सामाजिक कटौती दर के मध्य विसंगति का होगा।

व्यावसायिक लाभ एक निश्चित अवधि में उपार्जन एवं लागतों के मध्य के मूल्यों का अंतर है। उपार्जन बाजार कीमतों पर फर्म की प्रत्यक्ष मौद्रक आय होती है तथा लागतें बाजार भाव पर हुई लागत होती है। परियोजनाओं के आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन के लिए, आइये हम अधिक गहन विश्लेषण करें तथा जानने का प्रयत्न करें कि बाजार कीमतों का अर्थ क्या है, अर्थात् यह किसका प्रतिनिधित्व करती हैं ? अगर एक व्यक्ति किसी वस्तु के लिए 10 रुपये देने को तैयार है तो वह उससे कम से कम 10 रुपये के बराबर संतुष्टि पाने की अपेक्षा करता है। क्या इसका अर्थ यह है कि सामाजिक मूल्य भी 10 रुपये के बराबर है ? यह आवश्यक नहीं है।

प्रथमतः एक व्यक्ति कितनी राशि देने को तैयार है यह उसकी आय पर निर्भर करता है। एक अमीर व्यक्ति नगण्य वस्तुओं के लिए अत्याधिक धन देने को तैयार हो सकता है, जबकि एक निर्धन व्यक्ति के लिए आवश्यकताओं पर भी छोटी से छोटी राशि खर्च करना मुश्किल हो सकता है। अतः बाजार कीमतें सामाजिक कल्याण का सही मापदण्ड नहीं हो सकती क्योंकि यह कीमतों पर आय वितरण के प्रभावों को भी दर्शाती है।

एक व्यक्ति प्रत्युत्तर में यह पूछ सकता है कि अगर लोक नीति के संरक्षक वर्तमान आय वितरण को पसंद नहीं करते (उदाहरण के लिये अगर वह विद्यमान असमानताओं को नापसंद करती है) तो वह क्यों इसमें प्रत्यक्ष सुधार नहीं लाते ? एक बार वितरण में सुधार आ जाये तो परियोजना विश्लेषक मौद्रिक कीमतों को सरलता से कल्याण का मापदण्ड मान सकते हैं तथा आय वितरण के बारे में चिन्ता छोड़ सकते हैं। यह प्रत्युत्तर यद्यपि खोखला है, तथापि असहज नहीं है, चूंकि कई प्रतिरोध जैसे कि- राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक- आय वितरण में सुधारों को रोकते

हैं तथा इन सीमाओं के कारण परियोजना मूल्यांकन इस धारणा पर नहीं आधारित हो सकते कि सभी समुचित आय पुनर्वितरित किये जा चुके हैं।

इसके अलावा आय पुनर्वितरण का एक सरल साधन परियोजना चुनाव भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, परियोजना "अ" जो कि एक निर्धन क्षेत्र में लगाई जानी है तथा परियोजना "ब" जो कि एक धनी क्षेत्र में लगाई जानी है के मध्य चुनाव करना है अथवा परियोजना "म" जो कि गरीब, अप्रशिक्षित श्रम का उपयोग करती हैं, एवं परियोजना "द" जो कि धनी लागों द्वारा पूर्ति किये गये उत्पादन साधनों का उपयोग करती है के मध्य चुनाव करना है। परियोजना चुनाव के वितरणीय परिणाम होते हैं, तथा कभी-कभी इस तरह से आय का पुनर्वितरण करना सामाजिक अथवा राजनीतिक रूप से अधिक व्यवहार्य हो सकता है बजाय इसके कि करों द्वारा अथवा अन्य प्रत्यक्ष साधनों द्वारा ऐसा किया जाए। अतः हमारे पास यह विधिसंगत तर्क है कि एक परियोजना से सामाजिक लाभों का मूल्यांकन करते समय वितरणीय प्रश्नों पर भी विचार किया जाये। यह एक व्यक्ति को तत्काल ही व्यवसायिक लाभदायकता से बाहर ले जाते हैं।

द्वितीय, एक परियोजना के ऐसे प्रभाव भी हो सकते हैं जो बाजार के बाहर कार्य करते हैं न कि उसके द्वारा कार्य करते हैं। उदाहरण के लिए, एक औद्योगिक परियोजना उस शहर में जहाँ वह स्थिति है अत्याधिक धूएं एवं प्रदूषित वायु का उत्पादन करती है अथवा एक फर्म उस क्षेत्र की श्रम शक्ति को प्रशिक्षित करती हैं जबकि पहला प्रभाव अवांछनीय हो सकता है, तथा दूसरा प्रशसनीय, फर्म के लाभ में दोनों ही प्रतिबिंबित नहीं होंगें। खराब स्वास्थ्य अथवा पड़ोसियों के अरुचिकर जीवन की लागत व्यावसायिक लाभों को कम नहीं करती एवं प्रशिक्षण का लाभ भी फर्म को नहीं मिलता क्योंकि प्रशिक्षण के पश्चात् श्रमिक छोड़ कर जाने को स्वतंत्र हैं।

सह प्रभाव जो बाजार के बाहर कार्य करते हैं बाह्यताएं या बाह्य कारक कहलाते हैं। यह व्यावसायिक लाभों की गणना में नहीं आते क्योंकि यह बाजार भाव पर निर्मित किये जाते हैं। बाह्यताएं स्पष्ट रूप से सामाजिक चुनाव के लिए संगत तथा लोक नीति के मार्गदर्शक के रूप में व्यावसायिक लाभदेयता को नकारने के लिए समुचित तर्क प्रदान करती हैं। बाह्यताएं उत्पादक की प्रक्रिया में (उदाहरण के लिये उद्योगा कें द्वारा जल प्रदूषण) उपभोग प्रक्रिया में (उदाहरणतः अतिरिक्त कारों द्वारा सड़कों पर अतिसंकुलता) तथा विक्रय एवं वितरण की प्रक्रिया में (उदाहरणतः दुकानों पर भड़कीले प्रदर्शनों अथवा विज्ञापनों द्वारा समुदाय की शांति प्रभावित हो) उत्पन्न हो सकते हैं। बाह्यताएं बहुधा अधिकतम व्यापक होती हैं।

त तीय, बाह्यताएं एवं आय पुनर्वितरण के आभाव के बावजूद व्यावसायिक लाभदेयता भ्रमित हो सकती है। अगर एक उपभोक्ता एक वस्तु के लिए 10 रुपये देने को तैयार है; तो वह उससे कम से कम 10 रुपये की संतुष्टि की अपेक्षा रखता है, परंतु वह उससे भी कहीं अधिक संतुष्टि की अपेक्षा रख सकता है। अगर हम किसी परियोजना द्वारा उत्पादित वस्तुओं का बाजार मूल्य देखें तो हम अपेक्षित संतुष्टि के बराबर प्रवाह को माप पायें। परंतु तथ्य यह है कि उपभोक्ता इससे अधिक की अपेक्षा रखता है तथा पाता है। अगर हम एक परियोजना से कुल संतुष्टि के प्रश्न को आंकने का प्रयत्न करें, तो हमें उपभोक्ताओं द्वारा उत्पादन के लिए दी जाने वाली वास्तविक कीमत तथा तो वह देने को तैयार है के मध्य के अतिरेक का देखना होगा। यह अन्तर कभी-कभी उपभोक्ता अधिशेष कहलाता है। आय वितरण बाह्यताएं एवं उपभोक्ता अधिशेष के कारण व्यावसायिक लाभों को राष्ट्रीय लाभों के रूप में स्वीकार करना संभव हो जाता है। अन्य घटक भी है, परंतु उपरोक्त वर्णित कारण सामाजिक एवं निजी लाभों के मध्य के अंतर को स्पष्ट करने के लिए काफी हैं।

वर्तमान मूल्य अनुमानों का एक अन्य संघटक है सामाजिक कटौती दर। किसी भी दी गई लाभों की (चाहे निजी अथवा सामाजिक) श्रंखला में वर्तमान मूल्य का आकार कटौती दर पर निर्भर करता है। (फोटो कापी पढ़ने में नहीं आ रहा) कुछ ही वर्ष जीने की अपेक्षा रखता है तथा इस सीमितता द्वारा भविष्य के लिए की गई कटौती सामाजिक चुनाव के लिए उचित नहीं हो सकती, क्योंकि नियोजनकर्ता एक दीर्घकालिक द ष्टिकोण रखते हैं तथा भविष्य की पीढ़ी के कल्याण स्तर को ऊँचा करने को अधिक महत्त्व देते हैं।

राष्ट्रीय आर्थिक लाभदेयता
(National Economic Benefit)

सामाजिक चुनाव का उद्देश्य सामाजिक लाभ को अधिकतम करना होता है, एवं सामाजिक लाभ की संकल्पना स्पष्ट रूप से तार्किक लोक नीति का आधारभूत घटक है, इसमें लोक परियोजनाओं का चुनाव भी सम्मिलित है। हम समाज के कुल लाभों का माप किस प्रकार से करते हैं ? स्पष्टतः हमें लागतों एवं लाभों की किसी ऐसी संकल्पना की आवश्यकता है जो कि हमें शुद्ध लाभों को कुल सामाजिक लाभों एवं कुल सामाजिक लागतों के अंतर के रूप में आंकलित करने में सहायता कर सकें। अगर हम समाज एवं राष्ट्र के मध्य तादात्म्य स्थापित कर लें तो इस अन्तर को उपयोगी रूप से राष्ट्रीय लाभ कहा जा सकता है।

लागतों एवं लाभों में वह सभी संबंधि घटक सम्मिलित होने चाहिये, जो हमारी द ष्टि से राष्ट्र कल्याण को प्रभावित करते हैं क्योंकि परियोजना चुनाव का उद्देश्य अधिकतम कल्याण होता है न कि केवल आर्थिक लाभों को अधिकतम करना। अतः हम अब आगे की चर्चा राष्ट्रीय आर्थिक लाभदेयता को सरलता से कुल राष्ट्रीय लाभदेयता के माप के रूप में, आर्थिक इकाइयों में अभिव्यक्त करेंगे। जबकि हमारे द्वारा चुनी गई ईकाइयाँ सुविधा के आधार पर चुनी गई हैं। तथा हमारे निर्णयों को प्रभावित नहीं करती, तथापि लागत एवं लाभों को किसी स्तरीय आर्थिक परिमाण में मापने के कुछ स्पष्ट परिकलन एवं अन्य लाभ हैं।

आइये हम लोक नीति के उन अधिक महत्वपूर्ण उद्देश्यों के विवेचन से बात प्रारंभ करें जो कि परियोजना चुनाव के लिए प्रासंगिक समझे जाते हैं। हम उद्देश्यों एवं लाभों के मापों के मध्य संबंध को भी समझेंगें। हम राष्ट्र आर्थिक लाभदेयता के एक मापदंड पाने की सामान्य समस्या, विभिन्न प्रकार के लाभों एवं लागतों जो विभिन्न उद्देश्यों एवं लक्ष्यों से संबंधित है, व्यापक मापों का भी विवेचन करेंगे।

लक्ष्य, उद्देश्य, लाभ एवं लागत
(Features, Objectives, Benefits and Cost)

एक बात यहाँ अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि लाभ एवं लागत का अन्तर एक चिन्ह ही है। लागत एक त्याग दिया गया लाभ है। अगर परियोजना "अ" दस लाख रुपयों के अतिरिक्त कुल उपभोग उत्पन्न करती है तो यह परियोजना "अ" के लाभों में से एक है। अब अगर परियोजना "अ" की बजाय परियोजना "ब" का चुनाव कर लिया जाता है जबकि उपयोग किये गये साधन एकदम एक से हैं, तब दस लाख रुपयों का कुल उपयोग परियोजना "ब" की प्रासंगिक लागत है। एक परियोजना के चयन से जिन लाभों का त्याग किया जाता है वह वास्तविक अर्थों में उसकी लागत हैं, अतः लागतों के माप करने एवं लाभों के माप करने में कोई स्पष्ट विश्लेषणात्मक

अन्तर नहीं है। अतः आगे की चर्चा में हम उद्देश्यों को लाभों से संबंधित करेंगे तथा वह लागतों एवं उद्देश्यों के मध्य संबंधों को भी दर्शायेगा।

अब हम कुछ अधिक महवपूर्ण उद्देश्यों एवं उनके अनुकूल लाभों के माप की व्याख्या करेंगे।

1) **सकल उपभोग**
(Net Consumption)

जीवन स्तर को उच्च बनाना राष्ट्रीय नियोजन का एक मूलभूत उद्देश्य है, एवं इसमें प्राकृतिक रूप से परियोजना चुनाव भी सम्मिलित है। जीवन स्तर के मापने का एक मुख्य आधार है प्रति व्यक्ति संकल उपभोग का स्तर। इस स्तर को ऊपर उठाने को सकल उपभोग उद्देश्य भी कह सकते हैं, जो कि स्पष्ट रूप से परियोजना चुनाव का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। अपनी प्राकृति से ही कुल उपभोग कुछ निश्चित मापन समस्याएं उत्पन्न कर देती है।

समुच्चय के मामले में, प्रत्येक वस्तु पर सापेक्षिक भार उस कीमत को दर्शाते हैं जो उपभोक्ता उस के लिए देते हैं। अगर आवश्यक होता है तो इल कीमतों में सुधार किया जा सकता है एवं बाह्मताओं को सम्मिलित किया जाता है, परंतु इन विचारों को प थक रूप से सम्मिलित करना अधिक सुविधाजनक होता है। इन सुधारों को किस प्रकार से लाया जाये यह कोई मुद्दा अथवा सिद्धांत नहीं है परंतु यह एक सुविधा का विषय है जिसका विवेचन हम बाद में करेंगे।

उपभोग को समय अनुसार एकत्र करने का भी प्रश्न है।, जिसमें कटौती की समस्या भी सम्मिलित है, सामाजिक कटौती की समुचित दर वह दर है जिस पर निर्णय निर्माताओं को यह विश्वास कि भविष्य के लाभों को वर्तमान लाभों के बराबर लाने के लिए किस दर पर घटाना चाहिए।

सामाजिक कटौती दर अगर दी हुई हो तो परियोजना मूल्यांकनकर्ता समस्त उपभोग वर्तमान अथवा, भविष्य का वर्तमान मूल्य सरलता से इस कटौती दर पर कटौती करके आकलन कर सकते हैं।

2) **आय पुनर्वितरण**
(Redistribution of Income)

कुल उपयोग के साथ-साथ वितरण स्पष्ट रूप से राष्ट्रीय लाभों के अनुमान के लिए महत्वपूर्ण है। सच पूछिये तो, वितरण के विचारों का कुल उपभोग से सही मायनों में प थकीकरण नही किया जा सकता। एक बात समीकरण (3.1) में कुल उपभोग का अनुमान करने के लिए उपयोग की गई संबंधित कीमतें आय वितरण पर निर्भर करती हैं, चूंकि कीमते मांग द्वारा एवं मांग आय वितरण द्वारा प्रभावित होती है।

जैसा कि हमने पहले कहा है सिद्धांत तौर पर यह संभव है कि प्रत्येक उपभोक्ता द्वारा पेश की गई कीमत को सुधारा जाये, मसलन यह हम धनी व्यक्ति के मौद्रिक व्यय पर कम भार लगा सकते हैं। एक धनी व्यक्ति को होने वाली आय पर भी एक निर्धन व्यक्ति की तुलना में कम भार लगाया जाना चाहिये। ऐसे विस्त त सुधार करना आसान नहीं होता तथा परियोजना विश्लेषक द्वारा किस प्रयोगिक तरीके का उपयेग किया जा सकता है।

एक इस प्रकार का तरीका है, अधिकतम निर्धन समूह (उदाहरण के लिए सबसे निचले 10%) की आय एवं उपयोग को अतिरिक्त सहयोग दिया जाय। सरल शब्दों में एक तरीका

यह है कि एक निश्चित निर्धन क्षेत्र को अलग कर दिया जाए एवं उस क्षेत्र में होने वाली किसी भी उपभोग पर अतिरिक्त भार लगा दिया जाए। इसी प्रकार से एक निश्चित वर्ग का पूर्वानुमान लगाने पर उदाहरण के लिए अप्रशिक्षित श्रमिक तथा वितरण के आधार पर होने वाली कुल लाभों को अतिरिक्त भार दे दिया जाए।

3) **राष्ट्रीय आय की व द्धि दर**

(Increased Rate of National Income)

आजकल राष्ट्रीय आय की व द्धि दर को बढ़ाना एक महत्वपूर्ण नीति उद्देश्य हो गया है। इसकी प्रासंगिकता इस तथ्य में निहित है कि अगर दी गई उपभोग एवं आय का स्तर अनुकूल है तो उच्च व द्धि पर निस्देह बेहतर है। यह भविष्य में उपभोग की संभावनाओं का सूचक है।

तथापि यह कुछ अनावश्यक ही लगता है कि व द्धि दर को एक प थक उद्देश्य माना जाए जबकि समस्त भविष्य उपभोग प्रवाह को पहले से कुल उपभोग लाभ के माप में सम्मिलित कर लिया गया है।

4) **रोजगार स्तर**

(Status of Employment)

रोजगार के स्तर पर विस्तार अथवा अधिक विशिष्ट रूप से कहें तो बेरोजगारी में कमी एक अच्छी निशानी मानी जाती है।

बेरोजगारी को मानवीय गरिमा के विरुद्ध माना जाता है, एवं इसमें कमी को कुल उपभोग एवं उसके वितरण के विचारों को ध्यान किये बिना अधिक वरीयता दी जा सकती है। तब बेरोजगारी का आकार लागतों का माप हो सकता है यानी कि ऋणात्मक लाभों का। तब बेरोजगारी में कमी को एक प थक उद्देश्य के रूप में देखा जा सकता है।

5) **आत्मनिर्भरता**

(Self Dependence)

बहुत से विकासशील राष्ट्र धनी राष्ट्रों पर अत्यधिक निर्भर होते हैं क्योंकि अपने आर्थिक विकास प्रयासों में उनके पास बचतों अथवा विदेशी मुद्रा की चिरकालिक कमी होती है। विदेशी राष्ट्रों पर निर्भरता को कम करने एवं आत्म निर्भरता को एक लक्ष्य के रूप में देखा जाता है। एक परियोजना आत्म निर्भरता में सहायता प्रदान कर सकती है जबकि दूसरी परियोजना अन्य राष्ट्र पर निर्भरता को और अधिक बढ़ा सकती है।

एक अपरिष्कृति परंतु सरल उदाहरण है व्यापार घाटे की माप, यानी आयात एवं निर्यात के मध्य अंतर। यह सामान्य पूंजी हस्तांतरणों को छोड़ देता है परंतु यह एक देश के अन्य देश पर निर्भरता का प्रथम समीपवर्ती संकेतक हो सकता है। हाल ही के वर्षों में आत्मनिर्भरता काफी चर्चित होने लगी है। बहुधा यह व्यापार संतुलन के घाटे द्वारा मापी जाती है, एवं कभी-कभी यह भुगतान संतुलन के घाटे के रूप में भी मापी जाती है, जिसमें संतुलित कार्रवाई को नहीं दर्शाया जाता है।

6) **उत्कर्ष आवश्यकताएं**

(Important Needs)

रोजगार एवं आम निर्भरता लक्ष्यों के वह उदाहरण हैं जिनके राष्ट्रीय महत्व को व्यक्तियों

के उपभोक्ता रूप में निर्धारित नहीं किया जा सकता। सामान्यतः हम इन लक्ष्यों को उत्कर्ष आवश्यकताएं कहते हैं। परियोजना की अन्य विशेषताओं, जिनमें विशिष्ट उपभोक्ता वस्तुएं भी सम्मिलित हैं, को विशेष ध्यान देने योगय माना जा सकता है क्योंकि इसका राष्ट्रीय महत्व जो उपभोक्ता सोचते हैं उससे कहीं अधिक है। एक पिछड़े हुए ग्रामीण समाज में, लोग शिक्षा (विशेषतः बालिका शिक्षा) पर धन व्यय करने में हिचकते हैं, पंरतु लोक नीति इनके विकास के लिए कार्य करती है, चाहे इसे पाने वाले व्यक्ति इस सेवा पर खर्च करने से हिचकते हैं। शिक्षा को एक विशेष उत्कर्ष आवश्यकता समझा जा सकता है। सामाजिक वानिकी एवं पर्यावरण प्रदूषण को रोकना भी इसी श्रेणी में आते हैं। उत्कर्ष आवश्यकताएं लोक नीति में बहुधा महत्वपूर्ण होती हैं, इनका संबंध औद्योगिक परियोजना की अपेक्षा सामाजिक परियोजना में ज्यादा है।

कई अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य की भी सूची बनाई जा सकती है परंतु अधिकांश महत्वपूर्ण उद्देश्यों का यहाँ उल्लेख किया जा चुका है। अब केवल एक ही प्रश्न बाकी रहा है वह है इन विभिन्न प्रकार के लाभों को एक एकीकृत माप में ढालने का है। इसकी अगले भाग में व्याख्या की गई है।

सकल राष्ट्रीय लाभदेयता
(Net National Benefits)

माना कि B प्रकार 1 लाभ का माप है, तथा B दूसरे प्रकार 2 का। यह लाभों की सरंचना का संकेत करते हैं। परंतु हम इस चित्रण को लाभों के एक सरल एकीकृत माप में किस प्रकार से परिवर्तित कर सकते हैं ? इनका योग नहीं किया जा सकता क्योंकि यह भिन्न इकाइयों में है; उदाहरण के लिए यह संभव नहीं है कि हम दस लाख रुपये के कुल उपभोग का 2,000 के अतिरिक्त रोजगार के साथ योग करें एवं एक अर्थपूर्ण अंक मिल जाये। स्पष्टतः कोई ऐसा तरीका ढूँढना होगा जो लाभों के विभिन्न मापों को इकाइयों के एक माप में परिवर्तित कर सकें।

कुल लाभ साधारण विशिष्ट लाभों का भारित योग होते हैं, भार उस दर को दर्शाते हैं जिस पर हम एक प्रकार के लाभ का अन्य के लिए प्रतिस्थापन करने को तैयार होते हैं।

परंतु क्या यह भार स्थिर होने चाहिए। स्पष्ट रूप से नहीं, क्योंकि एक प्रकार के लाभ का सापेक्षिक महत्व देश में उसकी उपलब्धता की राशि पर निर्भर करेगा। अगर एक निर्धन क्षेत्र को समुचित निवेश प्राप्त हो रहा है, तो वह क्षेत्र धनी क्षेत्र में परिवर्तित हो जायेगा तथा वह उच्च मूल्य जो कि हम उस क्षेत्र की आय अथवा उपभोग पर लगाना चाह रहे थे अब कम किया जा सकता है।

एक परियोजना संपूर्ण देश के लाभों के समस्त विवरण को क्रांतिकारी रूप में प्रभावित करने के लिए बहुत छोटी हो सकती है। एक निर्धन क्षेत्र में एक छोटी परियोजना उसके लिये लाभदायक तो हो सकती है, परंतु फिर भी उसकी प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाने में उतना सक्षम नहीं होगी कि वह देश की प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाने के अनुपात में बढ़ सके। उसी प्रकार से, एक परियोजना देश में बेरोजगारी को तेा कम कर सकती है, परंतु जब तक वह एक विशाल परियोजना न हो, वह बेरोजगारी के अनुपात को वहीं रहने देती हे।

ऐसा हो सकता है कि कई परियोजनाएं एक साथ मिलकर बेरोजगारी के अनुपात को घटा सकती हैं, अथवा उस निर्धन क्षेत्र की प्रति व्यक्ति आय के अनुपात को देश के प्रति व्यक्ति आय के

समान ला सकती हैं, परंतु इसके लिये एकीकरण एवं सामन्वय की आवश्यकता है। जो कि व्यक्तिगत परियोजना चयनकर्ता द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती, उसे राष्ट्रीय स्तर पर ही पाया जा सकता है। वास्तव में भारों का चयन, जो कि राष्ट्रीय मापदण्डों के द ष्टिकोण में देखे जा सकते हैं, इन प्रभावों का संपूर्ण आधार देखना होगा।

इस संचालन एवं एक बड़े प्रतियोगिता बाजार में एक बड़ी फर्म द्वारा किये गये चयन के मध्य एक (फोटो कापी पढ़ने में नहीं आ रहा) पूर्व निर्धारितबाजार दामों पर अपनी मछली बेचने को तैयार हो जाता है क्योंकि उसके उत्पादन बाजार भाव को प्रभावित करने के लिए बहुत कम है। तथापि अगर सभी मछुआरे एक साथ मिल जायें तो उनका उत्पादन कीमतों को आधारभूत रूप से प्रभावित पर सकेगा। व्यक्ति मछुआरे की भूमिका व्यक्तिगत परियोजना विश्लेषक के अनुरूप है जबकि बाजार की भूमिका केंद्रीय नियोजन के समरूप है।

एक बार अगर भविष्य का उपभोग स्तर वर्तमान उपभोग स्तर के समान मूल्यों में परिवर्तित कर लिया जाये, तो हम उस सकल उपभोग की इकाई का उपयोग वर्तमान उपभोग की इकाई के समान मान सकते हैं। अगर हम वर्तमान उपभोग को अपनी सामान्य खाता इकाई के रूप में स्वीकारें तो हम सकल उपभोग के संबंध में अन्य लाभों पर ध्यान देंगे। हम अपनी खाता इकाई का चुनाव अपनी सुविधा के अनुरूप करते हैं परंतु वर्तमान अथवा सकल उपभोग को खाता इकाई मान लेने के कुछ लाभ अवश्य है। अब हम परिकलन की मूर्त समस्याओं पर आ रहे हैं तथा परियोजना के आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन की स्पष्ट आवश्यकता को पीछे छोड़ आये हैं। सामाजिक लागत लाभ विश्लेषक आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन का एक लोकप्रिय ढांचा प्रदान करते हैं आइये आगे की चर्चा में हम उसकी धारणा, निर्णय मापदंड एवं प्रक्रिया की व्याख्या करें।

सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण (सा॰ ला॰ ला॰ वि॰)
(Social Cost Benefit Analysis)

सा॰ ला॰ ला॰ वि॰ व्यापक अर्थों में परियोजना के कार्यान्वयन से हुए सभी अपेक्षित परिवर्तनों (उदाहरणतः आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरण संबंधी) का विशेष विवरण देता है। यह परियोजना के निवेश एवं उत्पादन के रूप में देखे जा सकते हैं ताकि प्रत्येक की एक कीमत लगाई जा सकती है। चूंकि यह निवेश एवं उत्पादन कई वर्षों में वितरित होते हैं यानी कि, परियोजना के आर्थिक जीवन के दौरान होने वाले निवेश एवं उत्पादन के प्रवाह को संयुक्त करना आवश्यक हो जाता है। यहाँ पर मुद्रा का समय मूल्य प्रासंगिक हो जाता है तथा एक समुचित कटौती दर की आवश्यकता महसूस होती है। वर्तमान शुद्ध मूल्य अथवा आतंरिक प्रतिफल दर अथवा लाभदायकता सूचकांक अथवा लागत लाभ अनुपात के समान किसी निर्णय मापदंड की आवश्यकता किसी परियोजना को अंतिम रूप से स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने की होती है।

सा॰ ला॰ ला॰ वि॰ के लिए प्रणालीबद्ध दिशा निर्देश अंतर्राष्ट्रीय अभिकरणों जैसे कि यूरोपियन देश विकास संघ एवं संयुक्त राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ द्वारा विकसित किये गये हैं। भारत में 1975 में योजना आयोग ने औद्योगिक परियोजनाओं की व्यवहार्यता का प्रतिवेदन बनाने के लिए दिशा निर्देश तैयार किये थे। भारत सरकार के सिचाई मंत्रालय ने 1980 में सिंचाई एवं बहुउद्देश्य परियोजनाओं का विस्त त परियोजना प्रतिवेदन तैयार करने के लिए दिशा निर्देश दिये थे। भारत सरकार के वित्त मंत्रालय (व्यय विभाग) ने लोक निवेश मंडल प्रक्रिया के विषय पर अपने कार्यालय ज्ञापन पत्र दिनांक 23 अगस्त 1984 में सा॰ ला॰ ला॰ वि॰ की प्रयुक्ति का उदाहरण

दिया है। पर्यावरण विभाग ने भी एक उपचारार्थ तैयार किया है जिससे बहुउद्देशीय परियोजना के पर्यावरण संबंधी पहलुओं को आंका जा सके। यह स्पष्ट है कि सा॰ ला॰ ला॰ वि॰ को प्रयुक्त करने के लिए हमें विभिन्न अभिकरणों द्वारा दिए गये दिशा निर्देशों का पालन करना होता है। आइये हम सा॰ ला॰ ला॰ वि॰ के एक सामान्य ढांचे की व्याख्या करें। सा॰ ला॰ ला॰ वि॰ के एक व्यवस्था बद्ध प्रयोग में सामान्यतः निम्नलिखित बातें शामिल होती हैं :

- परियोजना के आर्थिक सामाजिक एवं पर्यावरण संबंधी निवेशों एवं उत्पादनों की माप,
- परियोजना के निवेशों एव उत्पादनों पर सामाजिक एवं लेखा या 'छाया कीमते लगाना,
- उपयुक्त सामाजिक ब्याज दर का चुनाव करना,
- परियोजना की सामाजिक लाभदेयता का आकलन करना।

आइये हम उपरोक्त पहलुओं का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करें।

लागत एवं लाभ की माप
(Measurement of Cost and Benefit)

व्यापक रूप से परियोजना के आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरण लाभ एवं लागतें तीन वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं। प्रथम वर्ग में वह लाभ एवं लागतें आती हैं जिनका परिमाण बताया जा सकता है। तथा मौद्रिक रूप से भी परिवर्तित किया जा सकता है। उदाहरण के लिये, एक जल विद्युत परियोजना से विद्युत की पूर्ति के रूप में होने वाले लाभ का परिमाण उत्पादित एवं वितरित विद्युत के रूप में किया जा सकता है। इन्हें प्रति इकाई बिजली की दर जो कि परियोजना अधिकारियों द्वारा ली जाती है, के अनुसार मौद्रिक रूप में भी परिवर्तित किया जा सकता है।

द्वितीय प्रकार के लाभ एवं लागतें वह होते हैं जिनका परिमाण तो बताया जा सकता है परंतु मौद्रिक रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए अगर जल विद्युत परियोजना के भाग के रूप में पानी एकत्रित करने के लिए एक बांध का निर्माण किया जाता है जिससे कि उस पानी को लाकर विद्युत उत्पादन के लिए जनरेटर पर डाला जा सके, तो बांध में एकत्रित जल द्वितीय वर्ग के लाभ प्रदान करेगा। अगर यह मालूम चले कि बांध एक बाढ़ पीड़ित क्षेत्र में है तथा बाढ़ को पुनराव ति के कारण उस क्षेत्र में दस जीवन प्रतिवर्ष नष्ट हुआ करते थे। अब बांध पानी एकत्रित करके क्षेत्र को बाढ़ से बचायेगा और प्रतिवर्ष दस जीवनों की भी रक्षा करेगा जो पहले बाढ़ के कारण नष्ट हो जाते थे। इस मामलें में इसका लाभ प्रति वर्ष दस जीवन भी होगा जो मापा तो जा सकता है परंतु मौद्रिक रूप में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। यह अत्यंत ही कठिन है कि बचाये गये जीवन को एक ऐसा मौद्रिक मूल्य दिया जाए जो सामाजिक रूप से स्वीकृति हो।

लाभों एवं लागतों का तीसरा वर्ग भी है जिसका न तो परिमाण बताया जा सकता एवं न ही मौद्रिक रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। अगर हम अपने जल विद्युत परियोजना के अंतर्गत बनाये गये बांध के उदाहरण को आगे बढ़ाये तो वह पर्यावरण को खूबसूरत बनाकर लाभ प्रदान करेगी क्योंकि जल की उपलब्धता से प्रकृति सौन्दर्य में भी व द्धि होगी। तथापि समाज को प्राप्त यह लाभ अमूर्त प्रकृति के होंगे जिनका न तो परिमाण ही बताया जा सकेगा और न ही मौद्रिक रूप में परिवर्तित किया जा सकेगा।

एक परियोजना से होने वाले लाभों एवं लागतों को इन तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है। तथापि, जैसे-जैसे हम अपने अनुसंधान को आगे बढ़ाते एवं अपने ज्ञान में व द्धि करते हैं, एक

श्रेणी की लागतें एवं लाभ दूसरी श्रेणी में ले जाये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, बांध द्वारा प्राप्त अमूर्त लाभ जो कि बंजर पथरीली पहाड़ी क्षेत्र को हरे भरे क्षेत्र में परिवर्तित कर पर्यावरण के सौदर्य में व द्धि करेगा जो अपरिमाणक था। यदि हम यह अनुमान लगा पायें कि इस प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द लेने के लिए कितने पर्यटक उस क्षेत्र में आने लगे हैं, तो इसे मापा जा सकता है। अतः उस लाभ का परिमाण उस क्षेत्र आने वाले पर्यटकों की संख्या से लगाया जा सकेगा। अगर और अधिक अनुसंधान किया जाये तो हमारी जानकारी में सुधार एव व द्धि हमें यह बतला सके कि उस क्षेत्र में आने वाले पर्यटक से कितना चुंगी कर अथवा प्रवेश शुल्क लिया जायेगा तथा यह अनुमान परिमाणित लाभ को मौद्रिक रूप में परिवर्तित करने में हमें सहायता प्रदान करेगा।

इस प्रकार एक श्रेणी में लागतों एवं लाभों की दूसरी बेहतर परिणाम योग्य सूची में ले जाने की प्रक्रिया तब तक चलती रहेगी जब तक कि लागतों एवं लाभों को परिमाणित करने एवं मौद्रिक रूप से परिवर्तित करने के प्रयास चलते रहेगें। योजना आयोग द्वारा तैयार की गई लोक क्षेत्र परियोजना के व्यवाहार्यता अध्ययन के लिये नियमावली ने निम्न मुख्य मूर्त घटकों को बताया है जिनका एक औद्योगिक परियोजना के राष्ट्रीय लाभों पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है

1. आयात शुल्क एवं आय
2. विदेशी विनियम बचतें एवं आय
3. साधनों के अतिरिक्त उपयोग जैसे कि श्रम, अतिरेक ईंधन जिनमें कि पूंजी पहले ही निवेश की जा चुकी है। राष्ट्र के प्राकृतिक साधन जैसे कि भूमि, वन, नदियाँ एवं खनिज सम्पदा इत्यादि।
4. क्षेत्रीय उद्योगों का सहायक उद्योगों के रूप में विकास।
5. राष्ट्रीय सुरक्षा के लाभ क्योंकि कई उद्योग जैसे कि जहाजरानी, विद्युत उपकरण, वायु परिवहन राष्ट्रीय सुरक्षा के निर्माण में प्रत्यक्ष रूप से लाभदाय होते हैं।

   नियमावली यह भी कहती है कि इन घटकों के अलावा ऐसे कई असंख्य अभूर्त लाभ है जिनका परिमाण मौद्रिक रूप में नहीं आंका जा सकता। व्यवहार्यता प्रतिवेदन में इन कारकों पर भी बातचीत की जानी चाहिए।

छाया कीमतें
(Shadow Prices)

एक परियोजना की लागतों एवं लाभों का अनुमान लगाने के लिए निवेशों का लागत के रूप में परिवर्तन कीमत प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। परियोजना के वह लाभ जो मापनीय है तथा मौद्रिक रूप में परिवर्तित किये जा सकते हैं, वह भी कीमतों की मदद से मौद्रिक लाभों में परिवर्तित किये जाते हैं। आगतों को लागतों एवं निर्गतों का लाभों में परिवर्तन करने के लिए किन कीमतों का उपयोग किया जाता है यह सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण के रूप का एक महत्वपूर्ण सीमा तक निर्धारण करता है। सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण में उपयोग के लिए प्रासंगिक कीमतों के छाया कीमतें अथवा सामाजिक कीमतें या योजना कीमतें अथवा लेखा कीमतें भी कहा जाता है।

प्रचलित बाजार कीमतें सही आभाव मूल्यों को नहीं दर्शाती। उदाहरण के लिए, अगर एक टन उर्वरक उत्पादन करने के लिए 2,000 रुपये लगते हैं, तो उसकी छाया कीमतें भी 2,000 रुपये

प्रतिटन ही होनी चाहिए चाहे वह किसानों को 15,00 रुपये प्रतिटन की अनुदानित कीमत पर दिये जा रहें हों। एक अन्य उदाहरण, अगर विदेशी विनियम की प्रचलित दर आधिकारिक रूप से निश्चित दर से अधिक है तो देश में निर्यात की कीमत कम करके बताई गई है। ऐसे मामले में सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण में उपयोग की गई कीमत आधिकारिक विनियम दर से अधिक होगी। एक वस्तु की कीमतें निर्धारित करते समय बाजार कीमतों से कर हटा दिए जाते हैं, क्योंकि यह हस्तांतरण भुगतान समझे जाते अतः यह सामाज पर लागत नहीं है।

कीमतों का निर्धारण परियोजना अधिकारियों के स्वविवेक पर नहीं छोड़ा जाता अपितु यह केंद्रीकृत नियोजन अभिकरण जैसे कि भारत के योजना आयोग द्वारा किया जाता है। छाया कीमतों की प्रणाली के अनुसार, वह वस्तुएं जो विदेशी व्यापार में शमिल की जा सकती है। उनका मूल्य सीमा कीमतों पर लगाया जाता है। वह वस्तुएं जो कि आयात की जा सकती है उनका मूल्य उनकी लागत बीमा वहन शुल्क कीमत पर लगाया जाता है। वह वस्तुएं जो कि अन्य देशों को निर्यात की जा सकती है का मूल्य शीर्षान्तर कीमत पर लगाया जाता है।

गैर व्यापारिक वस्तुएं अधिकांशतः एक परियेजना के आगत एवं निर्गत होते हैं। तथा व्यापारिक वस्तुओं की परियोजना कीमतों के घटक भी होते हैं। ऐसी वस्तुओं के लिये कोई प्रासंगिक सीमा कीमत नहीं होती। ऐसी वस्तुओं का सामाजिक मूल्य उनकी सीमांत लागत के आधार पर निकाला जाता है, जो कि व्यापारिक वस्तुओं एवं श्रम को विभाजित किया जाता है। अगर उत्पादन लागत में गैर व्यापारिक वस्तुएं भी हैं तो वह भी विभाजित की जाती हैं तथा पारस्परिक श्रम एवं करों में घटा दिया जाता है। यहाँ पर श्रम में निजी आय प्राप्त करने वाले समस्त घरेलू व्यक्तियों को शामिल कर लिया गया है। इसमें सरकारी नहीं परंतु स्वतंत्र हित का ध्यान रखा जाता है। फिर व्यापारिक वस्तुओं पर उनकी प्रासंगिक सीमा कीमतें लगा दी जाती हैं तथा श्रम की सामाजिक मजदूरी दर अथवा श्रम की सामाजिक अवसर लागत, जो कि प्रशिक्षित एवं अप्रशिक्षित श्रम के लिए प थक रूप से लगाई जाती है। परियोजना आगत एवं निर्गत का मूल्य विश्व कीमतों पर निर्धारित करने के पीछे क्या तर्क है ? इसकी तार्किकता इस तथ्य पर आधारित है कि विकासशील देशों में परियेजना की प्रासंगिक कीमतें (लाभ) अंतर्राष्ट्रीय बाजार में आगत (निर्गत) के विनियम की अवसर लागतें हैं। अन्य शब्दों में विश्व कीमतें विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं की अवसर लागत को दर्शाती हैं। अगर अर्थव्यवस्था का संचालन इस प्रकार से करना है कि सामाजिक लाभ अधिकतम हो, तो विश्व कीमतें प्रचलित होंगी (इसमें से कुछ सीमाओं को घटाना होता है जैसे कि कर एवं सीमा शुल्क संरचनाएं इत्यादि) वस्तुओं का मूल्य सीमा कीमतों पर आंकने का एक तर्क यह है कि हम अनुकूलतम परिस्थिति के अनुरूप काम कर रहे हैं तथा यह मानते हैं कि अर्थव्यवस्था उस अनुकूलतम स्थिति की ओर बढ़ रही है। स्पष्टतः एक देश के लिए यह सर्वोत्तम लाभ होगा कि वह वस्तुओं का निर्यात तब करे जब ऐसी वस्तुओं की उत्पादन लागत शीर्षान्तर कीमत के बराबर अथवा उससे कम है। इस तरह, उन वस्तुओं के उत्पादन की भी कोई आर्थिक न्यायसंगता नहीं होगी जिनकी घरेलू उत्पादन लागत लागत-बीमा-वाहन शुल्क कीमत से अधिक है।

सैद्धांतिक रूप से कीमतों का उपयोग लेखा कीमतों के अनुरूप करने का तर्क त्रुटिहीन लगता है, क्योंकि इससे वस्तुओं के उत्पादन में अधिकतम कार्य क्षमता प्राप्त करने एवं अनुकूलतम व्यापार के परिणाम आने की अपेक्षा होती है। यद्यपि कई अर्थशास्त्रियों द्वारा इस उपागम की आलोचना की गई है। आलोचना का मुख्य दबाव दो बिंदुओं पर है जो एक तरह से अन्तर संबंधित हैं।

पहला तर्क यह है कि विश्व कीमतों का उपयोग खुली अर्थव्यवस्था की मान्यता रखता है जिसमें अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की असीमित तत्परता होती है, तथा यह मान्यता वैध नहीं है। द्वितीय, अगर एक देश अप्रतिबंधित व्यापार के लिए तैयार भी हो जाये तो यह मान्यता कि वह ऐसा कर सकता है, वैद्य नहीं है।

विकासशील देश की सरकारें "खुली" अर्थव्यवस्था को विभिन्न कारणों से अपनाने को तैयार नहीं होती । प्रतिबंधित व्यापार नीति के पक्ष में शैशव उद्योगों को सुरक्षा प्रदान करना एक महत्वपूर्ण तर्क है। विदेशी बाजारों पर भारी निर्भरता जोखिम हो सकती है। खुलेपन का विस्तार कई घटकों से सीमित होता है। जैसे कि निर्यात का आलोचदार मांग वक्र अन्य सरकारों की व्यापार नीतियाँ उत्पादन बढ़ाने के लिए स्थानीय उद्योगों द्वारा महसूस किये गये पूर्ति अथवा मांग के दबाव इत्यादि।

उपरोक्त घटक महत्वपूर्ण हैं तथा विकासशील देशों की कुछ वस्तुओं की व्यापारशीलता को प्रभावित करता है। परंतु आधार उपागम वैध रहता है। विशिष्ट समस्याओं अथवा अपवादों से हमें तर्क के आवश्यक बिंदुओं को अनेदेखा नहीं कर देना चाहिए। सीमा कीमतों का उपयोग साधारण रूप से इसलिये किया जाता है क्योंकि वह एक देश के लिए उपलब्ध अवसरों को बताती है तथा उन वास्तविक शर्तों का भी उल्लेख करती है जिन पर वह व्यापार कर सकता है।

सामाजिक भार
(Social Weights)

ऐसा हो सकता है कि एक परियोजाना ऐसे लागत एवं लाभ प्रदान करें जिनका समाज के विभिन्न वर्गों पर अलग-अलग प्रभाव पड़ता हो। इससे न्यायपूर्ण वितरण की समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। परियोजना विश्लेषण में इन विचारों का समागम सामाजिक भारों के उपयोग से किया जा सकता है। यह भार एक योग्य सत्ता द्वारा सामाजिक प्राथमिकताओं के आधार पर दिये जाते हैं। अगर समाज के एक निर्धन वर्ग को होने वाले लाभों को धनी वर्ग के होने वाले लाभ की तुलना में अधिक मूल्यवान समझा जाता है तब उन लाभों को एक सुयोग्य भार से गुणा किया जा सकता है तथा धनी वर्ग के लिए वही लाभ रखे जा सकते है। उदाहरण के लिए, अगर एक परियेजना निर्धन वर्ग को 1,000 रुपये का लाभ प्रदान करती है एवं अन्य वैकल्पिक योजना धनी वर्ग को 1,000 रुपये का वैसा ही लाभ प्रदान करती है तो निर्धन वर्ग को होने वाले लाभ को एक सुयोग्य भार, जैसे कि 2, 2.5, 3 इत्यादि से गुणा किया जा सकता है जिससे कि यह निर्णय निर्माताओं की धनी वर्ग की तुलना में निर्धन वर्ग की उच्च प्राथमिकता को दर्शाता है। सामाजिक भार का निर्धारण करने के लिए काफी मात्रा में अनुभव की आवश्यकता होती है तथा यह केंद्रीय नियोजन अभिकरण का उत्तरदायित्व होता है।

सामाजिक ब्याज दर
(Social Intrest Rate)

मुद्रा के समय मूल्य को सही रूप में दर्शाने वाली ब्याज दर के चुनाव की सामाजिक मूल्यांकन में महत्वपूर्ण भूमिका होती। अगर कर लगाने के उद्देश्य के लिए आयातित एवं निर्यातित वस्तुओं के मध्य कोई विभेदीकरण नहीं है तथा अगर सामाजिक मजदूरी पर वास्तविक मजदूरी दर से बहुत कम नहीं है तो प्रतिफल दर (बाजार कीमतों पर) जो कि अर्थव्यवस्था में वर्तमान पूंजी

निवेश पर पाई जा रही है एक अच्छी सामाजिक ब्याज दर हो सकती है। परंतु बहुत से विकासशील देशों में यह दोनों शर्तें व्यवहार में लागू नहीं होती। सैद्धांतिक तौर पर समुचित सामाजिक ब्याज दर पूंजी की समुचित सामाजिक लागत। अगर सभी संभावित परियोजनाओं को लागू कर दिया जाए, तो इस दर की प्राप्ति संभव है। इसके साथ ही साथ अगर अर्थव्यवस्था की तमाम पूंजी का निवेश कर दिया जाए तो यह दर प्राप्त सकती है। यह दर समाज को प्राप्त होने वाली वर्तमान एवं भविष्य प्रतिफल के मध्य का अवसर एवं बचतों के उपयोग से प्राप्त होने वाली राशि को दर्शाती है। तथापि एक विशिष्ट औसत ब्याज दर पर कठोर दबाव नहीं होना चाहिए और यह सामाजिक लागत एवं लाभ विश्लेषण के प्रारंभिक चरणों में ऊपर या नीचे समायोजित की जा सकती है।

सारांश

(Conclusion)

इस इकाई में सामान्य रूप से परियोजना मूल्यांकन से संबंधित गैर वित्तीय विचारों उदाहरणतः आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरण संबंधी विचारों पर प्रकाश डाला गया है। वित्तीय मूल्यांकन की सीमाओं को बतलाया गया है एवं सामाजिक संदर्भ में अधिक प्रासंगिक आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन की प्रकृति को समझाया गया है।

सामाजिक लागत लाभ विश्लेषण आर्थिक एवं सामाजिक मूल्यांकन की सरल एवं प्रचलित तकनीक है। गैर वित्तीय विचारों को परियोजना विश्लेषण एवं मूल्यांकन में सम्मिलित करने के लिए सा॰ ला॰ ला॰ वि॰ की प्रणाली को उदाहरण सहित दर्शाया गया है। इस प्रणाली के महत्वपूर्ण संघटकों जैसे कि लागत एवं लाभों की माप, छाया कीमतों, सम्परिवर्तन घटकों सामाजिक भार एवं साामजिक ब्याज दर को संपूर्ण रूप से दर्शाया गया है। इकाई के अंत में सा॰ ला॰ ला॰ वि॰ तुलन पत्र के विवरण एवं परियोजना चुनाव के संदर्भ में निर्णय निर्माताओं की न्याय शक्ति की भूमिका को भी पहचाना गया है।

- आय पुनर्वितरण
- राष्ट्रीय आय की व द्धि दर
- रोजगार स्तर
- आत्म निर्भरता
- उत्कर्ष आवश्यकताएं।

अध्याय - 20

वित्त प्रबन्ध में सुधार एवं उभरती हुई प्रव तियां

(Reforms in Financial Management and Emerging Trends)

वित्त व्यवसाय का मूलाधार है। कोई भी व्यवसाय वित्त के बगैर न तो प्रारम्भ किया जा सकता है और न उसका विकास सम्भव है। व्यवसाय की सफलता वित्त की पर्याप्त एवं वित्त के प्रभावपूर्ण प्रबंध पर निर्भर करती है। व्यक्तिगत व्यावसायिक संगठनों (एकाकी स्वामित्व एवं साझेदारी संगठनों) की वित्तीय व्यवस्था करना सरल होता है। इनका स्वरूप व्यक्तिगत होता है तथा इनकी वित्तीय आवश्यकताएँ सीमित होती हैं। परन्तु व्यावसायिक संगठनों का स्वरूप अव्यक्तिगत होने पर उनकी वित्तीय व्यवस्था करना अधिक कठिन हो जाता है। निगम उपक्रमों की वित्त व्यवस्था उनके अव्यक्तिगत स्वरूप तथा वित्त की अधिक मात्रा में आवश्यकता के कारण अत्याधिक जटिल एवं कठिन होती है। वित्तीय प्रबंध इन जटिलताओं एवं कठिनाइयों का समाधान करता है। यहाँ पर हम पहले वित्तीय प्रबंध का अर्थ स्पष्ट करने से पूर्व वित्त के प्रकार तथा उनका अर्थ जानना चाहेगें। सामान्यता वित्त के निम्न दो प्रकार बताये गये हैं :

1. सार्वजनिक वित्त (Public Finance) तथा
2. निजी वित्त (Private Finance)

सार्वजनिक वित्त का तात्पर्य राजकीय वित्त से होता है। सार्वजनकि वित्त में इस बात का अध्ययन किया जाता है कि विभिन्न सार्वजनिक सत्ताएँ किस प्रकार अपनी वित्तीय व्यवस्था करती हैं। सार्वजनिक सत्ताओं में केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकारें तथा स्थानीय निकाय सम्मिलित होते हैं। सार्वजनिक वित्त में यह देखा जाता है कि सार्वजनिक सत्ताएँ किस प्रकार अपनी आय प्राप्त करती है। तथा इस आय को किस प्रकार सार्वजनिक हित में व्यय करती है। सार्वजनिक वित्त में सार्वजनिक ऋण को भी शामिल किया जाता है। संक्षेप में, सार्वजनिक वित्त में सार्वजनिक आय, व्यय तथा ऋण सिद्धान्तों एवं व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है।

निजी वित्त का तात्पर्य निजी व्यक्तियों एव संस्थाओं के वित्त से होता है। इसके अन्तर्गत इस बात का अध्ययन किया जाता है कि विभिन्न व्यक्ति तथा निजी संस्थाएँ किस प्रकार आय प्राप्त करती हैं तथा उस आय को किस प्रकार अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए व्यय करती हैं। निजी वित्त को तीन उप-विभागों में बाँटा जा सकता है- वैयक्तिक वित्त (Personal Finance) व्यावसायिक वित्त (Business Finance) तथा गैर-लाभ कमाने वाली संस्थाओं का वित्त (Non-profit Earning Institution' Finance)। **वैयक्तिक वित्त** में व्यक्ति के द्वारा दैनिक कार्यों में धन के प्रबंध की आधारभूत बातों का अध्ययन किया जाता है। **व्यावसायिक वित्त** में लाभोपार्जन के उद्देश्य से संचालित किये जाने वाले उपक्रमों की वित्तीय व्यवस्था का अध्ययन किया जाता है **गैर-लाभ कामने वाली संस्थाओं** के वित्त में शैक्षिक, मूर्त तथा धार्मिक संस्थाओं के वित्त संबंधी सिद्धांतो एवं व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है।

वित्त के उपरोक्त प्रकारों के अतिरिक्त आज वित्त के नये-नये क्षेत्र वित्त की विशिष्ट आवश्यकताओं एवं समस्याओं के समाधान हेतु विकसित हुए हैं जैसे बड़े उपक्रमों की वित्तीय व्यवस्था के लिए **संस्थागत वित्त** (Institutional Finance) का विकास हुआ है। अनके विशिष्ट औद्योगिक वित्त संस्थाएँ इस कार्य के लिए स्थापित हुई हैं जैसे भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, राज्य वित्त निगमें आदि। दुनियां के सभी देशों का विदेशी व्यापार तेजी से बढ़ रहा है। विदेशी व्यापार की सुगम वित्त व्यवस्था तथा जटिल प्रक्रियाओं को हल करने हेतु **अन्तर्राष्ट्रीय वित्त** (International Finance) का विकास हुआ तथा अनेक नई राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएँ वित्त की व्यवस्था हेतु स्थापित की गई है। विदेशी मुद्रा एवं विनियम संबंन्धी समस्यायें भी इसी के अन्तर्गत हल की जाती हैं।

व्यावसायिक वित्त का संबंध लाभोपार्जन के उद्देश्य से संचालित किये जाने वाले उपक्रमों की वित्तीय व्यवस्था करने से होता है। यह एक व्यापक शब्द है, इसका वास्तविक अर्थ समझने के लिए व्यवस्था एवं वित्त शब्दों का अर्थ समझना आवश्यक है। सामान्य बोलचाल की भाषा में **व्यवसाय का अर्थ** किसी छोटी अथवा बड़ी दुकान अथवा स्टोर में वस्तुओं के बेचने से लिया जाता है। परन्तु यह व्यवसाय का बहुत संकुचित अर्थ है। व्यवसाय का विस्त त अर्थ उन समस्त मानवीय क्रियाओं से है जो लाभ के उद्देश्य से संचालित की जाती हैं और जिनके द्वारा मानवीय आवश्यकताओं की वस्तुएँ एवं सेवाएँ उत्पादित की जाती हैं। इस अर्थ में कृषि, मत्स्य पालन, खनन, औद्योगिक, वाणिज्यिक तथा परिवहन के कार्य व्यवसाय के अन्तर्गत आते हैं। इस तरह वकालत, डॉक्टरी, नर्सिग, लेखांकन आदि सेवाएँ व्यवसायिक क्रियाएँ हैं जिनके द्वारा मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि होती है। **वित्त का तात्पर्य** मुद्रा से होता है तथा वित्त में इस बात का अध्ययन किया जाता है कि किस प्रकार परिवार, व्यवसायी, विनियोक्ता, सरकारें तथा वित्तीय संस्थाएँ अपनी मुद्रा का प्रबंन्ध अथवा संचालन करती हैं। अतः अब हम कह सकते हैं कि **व्यावसायिक वित्त का तात्पर्य** समस्त प्रकार के व्यावसायिक संगठनों की समस्त क्रियाओं की वित्तीय व्यवस्था करना होता है। व्यावसायिक वित्त के व्यावसायिक आवश्यकताओं के लिए विभिन्न साधनों से उचित शर्तों पर वित्त प्राप्त करना तथा व्यावसायिक उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उसका उपयोग एवं प्रबंध करना शामिल है।

व्यावसायिक वित्त का प्रादुर्भाव
(Evolution of Business Finance)

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ होने के पूर्व तक वित्त का अध्ययन अर्थशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता था, परन्तु बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ होने के बाद छोटे उद्योगों के विलीनीकरण द्वारा बड़े उद्योगों की स्थापना होने से प्रबंधकों के सामने बड़े उद्योगों की वित्तीय व्यवस्था करने की समस्याएँ उत्पन्न हुई। इन समस्याओं के समाधान में वित्त विषय का विशेष योगदान होने के कारण 'वित्त का एक प थक् विषय के रूप में अध्ययन किया जाने लगा। अधिकांश बड़े उपक्रम, निगम पद्धति पर संगठित होने के कारण 'निगम वित्त' के नाम से अनेक पुस्तकें इस विषय पर प्रकाशित हुईं। 'निगम वित्त' नामक पुस्तकों में निगमों के प्रवर्तन, पूँजीकरण, पूँजी ढाँचे के चुनाव, प्रतिभूतियों के विपणन, वित्तीय अनुबंधों की शर्तों आदि का विस्त त वर्णन देखने को मिलता है। इसलिए व्यावसायिक वित्त विषय प्रारम्भ में वर्णनात्मक विषय था। विषय के प्रारम्भिक विकासकर्ताओं में ग्रीव, मीड, डेविंग, लिओन आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

तीसा की महान मंदी के पूर्व तक "निगम-वित्त" में विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों से वित्तीय साधन

प्राप्त करने तथा वित्तीय संस्थाओं के कार्यों एवं भूमिका को अधिक महत्त्व प्रदान किया गया। बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में अमेरिका के आर्थिक पटल पर रेडियो, रसायन, इस्पात, मोटरगाड़ी जैसे नवीन उद्योगों का तेजी से विकास हुआ तथा राष्ट्रीय विज्ञापन, उन्नत वितरण विधियों एवं ऊँचा लाभों का महत्त्व बढ़ गया।

तीसा की महान् मंदी के परिणामस्वरूप अधिकांश व्यवसायों के सामने तरलता की विकट समस्या उत्पन्न हो गई थी। व्यवसायी लोग अपने व्यवसाय की दिन-प्रति-दिन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बैंकों तथा अन्य वित्तीय संस्थाओं से वित्त प्राप्त करने में अत्याधिक कठिनाईयाँ अनुभव करने लगे थे। इसलिए उन्हें तरलता की माँग को पूरा करने के लिए अपने निर्मित माल के स्टॉक को शीघ्र तथा अधिक मात्रा में बेचने के लिए विवश होना पड़ता था, परन्तु माल के मूल्यों में कमी के कारण उन्हें पर्याप्त वित्त उपलब्ध नहीं हो पाता था। इससे फर्मों के वित्तीय प्रबंधन में अनेक परिवर्तन हुए। वित्तीय नियोजन एवं नियंत्रण को अधिक महत्व दिया जाने लगा। मंदी के समय वित्तीय प्रबंधकों द्वारा व्यावसायिक संगठनों को दिवालिया तथा बंद होने की समस्या से बचाने के लिए रक्षात्मक नीति का अनुसरण किया गया। भूतकाल की तरह से व्यावसायिक वित्त के क्षेत्र में इस दशक में भी फर्मों के जीवन काल में घटित होने वाले वित्तीय संकटों पर ही अधिक ध्यान दिया जाता था।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद उद्योगों के पुनर्गठन ने शान्तिकालीन आवश्यकताओं के लिए व्यवसाय के सामने पूँजी बाजार में बड़ी मात्रा में पूँजी प्राप्त करने की समस्याएँ उत्पन्न की। बीसवीं शताब्दी के इस पंचक दशक में भी वित्तीय विशेषज्ञों ने भूतकाल की तरह से उद्योगों को ऐसे वित्तीय ढाँचे को चुनने को अधिक महत्व प्रदान किया जो युद्धोपरान्त के समायोजनों के दबाव एवं भार को वहन कर सकें।

इस प्रकार व्यावसायिक वित्त को परम्परागत धारण, जिसका विकास बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में शुरू हुआ था, 1950 तक अत्याधिक लोकप्रिय रही। सन् 1950 के बाद अनेक नवीन परिवर्तन हुए जिनके कारण व्यावसायिक वित्त की परम्परागत विचारधारा का महत्त्व समाप्त हो गया तथा व्यावसायिक वित्त की नवीन विचारधारा का विकास हुआ।

बीसवीं शताब्दी के छठे दशक में अमेरिका की अर्थव्यवस्था में एक तरफ व्यावसायिक क्रियाओं में तेजी से व द्धि हुई तथा दूसरे तरफ निराश स्टॉक एक्सचेन्ज तथा कठोर मुद्रा बाजार की परिस्थितियाँ उत्पन्न हुई। ऐसी स्थिति में लाभ विश्लेषण की तुलना में रोकड़ विश्लेषण को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। वित्तीय विशेषज्ञों को यह दायित्व सौंपा गया कि वे फर्म के रोकड़ प्रवाहों को इस प्रकार नियन्त्रित करें जिससे फर्म अपने उद्देश्यों को संतोषप्रद ढंग से पूरा कर सके तथा अपने दायित्वों को देय होने पर चुका सके। अब संस्थागत तथा बाह्य वित्त की अपेक्षा फर्म के दिन-प्रति-दिन के कार्यों की वित्तीय व्यवस्था को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाने लगा। रोकड़ पूर्वानुमान, रोकड़ बजट, प्राप्य बिलों के प्रबंध, क्रय विश्लेषण तथा सामग्री नियन्त्रण आदि को वित्तीय प्रबंध में विशेष स्थान दिया जाने लगा।

इस शताब्दी के छठे दशक में व्यावसायिक वित्त के प्रति अपनाये जाने वाले द ष्टिकोण में जो परिवर्तन दिखायी दिया था वह 1960 के बाद अधिक तेज हो गया। 1960 के बाद प्रतिष्ठित उद्योगों में लाभ के अवसर कम होने तथा मुद्रा बाजार की आसान स्थिति के कारण पूँजी को ऐसे क्षेत्रों में विनियोजित करने की समस्या उत्पन्न हुई जिसमें अधिक लाभ के अवसर विद्यमान हों। ऐसे समय में वित्तीय प्रबंधकों को यह दायित्व सौंपा गया कि वे ऐसी औद्योगिक परियोजनाओं का चुनाव करें जिससे भविष्य में फर्म को अनुकूल लाभ प्राप्त हो सके। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु

वित्तीय प्रबंधकों द्वारा पूँजी बजट परियोजना मूल्यांकन, पूँजी व्यय नियंत्रण जैसी नई तकनीकों का विकास किया गया। अब व्यावसायिक वित्त का अध्ययन **वर्णनात्मक** न रह कर विश्लेषणात्मक हो गया है तथा इस विषय का नाम' निगम वित्त' अथवा 'व्यावसायिक वित्त' से बदल कर 'प्रबंधकीय वित्त' अथवा 'वित्तीय प्रबंध' हो गया।

वित्तीय प्रबंन्ध का अर्थ एवं परिभाष
(Meaning and Definition of Financial Management)

वित्तीय प्रबंध व्यावसायिक प्रबंध का एक कार्यात्मक क्षेत्र है तथा यह संपूर्ण प्रबंध का ही एक भाग होता है। वित्तीय प्रबंध उपक्रम के वित्त तथा वित्तीय क्रियाओं के सफल तथा कुशल प्रबंध के लिए जिम्मेदार होता है। यह कोई उच्चकोटि के लेखांकन अथवा वित्तीय सूचना प्रणाली नहीं होती है। यह फर्म के वित्त तथा वित्त से संबंधित पहलुओं पर निर्णय करने तथा नीति निर्धारित करने से संबंधित क्रियाओं का समूह होता है। इसमें पूँजी, रोकड़, प्रवाह, साख, मूल्य एवं लाभ नीतियाँ, निष्पत्ति नियोजन एवं मूल्यांकन तथा बजटरी नियंत्रण नीतियाँ एवं प्रणालियाँ शामिल होती हैं। बजटरी नियंत्रण एवं प्रणालियाँ प्रमुख रूप से वित्तीय प्रबंध के क्षेत्र में आती हैं। परन्तु ये अन्य विभागों के सहयोग एवं सहमति के बगैर प्रभावपूर्ण ढंग से कार्यान्वित नहीं किये जा सकते है। वित्तीय प्रबंध उपक्रम के व्यापक हितों का प्रतिनिधित्व करता है। तथा वह इनके लिए संस्था का रखवाला कुत्ता होता है। वित्तीय प्रबंध का अर्थ स्पष्ट करने के लिए कुछ परिभाषाओं का अध्ययन किया जा सकता है :

(i) **हॉबर्ड एवं उपटन (Howard and Upton) :** के शब्दों में, "वित्तीय प्रबंध नियोजन तथा नियंत्रण का वित्त कार्य पर लागू करना है।"

(ii) **वैस्टन एवं ब्राइगम (Weston and Brigham) :** के अनुसार, " वित्तीय प्रबंध वित्तीय निर्णय लेने की वह क्रिया है जो व्यक्तिगत उद्देश्यों और उपक्रम के उद्देश्यों में समन्वय स्थापित करती है।"

(iii) **जे. एल. मैसी (J. L. Massie) :** के अनुसार, "वित्तीय प्रबंध एक व्यवसाय की वह संचालनात्मक प्रक्रिया है जो कुशल प्रचालनों के लिए आवश्यक वित्त को प्राप्त करने तथा उसका प्रभावशाली ढंग से उपयोग करने के लिए दायी होता है।

(iv) **जे. एफ. ब्रेडले (J. F. Bradley) :** के अनुसार, "वित्तीय प्रबंध व्यावसायिक प्रबंध का वह क्षेत्र है जिसका संबंध पूँजी के विवेकपूर्ण उपयोग एवं पूँजी साधनों के सतर्क चयन से है; ताकि व्यय करने वाली इकाई (फर्म) अपने उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर बढ़ सके।

(v) **इजरा सोलोम (Ezra Soloman) :** के अनुसार, "वित्तीय प्रबंध का तात्पर्य एक महत्त्वपूर्ण आर्थिक स्त्रोते अर्थात् पूँजी कोष के कुशलतम उपयोग से होता है।

(vi) **व्हीलर (Wheeler) :** के अनुसार, "वित्तीय प्रबंध का अर्थ उस क्रिया से होता है जो उपक्रम के उद्देश्यों एवं वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतू पूँजी कोषों के संग्रहण एवं उनके प्रशासन से संबंध रखती है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है वित्तीय प्रबंधन व्यावसायिक प्रबंधन का एक वह क्षेत्र है जिसके अन्तर्गत व्यवसाय की वित्तीय क्रियाओं एवं वित्त कार्य का कुशल संचालन किया जाता है। इसके लिए नियोजन, आबंटन एवं नियंत्रण कार्य किये जाते हैं।

वित्तीय प्रबंधन की प्रकृति अथवा विशेषताएँ
(Nature or Characteristics of Financial Management)

आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्त कार्य व्यावसायिक प्रबंध में अत्याधिक महत्त्पूर्ण है। अतः इससे वित्तीय प्रबंधक की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण बन गई है। आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्त कार्य अथवा वित्तीय प्रबंध की अग्रविशेषताएँ होती है।

1. **व्यावसायिक प्रबंधन का एक अभिन्न अंग (An indispensable organ of business management) :** वित्तीय प्रबंध की परंपरागत विचारधारा के प्रचलन के समय वित्तीय प्रबंधक को व्यवसाय के प्रबंध में अमहत्त्वपूर्ण व्यक्ति माना जाता था, परन्तु आधुनिक व्यवसायिक प्रबंध में वित्तीय प्रबंध व्यावसायिक प्रबंध का एक प्रमुख अंग है तथा वित्तीय प्रबंधक उच्च प्रबंध टोली के सक्रिय सदस्यों में से एक होता है। व्यवसाय की गतिविध के साथ वित्त का प्रश्न जुड़ा हुआ है, अतः वित्तीय प्रबंधक सभी महत्त्वपूर्ण व्यावसायिक निर्णयों में आधारभूत भूमिका निभाता है।

2. **सतत् प्रक्रिया (Continuous Process) :** परंपरागत वित्तीय प्रबंध की धारणा के अन्तर्गत वित्तीय प्रबंध की प्रक्रिया निरन्तर नहीं चलती थी, बल्कि यह प्रक्रिया कुछ विशिष्ट घटनाओं के धटित होने पर जाग्रत होती थी तथा उनसे उत्पन्न वित्त प्राप्ति की समस्याओं के समाधान होने पर मंद हो जाती थी। परन्तु आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्तीय प्रबंध की प्रक्रिया सतत् चलने वाली प्रक्रिया है तथा व्यवसाय की सफलता के लिए वित्तीय प्रबंधक को निरंतर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी पड़ती है।

3. **वर्णनात्मक कम तथा विश्लेषणात्मक अधिक (Less descriptive and more analytical) :** परंपरागत वित्तीय प्रबंध वर्णनात्मक अधिक तथा विश्लेषणात्मक कम था, जबकि आधुनिक वित्तीय प्रबंध वर्णनात्मक कम तथा विश्लेषणात्मक अधिक है। आज वित्तीय विश्लेषण की सांख्यिकीय तथा गणितात्मक विधियाँ विकसित हो गई हैं, जिनके द्वारा किन्हीं दी हुई आन्तरिक तथा बाह्य परिस्थितियों के संदर्भ में संभावित विकल्पों में से श्रेष्ठ विकल्प को चुना जा सकता है।

4. **लेखांकन कार्य से भिन्न (Different from accounting function) :** बहुत से लोग वित्त कार्य तथा लेखांकन कार्य को एक ही मानते हैं, क्योंकि दोनो में बहुत सी शर्तें एवं अभिलेख (Terms and records) एकसमान ही होते हैं, परन्तु वित्त कार्य लेखांकन कार्य से भिन्न होता है। लेखांकन कार्य में वित्तीय एवं संबंधित समंकों का संग्रहण किया जाता है जबकि वित्त कार्य में इनका निर्णयों के लिए विश्लेषण एक उपयोग किया है।

5. **केन्द्रीयकृत स्वभाग (Centralised nature of finance function) :** आधुनिक व्यावसायिक प्रबंध के विभिन्न क्षेत्रों में वित्तीय प्रबंध का स्वभाव केन्द्रीयकृत है। जहाँ उत्पादन, विपणन तथा कर्मचारी प्रबंध के कार्यों का अत्याधिक विकेन्द्रीकरण सम्भव है। वहाँ दिन कार्य का व्यावहारिक द ष्टिकोण से विकेन्द्रीयकरण वांछनीय नहीं है तथा वित्त कार्य के केन्द्रीयकरण द्वारा ही व्यवसाय के उद्देश्यों को अधिक प्रभावशाली ढंग से प्राप्त किया जा सकता है।

6. **व्यापाक क्षेत्र (Wide scope) :** वित्तीय प्रबंध का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। वित्तीय प्रबंध का कार्य उपक्रम की अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं के लिए साधनों को प्राप्त करना, उनका आबंटन करना तथा अनुकूलतम उपयोग करना है। वित्तीय प्रबंध

लेखांकन अंकेक्षण, लागत लेखांकन, व्यावसायिक बजटन, रोकड़ व साख प्रबंध, सामग्री प्रबंधन आदि के लिए भी उत्तरदायी होता है।

7. **उच्च प्रबंधकों के निर्णय में सहायक (Helpful in decisions of top management) :** वित्तीय प्रबंध की आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्तीय प्रबंधक उपक्रम के सर्वोच्च प्रबंध को निर्णय लेने में सहायता पहुँचाता है। वित्तीय प्रबंधक उपक्रम की वित्तीय स्थिति तथा किसी अवधि विशेष के कार्यों की निष्पत्ति के संबध में आवश्यक तथ्य, आंकड़े तथा प्रतिवेदन उच्च प्रबंधकों को प्रस्तुत करता है जिनके आधार पर उच्च प्रबंधक ठोस निर्णय लेते हैं। इसलिए आजकल वित्तीय प्रबंधक अथवा नियंत्रक संचालक मण्डल सदस्य होता है।

8. **कार्य निष्पत्ति का मापक (Measurement of performance) :** आधुनिक युग में व्यावसायिक उपक्रम में विभिन्न कार्यों की निष्पत्ति (Performance) को वित्तीय परिणामों (Financial Results) में मापा जाता है। यदि एक उपक्रम पूर्व निर्धारित यात्रा में आगम प्राप्त कर सका है तथा लागतों को उचित स्तर पर रख सका है तो वह अपने लाभ उद्देश्य अथवा संपदा के मूल्य को अधिक करने के उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल होता है। वित्तीय प्रबंधक को संस्था के लिए तरलता तथा लाभदायकता के कार्यों (Liquidity and Profitability Functions) को पूरा करना होता है। इन कार्यों के लिए उसे जोखिम तथा लाभदायकता का सही विभाजन करना होता है। ऐसा करने पर ही वांछित निष्पत्ति का स्तर प्राप्त किया जा सकता है।

9. **उपक्रम के अन्य विभागों से समन्वय आवश्यक (Co-ordination with other departments of the enterprise) :** एक वित्तीय प्रबंधक उपक्रम के अन्य विभागों के सहयोग तथा समन्वय के बगैर प्रभावपूर्ण ढंग से कार्य नहीं कर सकता है। हर विभाग के कार्यों का वित्तीय परिणामों पर प्रभाव पड़ता है, अतः किसी भी एक अन्य विभाग के असहयोग की स्थिति में वांछित परिणाम प्राप्त नहीं होते हैं। वित्त कार्य का अन्य सभी कार्यों से पूर्ण समन्वय आवश्यक होता है।

10. **वित्तीय नियोजन, नियंत्रण एवं अनुवर्तन (Financial planning control and follow up) :** आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्तीय प्रबंध में साधनों की प्राप्ति तथा उपयोग के लिए योजना बनाना, उनके अनुसार साधन प्राप्त करना, प्रभावी उपयोग करना, बजट के अनुसार नियंत्रण करना विचलनों की खोज करना तथा अनुवर्तन (Feedback) द्वारा सुधारात्मक कार्य करना शामिल होता है।

11. **सभी प्रकार के संगठनों पर लागू (Applicable to all types of organisations) :** वित्तीय प्रबंध सभी प्रकार के संगठनों में लागू होता है।, चाहे वे संगठन निर्माणी हों अथवा सेवा संगठन हों अथवा एकांकी स्वामित्व वाले अथवा नियमित संगठन। यह गैर लाभकारी संगठनों की क्रियाओं पर भी लागू होता है।

वित्तीय प्रबंध के उद्देश्य
(Objectives of Financial Management)

एक व्यावसायिक उपक्रम के वित्तीय प्रबंध के उद्देश्य क्या होते हैं ? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। संकुचित द ष्टिकोण से देखने पर कहा जा सकता है कि वित्तीय प्रबंध का तात्कालिक उद्देश्य उपक्रम के लिए पर्याप्त सरल एवं लाभदायक वित्त की व्यवस्था करना होता है। परन्तु विस्त त

रूप से देखने पर कहा जा सकता है कि वित्तीय प्रबंध का उद्देश्य फर्म के उद्देश्यों की प्राप्ति में अधिकतम सहयकता पहुँचाना होता है। इस बात पर सामान्य सहमति है कि फर्म का वित्तीय उद्देश्य फर्म के स्वामियों के आर्थिक कल्याण को अधिकतम करना होना चाहिए। स्वामियों के आर्थिक कल्याण को किस प्रकार अधिकतम किया जा सकता है, इसके लिए अत्यधिक चर्चित दो आधार बताये जाते हैं, ये हैं : (i) लाभ को अधिकतम करना, तथा (ii) संपदा के मूल्य को अधिकतम करना। हम इन दोनों ही अधिकारों का अध्ययन करेंगे तथा यह स्पष्ट करेंगे कि स्वामियों के कल्याण को अधिकतम करने के लिए संपदा को अधिकतम करने का आधार व्यवहार में लागू करने की द ष्टि से अधिक प्रामाणिक आधार है।

लाभ को अधिकतम करना
(Profit Maximisation)

परंपरागत रूप से व्यवसाय को एक आर्थिक संस्था माना गया है तथा संस्था की कुलशता को जाँचने के लिए लाभ को एक अच्छा प्रमाप माना गया है। इसलिए व्यवसाय का यह एक प्राकृतिक उद्देश्य है कि अधिकतम लाभ अर्जित करें। **लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य की उपयुक्तता को निम्नलिखित तर्कों के आधार पर न्यायोचित बताया जाता है :**

1. **लाभ अधिकतम करना विवेक के आधार पर ठीक है (Profit Maximisation is justified on the ground of rationality) :** एक व्यक्ति कोई आर्थिक क्रिया विवेकपूर्ण ढंग से करता है तो उसका उद्देश्य उपयोगिता को अधिकतम करना होता है। यह तर्क दिया जाता है कि उपयोगिता को लाभ के रूप में मापा जा सकता है। अतः विवेक के आधार पर लाभ को अधिकतम करना उचित ठहराया जा सकता है।

2. **आर्थिक कुशलता का सूचक (Indicator of economic efficiency) :** एक उपक्रम में लाभ उसकी आर्थिक कुशलता का सूचक होता है जबकि हानि आर्थिक अकुशलता का।

3. **साधनों का कुशल आबंटन एवं उपयोग (Efficient allocation and utilisation of resources) :** उपलब्ध साधनों का कुशल आबंटन एवं प्रयोग लाभ के आधार पर किया जा सकता है। वित्तीय प्रबंध साधनों को कम लाभदायक उपयोगों से निकाल कर अधिक लाभदायक उपयोगों में लगाता है जिससे कुशलता बढ़ती है।

4. **व्यावसायिक निर्णयों की सफलता का मापक (Measurement of success of business decisions) :** सभी व्यावसायिक निर्णय लाभोपार्जन के उद्देश्य को ध्यान में रखकर लिये जाते हैं। अतः यह निर्णयों की सफलता का प्रमुख साधन है। एक उपक्रम अपने उत्पादन, विक्रय तथा निष्पादन में कुशलता अर्जित करके ही लाभ अर्जित कर सकता है, प्रबंध का कोई कार्य अथवा निर्णय सफल हुआ अथवा नहीं इसका मापन लाभ के आधार पर किया जा सकता है।

5. **प्रेरणा का स्त्रोत (Source of Incentive) :** लाभ व्यवसाय के प्रेरणा का एक प्रमुख स्त्रोत होता है। अधिक लाभ अर्जित करने के लिए एक फर्म अन्य फर्मों से अधिक कुशल बनने के प्रयत्न करती है, अतः लाभ व्यावसायिक कुशलता का आधार है। यदि व्यावसायिक उपक्रमों से लाभ की प्रेरणा समाप्त कर दी जाये तो प्रातियोगिता का अन्त हो जायेगा तथा इससे विकास एवं प्रगति की दर धीमी पड़ जाएगी।

6. **सामाजिक लाभ को अधिकतम बनान (Maximisation of social benefit) :** एक फर्म

अपने लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य का पालन करके सामाजिक आर्थिक कल्याण को अधिकतम करती है, क्योंकि फर्म लाभ अर्जित करके ही विभिन्न सामाजिक कार्यों जैसे शिक्षा, चिकित्सा, श्रम कल्याण, आवास, मनोरंजन आदि पर व्यय करके लोगों के कल्याण को बढ़ा सकती है।

व्यवसाय के लाभ अधिकतम करने के उद्देश्य की पिछले वर्षों में अनेक आलोचनाएं की गई है। प्रथम अब अनेक विद्वानों द्वारा यह माना जाता है कि एक व्यवसाय लाभ को अधिकतम करने का उद्देश्य केवल पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति में ही प्राप्त कर सकता है, जबकि आजकल सभी देशों में तथा सभी बाजारों में अपूर्ण प्रतियोगिता देखने को मिलती है। अतः अपूर्ण प्रतियोगिता की दशाओं में लाभ को अधिकतम करने का उद्देश्य उचित नहीं जान पड़ता है। **द्वितीय** यह भी कहा जाता है कि जब 19 वीं शताब्दी के आरम्भ में लाभ को अधिकतम करने को व्यवसाय का उद्देश्य स्वीकार किया गया, उस समय व्यवसाय के ढाँचे की विशेषताएँ, स्वयं वित्त, निजी संपत्ति तथा एकाकी संगठन थे। एकाकी स्वामी के उद्देश्य अपनी निजी संपत्ति एवं शक्ति को बढ़ाना होता था जो लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य द्वारा संतुष्ट किये जा सकते थे। परन्तु आधुनिक व्यवसाय की प्रमुख विशेषताएँ सीमित दायित्व एवं प्रबंध तथा स्वामित्व में प थक्करण है। आज व्यवसाय के लिए वित्त की व्यवस्था अशंधारियों तथा लेनदारों द्वारा की जाती है तथा उसका प्रबंध पेशेवर प्रबंधकों द्वारा किया जाता है **त तीय व्यवसाय से अन्य पक्षकार ग्राहक, कर्मचारी,** सरकार एवं समाज भी संबंधित होते हैं। परिवर्तित व्यावसायिक ढाँचे के अन्तर्गत स्वामी प्रबंधक का स्थान पेशेवर प्रबंधकों ने ले लिया है, जिसे व्यवसाय से संबंधित सभी पक्षों के विभिन्न टकराव वाले हितों में मेल बैठाना होता है। इस नवीन व्यावसायिक वातावरण में लाभ को अधिकतम करने का उद्देश्य वास्तविक, कठिन तथा अनैतिक लगता है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के अतिरिक्त लाभ को अधिकतम करने का विचार व्यवसाय के स्वामियों के आर्थिक कल्याण को प्राप्त करने के आधार के रूप में भी अव्यावहारिक लगता है। इसके द्वारा वैकल्पिक कार्यों का श्रेणीबद्ध करना (Ranking of alternative course of action) संभव नहीं है। **लाभ को अधिकतम करने के उद्देश्य की निम्न सीमाएँ अथवा आलोचनाएँ :**

1. **अस्पष्ट धारणा (It is vague) :** लाभ की धारणा एक अस्पष्ट धारणा है। अल्पकालीन लाभ को अधिकतम करें अथवा दीर्षकालीन लाभ को ? लाभ के अनेक रूप हो सकते हैं, जैसे- सकल लाभ, ब्याज एवं कर के पूर्ण लाभ, कर के बाद लाभ, शुद्ध लाभ आदि। इनमें से कौन से लाभ को अधिकतम किया जाय।

2. **मुद्रा के समय मूल्य की उपेक्षा (It ignores time value of money) :** लाभ का अधिकतम करने के उद्देश्य की इस आधीर पर भी आलोचना की जाती है कि यह विभिन्न समय अवधियों में प्राप्त की गई लाभ की राशियों में अन्तर नहीं करता है अर्थात् यह मुद्रा के समय मूल्य को महत्व नहीं देता हे। आज जो लाभ होता हे, तथा एक साल, दो अथवा अधिक सालों बाद प्राप्त होने वाले लाभ मुद्रा के मूल्य की द ष्टि से समान नहीं हो सकते हैं। आज प्राप्त होने वाले एक रुपये का मूल्य आज से एक साल बाद प्राप्त होने वाले एक रुपयें के मूल्य से निश्चित रूप से अधिक होगा। इसका कारण यह है कि आज प्राप्त होने वाले लाभ की राशि को आय अर्जित करने के लिए पुनः विनियोग किया जा सकता है। इसे मुद्रा का समय मूल्य कहा जाता है, जिसकी इस विचारधारा द्वारा अपेक्षा की जाती है।

3. **भावी क्रियाओं से लाभ के उत्कर्ष तत्त्व की उपेक्षा (It overlooks quality aspect of**

profit from future activities) : यह सिद्धांत लाभ के उत्कर्ष तत्त्व (Quality aspect of profit) की ओर ध्यान नहीं देता है। किसी कार्य के करने पर प्राप्त होने वाले लाभ की निश्चितता का अंश अधिक अथवा अनिश्चितता का कम मात्रा में हो सकता है जो जोखिम की न्यून मात्रा का प्रतीक होता है; जबकि किसी कार्य में अनिश्चितता अधिक हो सकती है जो अधिक जोखिम का प्रतीक होगा। किसी कार्य के फलस्वरूप लाभ की निश्चितता अधिक परन्तु थोड़ा कम लाभ हो इसके विपरीत लाभ की अधिकता परन्तु बहुत अधिक अनिश्चितता हो, तो पहली स्थिति को अधिक पसंद किया जाना चाहिए। यह सिद्धांत इस पर विचार नहीं करता है।

4. **व्यवसाय के सामाजिक दायित्व की उपेक्षा (Ignores social responsibility of business) :** यह विचारधारा स्वामियों के लाभ को अधिकतम करता है तथा व्यवसाय के सामाजिक दायित्व की उपेक्षा करता है इसमें श्रमिकों, उपभोक्ताओं, सामान्य जनता व सरकार की अपेक्षा की गई है।

उपर्युक्त अध्ययन के बाद यह कहा जा सकता है कि लाभ को अधिकतम करने का उद्देश्य आज की परिवतर्तित व्यावसायिक परिस्थितियों में ठीक नहीं जान पड़ता तथा इसको व्यवहार में वित्तीय निर्णयों पर लागू करना भी कठिन है।

संपदा के मूल्य को अधिकतम करना
(Maximisation of Wealth)

अब लाभ को अधिकतम करने के स्थान पर फर्म की संपदा के मूल्य को अधिक करना व्यवसाय का मूल उद्देश्य माना जाता है, अतः वित्तीय प्रबंध का उद्देश्य भी फर्म की संपदा के मूल्य को अधिकतम करना होता है। वित्तीय प्रबंध को फर्म के लिए ऐसे कार्य करने चाहिए जिससे फर्म की संपदा का मूल्य बढ़ता है तथा ऐसे कार्य नहीं करने चाहिए जिससे संपदा का मूल्य कम होता है। वह कार्य अवश्य किया जाना चाहिए जिससे संपदा का निर्माण होता है। तथा फर्म का शुद्ध मूल्य (Net worth of the firm) बढ़ता है। यदि वित्तीय प्रबंध के सामने एक से अधिक वैकल्पिक कार्यों में किसी एक को चुनने की समस्या हो, तो वह कार्य चुना जाना चाहिए जिससे सर्वाधिक संपत्ति अथवा शुद्ध मूल्य का निर्माण हो। किसी आर्थिक काय्र को करने से शुद्ध वर्तमान मूल्य (Net present value of worth) धनात्मक होता है तो उस कार्य को किया जाना चाहिए, क्योंकि इससे फर्म की संपदा के मूल्य में व द्धि होती है। किसी कार्य का शुद्ध वर्तमान मूल्य उस कार्य से प्राप्त कुल वर्तमान मूल्य में से उस कार्य में की गई प्रारम्भिक पूँजी विनियोजन की राशि को घटाने से प्राप्त हो सकता है।

संपदा के मूल्य को अधिकतम करने का सिद्धांत परिवर्तित व्यवसायिक परिस्थितियों में नियमित उपक्रमों के लिए भी उपयुक्त होता है। यह सिद्धांत संभावित लाभ के समय मूल्य को मान्यता देता है तथा जोखिम एवं अनिश्चिता का भी विश्लेषण करता है। इस सिद्धांत के अनुसार विभिन्न विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प का चुनाव किया जा सकता है।

जो कंपनियाँ साधारण अंश निर्गमित करती है तथा जिनके अंशों का मूल्य बाजार में उद्ध त किया जाता है उनके अंशों के बाजार मूल्य के आधार पर यह देखा जा सकता है कि कंपनी की संपत्तियों के मूल्य को व्यक्त करता है। कंपनी के अंशधारियों की विनियोंजित संपत्ति तभी बढ़ती है जब उनके अंशों के बाजार मूल्य में बढ़ोत्तरी हो। कंपनी के अंशों का मूल्य उसके द्वारा अर्जित लाभों की मात्रा से प्रभावित होता है, परन्तु यह भी संभव है कि लाभ कमाने वाली कंपनियों के अंशों

के बाजार मूल्य में पर्याप्त व द्धि न हो, क्योंकि अंशों का बाजार मूल्य कंपनी लाभ की मात्रा के साथ-साथ उसके भावी लाभ कमाने की क्षमता कंपनी की लाभांश नीति, संपत्तियों की तरलता तथा कंपनी की शोधन क्षमता जैसे अन्य तत्त्वों पर भी निर्भर करता है। इसीलिए दो अथवा अधिक कम्पनियों में लाभ की मात्रा समान होने पर भी उनके अंशों के बाजार मूल्यों में भिन्नता होती है। कंपनी के अंशों का बाजार मूल्य कंपनी की सम द्धि तथा संपन्नता का सूचकांक तथा प्रबंध की कुशलता का प्रतीक माना जाता है। इसीलिए वित्तीय प्रबंध का उद्देश्य उपक्रम की संपत्तियों के मूल्यों को अधिकतम करना होना चाहिए। निगमित उपक्रमों में यदि अंशों का मूल्य एक लंबे समय में लगातार बढ़ रहा है तो यह कहा जा सकता है कि वित्त प्रबंध निगम उद्देश्य की पूर्ति में सक्षम रहा है।

संपदा के मूल्य को अधिकतम करने के सिद्धांत के निम्न लाभ हैं :

- संपदा मूल्य अधिकतम करना एक स्पष्ट अवधारणा है, इसमें भावी रोकड़ प्रवाहों का वर्तमान मूल्य लिया जाता है।
- यह सिद्धांत मुद्रा के समय मूल्य पर विचार करता है जिससे रोकड़ प्रवाहों के वर्तमान मूल्य के आधार पर प्रबंध महत्त्वपूर्ण निर्णय ले सकता है।
- इस सिद्धांत को सार्वभौमिक स्वीकृती प्राप्त हुई क्योंकि यह वित्तीय संस्थाओं स्वामियों, कर्मचारियों तथा समाज सब के हित का ध्यान रखता है।
- यह सिद्धान्त प्रबंध को सुद ढ़ लाभांश नीति अपनाने का निर्देशन देता है जिससे समता अंशधारियों को अधिकतम प्रत्याय प्राप्त हो।
- यह सिद्धांत जोखिम तत्व को विनियोग निर्णयों में आवश्यक महत्त्व प्रदान करता है।

एक फर्म जो अपने अंशधारकों की संपत्ति का मूल्य अधिकतम बनाने का कार्य करती है, ऐसे निम्न कार्य करने चाहिए :

1. **ऊँच स्तर की जोखिमों से बचा जाय (Avoid high leave of risks) :** यदि फर्म के दीर्घकालीन व्यवसायिक प्रचालनों को देखा जाये तो उनमें अनावश्यक तथा अधिक मात्रा वाली जोखिमों से बचना चाहिए। अधिक जोखिम कार्यों की तुलना में कम जोखिमपूर्ण तथा अधिक लाभदायकता वाले क्षेत्रों को चुनना चाहिए। ऊँचे स्तर की जोखिम की क्रियाएँ फर्म के लिए बड़ी घातक सिद्ध हो सकती है।

2. **लागत में कमी (Reduction in cost) :** संस्था को एक तरफ पूँजी की लागत कम करनी चाहिए अर्थात् साधन न्यूनतम लागत पर प्राप्त किये जायें तथा द्वितीय इसे अपने कार्यचालन की लागत (Operating Cost) को कम करना चाहिए।

3. **लाभांश का भुगतान (Pay dividends) :** लाभांशों का भुगतान फर्म तथा अंशधरियों की आवश्यकताओं के अनुरूप होना चाहिए। फर्म के जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में नीची दर से लाभांश दिया जाये तथा जैसे-जैसे फर्म परिपक्व हो तथा उसे विस्तार के लिए धन की कम आवश्यकता हो, वैसे-वैसे अधिक लाभांश बाँटा जाये। निरन्तर उपयुक्त मात्रा में लाभांश दिए जाने पर विनियोक्ता आकर्षित होते हैं। फर्म के अंशों का बाजार मूल्य तथा फर्म की वर्तमान संपदा बढ़ती है।

4. **विकास अथवा व द्धि की प्राप्ति (Seek growth) :** एक फर्म को अपने वर्तमान मूल्य को अधिकतम करने के लिए अपने विक्रय तथा लाभों में व द्धि करनी होती है। उसे विकास एवं विस्तार की योजनाएँ बनाकर लागू करनी चाहिए। कोई भी संस्था या तो विकास

करती है या उसका पतन हो जाता है। इसलिए फर्म को सदैव विकास व विस्तार के लिए कार्यशील रहना चाहिए।

5. **अंशों के बाजार मूल्य को बनाये रखना (To maintain market price of shares) :** जो प्रबंध फर्म की संपदा के मूल्य को अधिकतम करना चाहता है, उसका कर्त्तव्य है कि वह फर्म के अशों का बाजार में ऊँचा मूल्य बनाये रखे। वित्तीय प्रबंधक को उपक्रम के स्वास्थ्य के साथ-साथ स्वामी -हित भी अक्षुष्ण रखना होता है।

वित्तीय प्रबंधन का क्षेत्र अथवा कार्य
(Scope or Functions of Financial Management)

एक व्यावसायिक उपक्रम में वित्तीय प्रबंध को कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य करने होते हैं, जिन्हें वित्त के कार्यों के रूप में जाना जाता है। इन्हें वित्त कार्य के क्षेत्र अथवा वित्त कार्य की विषय वस्तु के रूप में भी जाना जाता है। वित्तीय प्रबंध के कार्यों तथा उनके नामों के बारे में वित्तीय विशेषज्ञ एक मत के नहीं हैं। विभिन्न विशेषज्ञ वित्तीय प्रबंध के विभिन्न कार्य बताते हैं। तथा एक ही कार्य को विभिन्न विशेषज्ञ विभिन्न नामों से करते हैं, उदाहरण के लिए कुछ विशेषज्ञों ने वित्तीय प्रबंधकों द्वारा किये जाने वाले निर्णयों के अनुसार इनक कार्यों को विनियोग-निर्णय (Investment Decisions), वित्त प्रबंधन निर्णय (Financing Decisions) तथा लाभांश नीति निर्णय (Dividend Policy Decision) का नाम दिया है तथा कुछ अन्य ने वित्तीय नियोजन, संपत्तियों का प्रबंध, कोषों का संग्रहण तथा विशेष समस्या का समाधान नाम दिया है। कुछ विशेषज्ञों ने वित्तीय प्रबंध के कार्यों को आवर्ती वित्त कार्यों (Recurring finance Functions), अनावर्ती वित्त कार्यों (Non-recurring Finance Functions) तथा नैत्यक कार्यों (Routine Functions) में बाँट कर इनका वर्णन किया है। हम यहाँ पर सुविधा की द ष्टि से इन तीनों प्रकार के वित्त कार्यों का वर्णन कर सकते है :

आवर्ती वित्त कार्य
(Recurring Finance Functions)

आवर्ती वित्त कार्य वे होते हैं जो फर्म के कुशल संचालन तथा फर्म के उद्देश्य की पूर्ति हेतु निरन्तर पूरे किये जाते हैं। कोषों का नियोजन एवं संग्रहण, कोषों एवं आय का आबंटन, कोषों का नियंत्रण तथा वित्त कार्य का संस्था के अन्य कार्यों से समन्व आवर्ती वित्त कार्य माने जाते है। आवर्ती वित्त कार्यों का संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है :

1. **कोषों का नियोजन (Planning for Funds) :** एक वित्तीय प्रबंधक का सर्वप्रथम कार्य व्यवसाय के लिए चाहे, वह नया हो अथवा पुराना, एक सुद ढ़ वित्तीय योजना तैयार करना होता है। वित्तीय योजना का तात्पर्य उस योजना से होता है जिसके द्वारा व्यवसाय के वित्तीय कार्यों का अग्रिम निर्धारण किया जाता है। फर्म की वित्तीय योजना का निर्धारण इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे फर्म के कोषों का समुचित उपयोग हो सके तथा उनकी तनिक सी भी बर्बादी न हो। वित्तीय योजना के निर्माण के लिए फर्म के दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन वित्तीय उद्देश्यों का निर्धारण करना होता है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विभिन्न वित्तीय नीतियों एवं व्यवहारों की रचना की जाती है। **वित्तीय नियोजना के लिए निम्न नीतियों का निर्माण किया जाता है :**
   (अ) पूँजी की मात्रा तथा अवधि को निर्धारित करने वाली नीतियाँ;
   (ब) पूँजीकरण को निर्धारित करने वाली नीतियाँ;

(स) कोष प्राप्त करने के लिए विभिन्न स्त्रोतो के चुनाव को निर्धारित करने वाली नीतियाँ;

(द) स्थायी तथा चालू संपत्तियों के विनियोजन से संबंधित नीतियाँ; तथा

(य) आय के निर्धारण एवं वितरण के संबंध में नीतियाँ

2. **कोष का संग्रहण (Raising of Funds) :** वित्तीय प्रबंधक को वित्तीय योजना के निर्माण के बाद उसमें निर्धारित साधनों से कोषों का संग्रहण करना आवश्यक है। व्यवसाय की स्थापना के समय दीर्घकालीन कोषों की प्राप्ति के लिए अंशों का निर्गमन किया जाता है तथा इसके लिए अभिगोपकों की सेवाओं का प्रयोग किया जाता है। पूर्व-स्थापित प्रतिष्ठि उपक्रम की स्थिति में वित्तीय प्रबंधक को यह निर्णय लेना होता है कि दीर्घकालीन वित्तीय साधन अंशों के निर्गमन से प्राप्त किए जायें अथवा ऋणपत्रों द्वारा अथवा दोनों से। वित्तीय प्रबंधक यह निर्णय उपक्रम की लाभदायकता, वर्तमान वित्तीय स्थिति, पूँजी एवं मुद्रा बाजार की स्थिति, वित्तीय संस्थाओं की सहायता करने की नीति आदि बातों को ध्यान में रखकर कर सकता है। वित्तीय प्रबंधक को विभिन्न स्त्रोतों से पूँजी प्राप्त करने के वित्तीय परिणामों पर विचार कर के दी हुई परिस्थितियों में श्रेष्ठ साधन का चुनाव करना चाहिए तथा उस साधन से अनुकूलतम शर्तों पर वित्त प्राप्त करना चाहिए। वित्तीय प्रबंधक को चुने गये स्त्रोत से वित्त प्राप्त करने के लिए आवश्यक समझौता करना चाहिए।

3. **कोषों का आबंटन (Allocation of Resources) :** वित्तीय प्रबंधक का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य विभिन्न संपत्तियों में साधनों का आबंटन करना होता है। साधनों के आबंटनों मे प्रतियोगी प्रयोगों, लाभदायकता, अनिर्वायता, संपत्तियों के प्रबंध तथा फर्म के समग्र प्रबंध को ध्यान में रखा जाना चाहिए यद्यपि स्थायी संपत्तियों का प्रबंध करने की जिम्मेदारी वित्तीय प्रबंधक की नहीं होती है परन्तु उसे उत्पादन प्रबंधक को स्थायी संपत्तियों की व्यवस्था करने में सहायता पहुँचानी चाहिए। वित्तीय प्रबंध ही उत्पादन प्रबंधक को पूँजी परियोजनाओं के विश्लेषण तथा फर्म के पास उपलब्ध पूँजी की जानकारी देती है। वित्तीय प्रबंधक रोकड़ प्राप्यों तथा सामग्री के कुशल प्रशासन के लिए जिम्मेदार होता है। वित्तीय प्रबंधक को चालू संपतियों में कोषों का विनियोजन करते समय लाभदायकता तथा तरलता में उचित समायोजन करना होता है।

4. **आय का आबंटन (Allocation of Income) :** वित्तीय प्रबंधक को ही फर्म की वार्षिक आय विभिन्न प्रयोगों में आबंटित करनी होती है। फर्म की आय को विस्तार कार्यों के लिए रोका जा सकता है अथवा इसे देय ऋणों के भुगतान के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है अथवा इसे मालिकों को लाभांश के रूप में वितरित किया जा सकता है। इस संबंध में निर्णय फर्म की वित्तीय स्थिति, वर्तमान तथा भावी नगदी आवश्यकताओं एवं अंशधारियों की रुचि के अनुसार लिए जाते है।

5. **कोषों का नियंत्रण (Control of Funds) :** वित्तीय प्रबंधक का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य साधनों के प्रयोग को नियन्त्रित करना है। इस कार्य के लिए वित्तीय निष्पादन प्रमाप निर्धारित किया जाता है तथा उनके संदर्भ में वास्तविक निष्पादन की जाँच करके विचलनों को ज्ञात किया है। यदि ज्ञात विचलन सह्य सीमा (Tolerance Limit) के बाहर होते हैं तो वहाँ शीघ्र सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है। कोषों का नियंत्रण कार्य कोषों की कमी के समय अधिक महत्त्वपूर्ण बन जाता है।

6. **फर्म के अन्य विभागों से समन्वय (Co-ordination with other Departments of the**

Firm) : किसी भी उपक्रम की सफलता उपक्रम के विभिन्न विभागों के कार्यों में पाये जाने वाले समन्वय पर निर्भर करती है। वित्त कार्य व्यवसाय के प्रत्येक कार्य को प्रभावित करता है, अतः वित्त विभाग तथा अन्य विभागों में अच्छा समन्वय होना चाहिए। वित्तीय प्रबंधक का यह दायित्व है कि वह फर्म में लिये गये विभिन्न निर्णयों में इस प्रकार का समन्वय स्थापित करे कि जिससे उनमें एकरूपता हो तथा वित्तीय उद्देश्यों की पूर्ति हो तथा वित्तीय साधनों की बाधाएँ कार्यों को विपरीत रूप से कम से कम प्रभावित करें।

अनावर्ती वित्त कार्य
(Non-Recurring Finance Functions)

अनावर्ती वित्त कार्य वे कार्य होते हैं जो एक वित्तीय प्रबंधक को यदा-कदा संपन्न करने होते हैं। कंपनी के प्रवर्तन के समय वित्तीय योजना का निर्माण, संविलयन के समय संपत्तियों का मूल्यांकन, तरलता के अभाव के समय पुनर्समायोजन का कार्य आदि अनावर्ती वित्त कार्यों के कुछ उदाहरण है। इन विशिष्ट घटनाओं के घटने के समय उत्पन्न होने वाली वित्तीय समस्याओं के समाधान के कार्य वित्तीय प्रबंध को ही करने होते हैं।

नैत्यक कार्य अथवा दैनिक कार्य
(Routine Functions)

इस वर्ग में वे कार्य शामिल किये जाते हैं जो नैत्यक प्रव त्ति अथवा दैनिक प्रव त्ति के होते हैं। ये कार्य प्रतिदिन निम्नस्तरीय कर्मचारियों जैसे – लेखाकार, रोकड़ियों, लिपिक आदि द्वारा किये जाते हैं। सामान्यः इनमें निम्नलिखित कार्यों को शामिल किया जाना है

(i) रोकड़ प्राप्ति एवं उसके वितरण का पर्यवेक्षण।
(ii) रोकड़ शेषों को व्यवस्थित व सुरक्षित रखना।
(iii) प्रत्येक व्यवहार का लेखा करके लेखों को सुरक्षित करना।
(iv) उधार के व्यवहारों का प्रबन्ध करना।
(v) प्रतिभूतियों व महत्वपूर्ण प्रलेखों की सुरक्षा करना।
(vi) पेंशन व कल्याण योजनाओं का प्रशासन।
(vii) शीर्ष प्रबंध को सूचनाएँ भेजना।
(viii) राजकीय नियमों का पालन करना।

वित्तीय प्रबंध का महत्त्व
(Importance of Financial Management)

व्यावसायिक संगठनों में वित्तीय प्रबंध का महत्त्व पिछले 35-40 वर्षों में अत्यधिक बढ़ गया है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पूर्व तक प्रबंध की परंपरागत विचारधारा के अन्तर्गत वित्तीय प्रबंध का कार्य संस्था के लिए उचित शर्तों पर पूँजी प्राप्त करना था। परन्तु आधुनिक विचारधारा के अनुसार वित्तीय प्रबंध का कार्य केवल पूँजी प्राप्त करना ही नहीं है, बल्कि व्यवसाय में पूँजी का अनुकूलतम उपयोग करना भी है। साधारण व्यावसायिक संगठनों में वित्तीय प्रबंध का कार्य बड़ा सरल होता है, परन्तु निगमित व्यवसायों में वित्तीय प्रबंध का कार्य बड़ा कठिन होता है। आज उद्योग, व्यापार, बैकिंग, बीमा, परिवहन आदि सभी क्षेत्रों में निगमित उपक्रमों का महत्त्व बढ़ रहा है। निगमित

उपक्रमों के प्रबध में सभी अंशधारी प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं ले सकते हैं, अतः इनका संचालन सामान्य अंशधारियों द्वारा चुने गये संचालन मंडल द्वारा किया जाता है। संचालक मंडल के निर्देशन में प्रबंधकीय विशेषज्ञ निगमों के विभिन्न कार्यों को पूरा करते हैं। निगमों के सफल संचालन में वित्तीय प्रबंध का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अंशधारी संचालन तथा प्रबंधक वित्तीय प्रबंध के बारे में जानकारी रखते है तो वे निगम के कार्यों को सही दिशा दे सकते हैं तथा निगम के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो सकते हैं। वित्तीय प्रबंध का महत्त्व निगमित उपक्रमों के लिए ही नहीं बल्कि, गैर निगमित उपक्रमों के लिए भी बहुत होता है।

वित्त आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था का जीवन रक्त है। यह समस्त क्रियाओं का आधार है। इसके अभाव में न तो उपक्रम को आरम्भ किया जा सकता है और न ही उसे सफलातापूर्वक संचालित किया जा सकता है। आवश्यकतानुसार पर्याप्त वित्त की व्यवस्था व्यावसायिक सफलता का मूल मंत्र है। किसी भी व्यापार एवं उद्योग को चाहे वह बड़े पैमाने पर हो या छोटे पैमाने पर, प्रारंभ करने एवं उसके भावी विस्तार के लिए पर्याप्त वित्त की आवश्यकता होती है। वर्तमान समय में देश की औद्योगिक उन्नति वित्त प्रबंध पर ही निर्भर है। वित्त प्रबंध की उचित व्यवस्था के अभाव में अनेक औद्योगिक विकास की योजनाएँ मात्र काग़जी योजनाएँ बनकर रह जाती है। जिस प्रकार एक इंजिन को चलाने के लिए कोयले अथवा बिजली की आवश्यकता होती है उसी प्रकार प्रत्येक व्यापार एवं उद्योग को स्थापित करने तथा चलाने के लिए वित्तीय प्रबंध की आवश्यकता होती है। **हसबैंड एवं डोकरे** के अनुसार "विभिन्न आर्थिक एवं व्यावसायिक गतिविधियों को एक सूत्र में बाँधने के लिए वित्तीय प्रबंध की आवश्यकता होती है। **"प्रा॰ सोलेमन** ने भी वित्तीय प्रबंध का अर्थ बताते हुए लिखा है कि, "वित्तीय प्रबंध आज केवल वित्तीय साधन संकलित करने की एक विशेषज्ञ क्रिया मात्र नहीं है, अपितु संपूर्ण प्रबंधकीय विज्ञान का एक अभिन्न अंग बन गया है- वित्तीय संसाधन एकत्रित करने के साथ-साथ वित्तीय प्रबंध उत्पादन, विपणन और उपक्रम में प्रत्येक निर्णायात्मक क्रिया से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित रहता है।

"वित्त एक ऐसी धुरी है।, जिसके आस-पास समस्त व्यावसायिक क्रियायें चक्कर लगाती हैं। इसके सफल प्रबंध में समस्त वर्गों तथा पूरी फर्म का जीवन, विकास तथा कल्याण निर्भर है। वित्त प्रबंध का कार्य एक कुशल, विशेषज्ञ, अनुभवी, निष्ठावान तथा उत्तरदायी व्यक्ति को सौंपा जाना चाहिए। वित्तीय प्रबंध के महत्त्व अथवा इसकी उपयोगिता को निम्न शीर्षकों में देखा जा सकता है :

1. **उपक्रम की सफलता का आधार (Basis of Success of the Enterprise) :** चाहे वह उपक्रम छोटा हो अथवा बड़ा, चाहे उपक्रम निगमित हो अथवा गैर निगमित, चाहे उपक्रम निर्माणों हो अथवा सेवा संस्थान, उसकी सफलता वित्तीय प्रबंध की कुशलता पर निर्भर करती है। कुशल वित्तीय प्रबंध हानि में चलने वाले उपक्रम को लाभ में बदल सकता है तथा अकुशल वित्तीय प्रबंध लाभ में चलने वाले उपक्रम को बर्बाद कर सकता है, अतः उपक्रम की सफलता वित्तीय पर निर्भर करती है।

2. **साधनों का अनुकूलतम आबंटन एवं उपयोग (Optimum Allocation and Utilisation of Resources) :** एक कुशल वित्तीय प्रबंधक उपक्रम के उपलब्ध साधनों का अनुकूलतम आबंटन एवं उपयोग सम्भव बनाता है, तथा इस कार्य के द्वारा फर्म के संपदा मूल्य को अधिक बनाने में सहायक होती है।

3. **निर्णय का केन्द्र (Central Focal point of decision making) :** व्यवसाय में पहले प्रबंधकों द्वारा अंतः प्रेरणा (Intuition) तथा अनुभव के आधार पर निर्णय लिए जाते थे, परन्तु आज

अधिकांश निर्णय वित्तीय विश्लेषण एवं तुलना के आधार पर लिये जाते हैं। सभी निर्णयों के वित्तीय प्रभावों को पूर्वानुमानित करके ही उचित निर्णय लिए जाते हैं।

4. **कार्य निष्पति एवं कुशलता का मापन (Measurement of performance and efficiency) :** उपक्रम में जो कुछ कार्य होता है अन्तिम रूप से उसका मापन एवं उसकी कुशलता वित्तीय आधार पर जाँची जाती है। इस जाँच के लिए वित्तीय प्रबन्ध में अनेक तकनीकों का विकास हुआ है।

5. **नियोजन, समन्वय एवं नियंत्रण का आधार (Basis of planning, co-ordination and control) :** वित्तीय प्रबन्ध उपक्रम में नियोजन, समन्वय तथा नियंत्रण का आधार प्रस्तुत करता है। वित्तीय पूर्वानुमानों के आधार पर योजना बनाई जाती है जिसमें सभी विभागों कें कार्यो को समन्वित किया जाता है तथा विभिन्न विभागों के कार्य-कलापों पर बजटरी नियंत्रण लागू किया जाता है।

6. **राष्ट्रीय महत्त्व (National Importance) :** भारत जैसे विकासशील देशों में विभिन्न विकास कार्यों पर करोड़ों रुपयों का विनियोग किया जाता है। इस विनियोग की कुशलता द्वारा राष्ट्रीय विकास की दर ऊँची की जा सकती है। सार्वजनकि विनियोग का अकुशल प्रबंध हमारी गरीबी का एक कारण है।

7. **व्यावसायिक प्रबंधकों के लिए उपयोगिता (Useful for Business managers) :** वित्तीय प्रबंध विषय की सर्वाधिक उपयोगिता व्यावसायिक प्रबंध के क्षेत्र में होती है। निगमों में जनता की पूँजी विनियोजित होती हे। प्रबंधक जनता की पूँजी के प्रन्यासी होते हैं। यह उनका दायित्व है कि वे जनता के विभिन्न वर्गों द्वारा विनियोजित पूँजी को सुरक्षा प्रदान करें तथा उस पर उचित प्रत्याय की व्यवस्था करें। ऐसा तब ही हो सकता है जब व्यावसायिक प्रबंधक वित्तीय प्रबंध के सिद्धान्तों से पूर्ण रूप से परिचित हों तथा संस्था के लिए प्रभावपूर्ण वित्तीय नीति का निर्धारण कर सकें।

8. **अंशधारियों के लिए उपयोगिता (Useful for Shareholders) :** कंपनी तथा निगम के वास्तविक स्वामी अंशधारी होते हैं। इनकी संख्या अधिक होन के कारण ये प्रबंध में प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं ले सकते हैं। प्रबंध का कार्य इसके द्वारा चुने गये संचालकों को सौंप दिया जाता है। संचालक मंडल अंशधारियों के हित में कार्य करते हैं अथवा नहीं, इसको देखना अंशधारियों का कार्य है। यदि अंशधारी वित्तीय प्रबंध विषय का पर्याप्त ज्ञान रखते हैं तो वे कंपनी की आर्थिक स्थिति का सही मूल्यांकन कर सकते हैं तथा कंपनी की वार्षिक सभाओं में अच्छे सुझाव दे सकते हैं। यदि संचालक अंशधारियों के हितों के विरुद्ध कार्य करते हैं तो अंशधारी उन्हें उचित वित्तीय नीति अपनाने के लिए बाध्य कर सकते हैं।

9. **विनियोक्ताओं के लिए उपयोगिता (Useful for Investors) :** देश के बहुत से विनियोक्ता बचत करके अपनी बचतों को कम्पनियों के अंशों में विनियोजित करते हैं। भारत में विनियोग बैंकों का अभाव होने के कारण विनियोक्ताओं को प्रतिभूति विक्रेताओं एवं दलालों पर निर्भर रहना पड़ता है। वे लोग विनियोक्ताओं को सही सलाह नहीं दे सकते हैं। यदि विनियोक्ता स्वयं वित्तीय प्रबंध के सिद्धांतों एवं व्यवहार से परिचित हों तो वे स्वयं यह निर्णय कर सकते हैं कि उन्हें कौन-सी कंपनी की प्रतिभूतियों में विनियोग करना चाहिए जिससे उन्हें पर्याप्त लाभ प्राप्त हो सके।

10. **वित्तीय संस्थाओं के लिए उपयोगिता (Useful for Financial Institutions) :** विभिन्न

वित्तीय संस्थाओं जैसे- विनियोग बैंकों, व्यापारिक बैंकों, अभिगोपकों, प्रन्यास कंपनियों, स्वीकृति ग हों, बट्टा ग हों आदि के व्यवस्थापकों को वित्तीय प्रबंध का विस्त त ज्ञान होना चाहिए। इन संस्थाओं के प्रबंधकों को विषय का पूर्ण ज्ञान न होने पर वे गलत कंपनियों को अधिक उधार दे सकते हैं अथवा खराब प्रतिभूतियों में विनियोजन कर सकते हैं। अथवा गलत अभिगोपन द्वारा अनावश्यक हानि उठाने के लिए बाध्य हो सकते हैं। इसलिए वित्तीय संस्थाओं में वित्तीय विशेषज्ञों को नियुक्त किया जाता है।

11. **अन्य व्यक्तियों के लिए उपयोगिता (Useful for Others) :** वित्तीय प्रबंध, विषय का ज्ञान समाज के विभिन्न व्यक्तियों के लिए लाभदायी होता है। राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, वाणिज्य एवं प्रबंध विषय के विद्यार्थी इससे लाभान्वित होते हैं। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में भारी मात्रा में सरकारी उपक्रमों में विनियोग किया गया है। इस विनियोग की सफलता वित्तीय प्रबंध की प्रभावशीलता पर ही निर्भर करती है। भारत में सरकारी उद्यमों की अकुशलता के कारण करोड़ों रुपयों की पूँजी पर उचित एवं पर्याप्त लाभ प्राप्त नहीं हो रहा है। इस स्थिति को वित्तीय प्रबंध के आधुनिक सिद्धांतों एवं व्यवहारों के उपयोग द्वारा ही ठीक किया जा सकता है।

वित्त कार्य का संगठन
(Organisation of Finance Function)

सभी व्यावसायिक संस्थानों में वित्त कार्य समान रूप से लागू होता है, परन्तु वित्त कार्य का संगठन एक उपक्रम से दूसरे उपक्रम में भिन्न होता है। वित्त कार्य का संगठन फर्म की प्रकृति, आकार, परम्परा तथा अन्य विशेषताओं पर निर्भर करता है। उदाहरण के तौर पर एक छोटे उपक्रम में वित्त कार्य के लिए अलग से किसी वित्त अधिकारी की नियुक्ति नहीं की जाती है, बल्कि स्वामी स्वयं ही समस्त वित्त कार्यों को संपन्न करता है। वही उपक्रम की आवश्कताओं का अनुमान लगाकर रोकड़ बजट बनाता है तथा उपक्रम के लिए आवश्यक कोषों की व्यवस्था करता है। ऐसे छोटे उपक्रमों में स्वामी ही समस्त प्राप्तयों एवं भुगतानों को देखता है, साख-सुविधाएँ प्रदान करता है, प्राप्य बिलों की वसूली करता है, नगदी का प्रबंध करता है तथा अतिरिक्त कोषों की व्यवस्था करता है। ऐसे उपक्रमों में वित्त कार्य का कोई व्यवस्थित संगठन नहीं होता है, बल्कि वित्त कार्य उत्पादन तथा विपणन के साथ संलग्न रहता है। परन्तु उपक्रम के आकार में विस्तार होने पर वित्त कार्य में विशिष्टीकरण बढ़ता है तथा इस कार्य की व्यवस्था के लिए अलग से विशेषज्ञों की सेवाएँ प्राप्त की जाती हैं। मध्यम आकार के व्यावसायिक संगठन में वित्त कार्य को संपन्न करने के लिए वरिष्ठ प्रबंधक, जिसे वित्तीय नियंत्रक, संचालक, वित्त प्रबंधक अथवा कोषाध्यक्ष के नाम से पुकारा जाता है, नियुक्त किया जाता है। यही व्यक्ति साख वसूलियों लेखांकन, विनियोग तथा अंकेक्षण कार्यों को देखता है। वार्षिक रिपोर्ट भी इसी व्यक्ति द्वारा तैयार की जाती है। वह संचालक मंडल से प्रत्यक्ष रूप में संबद्ध होता है। निर्णयन में उसकी भूमिका स्वयं की योग्यता तथा संचालक मंडल में उसकी पहुँच पर निर्भर करती है।

बड़े व्यावसायिक उपक्रमों में वित्त प्रबंधक अथवा अधिकारी की स्थिति अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होती है। सामान्यतया वह कंपनी के शीर्ष प्रबंध टोली का सदस्य होता है। उसका पद वित्त संचालक अथवा उपाध्यक्ष वित्त अथवा वित्त प्रबंधक के नाम से जाना जाता है। बड़ी कंपनियों अथवा निगमों में वित्तीय कार्यों में भी अत्यधिक विशिष्टीकरण हो चला है। वित्त प्रबंधक के लिए यह संभव नहीं है कि वह स्वयं समस्त वित्तीय कार्यों को संपन्न करे तथा सभी अधिकारियों से संपर्क रख

सके। अतः वित्त कार्य को दो उपविभागों में बाँट दिया जाता है जो क्रमशः वित्त (Finance) तथा वित्तीय नियंत्रण (Financial Controller) होते हैं, जिनकी व्यवस्था के लिए वित्त प्रबन्धक के नियंत्रण में कोषाध्यक्ष (Treasurer) हौर वित्त नियंत्रक (Financial Controller) की नियुक्ति की जाती है। इनमें से प्रत्येक के अधीन भी अनेक उप-विभाग होते हैं।

बहुत बड़े निगमों में वित्तीय नियोजन एवं नियंत्रण के कार्य को बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। ऐसी स्थिति में वित्त कार्य प्रबंध संचालक पर ही नहीं छोड़ा जाता है बल्कि संचालक मंडडल तथा प्रबंध संचालक के मध्य एक वित्तीय समिति नियुक्त की जाती है, जिसमें कुछ संचालकों के प्रतिनिधि तथा विभिन्न विभागाध्यक्षों अथवा प्रबंधकों को रखा जाता है। इस समिति की अध्यक्षता प्रायः प्रबंध संचालक करता है। वित्त समिति का कार्य संचालक मंडल को वित्तीय नियोजन एवं नियंत्रण के लिए सलाह देना होता है।

एक बड़े निगमित उपक्रम के वित्त कार्य के संगठन को निम्नांकित चार्ट 20.1 में देखा जा सकता है।

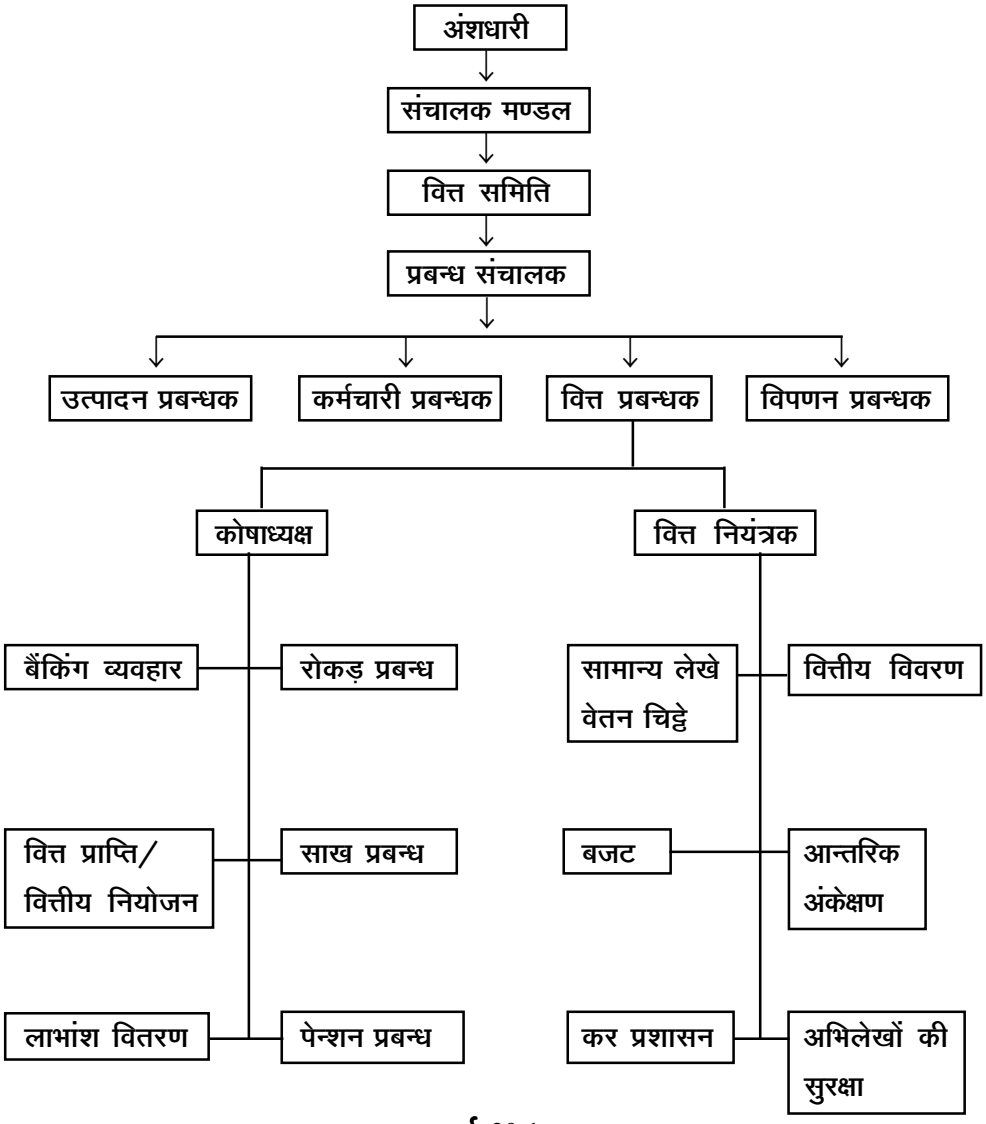

चार्ट 20.1

चार्ट 20.1 को देखने से स्पष्ट होता है कि संचालक मंडल को वित्तीय नियोजन एवं नियंत्रण के लिए सलाह दने के लिए वित्त समिति संचालक मंडल तथा प्रबंध संचालक के मध्यकार्य करती है। प्रबंध संचालक के अधीन अन्य विभागाध्यों अथवा उपाध्यक्षों अथवा प्रबंधकों की तरह से वित्त प्रबंधक अथवा उपाध्यक्ष वित्त होता है। वित्त प्रबंधक अथवा उपाध्यक्ष वित्त संस्था के समस्त वित्त कार्यों के लिए दायी होता है। वित्त प्रबंधक के अधीन दो महत्त्वपूर्ण अधिकारी कोषाध्यक्ष तथा वित्त नियंत्रक होते हैं। कोषाध्यक्ष संस्था के बैंकिंग व्यवहार, रोकड़, प्रबंध, वित्त प्राप्ति साख प्रबंध लाभांश वितरण, कर्मचारियों की पेंशन प्रबंध आदि कार्य करता है। वित्त नियंत्रक सामान्य लेखे एवं वेतन, चिट्ठे बनाने, वित्तीय वितरण तैयार करवाने, बजट बनाने, आन्तरिक अंकेक्षण, करो का नियोजन करने तथा अभिलेखों की सुरक्षा के कार्य करता है। इसी प्रकार कोषाध्यक्ष तथा वित्त नियंत्रक के अधीन अन्य अनेक कर्मचारी होते हैं। जो इनके कार्यों को सरल बनाते हैं।

किसी भी संस्था में वित्त कार्य का संगठन अनेक तत्वों से प्रभावित होता है, जिनमें प्रमुख तत्व निम्न हैं :

1. **विभिन्न वित्तीय आवश्यकतायें (Varying Financial Needs) :** सभी फर्मों की वित्तीय आवश्यकताएँ समान नहीं होती हैं बल्कि वे उनके व्यवसाय की प्रकृति, आकार तथा वित्तीय क्रियाओं की तीव्रता आदि से प्रभावित होती हैं। उदाहरण के तौर पर एक विनिर्माणकारी फर्म को स्थायी संपत्तियों के क्रय के लिए बड़ी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता होती है, जबकि सेवा उद्योग में फर्म की वित्तीय आवश्यकताएँ कम होती है। सभी ग्राहकों को प्रदान की जाने वाली सेवाओं से संबंधित वित्तीय प्रणाली विकसित करती है।
2. **वित्तीय अधिकारियों की योग्यताएँ (Abilities of Financial Officers) :** जहाँ वित्तीय अधिकारी कम योग्यता वाले होते हैं वहाँ साधारण लेखांकन एवं रिपोर्टिंग संगठन विकसित किया जाता है जो बगैर अधिक वित्तीय विशेषज्ञता के कार्य करता है।
3. **वित्तीय प्रणाली (Financial System) :** संस्था द्वारा अपनायी गई वित्तीय प्रणाली बहुत ही परंपरागत प्रणाली से लेकर अत्याधिक आधुनिक प्रणाली हो सकती है। वित्तीय प्रणाली देश की अर्थव्यवस्था, कार्यशली वित्तीय संस्थाओं एवं वित्तीय बाजारों से प्रभावित होती है, अतः एक संस्था को ऐसी वित्तीय प्रणाली अपनानी चाहिए जो देश के वित्तीय वातावरण के संदर्भ में संस्था की वित्तीय आवश्यकताओं की सुगमता से पूर्ति कर सके।

   उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखकर संस्था को अपना वित्तीय संगठन बनाना चाहिए जिसमें योग्य वित्त अधिकारियों की नियुक्ति करके उन्हें विशिष्ट कार्य करने के अधिकार एवं दायित्व सौंपे जाने चाहिए।

वित्तीय प्रबंधक की बदलती भूमिका भारत के विशेष संदर्भ में (Changing Role of Financial Manager with Special Reference to India)

आधुनिक व्यवसाय में वित्तीय प्रबंधक एक आधारभूत स्थान (Key Position) संभाले हुए है तथा वह उच्च प्रबंध टोली के सक्रिय सदस्यों मे से एक होता है। जटिल प्रबन्ध समस्याओं के समाधान में उसकी भूमिका दिन-प्रति-दिन अधिक व्यापपक, गहन तथा महत्त्वपूर्ण होती जा रही है। वित्तीय प्रबंधक के कार्य केवल लेखे रखना, प्रतिवेदन तैयार करना तथा आवश्यकता के समय विभिन्न साधनों से कोष प्राप्त करने तक ही सीमित नहीं रह गये हैं। बलिक उसके कार्य इससे भी आगे

बढ़ गए है। अब यह उपक्रम के भाग्य को निश्चित रूप देने के लिए भी जिम्मेदार होता है तथा वह पूँजी के आबंटन के सर्वाधिक निर्णय लेने में सम्मिलित रहता है। वित्तीय प्रबंधक का नवीन भूमिका में उसके कार्य एवं दायित्व बहुत अधिक बढ़ गये हैं। उसे इस नवीन भूमिका में अपना विस्त त तथा दूरदर्शी द ष्टिकोण रखना आवश्यक है। उसके लिए अब यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि व्यवसाय के कोषों का सर्वाधिक कुशल प्रयोग किया गया है। उसके निर्णय फर्म के लिए दूरगामी परिणाम उत्पन्न करने वाले होते हैं। उसके कार्यों में व्यावसायिक आवश्यकताओं के लिए विभिन्न साधनों से उचित शर्तों पर वित्त प्राप्त करना तथा व्यवसायिक उद्देश्यों की पूर्ति की पूर्ति हेतु उसका उपयोग एवं प्रबंध करना शामिल होता है।

भारत में वित्तीय सेवा क्षेत्र के विकास तथा सेबी का विनियोगिता हितों की रक्षा हेतु रखवाली करने वाले कुत्ते तथा पूँजी बाजार के नियंत्रक की भूमिका ने वित्तीय प्रबंधक के कार्यों को महत्त्वपूर्ण बना दिया है। कोष संग्रहण हेतु शून्य कूपन बाण्ड तथा लचीले बाण्ड वित्त प्राप्ति के नवीन औजारों के उदाहरण हैं जिनका कंपनियों की वित्तीय नीतियों पर सीधा प्रभाव पड़ा है।

प्रारम्भिक वर्षों में भारत में वित्त प्रबंधक को विक्रेताओं के बाजार में कार्य करना होता था। भारतीय व्यवसाय के अधिकांश क्षेत्रों में एकाधिकार की स्थिति थी। व्यवसाय को वित्त प्रायः बैंको तथा वित्तीय संस्थाओं से ही प्राप्त होता था। अंशधारियों की संतुष्टि की प्रवर्तकों को चिन्ता नहीं रही है क्योंकि कंपनिया क्लोजली हैड (Closely held) रही हैं। परन्तु जब से भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व बाजार के लिए खोल दिया गया है, तब से विक्रेताओं का बाजार क्रेताओं के बाजार में परिवर्तित हो गया तथा भारतीय फर्मों को न केवल राष्ट्रीय बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है।

पिछले कुछ वर्षों में भारत में वित्तीय प्रबंध के क्षेत्र में नये युग का सूत्र पात हुआ है। नई वित्तीय व्यवस्था वित्त सेवा उद्योग का आगमन, वित्तीय औजारों, पुर्जों, तकनीकों तथा नवाचार के विकास, सार्वजनिक उपक्रमों के स्वः आत्मनिर्भर होने तथा अपने साधन पूँजी बाजार से प्राप्त करने आदि के कारण वित्तीय प्रबंधक की भूमिका ही बदल गयी है। इसमें उदारवाद, अनियंत्रण तथा वैश्वीकरण की बढ़ती प्रव त्तियों के कारण अधिक बदलाव आया है और अधिक तेजी से आयेगा।

एक आधुनिक वित्त प्रबंधक के कार्य
(Tasks of a Modern Finance Manager)

एक आधुनिक वित्त प्रबंधक के महत्त्वपूर्ण कार्यों को इजरा सोलोमन (Ezra Solomon) ने तीन तरह के प्रश्नों का जवाब देना माना है। ये प्रशन हैं :

1. एक फर्म कितनी बड़ी हो तथा इसका कितनी तीव्रता से विकास हो ?
2. फर्म की संपत्तियों की संरचना कैसी हो ?
3. फर्म की वित्तीय व्यवस्था या वित्त के साधनों का सम्मिश्रण कैसा हो ?

उपर्युक्त प्रश्नों के संदर्भ में आधुनिक वि प्रबंधक के कार्यों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता हैः

(अ) वित्तीय विश्लेषण एवं प्रगति जाँच,

(ब) वित्त व्यवस्था,

(स) विनियोजन।

उपर्युक्त का विस्त त अध्ययन यहाँ किया जा रहा है :

वित्तीय विश्लेषण एवं प्रगति जाँच (Financial Analysis and Monitoring) : वित्त प्रबंध का एक महत्त्वपूर्ण कार्य वित्तीय विश्लेषण करके निष्पत्ति बतलाना होता है। इस कार्य को सफलतापूर्वक करने के लिए वित्तीय प्रबंधक निम्न कार्य करता है :

(अ) **वित्तीय दशाओं एवं निष्पत्ति का विश्लेषण (Analysis of Financial Conditions and Performance) :** एक वित्त प्रबधंक को किसी समय विशेष पर संस्था की वित्तीय स्थिति का विश्लेषण करके एक अवधि विशेष की निष्पत्ति का मूल्यांकन करना होता है। संस्था की वित्तीय स्थिति का विश्लेषण करके फर्म के पर्यावरण को जानना आवश्यक होता है। कभी संस्था का वित्तीय पर्यावरण अनुकूल तथा कभी प्रतिकूल होता है।

(ब) **वित्तीय पूर्वानुमान एवं नियोजन (Financial forecasting and Planning) :** संस्था का वित्तीय विश्लेषण करके निष्पत्ति का मूल्यांकन करने के बाद वित्तीय पूर्वानुमान करके वत्तीय नियोजन करना होता है। वित्तीय पूर्वानुमान में विभिन्न चलों का पूर्वानुमान किया जाता है तथा उनको ध्यान में रखकर वित्तीय नियोजन किया जाता है।

(स) **वित्तीय नियंत्रण (Financial Control) :** वित्तीय नियोजन के बाद वित्त प्रबंधक को वित्तीय नियंत्रण करना होता है। वित्तीय नियंत्रण हेतु विभिन्न प्रकार के बजटों एवं प्रमापों का निर्धारण किया जाता है। संस्था की वास्तविक निष्पत्ति का प्रमापित अथवा बजटेड निष्पत्ति के संदर्भ में मूल्यांकन किया जाता है। यदि प्रमापित निष्पत्ति एवं वास्तविक निष्पत्ति में सहन सीमा से अधिक विचलन होता है तो सुधारात्मक कार्यवाही की जाती है।

वित्त व्यवस्था (Financing) वित्त व्यवस्था करना फर्म के वित्त प्रबंधक का महत्वपूर्ण कार्य माना जाता है। इसके लिए वित्तीय प्रबंधक को अनेक क्रियाएँ करनी होती हैं :

(अ) **आदर्श संयोग का चुनाव (Selection of optimum combination of various sources of finance) :** वित्त प्रबंधक को संभावित उपलब्ध वित्त साधनों का अध्ययन करके विभिन्न साधनों का आदर्श संयोग चुनना होता है, जिससे पूँजी की लागत न्यूनतम रहे।

(ब) **वित्त प्राप्ति की शर्तें व समय का निर्धारण (Determination of terms and timing of financing) :** आदर्श संयोग के चुनने के बाद विभिन्न साधनों से वित्त प्राप्त करने के लिए कार्य करना होता है। विभिन्न साधनों से वित्त प्राप्त करने की शर्तें, सयम आदि का निर्धारण भी वित्त प्रबंधक को करना होता है।

(स) **लाभों के वितरण तथा प्रतिधारित अर्जितों के संबंध में निर्णय : (Decision about distrbution of dividend and retained earnings) :** वित्त प्रबंधक को फर्म द्वारा अर्जित लाभ को अंशधारियों में लाभांश के रूप में बाँटने एवं संस्था में प्रतिधकारित अर्जनों के रूप में रोकने के संबंध में भी निग्रय कना होता है।

विनियोग (Investing) : फर्म द्वारा विभिन्न साधनों से जो वित्त एकत्र किया जाता है, उसे विभिन्न प्रकार की संपत्तियों एवं परियोजनाओं में विनियोजित करना होता है। विनियोजन कार्य में प्रमुख रूप से निम्न क्रियाएँ शामिल होती हैं :

(अ) **चालू संपतियों में विनियोग का निर्धारण (Determination of investment in current assets) :** वित्त प्रबंधक को चालू संपत्तियों का प्रबंध करना होता है। वित्त प्रबंधक को निर्धारित करना होता है कि रोकड़, विक्रयशील प्रतिभूतियाँ, देनदार तथा सामग्री में कितना विनियोग हो ? यदि इनका स्तर कम है तो उसे कैसे बढ़ाया जाये तथा किसी चालू संपत्ति में अत्याधिक विनियोग है तो उसको किस तरह से कम किया जाये ?

(ब) **पूँजीगत परियोजनाओ के चयन के संबंध में निर्णय (Decisions regarding selection of capital investment projects) :** पूँजी बजटन विनियोजन का एक मुख्य क्षेत्र है। विभिन्न परियोजनाओं को स्वीकार करने के मापदण्डों को चुनाव करना, अनिश्चितता के तत्व को जानना तथा उसे कम करना वित्त प्रबंधक की योग्यता पर निर्भर करता है।

(स) **पुनर्संरचना निर्णय (restructuring decisions) :** संविलयन, पुनर्मिमणि तथा समापन जैसी कार्यवाहियों की आवश्यकता हो तो उसकी शर्तों एवं प्रक्रिया के निर्धारण में वित्त प्रबंधक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

आधुनिक वित्त प्रबंधक के दायित्व
(Responsibilities of a Modern Finace Manager)

आधुनिक वित्त प्रबंधक निगम के अंशधारियों, लेनदारों, ग्राहकों, श्रमिकों तथा अन्य पक्षकारों के प्रति दायी होता है वित्त प्रबंधक के प्रमुख दायित्व निम्न है :

लागतों एवं आगम में संतुलन (Balancing Cast and Revenue) : वित्त प्रबंधक को संस्था के कार्यचालन में उत्पन्न लागतों एवं आगम में संतुलन बनाये रखना होता है।

विनियोजित पूँजी पर पर्याप्त प्रत्याय (Adequate return on shareholders funds) : अंशधारियों द्वारा संस्था में जो पूँजी विनियोजित की गई है उस पर उपयुक्त तथा स्थिर प्रत्याय उपलब्ध करवाना वित्त प्रबंधक का दायित्व है। यह तभी संभव होता है जब वित्त प्रबधक स्वामियों की संपत्ति को अधिकतम करने के कार्य में लगा रहे।

वित्त के उपयोग का नियंत्रण (Control of financial resources) : वित्त प्रबंधक को वित्त के उपयोग के प्रमाप, कार्यविधियाँ तथा परम्पराएँ विकसित करनी होती हैं जिससे वित्त का दुरुपयोग रुके, आगम का रिसाव न हो तथा लागतों पर नियंत्रण रहे एवं उनमें कमी की जा सके।

कानूनों का पालन (Adherence of various laws) : सरकार द्वारा वित्त के संबंध में पूँजी नियंत्रक, स्कन्ध विपणि, वित्तीय संस्थाओं के प्रयोग हेतु जो नियंत्रण कानून बनाये एवं लागू किये जाते हैं, उनका पूर्णरूप से पालन किया जाये तथा उनके अन्तर्गत जो सूचनायें प्रदान करनी होती हैं, वे समय पर दी जाएँ। वित्त प्रबंधक को कर-कानून, आयात-निर्यात नियंत्रण कानूनों तथा नियमों का पालन करना चाहिए।

लेनदारों के हितों का सरंक्षण (Protection of creditors' interest) : वित्त प्रबंधक का दायित्त्व है कि वह लेनदारों के हितों को सुरक्षित रखे। उनके ऋणों पर समय पर भुगतान करें। इस कार्य के लिए पर्याप्त तरलता की व्यवस्था करनी होती है। संस्था की लाभदायकता एवं तरलता बनी रहने पर ही लेनदारों के हितों की रक्षा होती है।

कर्मचारियों के हितों का सरंक्षण व प्रोत्साहन (Protection and Promotion of employees interest) : वित्त प्रबंधक संस्था के कर्मचारियों के प्रति भी दायी है। संस्था योग्य एवं कुशल कर्मचारियों को तभी आकर्षित कर सकती है जब उनके लिए पुरस्कार की उपयुक्त दरें निर्धारित की जायें। कर्मचारियों को विविध प्रकार के प्रोत्साहनों एवं बोनस आदि का समय पर भुगतान किया जाना चाहिए।

वित्तीय प्रबंध की सीमाएँ
(Limitations of Financial Management)

वित्तीय प्रबंध की भूमिका लगातार परिवर्तित होती जा रही है। पहले वित्तीय प्रबंध की आवश्यकता केवल विशेष अवसरों पर वित्त प्राप्ति हेतु अनुभव की जाती थी परन्तु अब वित्तीय प्रबंध अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है तथा इसकी आवश्यकता प्रबंध में लगातार बढ़ती जा रही है तथा यह उच्च प्रबंध का भाग हो गया है।

वित्तीय प्रबंध का अत्यधिक महत्त्व होते हुए भी इसकी कुछ सीमाएँ हैं जिनका ध्यान रखा जाना चाहिए। वित्तीय प्रबंध की प्रमुख सीमाएँ निम्न हैं :

सभी प्रबंधकीय निर्णयों के वित्तीय प्रभाव जानना कठिन (It is difficult to know the financial effects of various managerial decisions) : एक संस्था में प्रबंध के जितने कार्यात्मक क्षेत्र हैं उन सब के निर्णय वित्तीय प्रभाव रखते हैं। अतः वित्तीय प्रबंधक के लिए सभी कार्यात्मक प्रबंधकीय निर्णयों के प्रभावों को जानना तथा उन सब में समन्वय स्थापित करना बड़ा कठिन कार्य होता है।

वित्तीय लेखों पर निर्भर (Based on financial records) : वित्तीय प्रबंध के लिए वित्तीय विश्लेषण एवं निर्वचन की अनेक तकनीकें काम में ली जाती हैं, जो वित्तीय लेखों पर आधारित होती हैं। वित्तीय लेखे भूतकाल से संबंधित होते हैं तथा लेखा परम्पराओं एवं नीतियों से प्रभावित रहते हैं। अतः इन पर आधारित वित्तीय निर्णय इनमें व्याप्त दोषों से ग्रसित रहते हैं।

सबंधित विषयों की कम जानकारी (Lack of knowledge of related subjects) : वित्तीय प्रबंध के सही उद्देश्य तभी प्राप्त हो सकते हैं जबकि वित्तीय प्रबंधकों को प्रबंध, प्रबंध लेखांकन, सांख्यिकी, अर्थशास्त्र, अभियान्त्रिकी आदि की अच्छी जानकारी हो। इनकी जानकारी के अभाव में उच्च प्रबंध सही निर्णय लेने एवं उनके वित्तीय प्रभाव जानने में सक्षम नहीं होगा।

वस्तुनिष्ठता का अभाव (Lack of objectivity) : वित्तीय प्रबंध पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ नहीं है। वित्तीय प्रबंध के निर्णय वित्तीय प्रबंधकों के व्यक्तिगत विचारों एवं भावनाओं से प्रभावित होते हैं और जब इनकी मात्रा अधिक हो जाती है तो वित्तीय निर्णय संस्था के लिए अच्छे परिणाम कम एवं बुरे परिणाम अधिक प्रदान करते हैं।

विकासशील विषय (Developing Subject) : वित्तीय प्रबंध पूर्ण रूप से विकासित विषय नहीं है तथा इसका अभी विकास हो रहा है। अनेक विचारों एवं धारणाओं के बारे में विशेषज्ञ एकमत नहीं हैं। वित्तीय विश्लेषण एवं निर्वचन के प्रमाप भी बदल रहे हैं।

व्ययशील (Expensive) : यह प्रभावशाली वित्तीय प्रबंध का संगठन खड़ा करना बड़ा महँगा कार्य है। अतः छोटे व्यावसायिक प्रतिष्ठान इस भार को वहन नहीं कर पाते हैं। वित्तीय अधिकारी योग्य एवं कुशल होने चाहिए। यदि कोई संस्था योग्यता एवं कुशलता से समझौता करके घटिया संगठन निर्मित करती है तो उसके परिणाम बड़े बुरे होते हैं।

नये उभरते रुझान
(Emerging Trends of Financial Administration)

1) **राजकोषीय घाटे का विनियोजन एवं नियंत्रण**
Planning of Control of Tresuary Deficit)

भारत में विकासात्मक प्रयासों की खास विशेषता यह रही है कि यहाँ उपलब्ध स्त्रोतों से

कहीं अधिक निवेश का प्रयास होता रहा है। इस अंतर को अनुकूल भुगतान संतुलन तथा विदेशी धन-प्रेषणों द्वारा दूर किया जाना चाहिए था। किन्तु भारतीय नीति-निर्धारकों ने मुद्रा प्रसार की अकूत खुराकों पर साख कायम करके इस अंतर को मिटाने की कोशिश की। घाटे की वित्त व्यवस्था को करारोपण समेत स्त्रोत जुटाने के विकल्प के रूप में इस्तेमाल किया गया। घाटे की वित्त व्यवस्था की वार्षिक औसत-दर में वर्ष-दर-वर्ष व द्धि होती गई। यह धारणा योग्य सुरक्षित सीमा से कहीं आगे निकल गई जो कि कथित तौर पर उपभोक्ता मालों की आपूर्ति की व द्धि-दर, अर्थव्यवस्था के मुद्रीकरण के स्तर तथा उत्पादन एवं वितरण पर नियंत्रण की सीमा, द्वारा निर्धारित होती है। इस ताबड़तोड़ घाटे की वित्त व्यवस्था के परिणाम के तौर पर साठ के दशक के मध्य से ही मुद्रास्फीति की ऊँची दर, अर्थव्यवस्था का प्रमुख लक्षण बन गई है। इसने भुगतान संतुलन की समस्या पैदा कर दी है। जुलाई 1991 में, यह परिस्थिति एक आर्थिक संकट में बदल गई।

इस संकट को हल करने के लिए सरकार को अनेक उपाय करने पड़े। प्रमुख लक्ष्य था राजकोषीय घाटे पर नियंत्रण करना तथा 1992-93 तक इसे घटाकर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (राष्ट्रीय आय) के 5 प्रतिशत तक ले जाना।

2) **गैर-विकासात्मक व्यय में कटौती**
(Reduction in Non-Developmental Expenditure)

भारतीय स्त्रोत का एक बड़ा हिस्सा गैर-विकासात्मक व्ययों में व्यर्थ चला जाता है जो कि एक गैर- उत्पादक प्रवाह है। गैर-विकासात्मक व्यय में भारी व द्धि हुई है। इस व्यय का एक बड़ा हिस्सा फिजूलखर्ची, अक्षमता तथा निष्फल लोक-नीतियों एवं गतिविधियों से जुड़ा हुआ है। रक्षा तथा कानून-व्यवस्था पर भारी परिव्यय ने भी इस रुझान की तरफ बढ़ने में योगदान किया है। लोक-नीति ने व्यय को कम करने पर अपना ध्यान केन्द्रित किया है। बचतों का अधिकांश भाग, आर्थिक राहतों, रक्षा-व्यय, सार्वजनिक उद्यमों के स्त्रोतों कं अंतरण, चालू एवं पूंजी व्यय, में कटौतियाँ करके, प्राप्त किया जाना है। सरकार ने घोषणा की है कि वित्त-वर्ष की बकाया अवधि के दौरान अनुपूकरक विनियोजनों के जरिए, व्यय में कोई व द्धि नहीं की जाएगी, जब तक कि इस तरह के प्रस्तावों के साथ समान रूप से कहीं अन्यत्र बचत के सुझाव न दिए गए हों।

3) **शून्य आधारित परिप्रेक्ष्य का विकास**
(Development of Zero Based System)

भारत मे बजटीय निर्णयों का प्रमुख लक्षण व द्धिकारी द ष्टिकोण रहा है। हालांकि समूचे स्तर पर शून्य आधारित बजट प्रणाली की स्थापना का प्रयास नहीं किया गया है, पिछले करीब 5 वर्षों के दौरान विकसित हुई व्यय-नीति ने, इस नई बजटीय अवधारणा के मूलभूत आधार-वाक्य पर ध्यान दिया है। यह मांग की गई है कि सरकारी व्यय के किसी भी क्षेत्र को छानबीन से परे नहीं रखा जाना चाहिए।

4. **आकस्मिकता द ष्टिकोण का प्रयोग**
(Use of Contingent View)

आकस्मिकता द ष्टिकोण सार्वजनकि संगठन की सभी उप पणालियों, जिनमें प्रर्यावरण की उच्चतर-प्रणाली भी शामिल है के विश्लेषण एवं समझ पर बल देता है ताकि लोक नीतियों तथा प्रशासनिक कार्यवाहियों को विशिष्ट परिस्थतियों तथा प ष्ठभूमियों की मांगों के अनुरूप

ढाला तथा समन्वित किया जा सके। यह किसी लोक-प्रशासक को एक संपूर्ण समस्या का व्यावहारिक हल ढूंढने में सक्षम बनाता है। हाल के आर्थिक संकट का सामना करने हेतु द ष्टिकोण ने इस आधुनिकतम सिद्धांत के मूल तत्त्व प्रतिबिंबत हुए हैं उदाहरण के रूप में यद्यपि घाटे की वित्त व्यवस्था की तरफ सरकार के पास राजनैतिक सत्ता तथा बुनियादी रुझान मौजूद हैं, किन्तु वह इसके विपरीत फैसले लेने के बाध्य है। ऐसा परिस्थितियों के दबाव के कारण हुआ। इसी तरह, आत्म-निर्भर तथा सामाजिक बराबरी की अवधारणाएँ अब सरकार की मुख्य चिन्ताएँ नहीं रही हैं, जैसा कि विदेशी भागीदारी जिसमें अप्रवासी भारतीय पर विशेष बल दिया गया है, की तरफ खुले-दरवाजे वाली नीति से स्पष्ट हो जाता है। इसी तरह के अन्य लोक नीतिगत निर्णय भी लिए गए हैं जो अर्थव्यवस्था को बाजार-क्रियाविधि की तरफ मोड़ने के प्रयास है।

5) **सार्वजनिक क्षेत्र पर जोर कम किया जाना**
(Less Stress on Public Area)

भारत में, सार्वजनिक उद्यमों के लिए तर्काधार इस उक्ति पर आधारित रहा है, कि राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्ति के लिए राज्य का स्वामित्व जरूरी है। इस मूल्यगत निर्णय के फलस्वरूप बड़े पैमाने पर राष्ट्रीयकरण किया गया था। सार्वजनिक उद्यमों की बड़ी संख्या में लगातार बढ़ते घाटों, राजकोषीय घाटे में कमी लाने हेतु स्त्रोतों की आवश्यकता सार्वजनिक उद्यमों के निजीकरण की तरफ विश्वव्यापी रुझान, इन सभी ने मिलकर सार्वजनिक क्षेत्र के प्रति सरकार की नीति में परिवर्तन ला दिया। सरकार की नई उद्योग नीति ने इस विचारधारा का अंत कर दिया। सरकार की नयी उद्योग-नीति के लक्षणों के बारे में हम इस खंड की ईकाई 3 में चर्चा करेगें। उदाहरण के रूप में, आठवीं योजना में सार्वजनिक क्षेत्र पर परिव्यय, सातवीं योजना में 54 प्रतिशत के मुकाबले घटाकर 43.2. प्रतिशत कर दिया गया। सरकार, सार्वजनिक क्षेत्र को अतिरिक्त बजटीय सहायता देने के विरूद्ध है। दरअसल, सार्वजनिक क्षेत्र तथा निजी क्षेत्र के बीच विभाजन को मिटा देने और "राष्ट्रीय क्षेत्र" की तरफ रुझान बढ़ रहा है जिसमे कि सार्वजनिक क्षेत्र व निजी क्षेत्र का एक दूसरे में विलय हो जाता है। सार्वजनिक क्षेत्र में निजी क्षेत्र की समता-भागीदारी को बढ़ावा देने की सरकार की मुहिम, इस नये द ष्टिकोण को प्रदर्शित करने वाला उल्लेखनीय नीतिगत उपाय है।

6) **सार्वजनिक मालों तथा सेवाओं की गैर-नौकरशाही आपूर्ति**
(Fulfilment the Non-Bureaucratic Assets and Services)

सार्वजनिक पसंद विचारकों का अनुसरण करते हुए, सरकार सार्वजनिक मामलों तथा सेवाओं को प्रतिस्पर्धा पूर्ण ढंग से प्रदान करने की द ष्टि से विचार कर रही है ताकि सार्वजनिक इजारेदारी के गड्ढे में गिरने से बचा जा सके। उदाहरण के बतौर, सरकार ऊर्जा उत्पादन एवं वितरण, इलैक्ट्रोनिक प्रचार माध्यम तथा दूर-संचार, सड़क निर्माण इत्यादि के क्षेत्र में निजी क्षेत्र को शामिल करने के बारे में गंभीरता से विचार कर रही है।

7) **विकास योजनाओं के लिए वित्तीय सहायता हेतु विकेन्द्रिकृत दायित्व पर बल**
(Stress on the Decentralisation of Financial Help on Development Plans)

योजना बनाने तथा साथ ही योजना के लिए वित्त जुटाने का दायित्व संघीय सरकार पर रहा है। राज्य सरकारें अपने बजटीय प्रावधानों द्वारा समर्थित योजनाओं की बजाय,

केन्द्र द्वारा प्रसारित योजनाओं को ही लागू कर सकी है। राज्यों में इस तरह की प्रव त्ति के चलते स्त्रोत जुटाने के काम के प्रति उदासीनता का भाव रहा है। यह लक्षण, राज्य सरकारों द्वारा लोकप्रिय उपायों पर बढ़ते हुए जोर से स्पष्ट हो जाता है। आर्थिक सुधारों को आगे बढ़ाते हुए संघीय सरकार, "परिचायक-नियोजन" की अवधारणा के निकट आ पहुची है। यह बदली हुई समझ, आठवीं पंचवर्षीय योजना की प्रस्थापनाओं में झलकती है। संघीय सरकार अब सहकारी संघवाद को प्रोत्साहन दे रही है और इसलिए स्त्रोत जुटाने के काम में राज्य के काम में राज्य सरकारों के लिए एक सक्रिय भूमिका की माँग कर रही है।

8) **नियंत्रणहीनता तथा उदारीकरण की ओर**
(Progress to Liberalisation & Decentralisation)

संघीय सरकार बाजार-क्रियाविधि को पूरी स्वतंत्रता प्रदान करने का प्रयास कर रही है, ताकि उद्यमशील व्यापारी व्यक्तियों की उत्पादन क्षमता को अधिकाधिक बढ़ाया जा सके और इस तरह मुक्त बाजार-अर्थव्यवस्था की तरफ बढ़ रही है। निजी क्षेत्र तथा विदेशी प्रत्यक्ष निवेश की जायज आवश्यकताओं के अनुरूप उद्योग-नीति के अनुकूल संशोधन कर लिए गए हैं। व्यापार-नीति तथा वाणिज्य नीति में इसी तरह के परिवर्तन किए गए हैं।

लोगों में यह आशंका बढ़ रही है कि आय तथा संपत्ति की असमानताएँ बढ़कर भारी आघात पहुँचा सकती है और समाज के गरीब तथा कमजोर तबके की भारी उपेक्षा का शिकार होकर उन्हीं के हाल पर छोड़ दिए जा सकते हैं। इस दुर्भाग्यपूर्ण रुझान की क्षतिपूर्ति काफी हद तक सामाजिक सेवाओं तथा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों पर व्यय में बढ़ोत्तरी के जरिए की जा सकती है। इसके प्रमाण मिल रहे हैं कि सरकार, सार्वजनिक वितरण प्रणाली को मजबूत बनाने तथा अन्य तरीकों से, इस तरह की नीतिगत पहल कर रही है जिनसे यह सुनिश्चित हो जाय कि प्रगति को समता की कुर्बानी देकर हासिल न किया गया हो।

संक्षेप में इन नये रुझानों का आशय बाजार की शक्तियों को नौकरशाही नियंत्रण से मुक्त करना है। ये रुझान कम विकसित देशों की जरूरतों के काफी अनुकूल पाए गए हैं।